भारतेंदुयुगीन हिन्दी काव्य में लोक तत्व

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि
के लिए हिन्दी विभाग के अंतर्गत
प्रस्तुत शोध-प्रबंध

निर्देशक

पद्म भूषण डॉ० राम कुमार वर्मा,

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय,
प्रयाग

शोधकर्त्ता

विमलेश कान्ति वर्मा

इलाहाबाद

प्राक्कथन

प्राक्कथन

भारतेन्दु युगीन हिन्दी साहित्य पर अब तक कम नहीं लिखा गया । नाटक, निबंध, काव्य, सभी दृष्टियों से विद्वानों ने भारतेन्दु युगीन साहित्य का अध्ययन और मूल्यांकन किया, किन्तु लोक वार्ता की दृष्टि से भारतेन्दु युगीन साहित्य का अध्ययन अब तक नहीं किया गया । और इस प्रकार इस साहित्य की आत्मा की अवहेलना की गई, और भारतेन्दु युगीन कवियों की मूल विचारधारा समझने का प्रयत्न नहीं हुआ । भारतेन्दु युगीन कवि जन साहित्य लिखने के पक्षपाती थे । वे चाहते थे कि जहां उनके पूर्व का हिन्दी साहित्य अब तक शिष्ट वर्ग के मध्य ही बंधकर सीमित रह गया, जनजीवन तथा जनमानस से अस्पृष्ट रह कर वह एक ग्रामीण अपढ़ की भावधारा तथा उनके जीवन की प्रवृत्तियों को समझने में असक्षम रहा, वही काव्य जन संस्पृष्ट होकर लोक वर्ग का भी बनना चाहिए । यही कारण था कि भारतेन्दु युगीन काव्य लोक काव्य बन गया, उसकी भाव-धारा बदल गई, विषय वस्तु बदल गए और भावों की अभिव्यक्ति की शैली बदल कर लोक शैली हो गई । रीतिकालीन कवियों के समान भारतेन्दु युगीन कवियों ने नायिका के हाव-भाव, नख-शिख का ही वर्णन कर एक अस्वाभाविक चित्र उपस्थित नहीं किया वरन् उन्होंने ग्रामीण नारी का भी स्वर सुना, गांव में खेलते हुए बालकों की प्रवृत्तियों का अनुशीलन किया और मस्त ग्रामीण के बिरहे तथा नारियों की कजली और मलार की तानें भी सुनीं । इस प्रकार भारतेन्दु युगीन कवियों ने लोक शैलियों, लोक भाषा, लोक छंद, लोक उपमान का प्रयोग किया । काव्य में लोक जीवन के सभी पक्षों - लोकोत्सव, लोकपर्व, लोकाचार, लोकप्रथा, लोकचेटक, लोकानु-रंजन, लोक सज्जा प्रसाधन तथा लोक देवी देवताओं का वर्णन हुआ, किन्तु भारतेन्दु युगीन काव्य के इन सभी पक्षों की ओर विद्वानों की दृष्टि अब तक नहीं गई थी ।

डा० रामकुमार वर्मा ने इसीकारण वश मुझे "भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य में लोक तत्व" विषय पर शोधकार्य करने का आदेश दिया । प्रारम्भ में मुझे कार्य अति जटिल तथा परिश्रम साध्य लगा, क्योंकि एक तो

विषय पूर्णतया नया था तथा दूसरी ओर लोकवार्ता सम्बन्धी सामग्री भी पूर्णतया सुलभ नहीं थी, किन्तु डा० रामकुमार वर्मा ने विषय में दक्षता, प्रगाढ़ औत्सुक्य, एवं तत्परता सहित, वात्सल्य, स्नेह एवं अनवरत प्रोत्साहन तथा गुरुवत औदार्य सहित अपना बहुमूल्य समय देकर मेरी पग पग पर सहायता की और मेरी समस्याओं का समाधान किया । वस्तुतः यदि डा० साहब ने स्नेह और आत्मीयता के साथ पग पग पर मेरी समस्याओं का समाधान न किया होता तो शायद कार्य पूर्ण होना कठिन क्या असंभव ही था । अंत में प्रबन्ध पूर्ण होने पर पूर्णरूप से प्रबन्ध की पाण्डुलिपि पढ़ने का भी उन्होंने कष्ट उठाया जो उनके स्नेह का ही सूचक है । इस प्रकार विषय चुनाव से लेकर कार्य समाप्ति तक मुझे उनका स्नेह मिलता रहा । इस स्नेह के लिए धन्यवाद देना औपचारिकता है, उनके स्नेह और आशीर्वाद का सदा आकांक्षी हूं ।

प्रबन्ध में मेरी अनेक समस्याओं का समाधान, बाबू कृष्णानन्द गुप्त भूतपूर्व लोकवार्ता सम्पादक, संगीत सम्पादक श्री लक्ष्मी नारायण गर्ग, डा० शिवनन्दन प्रसाद, उपनिदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय तथा डा० सत्यव्रत सिनहा ने मेरी सहायता की है । श्री महेश नारायण सक्सेना, भूतपूर्व निदेशक, प्रयाग संगीत समिति, ने लोक संगीत के विवेचन में, राग, ताल तथा गीत शैलियों के उद्गम अनुसंधान में मुझे नई दृष्टि दी है, तत्संबंधित अनेक पुस्तकें स्वयं देकर मेरे कार्य को सरल एवं वैज्ञानिक बनाने का प्रयत्न किया है । इन सभी विद्वानों को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूं । डा० सत्येन्द्र से भी मुझे स्नेह, प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला है, उनका भी मैं आभारी हूं ।

संस्थाओं तथा पुस्तकालयों में मुझे विशेष रूप से प्रयाग विश्व-विद्यालय पुस्तकालय, प्रयाग, भारती भवन पुस्तकालय, प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, प्रयाग, आगरा विश्वविद्यालय पुस्तकालय, आगरा, कं० मुं० हिं० विद्यापीठ, आगरा के पुस्तकालय तथा दिल्ली के दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय तथा अमेरिकन लाइब्रेरी, दिल्ली से भी मुझे विशेष सहायता मिली है । उनके अधिकारियों का मैं आभारी हूं ।

अपनी बड़ी बहन डा० स्नेहलता श्रीवास्तव, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, इन्द्रप्रस्थ कालेज, दिल्ली, तथा बड़े भाई डा० मिथिलेश कान्ति, नेतरहाट, रांची, का भी कृतज्ञ हूं, जिनके निरंतर प्रोत्साहन तथा विविध सुझावों से मुझे कार्य करने में बल मिलता रहा है। दोनों के ही स्नेह एवं आशीर्वाद का आकांक्षी हूं।

टंकित प्रतियों के मिलान में श्री विद्याधर जी, रिसर्च स्कालर हिन्दी तथा सुश्री मीरा, रिसर्च स्कालर हिन्दी ने भी मेरी सहायता की है। दोनों को धन्यवाद देना मैं नहीं भूल सकता।
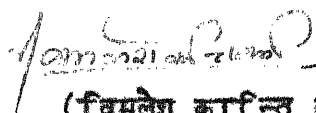
श्री जगदीश नारायण अग्रवाल, संचालक, नेशनल टाइप राइटर. कम्पनी तथा उनके सहयोगी श्री मोहन लाल त्रिपाठी को भी धन्यवाद देता हूं, जिन्होंने यथासंभव सुचारुरूप से टाइप करने का प्रयत्न किया और जिसके कारण ही टाइप में कम से कम त्रुटियां हुईं।

अंत में प्रस्तुत प्रबन्ध विद्वानों के समक्ष रखते हुए क्षमा याचना भी करना चाहता हूं। यथा सम्भव सुधार और परिश्रम करने पर भी प्रबन्ध में त्रुटियां अवश्य रह गई होंगी, क्योंकि कोई भी कार्य कभी भी पूर्णता का दावा नहीं कर सकता। ज्ञान का क्षेत्र अनन्त है और उसमें विस्तार, मनन तथा चिंतन की अनन्त सम्भावना है, इसलिए लेखक भी पूर्णता का दावा नहीं कर सकता, इतना ही कह सकता है कि प्रस्तुत प्रबन्ध नई दृष्टि से भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य के मूल्यांकन का एक और चरण है और प्रत्येक नया चरण विकास का सूचक होता है।

(विमलेश कान्ति वर्मा)

१० अक्टूबर, १९६४:
हिन्दी विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग।

विषय - सूची

विषय-सूची

अनुसंधान करने के लिए हिन्दीतर प्रदेशीय लोक गीतों की तुलना अपेक्षित पर सामग्री के अभाव में कठिनता - दूसरा रूप जो लोक गीतों की शैली में नहीं लिखा गया - इस वर्ग के काव्य में भी लोक भाषा, लोक छंद, लोक शैली तत्व प्राप्त ।

लोक गीतों की शैली में लिखित गीत - कजली - होली - (क) प्रथम प्रकार की शैली (ख) दूसरी प्रकार की शैली - होलीकी अनेक शैलियां - कबीर - कबीर में यौन तत्व - कारण - कबीर के मूल में प्रचलित लोक कथा - भारतेन्दु युगीन कवियों के कबीर - और लोक प्रचलित कबीर - शैली साम्य - विषय विभिन्नता - बारहमासा - लोक तत्व परकता - उत्पत्ति संबंधी विचार - विषय - शैली गत विशेषता - लावनी - मूल उद्गम - भारतेन्दु युगीन कवियों की लावनी के विषय - शैली गत विशेषता - आल्हा - आल्हा की लोक शैली गत विशेषताएं - पूरबी - शैलीगत विशेषताएं - चैती - बन्ना सेहरा आदि संस्कार गीतों की लोक शैली गत विशेषताएं - अन्तहीन परिगणन की मुख्य विशेषता ।

दूसरी कोटि के लोक गीत - जिनमें सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक स्थितियों पर प्रमुखतया व्यंग किया गया और जिन लोक गीतों के शीर्षक नहीं हैं और जो टेक या गायक वर्ग के आधार पर जाने जाते हैं - जिनमें विभिन्न तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन होता है - क्या उनमें लोक मानस निहित हो सकता है ? - एक प्रश्न - भारतीय-विदेशी लोक गीतों में चाहें वे जिस प्रांत के हों सभी में तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन - इनमें जन मानस तथा मुनि मानस - भारतेंदु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त नई लोक शैलियां - पंडों की शैली - हर-गंगा, सरवन नाम से भीख मांगने वाले कीर्तनिए फकीरों की शैली - अजपा जाप करने वालों की शैली - बिरथा जस आए जग में - भिखमंगे फकीरों की लोक प्रचलित शैली - मियां खुश रहो हम दुआ कर चले - धर्मोपदेशकों की - खेती करो हरि नाम की शैली - कहना से कोई नहीं मानता फिर पीछे पछताता है की शैली - बारहखड़ी तथा ककहरा की

की शैली - बारह खड़ी की दो प्रयुक्त शैलियां - दोनों में अंतर - सुग्गा पढ़ाने की - पढ़ौं परवतै सीताराम की शैली - बिरहा - विषय - तत्कालीन परिस्थितियों पर व्यंग - लटके गा गाकर अपनी वस्तुएं बेचने वालों की शैली - कबड्डी शैली - पहेलियों तथा मुकरियों की शैलियां - पहेलियों का उद्गम लोक मानस प्रवृत्ति से संबंधित - शैलीगत विशेषताएं - मुकरियों की शैलीगत विशेषताएं - मुकरी का दादा - मुकरियों की नई शैली - व्यंग की शैली - लिखाय नहि देत्यो पढ़ाय नहिं देत्यो - का भवा आवा है ऐ राम जमाना कैसा - सैंया नौकरिया लिखाय नहिं देत्यो - लोक सीख की शैली - पैसा - बार आदि शैलियां - लोक सीख के विषय ।

लोक शैली की प्रमुख विशेषताएं और भारतेन्दु युगीन काव्य - सर्व प्रथम विशेषता - भावना की स्वच्छंद अभिव्यक्ति - भारतेन्दु युगीन काव्य में मुख्य रूप से शृंगारिक प्रसंगों की स्वच्छंद अभिव्यक्ति - सरकारी नीतियों - सामाजिक स्थितियों पर व्यंग - अनमेल विवाह पर विशेष रूप से व्यंग - अनमेल विवाह के दो रूप - बाल - बाला विवाह - बाला - वृद्ध विवाह ।

पुनरावृत्ति संबंधी लोक शैली की विशेषता - पुनरावृत्ति का कारण - शब्द भंडार की कमी - सामूहिक गाने में सरलता - सामूहिक गान के दो रूप - भाव बोधन में स्पष्टता - गीतों को स्मरण रखने के लिए पुनरावृत्ति की आवश्यकता - भारतेन्दु युगीन काव्य में पुनरावृत्ति के प्रकार ।

अन्तहीन परिगणन सम्बन्धी लोक प्रवृत्ति - संस्कार गीतों में इस प्रवृत्ति की अधिकता - भारतेन्दु युगीन संस्कार गीतों में इस प्रवृत्ति के दर्शन - बन्ना - ज्योनार - आदि गीत - हिन्दीतर प्रान्तों में भी अन्तहीन परिगणन की प्रवृत्ति - लोक गीतों से इतर शैली में भी लिखे गए भारतेन्दु युगीन काव्य में इस प्रवृत्ति के प्रायः दर्शन जो लोक शैली गत विशेषता के ही उदाहरण ।

निरर्थक शब्दों का प्रयोग - भारतेन्दु युगीन कवियोंद्वारा गीतों में प्रयुक्त निरर्थक शब्द ।

संबोधनात्मक प्रवृत्ति - भारतेन्दु युगीन कवियों के लोक गीतों में अनेक संबोधनात्मक शब्दों के प्रयोग - संबोधन प्रवृत्ति के मूल में प्रश्नोत्तर प्रणाली - प्रतीत होता है कि गीत या प्रश्न रूप में है या प्रश्न के उत्तर में कहे जा रहे हैं - छत्तीसगढ़ी - बंगाली - मैथिली - कन्नौजी लोक गीतों में प्रश्नोत्तर प्रणाली संबंधी विशेषता - भारतेन्दु युगीन कवियों के गीतों में प्रश्नोत्तर प्रणाली की स्थिति - प्रश्नोत्तर प्रणाली तथा संबोधन प्रवृत्ति के संबंध में राम और हरि का प्रयोग - इनके मूल में लोक मानस प्रवृत्ति - लोक गीतों से भिन्न शैली में लिखे गए भारतेन्दु युगीन काव्य में भी इस प्रवृत्ति के दर्शन ।

चित्रांकन प्रवृत्ति और भारतेन्दु युगीन काव्य - मेले - व्यक्ति के स्वरूप - विभिन्न परिस्थितियों के चित्रांकन की प्रवृत्ति ।

निष्कर्ष - लोक शैलियों तथा लोक प्रवृत्ति की दृष्टि से भारतेन्दु युगीन काव्य का मूल्यांकन ।

अध्याय ९:

परिचय - भारतेन्दु युगीन कवियों का लोक भाषा को महत्व देना - लोक तात्विक परिशीलन में लोक भाषा सम्बन्धी विवेचन की आवश्यकता - भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त विभिन्न लोक भाषाएं- ब्रजभाषा- खड़ी बोली - अवधी - भोजपुरी - पंजाबी - गुजराती - बंगला आदि भाषाओं का लोक शैलियों में प्रयोग ।

भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा - भाषा परिष्कार - प्रयुक्त ब्रजभाषा का स्वरूप विवेचन - संज्ञा - सर्वनाम - क्रिया, पर-सर्ग, ठेठ शब्दावली । कवियों द्वारा प्रयुक्त खड़ी बोली का लोक स्वरूप- खड़ी बोली की जनमान्यता - खड़ी बोली के साथ ब्रज - अवधी - भोजपुरी- फारसी आदि का मिश्रण ।

भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त अन्य लोकभाषाएं- भोजपुरी - अवधी - हिन्दी के अतिरिक्त भाषाओं में गीत लिखने के प्रयत्न - पंजाबी - गुजराती - बंगाली - आदि भाषाओं का हिन्दी लोक शैलियों में प्रयोग - संस्कृत, उर्दू आदि का लोक शैलियों में प्रयोग ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक शब्दावली - नामवाची शब्दावली - प्रतिध्वनि मूलक - अनुकरणात्मक - मनोभावाभिव्यक्ति मूलक-ध्वन्यात्मक - देशज - शब्दावली आदि । भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोकोक्तियां और मुहावरे - निष्कर्ष - लोक भाषा प्रयोग की दृष्टि से भारतेन्दु युगीन काव्य का मूल्यांकन ।

अध्याय ३ः

परिचय - वैदिक छंद और लौकिक छंद - लोक छंद और लोक ताल - लोक छंदों की सामान्य विशेषताएं - भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक छंद - बरवै - रोला - सोरठा- दोहा - वीर - पद्धरि - उल्लाला - कुण्डलिया, छप्पय - सवैया - दुबई - सार - अष्टपदी - निष्कर्ष ।

उपमानों का मनोवैज्ञानिक आधार - उपमान और लोक मानस शिष्ट साहित्य तथा लोक साहित्य में प्रयुक्त उपमानों में अंतर - भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त उपमानों का वर्गीकरण - प्राकृतिक जीवन से संबंधित उपमान - पशु - पक्षी वर्ग से संबंधित उपमान - मानव वर्ग तथा मानव जीवन से संबंधित उपमान- भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक उपमानों की विशेषताएं - निष्कर्ष ।

अध्याय ४ः

भूमिका - संगीत शास्त्र और लोक संगीत - मार्गी और देशी संगीत - लोक संगीत से ही शास्त्रीय संगीत का जन्म - लोक सापेक्ष्य राग-लोक तत्सम राग - लोक अर्ध तत्सम राग - लोक तद्भव राग - लोक निरपेक्ष राग - विदेशी राग - नवनिर्मित - राग - लोक ताल - लोक तत्सम ताल -

लोक अर्द्ध तत्सम ताल - लोक निरपेक्ष ताल - विदेशी ताल - नवनिर्मित ताल - गीतों के प्रकार - लोक सापेक्ष - सुगम शास्त्रीय - शुद्ध शास्त्रीय - लोक निरपेक्ष - विदेशी - नवनिर्मित - भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक गीतों के प्रकार - कजली - लावनी - होली और फाग- कबीर - चैती - या घांटी - बनरा - गाली - समधिन - घोड़ी - सेहरा - ब्याहुला - नकटा - भूलन - बुंदेलवा - गरबी - सावनी - पूरबी - बारहमासा - चौबड़ा - रसिया - अद्धा - ढाढ़ी - बिरहा - भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक आधारित शास्त्रीय गीत प्रकार - ठुमरी - ध्रुपद - पद और भजन ।

लोक राग और शास्त्रीय रागों का जन्म - शास्त्रीय संगीत में क्षुद्र प्रकृति के राग - भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त विविध लोक राग - भैरव - भैरवी - सिंधु - भैरवी - पीलू - पूर्वी - काफी - सारंग- खम्माच- कान्हरा - देस - सोरठ - सोहनी - कलिंगड़ा - मेघ मलार - हिंडौर - सोरठ मलार - भिंभौटी - ललित - मुल्तानी - अहीरी - टोड़ी- मारू- बरवा - जोगिया काफी - सांभी आदि ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक ताल - खेमटा - चांचर - रूपक - कहरवा - दादरा - अद्धा - धमार - भपताल - त्रिताल - एकताल आदि ।

लोक संगीत में लोक लय का महत्व - भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा निर्देशित एवं वर्गीकृत विविध लय - स्त्री वर्ग से संबंधित - पुरुष वर्ग से संबंधित - प्रान्त संबंधित - विविध लोक आधारित शास्त्रीय लय - ठाह की लय - दून की लय - निष्कर्ष ।

लोक संगीत में लोक वाद्य का महत्व - वाद्यों के प्रकार - शास्त्रीय वाद्य और लोक वाद्य - आदिवासियों के वाद्य - भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोक वाद्यों के प्रकार - मृदंग - सारंगी - भांभ- ढोल-ढोलक- करताल - बंशी - घुंघरू - मंजीरा - डफ - किंगरी - उपंग - बीन-शंख- डोरू - चंग - मुहचंग - मुरज - डाव - दण्ड - शहनाई - घंटा - घड़ियाल- डौंड़ी आदि - निष्कर्ष - लोक संगीत की दृष्टि से भारतेन्दु युगीन काव्य

का मूल्यांकन ।

अध्याय ५ः

भूमिका - लोक जीवन में लोकोत्सवों का महत्व - लोकोत्सवों तथा लोक पर्वों के उद्गम का मूलकारण - लोकोत्सवों की धार्मिक उत्सव में परिगणन - लोकोत्सवों के मूल आधार - ऋतु परिवर्तन - कृषि - दैविक शक्तियों को वशीभूत करने की प्रवृत्ति - लोकोत्सवों तथा लोक पर्वों की लोक तत्व परकता सिद्ध करने में कठिनाई ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोकोत्सव - प्रमुख लोकोत्सव - नागपंचमी - पितर - पक्ष - होली - दशहरा - दिवाली - बसंत पंचमी- अक्षय तृतीया- रथयात्रामहोत्सव - गोवर्धन महोत्सव - गौण लोकोत्सव - गंगा सप्तमी - मकर संक्रांति - रासलीला - बरसात ।

लोकाचार - जन्म विवाह तथा मृत्यु प्रसंग की मानव जीवन में महत्ता- इन्हीं प्रसंगों के चारों ओर विविध लोकाचारों - लोक चेटकों तथा लोक प्रथाओं का प्रचलन - भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोकाचार - जन्म सम्बन्धी - विवाह सम्बन्धी - मृत्यु सम्बन्धी - जन्म विवाह तथा मृत्यु सम्बन्धी लोकाचारों की लोक वार्ता शास्त्रीय व्याख्या - दूब दधि रोचन प्रयोग - चौमुखा दीप - आरती - कलश स्थापन - बधाई बांधना - राई नोन उतारना - न्योछावर - तोरण बांधना - दहेज - सहबाला - पीढ़ी- मण्डप - वर वधू का गांठ जोड़कर बैठना - भांवर - ज्योनार - गाली- सखिए बसन - स्वस्तिक - परछन- पिण्डदान आदि ।

लोक चेटक का तात्पर्य - लोक चेटक के प्रकार - जादू टोना टोटका- नजर लगाना - मूठ चलाना आदि - जादू टोने में अंतर - टोने आनुष्ठानिक- जादू में निश्चितता - टोटे में संभावना - टोना टोटका - विश्वासात्मक और अनुष्ठानात्मक - टोने टोटके का प्रभाव - भारतेन्दु युगीन काव्य में टोना टोटका तथा अन्य लोक चेटकों का वर्णन - उल्लेख - प्रभाव ।

सती तथा जौहर प्रथा का लोक जीवन में महत्व - मूल.कारण - इन प्रथाओं के मूल में लोक मानस की स्थिति - सती तथा जौहर प्रथाओं की लोक

तत्व परकता - भारतेन्दु युगीन काव्य में सती तथा जौहर सम्बन्धी प्रसंग ।

लोक विश्वास का सामान्य अर्थ - सत्य या असत्य - लोक जीवन में लोक विश्वासों का महत्व - पौराणिक विश्वास तथा लोक विश्वास - कवि समय तथा लोक विश्वास - भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोक विश्वास - सामाजिक विश्वास - मनुष्य सम्बन्धी - पशु पक्षी संबंधी - नज़र और टोने टोटके से सम्बन्धित - भूत तथा प्रेत से संबंधित - विविध - धार्मिक लोक विश्वास - देवी देवता सम्बन्धित - वृक्ष तथा वनस्पति पूजन संबंधित ।

लोक देवी देवता - व्यापकता - मानव मस्तिष्क में देवी देवताओं की कल्पना के कारण - प्रकृति को शक्ति रूप में मानना - भय - उपयोगिता वीर पूजा - लोक देवताओं का पौराणिकीकरण तथा पौराणिक देवताओं का लौकिकीकरण - लोक देवी देवता की विभिन्न कोटियां - प्रथम कोटि के भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोक देवता तथा देवियां - बुवरा- नारसिंह बाबा- शीतला - गाजी पीर - अली मुरतिज़ा- गऊ माता - पीपल देवता - तुलसी - गोवर्धन- कजरी देवी - शाहमदार आदि - द्वितीय कोटि के देवता - सूरज - चन्द्र - गंगा-जमुना- हनुमान - नंदी - अक्षयवट- तृतीय कोटि के भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोक देवता तथा देवियां- शिव-राम - कृष्ण आदि ।

लोक सज्जा प्रसाधन अनुशीलन की आवश्यकता - कारण - महत्व- अलंकारण का मूल कारण - भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित विविध लोक सज्जा प्रसाधन - वस्त्रात्मक - आभूषणात्मक - कलात्मक - भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित वस्त्र सम्बन्धी प्रसाधन - स्त्री वर्ग से संबंधित - ओढ़नी - दुपट्टा - चुनरी - चादर - चोली - कुरती - साड़ी - लहंगा- घंघरी - पुरुष वर्ग से संबंधित - पगड़ी - जामा- पटुका - झंगा - दुपट्टा चौकाला कुरता - कमरी - आभूषणात्मक लोक सज्जा प्रसाधन - सिर- मस्तक - नाक-कान - गला - कलाई-हथेली - अंगुली - अंगूठा - वक्ष-कटि- पैर आदि में पहने जाने वाले विविध आभूषणों का उल्लेख - कलात्मक .

लोक सज्जा प्रसाधन - स्थायी - गुदना - अस्थायी - मेंहदी - महावर-मिस्सी - काजल - टीका - पान - पुष्प - मोरपंख - चंदन - कुंकुम -केसर-रोरी आदि ।

लोकानुरंजन का जन्म तथा लोकानुरंजन का मूल कारण - समय काटना - मनोरंजन - मानसिक दृष्टि - शारीरिक दृष्टि - भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोकानुरंजन के वर्गीकरण के संभावित आधार - जाति के आधार पर - क्रीड़ा तथा वाणी विलासिता के आधार पर - व्यसनता के आधार पर - भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोकानुरंजन - बालक-बालिकाओं से संबंधित - छोटे छोटे जीव जन्तु पकड़ना - भौंरा - चकई-- गुल्ली - डंण्डा- लेजिम - पुरुष वर्ग से संबंधित - व्यायामिक - कलात्मक-स्त्री वर्ग से संबंधित - सामूहिक - साधारण - अभिनयात्मक - साहित्यिक-कलात्मक ।

निष्कर्ष - भारतेन्दु युगीन काव्य का लोक जीवन के विविध पक्षों के वर्णन की दृष्टि से मूल्यांकन ।

उपसंहार :

भारतेन्दु युगीन काव्य का लोक तत्व की दृष्टि से मूल्यांकन ।

- - -

अवतरणिका

सीमा निर्धारण-

साहित्य में किसी युग की एक निश्चित सीमा रेखा खींचना न सरल ही है, न वैज्ञानिक ही, क्योंकि साहित्य की मूल प्रवृत्तियाँ जिनसे युग विशेष का नामकरण होता है, न किसी एक निश्चित तिथि से प्रारंभ होती हैं और न उनका प्रभाव एक निश्चित तिथि पर समाप्त होता है। इसी प्रकार भारतेंदु युग की एक तिथि निश्चित करके यह कहना, कि इस तिथि तक जितना साहित्य लिखा गया, भारतेंदु-युगीन साहित्य है तथा इस सीमा या तिथि के उपरांत लिखा गया साहित्य, भारतेंदु युगीन साहित्य की सीमा से परे है, सर्वथा असंगत है। हां अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से भारतेंदु युग की पूर्व सीमा तथा उत्तर सीमा की एक अनुमानित तिथि निश्चित कर लेना आवश्यक है।

साधारणतः भारतेंदु युग का अर्थ समझा जाना चाहिए भारतेंदु का जीवन काल अर्थात ई० १८५० से १८८५ ई० तक का समय। १८५० ई० भारतेंदु हरिश्चन्द्र का जन्म काल है तथा १८८५ ई० मृत्यु काल। इस प्रकार भारतेंदु युग की सीमा कवि भारतेंदु (जिनके नाम के आधार पर ही युग का नाम करण किया गया) के जन्म तथा मृत्युकाल के आधार पर सन् १८५० ई० से १८८५ ई० तक मानी जा सकती है। किंतु यद्यपि भारतेंदु हरिश्चन्द्र की मृत्यु १८८५ ई० में हुई पर उनकी प्रेरणाएं और उनका आकर्षक व्यक्तित्व, उनकी मृत्यु के उपरांत भी हिंदी संसार को ज़ोरों से प्रभावित करता रहा। वह मृत्यु के ही दिन समाप्त नहीं हो गया, फलतः भारतेंदु युग १८८५ ई० के बाद भी रहा। यह प्रभाव भारतेंदु की मृत्यु के बाद लगभग १५ वर्षों तक तो निश्चित रूप से रहा। साहित्य और युग चिंता पर लगभग मृत्यु के १५ वर्षों बाद तक अर्थात् सन् १९०० ई० तक उनकी छाप बनी रही। इसलिए भारतेंदु युग की उत्तर सीमा १९०० ई० तक मानना ही उचित है। हिंदी के सभी गण्यमान इतिहासकारों[१] ने।

१- डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेयः आधुनिक हिंदी साहित्य प्रथम संस्करण, पृ० ५८-५९।

इसी विशेषता को दृष्टि में रखते हुए भारतेंदु युग की उत्तर सीमा सन् १९०० ई० तक निश्चित की है ।

जहां तक पूर्व सीमा निर्धारण की बात है दो प्रवृत्तियां लक्षित होती हैं । विद्वानों का एक वर्ग उनके जन्मकाल से अर्थात् १८५० ई० से भारतेंदु युग की पूर्व सीमा मानता है तो दूसरा वर्ग पूर्व सीमा का निर्धारण उनकी प्रथम रचना विद्या सुंदर के प्रकाशन काल १८६८ -६९ ई० से मानता है[१] । जहां आलोचकों तथा विद्वानों ने मृत्यु को उत्तर सीमा का आधार नहीं माना है, वहीं उचित तो यही प्रतीत होता है कि पूर्व सीमा भी जन्म तिथि से न मानी जाकर उस तिथि से मानी जानी चाहिए जबकि उन्होंने साहित्यिक रचना प्रारंभ की है । चूंकि विद्या सुंदर जो उनका प्रथम नाटक है वह १८६८-६९ में प्रकाशित हुआ और इसीलिए शायद शिपले ने १८६९ ई० ही भारतेंदु युग की पूर्व सीमा निर्धारित की, किंतु अवधेय है कि यद्यपि विद्यासुंदर का प्रकाशन १८६८-६९ ई० में हुआ किन्तु इससे पहले ही वे कविताएं लिखने लगे थे । अतः पूर्व सीमा विद्यासुंदर के प्रकाशन तथा रचनाकाल के पूर्व मानी जानी चाहिए । सुविधा के लिए भारतेंदु युग की पूर्व सीमा उनके जन्मकाल अर्थात सन् १८५० ई० तथा मृत्यु सीमा १९०० ई० तक मान ली जाती है । हिंदी के अधिकांश विद्वानों ने भारतेंदु युग की पूर्व सीमा तथा उत्तर सीमा यही मानी है अतः यह सीमा मान लेना अनुचित भी नहीं है ।

आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग की महत्ता-

भारतेंदु युगीन साहित्य का हिंदी साहित्य में अपना एक विशिष्ट महत्व है । भारतेंदु युग अपने पूर्ववर्ती युगों की तुलना में संक्रान्ति युग है- भाषा, भाव, विषय, शैली सभी दृष्टियों से । भारतेंदु युग

१- Shipley: Encyclopaedia of Literature. p.520

नेता थे, उन्होंने नए नए प्रयोग किए, साहित्य को नवीन धारा दी और अनेक कवियों को अपने मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया, यही कारण है कि उनके नाम पर ही एक युग का नामकरण हुआ । भारतेंदु युग का हिंदी साहित्य में क्या महत्व है? उसका क्या विशेष योगदान है? इसका संक्षेप में नीचे विवेचन किया जाता है ।

भारतेंदु युग की सर्व प्रमुख विशेषता यह है कि भारतेंदु युगीन साहित्य में हिंदी साहित्य के आदिकाल की वीरगाथा परक, भक्ति काल की निर्गुण काव्य, राम काव्य, कृष्ण काव्य और सूफी प्रेमकाव्य रचनाओं में, सूफी प्रेम काव्य के अतिरिक्त निर्गुण, राम और कृष्ण संबंधी रचनाएं इस युग में मिल जाती हैं । वीरगाथा के ढंग की वीर रस पूर्ण रचनाएं भारतेंदु की विजयिनी विजय वैजयन्ती आदि हैं । भक्तिकाल की रचनाओं के समान भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने कबीर की सी वैराग्यमूलक रचनाएँ की हैं जो कबीर की सी ही अक्खड़ता लिए हुए हैं । रामकाव्य धारा के श्रेष्ठ कवि रीवा निवासी राजा रघुराज सिंह इसी युग के कवि हैं । भारतेंदु ने भी राम लीला चंपू लिखकर राम काव्य धारा में योग दिया । जहां तक कृष्ण काव्य का संबंध है भारतेंदु हरिश्चन्द्र बल्लभ सम्प्रदाय में ही दीक्षित थे इसीलिए उन्होंने सूर आदि के समान ही, संप्रदाय निष्ठ रचनाएं भी प्रस्तुत की हैं । जिनमें महाप्रभु वल्लभाचार्य गोसाई विट्ठलनाथ और वल्लभ कुल की प्रशस्तियां भी हैं । कृष्ण काव्य की प्रणाली पद में काव्य रचना करने की है । भारतेंदु ने इस शैली का पूर्णानुकरण किया है और राग संग्रह, प्रेम फुलवारी, कृष्ण चरित आदि भारतेंदु की रचनाएं पद शैली में ही लिखित रचनाएं हैं । भारतेंदु के अलावा प्रताप नारायण मिश्र, चौधरी बदरी नारायण उपाध्याय "प्रेमघन" राधाकृष्ण दास आदि अनेक कवियों ने पद शैली में काव्य रचना की है । रीतिकाल में रीतिबद्ध और रीतिमुक्त काव्यों की परंपरा थी । भारतेंदु युग में दोनों धाराओं के कवि मिलते हैं । भारतेंदु युगीन कवियों ने रीति परम्परा की रचनाएं भी लिखी हैं । सेवक, सरदार,

हनुमान, प्रतापनारायण सिंह तथा सुमेर सिंह आदि ऐसे ही कवि हैं, जो रीति परंपरा के अनुसार ही रचनाएं किया करते थे । भारतेंदु, प्रेमघन, ठाकुर जगमोहन सिंह की कवित्त तथा सवैयों की रचनाएं रीति-कालीन परंपरा की ही है । दूसरी ओर रीति परंपरा से मुक्त नवीन विचार धाराओं का प्रारंभ भी इसी युग में हुआ । भारतेंदु ने प्राचीन काव्य प्रणालियों के साथ नई प्रणालियों में भी रचनाएं की । भारतेंदु युग की राजभक्ति तथा देशभक्ति पूर्ण कविताएं परम्परा विमुक्ति की ही सूचना देती है ।

पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क मे आकर विभिन्न नवीन साहित्यिक रूपों की अवतारणा जिनका हिंदी साहित्य में पहले कभी प्रयोग नहीं हुआ, भारतेंदु युग की ही विशेषता है । भारतेंदु युग के पूर्व हिंदी साहित्य में कविता का एक छत्र साम्राज्य था । आदिकाल भक्तिकाल और रीतिकाल तक हमें काव्य ही काव्य मिलता है । हम निबंध, उपन्यास, समालोचना, जीवनी साहित्य, नाटक आदि से अपरिचित थे । इन नवीन साहित्य रूपों के सूत्रपात करने का श्रेय भारतेंदु हरिश्चन्द्र को ही है । विद्वानों को शायद उपरोक्त कथन के विषय में आपत्ति होगी, वे कहेंगे भारतेंदु से पहले ही विद्यापति ने रुक्मिणी हरण केशवदास ने विज्ञान गीता, हृदय राम ने हनुमन्नाटक, नेवाज ने शकुंतला, देव ने देवमाया प्रपंच तथा आलम ने माधवानल कामकंदलता आदि नाटकों की रचना की थी, किंतु अवधेय है कि भारतेंदु युगीन नाटकों में तथा ऊपर उल्लिखित नाटकों में बहुत भेद है । भारतेंदु के पूर्व लिखे गए नाटकों को नाटकीय तत्वों के आधार पर नाटक संज्ञा से अभिहित ही नहीं किया जा सकता । वे या तो अनुवाद हैं या उनमें महाभारत और रामायण की घटनाओं का पद्यात्मक वर्णन है । किन्तु आलोच्यकालीन नाटकों का जन्म संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य के अनुशीलन के फल स्वरूप हुआ । इसी प्रकार समालोचना का सूत्रपात इसी युग में हुआ । यद्यपि उसका विकास भारतेंदु युग के बाद हुआ । जीवनी साहित्य की तो भारत में कभी

पद्धति ही नहीं रही । कवि अपनी जीवनी लिखना अधम कार्य समझते थे, इसी से किसी भी कवि ने अपनी जीवनी नहीं लिखी । हां बाण आदि संस्कृत के एक दो लेखक अपवाद स्वरूप हैं । इस युग में आत्मकथा तथा ऐतिहासिक जीवनियां भी लिखी गई । निबंध उपन्यास आदि नवीन साहित्य रूपों का तो जन्म ही इसी युग में हुआ । भारतेन्दु युग में कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना, जीवनी साहित्य के अतिरिक्त अन्य साहित्य रूप भी मिलते हैं यथा यात्रा विवरण, संस्मरण, चुटकुले, चोज़, इतिवृत्त, समाचार सूचना, जाहिरात, टिप्पणी आदि। इनमें बहुत से रूप तो केवल समाचार पत्रों के कारण ही जन्मे और पनपे । चूंकि इस युग का साहित्य विशेष रूप से समाचार पत्रों में ही प्रकाशित है, इसलिए इस युग में समाचार पत्रों के लिए ही बहुत कुछ लिखा गया है ।इस प्रकार साहित्य के विविध रूपों के सूत्रपात तथा प्रथम बार प्रयोग के कारण भी भारतेन्दु युग का अपना विशेष महत्व है और इसका साराश्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही जाता है जिन्होंने इस क्षेत्र में स्वयं सर्वप्रथम प्रयास किया और अपने सहयोगी कवियों को प्रेरित किया कि वे विभिन्न साहित्यिक प्रयोगों के द्वारा अंग्रेजी आदिअन्य भाषाओं के सम्पन्न साहित्य के समान हिंदी भाषा के साहित्यको सम्पन्न ~~करें~~ बनाएं ।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त भारतेन्दु युगीन साहित्य की एक प्रमुख विशेषता यह है कि अभी तक हिन्दी साहित्य की रचना या तो दरबारी राजाओं आदि की शृंगार और विलासपूर्ण मनोवृत्तियों के उद्दीपनार्थ ही हुआ करती थी, कविता का क्षेत्र राज प्रासादों की चहारदीवारी तक ही सीमित था और या तो हिन्दी के भक्त कवि भक्ति के निरूपण, दर्शन के तात्विक विवेचन और संसार की असारता तथा एक ब्रह्म की सत्ता समझाने में ही व्यस्त थे, कुछ कवि थे तो वे केवल अपने आश्रयदाताओं की अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा किया करते थे और कुछ कवि कल्पना की लम्बी उड़ाने भरा करते थे, वहां भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और भारतेन्दु युगीन कवियों ने काव्य को संकीर्ण क्षेत्र से निकाल कर जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया । स्वदेश स्वभाषा और स्वसंस्कृति की ओर सबसे पहले

कवियों का ध्यान इसी युग में गया । भारतेन्दु युगीन साहित्य देशोद्धार समाज सुधार और देशोपकार की भावना को लेकर हमारे सम्मुख आया । इस प्रकार साहित्य का जन सामान्य से सम्पर्क भारतेन्दु युग में ही निकटतम रूप से हुआ । इस युग के कवियों ने न तो केवल नारी को अभिसारिका मानकर उसका नखशिख वर्णन किया, न केवल ब्रह्म के स्वरूप समझाने और भक्त भक्त को रामनाम का उपदेश देने में इस युग के कवि व्यस्त रहे वरन् इस युग के कवियों ने मुक्त स्वर से गाते हुए अहीरों के बिरहा गीत सुने, गांवों में कजली दुनमुनियां बैलती हुई ग्रामीण नारियों का रूपांकन किया, और लोक जीवन में प्रचलित आस्थाओं, अनास्थाओं, कहावतों, देवी देवताओं का वर्णन भी किया और इस प्रकार जहां अब तक कवियों ने लोक जीवन की उपेक्षा की थी वहां भारतेन्दु युगीन कवियों ने लोक जीवन की छोटी से छोटी विशेषताओं का उल्लेख किया, वे उसकी उपेक्षा नहीं कर सके । इस प्रकार भारतेन्दु युग का और भारतेन्दु युगीन साहित्य का हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व है और इस महत्व का सबसे बड़ा कारण है कि जनता और साहित्य का प्रथम बार संपर्क बढ़ा ।

भारतेन्दु युग और जनवादी साहित्य:-

जनता और साहित्य का अटूट सम्बन्ध है, साहित्य जनवर्ग की उपेक्षा नहीं कर सकता और यदि वह करता है तो सजीव नहीं रहता, मृतक हो जाता है । उसका क्षेत्र संकीर्ण हो जाता है, वह सामाजिक विकास का साधन नहीं हो पाता, वरन् सामाजिक पतन का कारण बनता है । साहित्य का प्रमुख उद्देश्य "साहित्य जनता की सेवा के लिए है" नष्ट हो जाता है । यही कारण है कि अपने युग में सभी महाकवि जनवर्ग की उपेक्षा नहीं करते वह जनवर्ग के मध्य ही रहकर जनता के लिए ही अपनी काव्य रचना करते हैं, उनका क्षेत्र एक विशेष वर्ग तक सीमित नहीं रहता, वह जनता के लिए लिखते हैं और इसीलिए जनता उसमें रस लेती है । भारतेंदु हरिश्चन्द्र अपने युग की एक विभूति थे वे दूरदर्शी थे, वे जनभाषा और जन साहित्य का महत्व समझते थे इसीलिए उन्होंने जनभाषा तथा जनसाहित्य

का महत्व समझते हुए साहित्य और भाषा को उन्होंने तदनुरूप स्वरूप दिया और सहयोगी कवियों को प्रेरित किया कि वे जन साहित्य की रचना करें[1]। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का यह प्रयत्न सफल हुआ । फलस्वरूप भारतेन्दु से पूर्व काव्य की जो एक अटूट धारा चली आ रही थी उसके फलस्वरूप यद्यपि भारतेन्दु तथा अन्य सहयोगी कवि सभी पुरानी परम्पराओं की भी कविता करते रहे , किन्तु इसके अतिरिक्त काव्य क्षेत्र में भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवियों ने हिन्दी कविता को नई विचार धाराओं की ओर प्रवृत्त किया । नए विषय दिए, नई भावाभूमि दी और सोचने की नई पद्धति दी । भारतेन्दु युगीन कवियों ने कविता को नए विषय दिए और अलंकारों के बोझ से मुक्त किया । कविता अब मध्ययुगीन कृत्रिमता को छोड़कर स्वाभाविकता के पथ पर अग्रसर हो चली। भारतेन्दु युग में अब सदियों बाद ऐसे काव्य की रचना हुई जिसकी परिधि अब केवल नायक और नायिका की विलास लीलाओं तक ही सीमित नहीं थी, वरन् वह अब व्यापक होकर मानव जाति के दुख, दारिद्रय प्रेम और सहानुभूति तक पहुंच गई । इस युग की कविता यथार्थ मानवीय जीवन का रूप प्रस्तुत करने में पूर्णतया सक्षम है । यही कारण है कि जहांपहले कविता का विषय मुख्य रूप से केवल नख शिख तक ही सीमित रह गया था वही अब कविता राजभक्ति तथा देशभक्ति को लेकर लिखी जाने लगी । भारतेन्दु की भारत वीरत्व, विजय बल्लरी, विजयिनी विजय वैजयन्ती, प्रेमघन की भारत बधाई, स्वागत पत्र, आनन्द अरुणोदय, आदि ऐसी ही रचनाएं हैं जो राजभक्ति और देशभक्ति जिनका जनजीवन तथा जनवर्ग से पूर्णतया संबंध है, से ही परिपूर्ण हैं । इसी प्रकार मंहगी, टिकस, शहरों के बढ़ते हुए फैशन, शहर में नारियों की शिक्षा आदि का जनमानस तथा लोक मानस पर क्या प्रभाव पड़ा, इनके प्रति क्या प्रतिक्रिया हुई, इन सबको जितने सहज रूप में वर्णन भारतेन्दु युगीन कवियों ने किया है, पूर्ववर्ती काव्य में नहीं मिलता ।

विषय के साथ ही भारतेन्दुहरिश्चन्द्र आदि कवियों ने लोकभाषा

का भी अपने काव्य में प्रयोग किया है । तुलसी, जायसी, कबीर आदि महाकवियों के आदर्श उनके सम्मुख थे । तुलसी ने अपना मानस संस्कृतमें न लिखकर भाषा में लिखा । संस्कृत प्रेमियों और जनता से साहित्य को अलग रखकर देखने वालों ने तुलसी पर विविध आक्षेप लगाए, किन्तु तुलसी यह भली भांति जानते थे कि जनता तक संदेश लोक भाषा के माध्यम से ही पहुंचाए जा सकते हैं और लोक भाषा के द्वारा ही रामचरित मानस को जनमानस का बनाया जा सकता है । जनवर्ग में प्रिय हुआ जा सकता है । तुलसी दूरदर्शी थे इसीलिए उन्होंने न विरोध सहन करते हुए भी लोक भाषा में रचना की । कबीर भी अपनी लोक भाषा के कारण ही इतने प्रिय हो सके कि उनकी साखियां, सबद, रमैनी और उलट-बांसियां आज भी ग्रामीण कंठ में विराजती हैं और जनता उनकी साखियों का प्रयोग भाषा में करते हुए साक्षी रूप में आज भी दोहराती है । भारतेन्दु ने इस प्रकार अपने पूर्ववर्ती तुलसी सूर आदि कवियों को आदर्श बनाकर लोक भाषा में रचना की और समकालीन कवियों को लोक भाषा में लिखने के लिए प्रेरित किया[1]। यही कारण है कि "भारतेन्दु युगीन कवियों की भाषा न दरबारों की है, न कचहरी की न मुहर्रिरों की । वह जनता की भाषा है जिसमें अत्यधिक ग्रामचिह्न भले ही हों पर नागरिक बनाव सिंगार और टीमटाम का उसमें अभाव है[2]।" इस प्रकार भाषा की दृष्टि से भी भारतेन्दु युगीन साहित्य का विशेष महत्व है । ब्रजभाषा में प्रयुक्त होने वाले अप्रचलित शब्दों को सोधकर उसमें बहुत कुछ संस्कार किया । गद्य के तो वे प्रवर्तक ही माने गए । आचार्य रामचंद शुक्ल ने इस विषय में स्पष्ट लिखा है कि भाषा का सुष्ठु स्वरूप हमें भारतेन्दु साहित्य में ही सर्वप्रथम मिलता है । शुक्ल जी भारतेन्दु की भाषा के विषय में अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं-

---

१- हिन्दी प्रदीपः जि०८, सं० ११, पृ० १-४ ।
जि०१०, सं० १, पृ० १५-१६ ।

२- रामबिलास शर्माः भारतेन्दु युग पृ० १६४-१६५ ।

"उनके भाषा संस्कार की महत्ता को सब लोगों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया और वे वर्तमान हिन्दी गद्य के प्रवर्तक माने गए। मुंशी सदा सुख लाल की भाषा साधु होते हुए भी पंडिताऊपन लिए हुए थी, लल्लूलाल में ब्रजभाषा पन और सदल मिश्र में पूरबीपन था। राजा शिव-प्रसाद का उर्दूपन शब्दों तक ही परिमित न था, वाक्य विन्यास तक में घुसा था। राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा विशुद्ध और मधुर तो अवश्य थी पर आगरे की बोलचाल का पुट उसमें न था। भाषा का निखरा हुआ शिष्ट सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रगट हुआ[१]।"

इस प्रकार भाषा की दृष्टि से भी भारतेन्दु युगीन साहित्य जन साहित्य है। छंदों की दृष्टि से भी भारतेन्दु युग संक्रान्ति युग है। इस युग में दोहा, चौपाई, रोला, कवित्त, सवैया आदि चिर प्रचलित छंदों में से तो काव्य रचना की ही गई, साथ ही कवियों ने लावनी, आल्हा, ठुमरी, गजल कजली आदि लोक छंदों में रचना कर अपना प्रेम ग्रामीण तथा लोक संस्कृति के प्रति भी दिखाया। इस प्रकार कवियों ने साहित्य में स्वीकृत छंदों के अतिरिक्त उन छंदों में भी रचना करना वांछनीय समझा जो जनता में प्रचलित थे, जिन छंदों में ग्रामीण जनता अपने भावों की अभिव्यक्ति करती थी, जो वर्णिक छंदों या साहित्यिक छंदों से अधिक मनोहारी थे।

इस प्रकार भाषा भाव शैली सभी दृष्टियों से भारतेन्दु युग का विशेष महत्व है। समस्त प्राचीन पद्धतियों पर रचना करते हुए भी भारतेन्दु हरिश्चन्द ने जन जीवन की उपेक्षा नहीं की, साहित्य का जन-जीवन से जो संपर्क छूट चुका था उसको पुनः जोड़ने की चेष्टा करते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने यह सिद्ध करना चाहा कि साहित्य का जन जीवन से अभेद सम्बन्ध है। जनजीवन की उपेक्षा कर लिखा जाने वाला साहित्य त्याज्य है वह केवल कल्पना या मानसिक व्यायाम का साधन ही हो सकता

१- आचार्य रामचंद्र शुक्लः हिन्दी साहित्य का इतिहासः पृ० ४४९। आठवां संस्करण।

किन्तु वह अधिक समय तक स्थायी नहीं रह सकता । इसीलिए भारतेन्दु तथा अन्य भारतेन्दु युगीन कवियों ने जनजीवन से अपनी कविता के विषय चुने, जनभाषा का माध्यम स्वीकार किया और जनता में प्रचलित छंदों में भी रचनाएं की । निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युगीन काव्य जनकाव्य है और भारतेन्दु युगीन साहित्य जन साहित्य है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने तथा समकालीन साहित्य को किस प्रकार जनसाहित्य का रूप दे सके, क्यों अपने प्रयास में वह इतने सफल हो सके । इस सम्बन्ध में राम विलास शर्मा का कथन प्रस्तुत है जो उनकी सफलता का एक बहुत बड़ा कारण है -

"वे एक अमीर घराने में पैदा हुए थे परन्तु उन्होंने बैलगाड़ी में बैठकर देश की वास्तविक दशा देखी थी । बाढ़ पीड़ितों के लिए उन्होंने हाथ में नारियल लेकर भीख मांगी थी । इसीलिए वह युग साहित्य को जन साहित्य बनाने में सफल हुए[1] ।"

जन साहित्य और लोक तत्वः-

समस्त जन साहित्य की पृष्ठभूमि और भावभूमि लोक तत्वों से ही प्रेरणा ग्रहण करती है । इस प्रकार जन साहित्य तथा लोकतत्व का निकट का संबंध है, लोक तत्वों की आधार शिला पर ही जन साहित्य का निर्माण होता है । इतना ही नहीं जन का प्रयोग भी साधारण जनता के संबंध में हुआ और लोक का भी जन सामान्य के अर्थ में प्रयोग हुआ है । इस प्रकार लोक तथा जन शब्द कहीं कहीं समानार्थी भी है । यही कारण है कि लोक शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों में साधारण जनता के ही अर्थ में किया गया है । व्यास महाभारत में लोक का प्रयोग साधारण जनता के ही अर्थ में करते हैं -

---

१- रामविलास शर्माः भारतेन्दु युगः, पृ० १६४ ।

अज्ञान तिमिरांधस्य लोकस्य तु विचेष्टतः ।
ज्ञानांजन शलाकाभिर्नेत्रोन्मीलन कारकम्[1] ।।

इसी प्रकार भगवत् गीता में लोक संग्रह शब्द का व्यवहार भी साधारण जनता के लिए ही किया गया है -

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोक संग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि[2] ।।

दूसरी ओर जन शब्द का प्रयोग भी साधारण जनता के अर्थ में कई स्थानों पर हुआ है । ऋगृवेद से उदाहरणार्थ एक श्लोक प्रस्तुत है, जिसमें जन का प्रयोग साधारण जनता के रूप में किया गया है -

या इमे रोदसी उभे अहंमिंद्र मतुष्टवं ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनं[3] ।।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी लोक शब्द का अर्थ बताते हुए कहा है कि - "लोक शब्द का अर्थ जानपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि गांवों और नगरों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं है । ये लोग नगर में परिष्कृत रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वालों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं उन्हें उत्पन्न करते हैं[4] ।"

इस प्रकार लोक तथा जन शब्द कई स्थानों पर समानार्थी रूप में प्रयुक्त हुए हैं । किन्तु लोक साहित्य तथा जनसाहित्य के सम्बन्ध में थोड़ा

१- महाभारत, आ० पर्व १।८४ ।

२- गीता ३।२० ।

३- ऋगृवेद ३।५३।१२ ।

४- जनपद वर्ष १, अंक १, पृ० ६५ ।

भेद है, यद्यपि यह सत्य है कि जनसाहित्य के मूल में लोक तत्व हैं और लोक तत्वों को ही आधार मानकर जनसाहित्य का निर्माण होता है। लोक साहित्य, तथा जनसाहित्य के अंतर को स्पष्ट करते हुए आदिम साहित्य का भी साथ ही साथ अंतर विवेचन भी आवश्यक है। आदिम साहित्य उस युग का साहित्य है जब समाज में सुसंस्कृत या असंस्कृत तथा शिष्ट और अशिष्ट की भावना नहीं थी। जब समाज में वर्गों तथा व्यवसायों का विभाजन कठोर नहीं था। लोक साहित्य उस युग का साहित्य है जब शिष्ट तथा अशिष्ट साहित्य का भेद स्पष्ट हो गया होगा लोक साहित्य में प्रयुक्त लोक विशेषण से तत्कालीन समाज में प्रचलित शिष्ट साहित्य की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है। लोक साहित्य आदिम साहित्य की तुलना में अधिक विकसित समाज का साहित्य है किन्तु फिर भी यह बात विशेष महत्व की है कि लोक साहित्य में भी आदिम मानस के तत्व मिलते हैं। जन साहित्य तथा लोक साहित्य में भेद स्पष्ट करना तथा दोनों के मध्य विभाजक रेखा खींचना कठिनतर है, फिर भी सामान्यतया इतना कहा जा सकता है कि लोक साहित्य जहां जनता द्वारा जनता के लिए ही रचित साहित्य है वहां जन साहित्य जनता के लिए व्यक्ति द्वारा रचित साहित्य है। लोक साहित्य के रचयिता केवल जनसमूह का माध्यम मात्र है, व्यक्ति का लोक साहित्य में कोई महत्व नहीं है। वही जन साहित्य में रचयिता व्यक्ति का अपना विशेष महत्व है। उसका व्यक्तित्व उसमें प्रखर रहता है जब लोक साहित्य में व्यक्तित्व विगलित होकर लोक का बन जाता है। उसकी अलग स्थिति नहीं रहती। जनसाहित्य तथा लोक साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंतर यह भी है कि लोक साहित्य मौखिक होता है, वह लोक वर्ग के कंठ में ही जीवित रहता है जबकि जन साहित्य लिखित होता है। इस प्रकार लोक साहित्य तथा जन साहित्य में अंतर है, किन्तु फिर भी जिस प्रकार आदिम मानस के तत्व लोक साहित्य में मिलते हैं क्योंकि आदिम साहित्य के बाद ही लोक साहित्य का जन्म हुआ है और लोक मानस का विकास ही आदिम मानस से हुआ है, उसी प्रकार चूंकि लोक साहित्य के बाद की जन साहित्य की स्थिति है इसलिए जनसाहित्य में लोक साहित्य का तथा आदिम साहित्य

दोनों ही के तत्व मिलते हैं । भारतेन्दु युगीन साहित्य जनता का साहित्य है, जनता के लिए लिखा गया है, इसीलिए उसमें लोक साहित्य के तत्व और आदिम साहित्य दोनों के तत्व मिलते हैं । भारतेन्दु युगीन कवियों ने लोक जीवन में प्रचलित लोक विश्वासों, लोकानुरंजनों, लोक पर्वों, तथा लोकोत्सवों - लोक देवी देवताओं, लोक सज्जा प्रसाधनों का वर्णन किया है । कजरी लावनी आदि अनेक लोक शैलियों में, कवियों ने रचनाएं की है । काव्य में लोक उपमानों का तथा लोक भाषा का प्रयोग किया है । इस प्रकार भारतेन्दु युगीनकाव्य लोक काव्य का एक सच्चा रूप प्रस्तुत करता है ।

लोकतत्व का अर्थ:-

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्राप्त लोक तत्वों पर विवेचन तथा अनुसंधान करने के पूर्व आवश्यक है है कि लोक तत्व का अर्थ निरूपण हो, और उसके मूल में निहित आदिम तत्व तथा लोक मानस तत्व का विवेचन हो, क्योंकि लोक तत्व निरूपण के लिए लोक तत्वों की नृतत्व-शास्त्रीय तथा लोक मनोवैज्ञानिक व्याख्या दोनों ही आवश्यक है ।

लोक तत्व के अर्थ स्पष्टीकरण के लिए आवश्यक है कि "लोक शब्द के अर्थ का स्पष्टीकरण हो ।

भारतीय दृष्टिकोण:-

भारतीय साहित्य में "लोक" शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हुआ है । वैयाकरणों का एक वर्ग "लोक" की व्युत्पत्ति लोक दर्शन धातु में घञ् प्रत्यय लगाकर बनाता है, जिसका अर्थ होता है देखने वाला, वहीं वैयाकरणों का दूसरा वर्ग रुक या रोक(चमकना) लोक का मूल रूप मानता है । व्युत्पत्ति की दृष्टि से तो इसके भिन्न रूप वैयाकरणों ने बताए ही है, साथ ही साहित्य में "लोक" का प्रयोग बहुअर्थी है । ऋगवेद पुरुष सूक्त में लोक शब्द का प्रयोग जीव तथा स्थान दोनों के लिए ही हुआ है[1]।

१- ऋगवेद १।९१।१२ ।

पाणिनि कृत अष्टाध्यायी में, पतंजलि के महाभाष्य में तथा मुनि भरत के नाट्य शास्त्र में लोक शब्द का प्रयोग शास्त्रेतर तथा वेदेतर और सामान्य जन के सम्बन्ध में हुआ है । पाणिनि तथा पतंजलि ने अनेक शब्दों की व्याख्या करते हुए कहा है कि वेद में इस शब्द का प्रयोग इस रूप में है, तथा लोक में भिन्न इस प्रकार का । स्पष्ट है कि पाणिनि के समय में वेद परिपाटी तथा लोक परिपाटी बन गई थी । लोक परिपाटी का तात्पर्य लोक में अथवा साधारण जनवर्ग में प्रचलित परिपाटी से है । गीता में लोक से इतर वेद की सत्ता स्वीकार भी की गई है । गीता में प्रयुक्त लोक संग्रह शब्द का तात्पर्य भी साधारण जनता के आचरण व्यवहार तथा आदर्श से है । प्राकृत तथा अपभ्रंश के लोक जनता तथा लोक अप्पवाय शब्द भी साधारण जनता की ओर ही संकेत करते हैं ।

संस्कृत साहित्य में ही नहीं हिन्दी में भी लोक शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है । हिन्दी सन्त साहित्य में कहीं तो लोक का प्रयोग मृत्युलोक तथा पृथ्वी के संदर्भ में है, कहीं लोक का प्रयोग सारे संसार के अर्थ में भी व्यापक रूप से किया गया है - नाव मेरी डूबी रे भाई तातै बढ़ी लोक बड़ाई । कहीं लोक शब्द वेद के प्रतिकूल लोक परंपरा का अर्थ देता है । इस अर्थ में लोक शब्द का प्रयोग सन्त साहित्य में बहुत बार हुआ है[१]। कबीर लोक को लोक वेद की परंपरा में बहता हुआ मानते हैं और सतगुरु को ही उद्धारक कहते हैं - पीछे लागा जाई था, लोक वेद के साथ । आगै से सतगुरु मिला दीपक दीया हाथि।। कबीर लोक वेद दोनों से मुक्त होने पर भी शून्य में समाहित होना मानते हैं । कहीं कहीं स्पष्टतः जनसाधारण तथा लोक समाज के ही अर्थ में लोक का प्रयोग हुआ है । लोक बोल इकताई हो । संतों के लोक लाज, लोकाचार आदि शब्दों में प्रयुक्त लोक का सम्बन्ध जनसाधारण या सामाजिकता से ही है ।

हिन्दी भक्ति साहित्य में भी लोक शब्द सामान्यतया

१- ओम प्रकाश शर्मा- हिन्दी सन्त साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि: पृ० ६-७ ।

उपर्युक्त अर्थों का ही बोधक है । तुलसी साहित्य में लोक शब्द का प्रयोग स्थान अर्थ में भी हुआ है - लोक बिसोक बनाई बसाए[1]। लोक शब्द का प्रयोग पृथ्वी लोक के अर्थ में भी किया गया है[2]। स्थानवाची प्रयोगों के अतिरिक्त लोक का प्रयोग वेद परिपाटी के विपरीत लोक परिपाटी अर्थात् साधारण जनवर्ग की परिपाटी के संबंध में भी अनेक बार हुआ है । तुलसी योगूप स्वामी की रीति बताते हुए कहते हैं - लोकहुं वेद सुसाहिब रीती। विनय सुनत पहिचानत प्रीती[3]। इसी प्रकार वेद की तुलना में लोक का प्रयोग अनेक बार हुआ है[4]। तुलसी ने लोक रीति या लोक परिपाटी का महत्व वेद परिपाटी के समान ही माना, इसीलिए उन्होंने कहा है -

शशि गुरु तिय गामी, नहुष चढ़ेउ भूमिसुर यान ।
लोक वेद से पतित भा नीच को वेनु समान ।।

सूरदास ने भी लोक शब्द का पयोग वेद से भिन्न जनसाधारण में प्रचलित रीति के संदर्भ में किया है - नंद नंदन के नेह मेह जिन लोक लीक लोपी । लोक वेद प्रतिहार पहरुआ तिनहूं पै राख्यो न पर्यो री। यहां लोक लीक का तात्पर्य जनसामान्य में प्रचलित रीति से ही है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में लोक शब्द बहुत बार प्रयुक्त हुआ है और वहां भी उसका सम्बन्ध सामान्यतया जनसाधारण में प्रचलित रीति से ही मुख्य रूप से है । भारतेन्दु ने लोक लाज[5], लोक मर्यादा[6], लोक रीति[7] का प्रयोग अनन्त बार किया है और यहां तात्पर्य भी सामान्य जनवर्ग की मर्यादा और रीति से ही है । लोक का प्रयोग सामान्य जनसमूह के अर्थ में भी कुछ स्थानों पर हुआ है उदाहरणार्थ-

---

१- रा०च०मा० १।१५।३।　　　२-रा०च०मा० १।१९।१ ।
३- रा०च०मा० १।२७।३।　　　४- रा०च०मा० १।२।३ ।
५- भा०ग्रं०पृ० ४६, ६५, ७०, ३७३, ३७४,१०४,१५२,१५६,१८५, २०९ ।
६- भा०ग्रं० ६९ ।
७- वही, ४८१, १७२ ।

ब्रह्मवाद कौं कबहुं बहुत विधि थापन करहीं ।
लोक सिखावत हेतु कबहुं संध्या अनुसरहीं[१] ।।

+ + +

शूद्र ललना लोक उद्धरन सामर्थ,
गोपिकाधीश कृत अंगिकारी ।
वल्लभी कृत मनुज अंगिकृत जनन,
पै धरन मधुर्याद बहु करुनधारी[२] ।।

प्रेमघन ने भी लोक का प्रयोग जन समूह के अर्थ में किया है -

तुमहिं असंख्य लोक रंजन तुमहीं अधिनायक[३]।

वेद परिपाटी या शास्त्रीय रीति के विरुद्ध वेद के साथ लोक शब्द का प्रयोग तो सभी कवियों ने किया है । भारतेन्दु, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र के काव्य से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

लोक वेद मैं कहत सबै हरि अभयदान के दानी ।
लोक वेद कुल कानि छांड़ि हम करी उनहिं सो प्रीति ।
लोक बेद दोऊ कूल सरोवर गिरे न रहे सम्हारे ।
लोक बेद दोउन सो न्यारी हम निज रीति निकाली[४]

+ + +

जिन हित लोक बेद सब छांड़्यो तिन मुखहू कबहुं न दिखायो ।
लोक वेद के नेम जिहि बिन गिन सो लघु लगत[५]।

इस प्रकार लोक शब्द का प्रयोग जन सामान्य, जन परिपाटी के अर्थ में अनेक स्थानों पर हुआ है यह उपरोक्त उदाहरणों से स्वतः सिद्ध लोक शब्द का प्रयोग तीनों लोक, पितर लोक आदि के सम्बन्ध में भी कई

१- भा०ग्रं०पृ० ६४७ । २-वही, पृ० ७१४ ।
३- प्रे०सर्व०पृ०२३६ । ४- भा०ग्रं०पृ०६८,११५,११६,२७४ ।
५- प्रग्रं० पृ०२४०, २५३ ।

कार हुआ है[1], किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में लोक का "स्थानवाची" अर्थ में महत्व नहीं है अतः विस्तार से विवेचन अपेक्षित नहीं है ।

इस प्रकार भारतीय साहित्य में "लोक" के विभिन्न प्रयोग मिलते हैं । कहीं लोक इहलोक परलोक सप्तलोक आदि शब्दों की व्याख्या करते हुए स्थानवाची अर्थप्रस्तुत करता है, कहीं वेद परिपाटी और लोक परिपाटी रूप में, नाट्यधर्मी और लोक धर्मीरूप में प्रयुक्त होकर शास्त्रेतर जनता में प्रचलित तथा उससे संपर्कित अर्थ देता है, तो कहीं लोक शब्द का अर्थ जन सामान्य ही सिद्ध होता है । इस प्रकार प्रयोग की दृष्टि से भी लोक शब्द का भारतीय साहित्य में विभिन्न अर्थों में प्रयोग है ।

पश्चिमी दृष्टिकोण:-

"लोक" का पश्चिमी विद्वानों ने क्या अर्थ समझा है इसपर भी विचार करना होगा क्योंकि लोक तत्व के सन्दर्भ में लोक का जो विशेष अर्थ लिया जाता है उसका काफी सम्बन्ध पाश्चात्य विचारधारा से है । आज हम वेद से भिन्न समस्त साहित्य को लोक साहित्य नहीं कह देते हैं । लोक साहित्य में प्रयुक्त लोक से एक विभिन्न अर्थ अभीष्ट है । लोक साहित्य अंग्रेजी शब्द फोक लिट्रेचर का शाब्दिक अनुवाद है । फोक के लिए लोक तथा लिटरेचर के लिए साहित्य शब्द का प्रयोग हुआ है ।इस प्रकार फोक और लोक पर्यायवाची हैं । किन्तु अवधेय है कि लोक का जो अर्थ है, वही बिल्कुल फोक का नहीं है । यही कारण है कि आज विद्वानों में फोक के लिए कौन हिन्दी शब्द रक्खा जाय, इस पर अच्छा खासा विवाद उठ खड़ा हुआ है । रामनरेश त्रिपाठी फोक के लिए ग्राम शब्द उपयुक्त मानते हैं, तो कोई जन शब्द, तो कोई फोक के लिए लोक शब्द को संगत समझते हैं । यदि भारतीय शब्द "लोक" तथा पश्चिमी शब्द फोक बिलकुल एक ही अर्थ रखते होते तो नामकरण में इतना वैभिन्न्य होना सम्भव नहीं था ।

१- भा०ग्रं०२८१, ५१२। प्र०ल० ४८, ५५। प्रे०सर्व०पृ०४१०,४०३ ।

पश्चिमी फोक शब्द की व्युत्पत्ति ऐंग्लो सेक्सन शब्द फोक(Folc) से मानी जाती है । फोक शब्द की व्याख्या करते हुए डा॰ बार्कर ने लिखा है फोक से सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है परन्तु यदि इसका विस्तृत अर्थ लिया जाय तो सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं । किन्तु जब हम फोक का प्रयोग वार्ता, नृत्य, संगीत आदि से युक्त होकर करते हैं तो वहां हमारा तात्पर्य उस लोक समाज से ही होता है जिसके पास संस्कृति की किरणें आज भी नहीं पहुंची हैं, जो अर्द्धसभ्य हैं या असभ्य हैं, जो अशिक्षित, ग्रामीण और देहाती हैं ।

हिन्दी में लोकतत्त्व के लिए लोकवार्ता शब्द का प्रयोग चल पड़ा है जो फोक लोर शब्द का रूपान्तर है । फोक लोर शब्द का निर्माण जान टामस ने १८४६ में पापुलर एण्टीक्विटीज़ के लिए किया था । इसका प्रयोग- पौराणिक रूप से उन सभी मौखिक परम्पराओं के रूप में होता था जिसके अन्तर्गत लोकथाओं, लोकगीतों,मुहावरों, लोक विश्वासों और सभी प्रकार की लोक कथाओं का समावेश था ।

लोक वार्ताएक व्यापक शब्द है और इसके अन्तर्गत उन समस्त अभि- व्यक्तियों का समावेश हो सकता है जो लोक संभूत है । थियोडोर एच॰ गैस्टर ने कहा भी है इसके अन्तर्गत उन समस्त तत्वों या साहित्य का समावेश होता है जो लोक के हैं, जनता के हैं, जनता के लिए है और जनता द्वारा लिखे गए हैं । अतः लोक साहित्य में वह समस्त साहित्य आएगा जो लोक का है, लोक के लिए है और लोक द्वारा संभुत है[1] किन्तु आज फोक लोर शब्द का प्रयोग उन विशिष्ट पिछड़ी हुई जाति के तत्वों के

---

1. It is essentially of the people,by the people and for the people - Theodor H.Gaster: Standard Dictionary of Folklore Mythology & Legend.

संदर्भ में लिया जाता है, जो आज सभ्य समाज में मिलते हैं[1]।

लोक वार्ता शास्त्रियों का मत है प्रत्येक समाज में दो वर्ग होते हैं (१) सुसंस्कृत या सभ्य वर्ग (२) निम्न या अशिक्षित, ग्रामीण वर्ग । यह अशिक्षित ग्रामीण वर्ग में अनेक अन्धविश्वास,परम्परायें, किंवदंतियां, नृत्य आदि प्रचलित होते हैं । सुसंस्कृत समाज में मिलने वाले उन्हीं असभ्य विश्वासों, परम्पराओं, लोकोक्तियों, मुहावरों, कथाओं को लोकवार्ता-शास्त्र की सामग्री समझा जाता है ।

एक ऐसे प्रदेश की संस्कृति, जिसमें शिक्षा की किरणें आज तक नहीं पहुंच पाई हैं । नागरिक या सभ्य संस्कृति के प्रवाह से जो बिल्कुल अछूती हैं, लेखन कला का जिसे आज तक ज्ञान नहीं हुआ है, केवल मौखिक रूप से ही जिस संस्कृति में भावों का आदान प्रदान होता है, उसकी समस्त अभिव्यक्तियाँ लोकवार्ता का विषय होंगी । किन्तु स्टिथ थाम्पसन का कहना है कि शिक्षित समाज की भी वे अभिव्यक्तियां लोकवार्ता के क्षेत्र में आयेंगी, जिनमें परंपरा का तत्व विद्यमान हैं यद्यपि वे असभ्य समाज की नहीं है । स्पष्ट है थामसन ने परम्परा का तत्व फोकलोर की एक बहुत बड़ी विशेषता मानी है यहां परम्परा का तत्व लोक वार्ता और परिनिष्ठित साहित्य की मुख्य विभाजक रेखा बनता है[2]। परि-निष्ठित साहित्य में परंपरागत - तत्व कम होते हैं । उनमें स्थान और

---

1. (a)...the general implication of the usage is towards restricting the province of folklore to the culture of the backward elements in the civilized socities- Encyclopaedia Britanica.p.446.

   (b) Much of the anthropological material called folklore comes from rural populations of the civilized world- Encyclopaedia of Social Sciences.

2. At least among literate peoples all the subjects mentioned above are considered as folklore, since all of them are truly traditional- Stith Thompson. Standard Dictionary of Folklore p.403.

समय के अनुसार नए तत्वों का बराबर समावेश होता रहता है, किन्तु लोक वार्त्ता में यह परम्परा का तत्व पीढ़ी दर पीढ़ी चला करता है । परिनिष्ठित साहित्य में बौद्धिकता का प्राधान्य रहता है, हर वस्तु तर्क की तुला पर तोली जाती है तब परिनिष्ठित साहित्य में उसका ग्रहण होता है, किन्तु लोक समाज परंपरागत तत्वों में बिना छिद्रान्वेषण किए हुए उन तत्वों को ज्यों का त्यों लेता जाता है । उसे इसकी चिंता नहीं कि इन लोकानुष्ठानों या लोक विश्वासों में कोई तथ्य है भी या नहीं । वे उन्हें यथावत् ले लेता है । तर्क उसके पास केवल एक है कि उसके पूर्वजों ने, दादा नानाने उन्हें अपनाया था, उनका पालन किया था वह-उसे क्यों छोड़ दे । यदि वह व्यर्थ ही होता तो उसके दादा नाना ने ही क्यों अपने पूर्वजों से दाम में लिया होता । चूंकि दादा नाना ने अपने पूर्वजों की इस लोक सम्पत्ति को स्वीकार किया था । अतः उसे भी ज्यों का त्यों ले लेना चाहिए । क्योंकि यदि वह उसे तथावत नहीं समझता तो अनिष्ठ की आशंका है । एक उदाहरण लीजिए दिशाशूल सम्बन्धी लोक तत्व का - "सोम पुरब दिसि उतर न चालू"। लोक विश्वास है कि सोमवार को पूर्व और उत्तर दिशा की यात्रा नहीं करनी चाहिए । यह लोक विश्वास आज भी अपढ़, गंवार समाज में ज्यों का त्यों चला आ रहा है । नगर का एक सुसभ्य नागरिक चाहे इसका उलंघन कर भी ले, किन्तु ग्रामीण नागरिक इस विश्वास का उलंघन नहीं ही कर सकता उसका तो दृढ़ विश्वास है कि सोमवार को उत्तर और पूर्व की ओर नहीं जाना चाहिए । यही कारण है कि आज यदि उसको कोई आवश्यक कार्य से सोमवार को पूरब या उत्तर जाना हो, तो वह अनिष्ट की आशंका से सहम उठता है । उसके पैर रुक जाते हैं और वह यात्रा को टालने का प्रयत्न करता है, किन्तु यदि उसे यात्रा करनी ही है तो वह ईश्वर को बराबर मनाता हुआ जाएगा कि उसकी अनिष्ट से रक्षा हो । यह है अखण्ड विश्वास लोक वर्ग का, जिसे उसने परंपरा से अपनाया है । परिनिष्ठित साहित्य में यही तत्व कम हो जाते हैं और जितना ही अधिक परिनिष्ठित साहित्य होगा, उसमें उतने ही कम

लोक तत्व मिलेंगे । किन्तु चूंकि जैसा कि जेम्स फ्रेजर का कहना है - मानव विकास सम्बन्धी आधुनिकतम शोधों से सिद्ध है आज की संस्कृति एवं सभ्य मानव का उद्गम स्थल उन असंस्कृत असभ्य और बर्बर जातियों में ही है, जिस बर्बरावस्था में आज भी कुछ जंगली जातियां विद्यमान हैं । इस आदिम बर्बर असंस्कृत समुदायों के अनेक ऐसे रीति रिवाज, प्रथाएं, विश्वास, अनुष्ठान आज भी विकसित मानव परंपरा से होते हुए चले आए हैं । क्योंकि आज का सुसभ्य मानव भी तो इस बर्बरावस्था से विकसित हुआ ही मानव तो है। ऐसे आदिम आज के मानव में अवशिष्ट रीतिरिवाज प्रथाएं विश्वास अनुष्ठान आदि ही लोकवार्ता के विषय हैं । व्यापकतम अर्थ में लोकवार्ता के अंतर्गत वे समस्त परंपरागत विश्वास और रीतिरिवाज आएंगे जो मानव समूहगत है और जिन पर किसी व्यक्ति का प्रभाव नहीं दिखाया जा सकता[1]।

इस प्रकार आदिम मानव के ये तत्व आज के मानव में भी न्यूनाधिक मात्रा में शेष हैं, क्योंकि सभी का विकास एक ही स्थिति से हुआ है, और इसी प्रकार ये तत्व परिनिष्ठित साहित्य में भी मिल जाते हैं, यद्यपि इनमें परम्परा का तत्व अपेक्षाकृत कम होता है । आधुनिक समाज में लोक संस्कृति को नागरिक संस्कृति से भिन्न करने वाला यह तत्व परंपरा का ही

---

1. Modern researches into the early history of man conducted on different lines, have converged with almost irresistible force on the conclusion that all civilized races have at someperiod or other emerged from a state of savagery resembling more or less closely in the state in which many backward races have continued to the present time; and that; long after the majority of men in a community have ceased to think and act like a savages; not a few traces of the old rudder modes of life and thought survive in the habits and institutions of the people. Such survivals are included under the head of folklore, which in the broadest sense of the word, may be said to embrace the whole body of a people's traditionary beliefs and customs, so far as these appear to be due to the collective action of the multitude and cannot be traced to the individual influence of the greatmen-Frazer: Folklore in the Old Testament (Preface).

लोक तत्व है, जो अनुष्ठान और प्रथाओं आदि को जन्म देता है अथवा यों कहें कि सभ्य समाज में मिलने वाले ये अनुष्ठान और प्रथाएँ आदि के परंपरागत तत्व ही है जो लोक संस्कृति की स्थिति की सूचना देते हैं[1]।

इस प्रकार लोकवार्ता में परम्परा का तत्व बहुत प्रमुख है। लोकवार्ता में आदिम मानव की सीधी और सच्ची अभिव्यक्ति मिलती है[2]।

पश्चिमीय विद्वानों की इन उपरोक्त लोकवार्ता सम्बन्धी परिभाषाओं और विचारों को देखने से ज्ञात होता है कि लोक का अर्थ अधिकांश विद्वानों ने आदिम मानव या असभ्य ग्रामीण मानव के संबंधित तत्वों के सन्दर्भ में किया है और लोकवार्ता के लिए परम्परात्मकता और मौखिकता मुख्य विशेषता मानी है।

भारतीय तथा पश्चिमी लोक सम्बन्धी व्याख्याएं देखने से स्पष्ट है कि दोनों में काफी मतभेद है। भारतीय आचार्यों के अनुसार शास्त्रेतर या वेदेतर सभी कुछ लौकिक है, या जनवर्ग या साधारण जन में जो कुछ है वह सब लोक का है। ऋग्वेद में "जन" का साधारण जन के अर्थ में प्रयोग अवश्य हुआ है किन्तु वहाँ यह स्पष्ट नहीं किया गया है, कि वह जन निरा ग्रामीण है, असभ्य है अथवा नहीं। आदिम मानव के उसमें अपेक्षा है अथवा नहीं। लोक शब्द की व्याख्या डा० हजारी प्रसाद

---

1. In modern society what distinguishes folklore from the rest of the culture is the preponderance of the handed down over the learned element and prepotency that the popular imagination derives from and gives to custom and tradition. Standard Dictionary of Folk-lore, Mythology and Legend.

2. Folklore may be said to be a true and direct expression of the mind of primitive man.-Standard Dictionary of Folklore. Mythology and Legend.

त्रिवेदी[1] ने भी "जनपद" में की है जो पश्चिमी विचारधारा से पर्याप्त समानता रखती है -"लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि गांव और नगरों में फैली हुई वह सम्पूर्ण जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं है । ये लोग नगर में परिष्कृत रुचि सम्पन्न वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं ।"

डा॰ कुंज बिहारीदास की लोक गीतों सम्बन्धी व्याख्या देखने से ज्ञात होता है कि सुसंस्कृत और सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में रहने वाले व्यक्ति ही "लोक" जाति के अन्तरगत परिगणित होते हैं ।

पश्चिमी और भारतीय लोक सम्बन्धी विचार धाराओं को देखते हुए हम कह सकते हैं, कि लोक से हमारा तात्पर्य उस समाज से है जो शास्त्रीयता और पांडित्य से अस्पृष्ट है, जिसे नागरिक संस्कृति ने प्रभावित नहीं किया है, जो अपढ़ और ग्रामीण है जिसमें कृत्रिमता नहीं है और जो आदिम संस्कृति के परम्परागत तत्वों को ग्रहण किए हुए है । ऐसे लोक समाज की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे लोक तत्व कहलाते हैं ।

लोक तत्व का क्षेत्र बहुत विस्तृत है । जैसा कि मैरेट ने इसके क्षेत्र के विषय में समझाते हुए लिखा है -"इसके अन्तर्गत उस समस्त जन संस्कृति का समावेश माना जा सकता है जो पौरोहित्य धर्म तथा इतिहास में परिणत नहीं पा सकी है जो सदा स्व संवर्द्धित रही है[2]।" इस

१- जनपद वर्ष १, अंक १ ।

2. Folklore may be said to include the culture of the people which has not been worked into the official religion and history but which is and has always been of self growth- Psychology and Folklore by R.R. Marett Page. 76.

प्रकार लोक की मानसिक संपन्नता के अन्तर्गत आने वाली समस्त अभि-व्यक्तियां लोक तत्व युक्त होंगी । सोफिया बर्न ने लोकवार्ता का क्षेत्र निम्न वर्गों द्वारा स्पष्ट किया है -

(१) लोक विश्वास और अंध परम्पराएं

(२) रीति रिवाज़ तथा प्रथाएं

(३) लोक साहित्य

सोफिया बर्न का कहना है "यह एक जाति बोधक शब्द की भांति प्रतिष्ठित हो गया है जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास रीति रिवाज़, कहानियां, गीत तथा कहावतें आती हैं । प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के सम्बन्ध में, मानव स्वभाव तथा मानव कृत पदार्थों के संबंध में, भूत, प्रेत की दुनिया तथा उसके साथ मनुष्यों के संबंधों के विषय में जादू टोना सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज़, भाग्य शकुन रोग तथा मनुष्य के संबंध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं और भी इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति रिवाज़,अनुष्ठान तथा त्यौहार, युद्ध आखेट मत्स्य व्यवसाय पशुपालन आदि विषयों के भी रीति रिवाज़ और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्मगाथाएं, अवदान लोक कहानियां साके गीत किम्वदंतियां, पहेलियां तथा लोरियां इसके विषय है । संक्षेप में लोक की मानसिक सम्पन्नता के अंतर्गत जो भी वस्तु आ सकती है सभी इसके क्षेत्र में है । यह किसान के हल की आकृति नहीं जो लोकवार्ताकार को अपनी ओर आकर्षित करती है किन्तु वे उपचार तथा अनुष्ठान है जो किसान हल को भूमि जोतने के समय करता है । जाल अथवा वंशी की बनावट नहीं वरन् वे टोटके जो मछुआ समुद्र पर करता है, पुल अथवा निवास का निर्माण नहीं वरन् वह बलि जो उसको बनाते समय की जाती है और उसके उपयोग में लाने वालों के विश्वास । लोकवार्ता वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है वह चाहे दर्शन धर्म विज्ञान तथा औषध के क्षेत्र में हुई हो चाहे सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में,

अथवा विशेषतः इतिहास तथा काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में[१]।"

इस प्रकार लोकवार्ता या लोकतत्व का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इन लोक तत्वों के ही माध्यम से हम जनता के सुख दुख, उसके हर्ष-विषाद का उसकी अनुभूतियों का दर्शन करते हैं। जन संस्कृति और लोक संस्कृति का अनुमान लगा पाते हैं। इन लोक तत्वों में जनसाधारण का स्वर है।

लोक तत्व हमारे जीवन से कोई बहुत दूर नहीं हैं। वह हमारे अत्यन्त निकट है,इसलिए नहीं कि वे आज के हैं वरन् इसलिए कि जैसा लेनिन ने उचित ही कहा था लोकवार्ता जन की आशाओं और आत्मभावोंसे संबंधित सामग्री है। यही कारण है कि लोकतत्व एक देशीय और एककालिक न होकर सर्वदेशीय और सार्वकालिक बन गए हैं। लोकवार्ता आज भी हमारे निकट है बहुत दूर की नहीं है।

लोक तत्व की नृतत्व शास्त्रीय व्याख्या:-

नृतत्वशास्त्र मानव की मूल भावनाओं तथा रीतिरिवाज़ों के उद्गम और विकासादि का अध्ययन करता है। इसके अध्ययन का आधार वे समस्त रीति-रिवाज़, अनुष्ठान, विश्वास तथा प्रथाएँ हैं, जो आज भी किसी न किसी रूप में आधुनिक समाज में मिलती हैं। ऐसे आदिम तत्वों का आधुनिक समाज में मिलना स्वाभाविक ही है, क्योंकि जैसा कि आधुनिकतम शोधों से सिद्ध है कि आज की संस्कृति एवं सभ्य मानव समाज का उद्गम स्थल वह असंस्कृत असभ्य और बर्बरजाति ही है, जिस बर्बरावस्था में आज भी कुछ जंगली जातियां मिलती हैं, और वे आदिम तत्व चूंकि मानव की मूल प्रवृत्ति से घनिष्ठरूपेण सम्बद्ध हैं, अतः नष्ट नहीं होते और परम्परागत रूप से चले आते हुए अनुष्ठानों, विश्वासों, रीति रिवाज़ों आदि के रूप में मिलते हैं।

१- बर्नः हैण्डबुक आफ फोकलोर : डा० सत्येन्द्र द्वारा अनूदित ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन,पृ०४-५।

इनमें आदिम स्थिति के वे तत्व स्पष्ट रूप से झलकते हैं, जिस स्थिति से विकास कर आज का मानव वर्तमान स्थिति में पहुंचा है ।

लोकवार्ता में भी अनुष्ठानों, लोक विश्वासों, लोक प्रथाओं आदि का अध्ययन किया जाता है, अतः लोकवार्ता और नृतत्वशास्त्र का घनिष्ठ सम्बन्ध स्वाभाविक ही है । नृतत्व शास्त्र का क्षेत्र वस्तुतः बहुत व्यापक है और लोकवार्ता उस शास्त्र की एक शाखा मात्र है । इसी कारण से पहले लोकवार्ता की व्याख्या नृशास्त्र के अंतर्गत ही होती थी, किन्तु इधर बाद में चूंकि लोकवार्ता का बहुत व्यापक रूप से अध्ययन किया जाने लगा, इसलिए उसे अलग ही एक शास्त्र माना जाने लगा और इसके नृतत्व शास्त्रीय पक्ष की उपेक्षा होने लगी । किन्तु चूंकि नृतत्वशास्त्र की ही एक शाखा लोकवार्ता है, अतः लोकतत्वों की नृतत्वशास्त्रीय व्याख्या अत्यन्त आवश्यक है । "इन्साइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सेज" में लोक वार्ता के विषय में विचार करते हुए पहले ही लिखा गया है, कि लोकवार्ता का प्रयोग १९ वीं शती में लोक परम्पराओं लोक गीतों और विश्वासों के लिए किया गया था और सभ्य समुदाय में पाए जाने वाले असभ्य या ग्राम समुदाय के विश्वास, अनुष्ठान, परम्पराएं आदि जो नृतत्वशास्त्र की सामग्री हैं, लोकवार्ता क्षेत्र में आती हैं[1]। इस प्रकार पहले लोकवार्ता (Folk-lore) नृतत्वशास्त्र (Anthropology) का एक अंग थी, किन्तु जब लोकवार्ता की व्याख्या के लिए फ्रेज़र, टेलर आदि ने एन्थ्रापालाजिकल सम्प्रदाय चलाया, तो नृतत्वशास्त्र लोकवार्ता के लिए सहायक बना और दोनों परस्पर सहायक बनकर एक दूसरे के अभिन्न अंग बन गए ।

लोकवार्ता की नृतत्वशास्त्रीय व्याख्या का श्री गणेश संभवतः बोआज़ द्वारा हुआ था, जब उसने अमरीकी और भारतीय जातियों

---

1. Much of the anthropological material called folklore comes from rural population of the civilized world- Encyclopaedia of Social Sciences p.288.

की जंगली लोकवार्त्ताओं (Primitive Folklore) का अध्ययन किया । बोआज़ ने लोक कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन कर प्रसरण सिद्धांत की प्रस्थापना की, कि समस्त धर्मगाथाओं और कहानियों के समान तत्वों में आदिम मानव मस्तिष्क की झलक मिलती है । बोआज़ ने कहानियों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि कहानियां मानव जीवन के तथा उनकी आदतों विचार धाराओं आदि का स्पष्ट प्रतिबिम्बन है और मानव जीवन की घटनाओं का कहानियों में या तो प्रासंगिक रूप से आगमन हुआ है या तो वे कथा वस्तु के रूप में आई हैं । बोआज़ ने तो यहां तक स्वीकार किया है, कि कहानियां जातियों की आत्मकथा है, जातियों का इतिहास है, क्योंकि जनवर्ग की मूल भावनाओं, इच्छाओं विचारों अनुभवों आदि सबका समावेश इनमें है । बोआज़ ने इस प्रकार विद्वानों का पथ प्रशस्त किया और भविष्य के विद्वानों ने लोकवार्ता का नृतत्वशास्त्र की दृष्टि से विस्तार से अध्ययन किया ।

नृतत्वशास्त्र की दृष्टि से लोकवार्त्ता का अध्ययन धार्मिक संप्रदाय (Mythological School) के लोक कहानी सम्बन्धी निष्कर्षों की प्रतिक्रिया से वस्तुतः प्रारम्भ होता है । धार्मिक सम्प्रदाय वालों ने लोक कहानियों को बड़े तिरस्कार की दृष्टि से देखाथा, और कहा था लोक कहानियों का किसी भी प्रकार से कोई महत्व नहीं है, यह व्यर्थ की सामग्री से परिपूर्ण है । किन्तु नृतत्वशास्त्रियों ने लोक कहानियों में प्रागैतिहासिक संस्कृति के चिह्न देखे और उन्होंने स्पष्ट किया कि लोक कहानियों में संयोजित रीति-रिवाज़, प्रथाएं, अनुष्ठान, लोक विश्वास, शकुन अपशकुन आदि सम्बन्धी धारणाएं, जादू, टोने, टोटके आदि सम्बन्धी क्रियाएं, जिनकी अध्येताओं ने सदा से ही अवहेलना की है, तिरस्कार की दृष्टि से देखा है और किसी भी प्रकार का महत्व नहीं दिया है, हमें आदिम मानव संस्कृति के विषय में बताती है । इन लोक कहानियों के ही माध्यम से हम आदिम मानव समाज तथा उसकी सांस्कृतिक विशेषताओं के विषय में जान सकते हैं । ऐन्ड्रयू लैंग, जेम्स फ्रेजर आदि विद्वानों ने मध्यकालीन यूरोपीय लोक कहानियों

तथा जंगली जातियों की कहानियों के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला था । ऐन्ड्रू लैंग जो नृतात्त्विक सम्प्रदाय का था उसने तो कहानियों के विकास क्रम की रूप रेखा भी दी थी कि किस प्रकार एक ही कथा जंगली असभ्य आदिम जातियों में प्रचलित थी फिर वह लोक समाज में होती हुई साहित्य में रूपान्तरित हो गई । नृतत्वशास्त्रियों ने समस्त जंगली और लोक कहानियों के मूल अभिप्रायों (Motifs) की समानताओं की तुलना से यह निष्कर्ष निकाला था, कि समस्त मानव जाति एक ही स्थिति से गुजरी है और वह स्थिति है मानव की आदिम असभ्य जंगली और बर्बर स्थिति । इस आदिम असभ्य स्थितियों को मानव जाति ने इन्हीं लोक कथाओं में साकार रूप दिया है । किन्तु नृतत्व सम्प्रदायवादियों ने संस्कृति के समस्त रूपों में आदिम तत्वों को ढूंढने की चेष्टा की है और यहीं इस सम्प्रदाय की सबसे बड़ी त्रुटि है कि वे यह मानने को तैयार नहीं कि कुछ तत्वों ने पारम्परिक प्रभावों से नया रूप ग्रहण किया है और कुछ का बाद में आगमन हुआ है ।

टेलर और लैंग ने धर्मगाथाओं के काल्पनिक तत्वों की व्याख्या करते हुए कहा कि धर्मगाथाओं का जन्म जंगली जातियों में हुआ और वे उसी रूप में सभ्य और संस्कृत जातियों में अवशिष्ट तत्वों के रूप में मिलती हैं[1]।

लोकवार्ता और सामाजिक नृतत्व शास्त्र की सीमा इतनी घुली मिली हुई है कि दोनों की सीमा की एक निश्चित रेखा खींचना न सरल ही है न वैज्ञानिक ही । परम्परा से जनवर्ग ने जो कुछ सीखा है, जो अनुभव किया है, जिसका उसने सदा जीवन में उपयोग किया है वह समस्त ज्ञान, जो वैज्ञानिक प्रभाव से मुक्त है, लोकवार्ता में समाविष्ट है । लोकवार्ता की अधिकांश सामग्री

---

1. The survival theory of Tylor & Lang was also an effort to explain fantastic and abhorrent elements. They believed that myths arose in savage society an remained comparatively unchanged as survivals in higher and later civilization. Encyclopaedia of Social Sciences p.288-289.

सामाजिक नृतत्व शास्त्र (Social Anthropology) की है जो संसार की असभ्य और असंस्कृत समझी जाने वाली जातियों से, तथा सभ्य समाज के ग्रामीण और अशिक्षित जनवर्ग से संगृहीत की गई है । लोक वार्ता में मुख्य रूप से जंगली जातियों तथा अशिक्षित और असभ्य जनवर्ग जो सभ्य समाज में है, के विश्वास, प्रथाएं, अन्धविश्वास, मुहावरे, पहेलियां, गीत, धर्मगाथाएं, लोककथाएं, आनुष्ठानिक, प्रथाएं, जादू, टोने, टोटके जो सामान्य जनवर्ग की संपत्ति हैं आते हैं । स्टिथ थामसन का मत है कि लोक-कथाएं, लोकविधान, रीति रिवाज,अन्ध विश्वास आदि को, यदि वे आदिम या अशिक्षित,जंगली या बर्बर समाजगत है, उनको नृतत्व शास्त्र के अन्तर्गत मानने की ही प्रवृत्ति विद्वानों की रही है । लोकवार्ता के अन्तर्गत आदिम या जंगली, बर्बर समाजगत विषय कम ही परिगणित किए जाते हैं[1]। उप-रोक्त विषय यदि शिक्षित या सभ्य समाज के अन्तर्गत ग्रामीण या अशिं-क्षित समुदाय के हों, या शिक्षित समाज के ही हों, किन्तु यदि वे परंपरा का तत्व अपने में निश्चित रूप से संचित किए हुए हैं, तभी उनकी गणना लोकवार्ता के अंतर्गत होगी ।

अमरीकी नृतत्वशास्त्रियों ने, जो कि अशिक्षित और असभ्य जनवर्ग की संस्कृति का अध्ययन करते है, आदिम समाज (Primitive Group) में पाए जाने वाले मौखिक गद्य पद्य रूपों को जो परम्परागत तत्व समाविष्ट किए हुए हैं, लोकवार्ता की सामग्री माना है । इस गद्य पद्य रूप के अन्तर्गत अनेक रूप आते हैं जिनकी सूची लम्बी है[2]।

लोकवार्ता की जड़े अति गहरी हैं, वे हमारे अतीत से संबंधित

1.... there seems to be a general agreement to consider them; when found in a primitive or preliterate society, as a part of ethanology rather than folklore-Stith Thompson-Standard Dictionary of Folklore Mythology and Legend p.403.

2. Such forms include myths and tales, jests and ancedotes dramas and dramatic dialogous, prayers and formulas, speeches, puns and riddles, proverbs and song and chant texts- Standard Dictionary of Folklore Mythology and Legend p.403.

है और आदिम मानव तत्वों को अपने में सुरक्षित किए हुए हैं । ये आदिम मानस के मूल तत्व नष्ट नहीं होते और परंपरा क्रम से चले आते हुए हमें सभ्य से सभ्य समाज तथा परिनिष्ठित साहित्य में सुरक्षित मिलते हैं । ये तत्व हमारे आदिम मानस के सच्चे और सीधी अभिव्यक्ति के माध्यम है । पर इन तत्वों को साहित्य से लेकर हम पूर्ण विश्वास के साथ निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि यह आदिम मानस के ही तत्व है । क्योंकि वह आदिम स्थिति आज हमारी कल्पना के लिए अगम है और हम उसके विषय में पूर्णरूप से बिल्कुल निश्चित नहीं है कि उस समय मानव मानस की क्या स्थिति थी वह किस प्रकार व्यवहार करता था । हम केवल अनुमान द्वारा ही यह कह सकते हैं कि यह आदिम मानस की स्थिति के द्योतक हैं ।

अतः साहित्य में प्राप्त लोकतत्वों की नृतत्वशास्त्रीय व्याख्या करने का प्रयास तो किया जा सकता है, उनमें आदिम तत्वों की ओर संकेत तो किया जा सकता है किन्तु निश्चित रूप से यह दावा नहीं किया जा सकता कि यह आदिम मानव स्थिति के अवशेष ही हैं । केवल अनुमान द्वारा ही कहा जा सकता है कि ये इनमें आदिम तत्वों की झलक है और यह आदिम मानव मानस के अवशेष प्रतीत होते हैं । अवधेय है कि आदिम मनुष्य के विषय में सीमित ज्ञान के कारण हम कुछ निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते हैं, अतः आवश्यक है कि हम उस आदिम लोक मानस की प्रवृत्ति को भी समझें जिसके कारण स्वरूप वह विभिन्न अनुष्ठान आदि करता है । यह आदिम मानव मानस की प्रवृत्ति आज भी पूर्णतः नष्ट नहीं हुई है और परंपरागत उत्तराधिकार रूप से चली आती हुई यह आज भी विभिन्न रूपों में दृष्टिगत है । इस आदिम मानव मानस की प्रवृत्ति को समझने के लिए आवश्यक है कि लोक मनोविज्ञान को समझा जाय और लोक विश्वासों, अनुष्ठानों आदि के पीछे क्या मानव मनोविज्ञान था, इसका अध्ययन किया जाय ।

<u>लोकतत्व की मनोवैज्ञानिक व्याख्या:-</u>

लोक वार्ता में हम समाज के उन अनुष्ठानों, रीति रिवाजों, प्रथाओं, लोक विश्वासों और लोक कृत्यों आदि का अध्ययन करते हैं जिनमें हमें आदिम मानव मानस के अवशेष मिलते हैं तथा जिनमें लोक मानस का

स्वरूप दृष्टिगत होता है। यह लोक कृत्य, लोकानुष्ठान, लोक विश्वास समाज में आज इतना समय व्यतीत होने पर भी क्यों तथावत् हैं, यह जानते हुए कि इन लोक विश्वासों में सत्यता का अंश नहीं के बराबर है, क्यों आज हम उन पर अंध आस्था रखते हैं, यह जानते हुए कि लोकानुष्ठान समाज के मूढ़ ग्राह हैं हम क्यों उनकी योजना और उनका अनुसरण करते हैं- इसके पीछे लोक मनोविज्ञान है, जिसे समझे बिना हम इन लोक तत्वों के साथ लगे "क्या" और "क्यों" प्रश्नों का उचित रीति से समाधान नहीं कर सकते। अतः लोकतत्वों को समझने के लिए लोक तत्वों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि भी समझना आवश्यक है।

लोक मनोविज्ञान[1] पर जर्मन विद्वान् वुंट ने अति विस्तार से कार्य कर तथा मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय(Psychological School) की स्थापना कर लोक वार्ता को मनोवैज्ञानिक आधार दिया है। वुंट ने मानव के मनोवैज्ञानिक विकास के चार स्तर बताए हैं[2] (क) आदिम मानव युग (ख) टोटेमवादी युग (ग) महावीरों और देवताओं का युग (घ) मानवता के विकास का युग। प्रत्येक आचार विचार, अनुष्ठानों, लोक विश्वासों में वुंट ने उपर्युक्त चार स्तरों में से किसी न किसी युग के अवशेष देखे हैं। परीकथाओं में वुंट ने टोटेमवादी युग के अवशेष देखे हैं।

लोकवार्ता का मनोवैज्ञानिक पक्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मनोविज्ञान लोक वार्ता का अभिन्न सम्बन्ध है और मनोविज्ञान से लोकवार्ता को बहुत सहायता मिलती है। इसका प्रतिपादन सर्वप्रथम अर्नेस्ट जोन्स ने किया था। मनोविश्लेषण वादियों ने जैसा कि जोन्स ने कहा, यह बात सप्रमाण दिखाई है, कि सभी मौलिक उद्भावनाएं, विचार, विश्वास आदि

---

1. Folk Psychology: Psychology of peoples, applied to the psychological study of the beliefs, customs, conventions, etc. of peoples, especially primitive inclusive of comparative study-Drever: Dictionary of Psychology p.98.

2. Wundt: Elements of Folk Psychology.

अवचेतन या अचेतन मस्तिष्क की ही है । सभी विश्वासों, विचारों, भावों की उत्पत्ति अवचेतन मस्तिष्क से ही है । चेतन मस्तिष्क (Conscious Mind) किसी प्रकार की उद्भावना नहीं करता, इसका क्षेत्र केवल आलोचना नियंत्रण और चयन तक ही सीमित है । यह अचेतन मस्तिष्क की उद्भावनाएं आदिम हैं, क्योंकि एक तो इनका विकास पहले हुआ है और दूसरे यह निचली मानसिक स्थिति के विषय में बताती है । मनोविश्लेषण-वादियों का कहना है, बहुत सी क्रियाएं उद्भावनाएं या विचार हमारे मन में ऐसे उठते हैं, जिनकी पूर्ति हम चाहते हैं, जिन्हें हम सक्रिय रूप देना चाहते हैं, किन्तु समाजगत भय, ईश्वरीय भय या नैतिकता या असभ्य कहलाने के भय से उन्हें हम क्रियात्मक रूप नहीं दे पाते हैं । मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि एक बार मस्तिष्क में उठे हुए ये भाव नष्ट नहीं होते और यदि हम इन्हें क्रियात्मक रूप नहीं दे पाते तो यह हमारे अचेतन मस्तिष्क की ही संपत्ति बन जाते हैं । ये ही अवशेष (Surviv/als) हैं । ये अवशेष कभी तो बाह्य सत्ता से संपर्कित होकर स्पष्ट होते हैं या ये अवशेष जो अवचेतन या अचेतन मस्तिष्क में रहते हैं किसी न किसी दूसरे छिपे हुए रूप में स्पष्ट होते हैं । यह अवशेषांश लोक-वार्ता-विदों तथा मनोवैज्ञानिकों दोनों के लिए ही अत्यन्त महत्वपूर्ण है । मानसिक विकास की प्रक्रिया में जो तत्व अवशिष्ट रह जाते हैं वे ही अवशेष(Survivals) कहलाते हैं अतः ये अवशेषांश आदिम मानस के विषय में हमें बताते हैं । ये अवशेषांश ही स्वप्न के कारण है और ये ही जंगली विश्वासों अनुष्ठानों प्रथाओं आदि में मिलते हैं, जो मानसिक विकास की प्रारम्भिक स्थिति के सूचक हैं ।

वुंट के अतिरिक्त रैंक, राइक और रिकलिन नामक तीन पश्चिमीय विद्वानों ने भी लोकवार्ता की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करने के प्रयत्न किए हैं । राइक ने अपने अध्ययन का आधार धर्म गाथा को बनाया है और धर्मगाथाओं के अध्ययन के उपरान्त उसका विचार है कि धर्मगाथाओं में आदिमानव के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की झलक देखी जा सकती है और इनका मूल पशुयुग तक में खोजा जा सकता है । राइक धर्मगाथाओं की स्थिति

धर्म है और पूर्व को बताता है । धर्मगाथाओं में अपनी मूल अवस्था में बहुत से ऐसे तत्त्व थे जो यह सिद्ध करते हैं कि धर्म का उद्भव कैसे हुआ । इसी प्रकार धर्मगाथाओं में अनेक ऐसे तत्त्व हैं जो यह बताते हैं कि ये अचेतन मस्तिष्क में कुंठित हुए विचार हैं जो किसी कारण से अभिव्यक्त नहीं हो पाए थे ।

रिकलिन ने अपने अध्ययन का आधार परीकथाओं को बनाया है और यह सिद्ध किया है, कि परीकथाओं का मूल उद्गम जैसा कि कुछ विद्वानों ने ~~भारत~~ माना है, गलत है । इस प्रकार की परीकथाएँ विश्व के अनेक देशों में मिलती हैं और यह परीकथाएँ उन देशों में भी मिलती हैं जिन- का किसी देश या प्रान्त से सम्बन्ध नहीं है । इससे सिद्ध है कि परीकथाओं का मूल भारत नहीं है वरन् इसका मूल उस लोक मानस प्रवृत्ति से है जो ऐति- हासिक या भौगोलिकसीमा से आबद्ध नहीं है और जिसके आधार पर विश्व के समस्त प्राणी एक स्तर पर सोचते हैं । यही कारण है विश्व के अनेक देशों की परीकथाओं में एक सी मनोवैज्ञानिक भूमि मिलती है ।

रिकलिन धर्मगाथाओं और परीकथाओं के मूल में इच्छापूर्ति- करण (Wishfulfillment) का सिद्धान्त मानता है । रिकलिन का कहना है कि जिन इच्छाओं की पूर्ति जीवन में नहीं हो पाती वह धर्मगाथा- ओं, धर्मकथाओं तथा जादू टोने आदि के द्वारा पूर्ति प्राप्त करती हैं ।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने लोकवार्ता की रूपकात्मक (Allegorical व्याख्या की है । इन्होंने धर्मगाथाओं के प्रतीकों में दैविक, सामाजिक या अलौकिक भाव देखने के स्थान पर इन्होंने यौन सम्बन्ध देखे हैं ।"अग्नि, को यौन क्रिया, जल को जन्म, सिल्ली, चाकू और सर्प को पुरुषेन्द्रिय के रूप में समझा है[1] ।"

---

1. Psychoanalysts also interpret folklore in terms of allegory. Instead, however of seeingin the myths cosmic phenomena hidden under fixed symbolism they see psychological and especially sex process so portrayed. Fixed symbolism according to which one reads fire as the sex act, water as birth, white stones, knives and serpents as the male organ." Encyclopaedia of the Social Sciences.p.289-290.

इस प्रकार यद्यपि विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न तरीकों से लोक वार्ता की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है, किन्तु फिर भी इससे इतना तो स्वतः सिद्ध है कि लोक वार्ता के प्रत्येक तत्वों के मूल में लोक मानस की भूमिका मिलती है । इस लोक मानस का हम कुछ उदाहरण देकर स्पष्टीकरण कर सकते हैं । सर्वप्रथम संस्कारों के साथ संयुक्त लोकाचारों को उदाहरणार्थ लिया जाता है ।

जन्म मृत्यु और विवाह तीनों प्रसंगों का लोक जीवन में बहुत महत्व है । प्रथम दो प्रसंगों का सम्बन्ध आदिम मानव की आश्चर्यवृत्ति से था तो दूसरी ओर विवाह आवश्यकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण था । जन्म का रहस्य उसे समझ में नहीं आता था । उसके लिए वह समझना कष्टकर था कि अचानक शिशु का जन्म कैसे हुआ । इसीलिए उसने इसका श्रेय किसी अमानवीय शक्ति को दिया । जन्म की ही भांति मृत्यु भी आदिम मानव मानस के लिए कष्टकर तथा उससे भी अधिक रहस्यमय बात थी कि जो व्यक्ति अभी कुछ क्षण पहले ही साधारण जीवों की तरह व्यवहार करता था वह सहसा कुछ क्षणों में ही बिलकुल बदल कैसे गया । उसका जीवतत्व कहां चला गया और उसमें विविध परिवर्तन कैसे हो गए, जो साधारणतः मानव में नहीं होते । उसने मृत्यु का कारण भी अमानवीय शक्ति को माना और लोक मानस ने कल्पना की कि जो व्यक्ति पहले नवजात शिशु रूप में अचानक सबको आश्चर्य चकित कर मानव लोक में आया था, वह व्यक्ति जहां से आया था, अपने उसी लोक को पुनः चला गया और इच्छा होने पर वह फिर कभी सबको आश्चर्य चकित कर आ सकता है । यह कल्पना कर कि मृत व्यक्ति दूसरे लोक में चला गया उसके घनिष्ठ मित्रों ने संबंधियों एवं परिवार वालों ने इस कामना से कि वह अपने लोक में सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करे, उसे शांति मिले, उसे किसी प्रकार की असुविधा न हो, इसके लिए आदिममानस ने विविध समाधान निकाले । वे ही मृत्यु से सम्बन्धित लोकाचार हैं[1]।

1- देखिए प्रस्तुत प्रबन्ध का पंचम अध्याय: लोकाचार लोक चेटक और लोक प्रथाएं ।

उदाहरणार्थ आदिम मानव मानस ने सोचा होगा कि मृत व्यक्ति को जो वस्तुएं प्रिय थीं, जो उसके जीवन का आधार थीं, जो उसके मनोरंजन का कारण थीं, जिसकी उसे कभी आवश्यकता पड़ सकती थी, आदि वस्तुएं यदि शव के साथ रख दी जायेंगी, तो वह उसका उपयोग यथासम्भव निश्चित रूप से कर सकेगा। मिस्र में शव के साथ विभिन्न खाद्य सामग्री, वेश भूषा अस्त्र-शस्त्र तथा दैनिक जीवन के उपयोग की वस्तुओं का मिलना लोक मानस के उपर्युक्त विश्वास का ही बोधक है कि मृत व्यक्ति यथासम्भव इच्छित वस्तुओं का उपयोग कर सकेगा। लोक मानस ने मृत व्यक्तियों के अर्थात् पितरों के लोक का भी स्थान लोक मानस के अनुसार ही ढूंढ़ निकाला है। शव को भूमि में गाड़ने की प्रथा भारत में ही नहीं विश्व के अनेक देशों में तथा उन असभ्य जंगली जातियों में भी मिलती है जो आज भी आदिम मानव मानस के स्तर पर ही सोचते है। इस शव को भूमि में गाड़ने के मूल में भी लोक मानस तथा आदिम मानस की यही चिन्तन प्रक्रिया कि मृत व्यक्ति पुनः जीवित हो सकता है[1]। अतः उसका दाह कर्म आदि करके उसे कष्ट नहीं देना चाहिए।

रिवर्स नामक विदेशी विद्वान ने जंगली, तथा असभ्य जातियों के मृत्यु सम्बन्धी विचारों का विवेचन करते हुए स्पष्ट कहा है कि उनके लिए मृत्यु के बाद भी दूसरे जीवन की स्थिति है, वे सोचते हैं कि इस दूसरे लोक में वह व्यक्ति उसी प्रकार कार्य करता है, उसी प्रकार सोचता और जीवित रहता है, जिस प्रकार वह मृत्यु के पहले रहता था[2]।

---

1. Rivers, W.H.R.-Psychology and Ethnology p.43-46.
2. The primitive man, on the other hand, I bulieve that existence after death is just as real as the existence here which we call life. The dead came to him and he sees, hears and talks with them, he goes to visit the dead in their home and returns to tell his follows what he has seen, heard and done-- Further life after death has the same general aspect as life before death... The existence after death is as real to primitive man as any other condition of his life and that the difference between the two existences is probably of much the same order to the primitive mind as two stages of his life- Rivers, W.H.R.- Psychology and Ethnology p.48.

इसी प्रकार विवाह पर सम्पन्न होने वाले लोकाचारों के मूल में लोक मानस प्रवृत्ति देखी जा सकती है । विवाह के अवसर पर वर वधू को पास बिठाकर उन दोनों के वस्त्रों में गांठ लगाने की प्रथा अति व्यापक है। विवाह के अवसर पर यह गांठ देने की प्रथा केवल भारत में ही नहीं प्रचलित है वरन् इंगलैंड -अफ्रीका आदि देशों में भी इस प्रथा का अनुसरण किया जाता है । आदिम जातियों में भी यह प्रथा पाई जाती है और वहां वस्त्रों में गांठ न लगाकर वरन् दोनों के वस्त्रों को जोड़कर घास से बांधने की प्रथा विद्यमान है । सिद्ध है कि इसका प्रचार किसी एक देश से नहीं हुआ क्योंकि प्रथा वहां भी प्राप्त है जिससे किसी देश या जाति का सम्पर्क नहीं है, वरन् इसका मूल लोक मानस प्रवृत्ति में है, जिसके अनुसार लोक मानस दोनों के वस्त्रों में गांठ लगाकर दोनों के हमेशा एक दूसरे से संबंधित होने की सूचना देता है[1]।

संस्कारों के साथ जुड़े हुए लोकाचारों की ही तरह टोटे - टोटके के मूल में भी "लोक मानस का धर्म भीरु सरल अविकसित तथा अनभिज्ञ अन्तरमन है, जो उसे समाज, बड़ों तथा अपनी भावनाओं से विरासत रूप में मिला है ।"

लोक देवता तथा लोक देवियों की कल्पना भी लोक मानस की ही उपज है जिसके कारण उसने प्रत्येक प्राकृतिक वस्तुएं- चाहे वे वन हों नदियां हो, पहाड़ हों, सूर्य चन्द्रमा अन्य नक्षत्र गण हों, इनकी उपासना प्रारम्भ कर दी । इसी प्रकार पीपल, बरगद, नीम आदि की उपासना उसने शुरू की । इनकी उपासना क्यों प्रारम्भ हुई ? यदि इसका अनुसंधान किया जाए तो इसका मूल लोक मानस प्रवृत्ति में मिलता है । लोक वर्ग की यह प्रवृत्ति है कि जो भी प्राकृतिक शक्तियां हैं जिनसे उसे या तो अपने जीवन की हानि का भय था, या अपने जीवन के एक मात्र आधार कृषि के नष्ट होने का डर था, उसकी उसने उपासना प्रारम्भ कर दी । उदाहरणार्थ

1. Westermark, E: Short History of Marriage. p.187-188.

नदियों से आदिम मानव को बाढ़ का भय था, जिससे कृषि नष्ट हो सकती थी, सूर्य अपनी उष्णता, चंद्र अपनी शीतलता तथा नक्षत्रगण उल्कापात से कृषि को जो उसके जीवन का एकमात्र आधार थी, नष्ट कर सकते थे, नाग आदि विषधर जानवर क्षण भर में मनुष्य को मृत्यु की शैय्या पर सुला सकते थे अतः जीवन तथा जीवनाधार कृषि कीरक्षा हेतु इन शक्तियों से आतंकित होकर मानव ने अति प्राचीन काल से इनकी उपासना तथा इन्हें प्रसन्न करने के लिए विविध अनुष्ठानादि प्रारम्भ कर दिए थे और यही शक्ति उपासना का प्राचीन तत्व अवशिष्ट रूप में आज भी चला आ रहा है। इसी प्रकार लोक मानस ने हानि के अतिरिक्त जो वस्तुएं लाभ प्रद थीं, उन्हें की कृतज्ञता वश तथा लाभान्वित होने की इच्छा से उनकी उपासना भी प्रारम्भ कर दी रही होगी । गउ की उपासना के मूल में लोक मानस की यही प्रवृत्ति विद्यमान है । बरगद की उपासना के मूल में भी उसकी उपयोगिता की ही दृष्टि है । बरगद ग्रीष्म में तपते हुए सूर्य के समय श्रांत पथिक को छाया देता है । संभवतः इसी परोपकारी वृत्ति के कारण लोक मानस ने बरगद तथा बरगद के ही समान छायादार पीपल नीम आदि वृक्षों की उपासना अति प्रारम्भ काल में ही की थी[1]। बाद में इनके पीछे देवताओं के अवस्थान की धार्मिक भूमिका जोड़ दी गई है जिससे इनके पीछे निहित मूल अभिप्राय का लोप हो गया है कि बरगद की छाया के कारण ही बरगद का महत्व था, अब लोक वर्ग केवल इन वृक्षों की उपासना इसी विचार से करता है कि यह देवताओं का निवास स्थान है ।

इसी प्रकार प्रत्येक लोकाचार, लोकानुष्ठान, लोक विश्वास, लोक

---

1. In a country like India, anything that offers a cool shelter from the burning rays of the sun, is regarded with a feeling of greatful respect. The wide spreading banyan tree is planted and nursed with care, only because it offers a shelter to many a weary traveller, extreme usefulness of the thing is the only motive percieveable in the careful rearing of other trees- Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal, 1870. p.199-232.

देवी, लोक देवता, लोक उपमान, लोक शैली सभी के मूल में हम लोक मानस पर आदिम मानव मानस प्रवृत्ति को देखते हैं ।

लोक मानस का महत्व:-

किसी भी साहित्य का लोक तात्विक निरूपण करने में लोक मानस का अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि लोक तत्व या लोकवार्त्ता का मूलही लोक मानस में है और लोक मानस के ही आधार परलोक तात्विक अनुशीलन संभव है । विद्वानों ने तो लोक वार्ता ही उसको माना है जो आदिम मानव मानस की सीधी और सच्ची अभिव्यक्ति है[1]। डा० सत्येन्द्र लोक साहित्य के विषय में बताते हुए लिखते हैं कि -"लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषा अभिव्यक्ति आती है जिसमें (अ) आदिम मानव के अवशेष उपलब्ध हों (आ) परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध भाषा गत अभिव्यक्ति हो जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता है और जो लोक मानस की प्रवृत्ति में समाई हुई हो ।(इ) कृतित्व हो किन्तु वह लोक मानस के समस्त तत्वों से युक्त हो कि उसको व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध करते हुए भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे[2]।" इस प्रकार लोक मानस निर्धारिक तत्व है जिसके आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि साहित्य में लोकवार्त्ता का कितना अंश है । लोकवार्ता में आदिम मानव अवशेष दिखाई पड़ना स्वाभाविक है क्योंकि जैसा कि फ्रेजर ने अपनी पुस्तक फोकलोर इन द ओल्ड टेस्टामेंट में लिखा है कि प्रारम्भ में विश्व की सभी जातियां असभ्य और बर्बर थीं और बर्बरावस्था से ही विकसित होकर मानव ने आज का सभ्य स्वरूप पाया है । इसी प्रकार जैसे सभ्य बनकर भी मानव असभ्य तथा बर्बर मानव का ही रूपांतर है

---

1. Folklore may be said to be true and direct expression of the mind of primitive man- Espinoza, C.M.
(सत्येन्द्र मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन पृ० ३-४ से उद्धृत) ।

२- सत्येन्द्र : मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन,पृ० ४-५

उसी प्रकार मनुष्य की अभि-व्यक्तियों में भी आदिम अभिव्यक्ति के तत्व रह ही जाते हैं । ये ही आदिम मानस तत्व लोक वार्ता के लिए महत्व पूर्ण है । इन्हीं अवशेषों के परिणाम ही लोक वार्ता के विषय है । लोकवार्तामें इन्हीं आदिम मानव मानस तत्वों का अध्ययन किया जाता है

लोक तत्व निरूपण में कठिनाई:-

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोक वार्ता तत्व के अध्ययन में लोक मानस का अध्ययन अति महत्वपूर्ण है, किन्तु लोकमानस के अध्ययन में अनेक कठिनाइयां हैं । साहित्य में प्राप्त कौन अवशेष आदिम मानस के हैं यह निश्चित रूप से कहा ही नहीं जा सकता क्योंकि उस समय की सामग्री का हमारे पास पूर्ण अभाव है और नहीं अभी विश्व की अधिकांश असभ्य तथा बर्बर कही जाने वाली जातियों के साहित्य का, उनके आचार विचार का अध्ययन ही हो पाया है जिससे तुलना के आधार पर तत्वों का निरूपण हो सके । डा०सत्येन्द्र ने कुछ लोक मानस तत्वों का संकेत किया है किन्तु उनका भी यही मत है कि कौन तत्व आदिम मानस तत्व है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता केवल इस दिशा में संकेत मात्र किया जा सकता है[1]। समस्त जातियों के लोक साहित्य संग्रह के अभाव में लोक तत्व निरूपण की कठिनाई का संकेत डा० सत्येन्द्र ने भी किया है क्योंकि लोक तात्त्विक की दृष्टि से अपने कार्य की सामग्री को हाथ में लेते ही अन्य प्रदेशों के क्षेत्रों की ओर जाती है वह दृष्टि विविध मानव समूहों के ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक अतीत में भी जाती है और वर्तमान के विस्तार को भी देखती है।वह यह देखना चाहती है कि जो वस्तु उसके अपने क्षेत्र की उसके हाथ में है, वह कहां कहां कब कब किस किस रूप में विद्यमान मिलती हैं, क्योंकि लोकतत्व की प्रतिष्ठा वस्तुतः तभी हो पाती है जब वा समस्त छोटी सीमाओं को पारकर सार्वभौम मानव लोक में मिलता है[2]।

१- सत्येन्द्रः मध्ययुगीन हिन्दी काव्य का लोक तात्त्विक अध्ययन,पृ०१७ ।

२- सत्येन्द्रः लोक साहित्य विज्ञान, पृ० १७ ।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी लोक तत्व निरूपण में इसी कठिनाई की ओर संकेत किया है[१]।

भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य को लोक तात्विक अनुशीलन करते हुए भी उपर्युक्त कठिनाइयां ही सामने आती है और सामग्री के अभाव में यह कार्य कठिनतर प्रतीत होता है । शैली सम्बन्धी अध्ययन में यह कठिनाई विशेष रूप से सामने आती है । उदाहरण के लिए प्रतापनारायण मिश्र तथा बालकृष्ण भट्ट, परसन आदि कवियों ने फ़कीरों की शैली में कुछ गीत लिखे हैं जिसमें फकीर भिक्षा मांगते समय प्रायः द्वार द्वार गाते हैं, किंतु इस शैली का वस्तुतः लोक वर्ग में गाए जाने वाले फकीरों की शैली से कितना साम्य है, तब तक निरूपण नहीं किया जा सकता जब तक फ़कीरों के गीतों का संग्रह नहीं । अवधेय है कि फ़कीरों के गीतों का न तो संग्रह हिन्दी में ही मिलता है न किसी अन्य प्रदेश की भाषा में । इसी प्रकार "कबीर" जो होली में पुरुष वर्ग द्वारा गाए जाने वाला अति प्रसिद्ध गीत है का भी संग्रह हिन्दी में ही नहीं किसी भाषा में नहीं मिलता । विदेशी भाषा में भी इस प्रकार के संग्रह देखने में नहीं आए यद्यपि कबीर के समान अश्लील गीत विभिन्न प्रसंगों में वहां भी गाए जाते हैं । लोकानुरंजनों के साथ संयुक्त वाणी विलास जैसे कबड्डी के साथ बोले जाने वाले बोल जिन्हें "कबड्डी के बोल" कहा जाता है का भी संग्रह नहीं मिलता । ककहरा, बारहखड़ी आदि के संग्रह भी नहीं हुए है अतः इन लोक शैलियों का, जिनका भारतेन्दु युगीन कवियों ने प्रयोग किया है, लोक शैलीगत अनुसंधान असंभव है । इस दिशा में अभी पर्याप्त कार्य शेष है और सर्वप्रथम विभिन्न प्रदेशों में गाए जाने वाले लोक गीतों का संग्रह तथा उनकी शैलियों का अनुसंधान प्रथम कार्य है । यद्यपि विभिन्न प्रदेशों के लोक गीतों का संग्रह विद्वानों ने अत्यन्त परिश्रम पूर्वक किया है किन्तु फिर भी अनेक लोक.

१- हजारी प्रसाद द्विवेदी: विचार और वितर्क, पृ० १९९, २०५ ।

शैलियों के लोक गीत संग्रह नहीं हो पाए । वस्तुतः बिना लोक गीतों तथा लोक शैलियों के वृहत संग्रह केक अभाव में लोक शैलियों के स्वरूप का निरूपण असम्भव है । आशा है लोक साहित्य के भावी अन्वेषक इस दिशा में प्रत्येक प्रदेश की सामग्री संग्रहीत कर लोक शैली स्वरूप निर्धारण कर सकेंगे ।

भारतेन्दु युगीन काव्य की सामान्य लोक तात्विक विशेषताएं:-

यदि गंभीरता से भारतेन्दु युगीन काव्य का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि भारतेन्दु युगीन काव्य जनकाव्य है और उसमें अनेक लोक तत्व प्राप्त हैं । शैली, भाषा, छंद, उपमान, लोक विश्वास सभी दृष्टियों से उसका लोक तात्विक अध्ययन किया जा सकता है । भारतेन्दु युगीन काव्य का लोक तात्विक अनुशीलन विस्तार से प्रबन्ध में किया गया है किन्तु आवश्यक है कि पहले भारतेन्दु युगीन काव्य की सामान्य लोक तात्विक विशेषताओं का संकेत कर दिया जाए ।

भारतेन्दु युगीन काव्य की लोक तात्विक विशेषताओं का निरूपण करने के पहले इस संबंध में एक बात का निर्देश करना आवश्यक प्रतीत होता है, कि इस युग के कवियों ने कोई कथात्मक काव्य नहीं लिखा जिसमें किसी कथा का वर्णन हो, कथा का क्रम विकास लक्षित होता हो, अतः न तो पद्मावत या रामचरित मानस या किसी लोक कथा को आधार मानकर लिखे गए ग्रंथ के समान न तो भारतेन्दु युगीन काव्य में कथानक रूढ़ियों का अनुसंधान ही किया जा सकता है, जिसके आधार पर यह बताया जा सके कि अमुक कथानक रूढ़ियों के आधार न पर यह कथा लोक कथा का ही एक स्वरूप है और इसी प्रकार कथानक के लोक उपादान या कथानक के लोक रूप अनुसंधान की ही बात होती है । इस प्रकार कथा के आधार पर भारतेन्दु युगीन काव्य की लौकिक विशेषताएं नहीं खोजी जा सकती है

भारतेन्दु युगीन काव्य की सामान्य लौकिक विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

लोक शैली तथा लोक प्रवृत्तियां:-

भारतेन्दु युगीन कवियों ने लोक गीतों की शैली में अनेक गीत लिखे हैं। यह लोक गीत की शैली में लिखे गए लोक गीत दो प्रकार के हैं। एक तो वे लोक गीत जो विशेष नाम से जाने जाते है जैसे कजली, बिरहा, चैती, लावनी, होली, कबीर, बारहमासा, पूरबी आदि गीत। दूसरी कोटि के लोक गीत वे हैं जिनका कोई विशेष नामकरण नहीं किया गया है, वे या तो गीतों की टेक पंक्तियों के आधार जाने जाते हैं या गायकों की जाति आदि के आधार पर जिनका बोध होता है। दूसरी कोटि के भी अनेक गीत भारतेन्दु युगीन कवियों ने लिखे हैं जैसे हरगंगा, एकट बनगा हरगंगा आदि पंडों की शैली के गीत, सरबन नाम से मांगने वाले कीर्तनिए फकीरों की शैली, अजपा जाप करने वालों की बिरथा जस आए जग में की शैली, भिखमंगे फकीरों की - मिआं खुश रहो दुआ कर चले, धर्मोपदेशकों की "खेती करो हरि नाम की"- भ कहणा से कोई नहीं मानता फिर पीछे पछताता है की शैली, सुगा पढ़ाने वालो की -पढ़ो परबत्ती सीताराम आदि की शैली। इन लोक गीतों की शैली में लिखे गए गीतों के विषय में एक महत्वपूर्ण विशेषता का उल्लेख करना आवश्यक है कि प्रथम प्रकार के गीत जहां सामान्य प्रसंगों पर लिखे गए गीत हैं वहां दूसरे गीत व्यंग परक हैं, जिनमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों पर व्यंग किया गया है। इन लोक गीतों में लोक गीतों की पुनरावृत्ति प्रवृत्ति अन्तहीन परिगणनात्मक, लयात्मक शब्दों के प्रयोग प्रश्नोत्तर प्रणाली आदि की प्रवृत्तियां पूर्णतया लक्षित हैं। लोक गीतों से इतर शैली में जो भारतेन्दु युगीन काव्य लिखा गया है उसमें भी अन्तहीन परिगणन, प्रश्नोत्तर प्रणाली आदि अनेक लोक शैली गत प्रवृत्तियां प्राप्त हैं।

लोक भाषा:-

भारतेन्दु युगीन कवि लोक भाषा के समर्थक थे, वे अपने साहित्य में लोक भाषा का प्रयोग चाहते थे इसीलिए भारतेन्दु, प्रेमघन, प्रताप नारायण मिश्र तथा बालकृष्ण भट्ट आदि सभी कवियों ने स्वतः तो लोक

भाषा का जिसका व्यवहार जन सामान्य के मध्य बोलचाल के लिए होता है किया ही, साथ ही सहयोगी कवियों को प्रेरित किया कि वे लोकभाषा में ही काव्य रचना करें, उन्हें लोक भाषा का महत्व समझाया । परिणाम यह हुआ कि सभी युग के महान कवियों के लोक भाषा में लिखने के कारण अनेक लोक कवि सामने आए जो लोक भाषा में ही काव्य रचना करते थे । भारतेन्दु युगीन काव्य अवधी, ब्रज, खड़ी बोली में प्रमुख रूप से लिखा गया है किन्तु भारतेन्दु युगीन कवियों की खड़ी बोली आज की भांति शुद्ध और परिनिष्ठित स्वरूप वाली नहीं है और न ही उनकी अवधी और ब्रज परिनिष्ठित स्वरूप वाली है वरन् अवधी ब्रज तथा खड़ी बोली के उन्हीं रूपों का प्रयोग भारतेन्दु युगीन कवियों ने किया है जिनका प्रयोग आज भी ग्रामीण जनता के मध्य होता है, जो बोलचाल के शब्दों की है. और जो जनकंठ में बसने वाली सामान्य आदान प्रदान की भाषा है । लोक भाषा में लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग प्रचुरता से होता है । भारतेन्दु युगीन काव्य में भी लोकोक्तियों तथा मुहावरों का पग पग पर प्रयोग मिलता है । लोक भाषा की दृष्टि से भी भारतेन्दु युगीन काव्य लोक काव्य है ।

लोक छंदः-

लोक भाषा के साथ ही साथ कवियों ने लोक छंदों का प्रयोग ही अधिक किया है । वर्णिक छंदों के प्रयोग भारतेन्दु युगीन काव्य में अत्यल्प है । लोक छंदों में बरवै, रोला, सोरठा, दोहा, वीर, सवैया, नाराच, अष्टपदी, छप्पय, पद्धरि, कुण्डलिया, चौपाई आदि का प्रयोग हुआ है ।

लोक उपमानः-

उपमानों की दृष्टि से भी भारतेन्दु युगीन काव्य लोक काव्य ही अधिक है क्योंकि प्रयुक्त उपमान लोक जीवन से ही ग्रहण किए हैं, उनके पीछे भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति करने की भावना ही प्रमुख है, कलात्मकता

बकरी आदि उपमानों का भी प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार गठरी, चिलम, खलिहान आदि जिससे लोक वर्ग भली भांति परिचित है का उपमान रूप में प्रयोग हुआ है । शिष्ट साहित्य के कवि को यह उपमान काव्य के योग्य नहीं लगेंगे । इनमें उसे अनौचित्य दोष दिखेगा और न ही ये उपमान उसे परिष्कृत रुचि वाले लगेंगे किन्तु लोक कवि को इसकी चिंता नहीं उसे तो केवल यही चिन्ता है कि ये उपमान भावों को स्पष्ट कर पा रहे हैं या नहीं इसी प्रकार भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त उपमानों में कहीं कहीं हास्य का पुट तथा अतिशयिता की भी प्रवृत्ति मिलती है ।

लोक संगीतात्मक तत्वः-

भारतेन्दु युगीन गीतों में लोक संगीतात्मक तत्व बहुत प्राप्त है । काव्य में अनेक लोक गीतों का, लोक लयों जैसे -गुण्डानी, गृहस्थिनियों बनारसी, खंजरी वालों की, ढुनमुनिया की कजली तथा सामान्य लय जिसमें सामान्यतः जनता गाती है आदि लयों का, प्रयोग किया है । इसी प्रकार कवियों के भैरव, भैरवी, पीलू, पूर्वी, काफी, सारंग, खम्माच, कान्हरा, देस, सोरठ, सोहनी, कलिंगड़ा, झिंझौटी आदि अनेक लोक रागों का जिनका विकास लोक धुनों के आधार पर हुआ जिनका प्रयोग लोक जीवन में आज भी होता है तथा जो मूलतः देशी राग या जिन्हें शास्त्रीय संगीत में क्षुद्रराग कहा गया है, कवियों ने उन्हीं तालों का भी प्रयोग किया है जो लोक ताल हैं तथा जिनका प्रयोग लोक गीत गायन में होता है । खेमटा , चांचर, रूपक, कहरवा, दादरा, अद्धा, धमार, चर्चरी, झपताल, त्रिताल आदि लोक तालों का प्रयोग भारतेन्दु युगीन कवियों ने किया है । गीतों में अनेक लोक वाद्यों का जिनका प्रयोग लोक वादक गायन के समय करता है, का भी उल्लेख भारतेन्दु युगीन कवियों ने किया है ।

लोकजीवन के विविध पर्वों का वर्णनः-

भारतेन्दु युगीन काव्य में लोक जीवन के विविध पर्वों का कवियों ने वर्णन किया है । कहीं नागपंचमी, पितरपक्ष, होली, दशहरा,

दिवाली, बसन्तपंचमी, रथयात्रा महोत्सव आदि लोकोत्सवों तथा लोक पर्वों का वर्णन है तो कहीं जन्म तथा विवाह आदि के अवसर पर किए जाने वाले विभिन्न लोकाचारों का जिनका शास्त्रीयता की दृष्टि से तो कोई महत्व नहीं है, किन्तु लोक मानस से घनिष्ठ सम्बन्ध है, का कवियों ने विस्तार से वर्णन किया है। इन स्थलों पर केवल उत्सव पक्ष का ही कवियों ने वर्णन कर उनके लोकानुष्ठानिक रूप का भी वर्णन किया है। टोना, टोटका, नज़र लगना, मूठ चलाना आदि लोक चेटकों का और सती तथा जौहर आदि लोक प्रथाओं का भी कवियों ने वर्णन किया है। इसी प्रकार लोक जीवन के अनेक विश्वासों का और आस्थाओं का जिनको शिष्ट समाज मूढ़ ग्राह कहता है, का भी कवियों ने ~~के~~ उल्लेख किया है। यद्यपि लोक विश्वासों का प्रयोग नहीं मिलता। कारण स्पष्ट है कथा काव्यों में लोक विश्वासों के प्रयोग का अधिक अवसर रहता है, गीतों में यह अवसर नहीं रहता। विवेच्य युग में कथाकाव्य न लिखे जाने के कारण से ही लोक विश्वासों का प्रयोग भी अधिक नहीं हो सका। लोक जीवन में देवी देवताओं का महत्व बहुत होता है। इन देवी देवताओं पर लोक मानस बहुत आस्था रखता है, प्रत्येक संकट के समय या किसी भी शुभ कार्य को करते समय इन देवताओं का स्मरण करना वह नहीं भूलता और समय समय पर इन देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए वह विविध अनुष्ठानों को भी करता है। इन विविध लोक देवी तथा लोक देवताओं का भारतेन्दु युगीन काव्य में कई स्थानों पर उल्लेख हुआ है। लोक जीवन में लोकानुरंजन, लोक सज्जा तथा लोक व्यसन का भी विशेष महत्व है। इन सभी लोक जीवन के विविध पक्षों का भारतेन्दु युगीन काव्य में विस्तार से वर्णन मिलता है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण भारतेन्दु युगीन काव्य सामान्य रूप से लोकोन्मुख काव्य है। भाषा, शैली, छंद, उपमान, आचार, विचार, आस्था आदि सभी दृष्टियों से भारतेन्दु युगीन कवियों ने लोक साहित्य के उपादानों को ग्रहण किया है।

इन लोक तत्वों का अध्ययन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

जब हम अपने अतीत को समझना चाहते हैं तो प्रायः इतिहास की शरण लेते हैं। और तत्कालीन समय के विषय में जानना चाहते हैं, किन्तु तथ्य तो यह है कि हम इतिहास से एक वर्ग विशेष के बारे में, उसके ऐश्वर्य के बारे में, उसके राज्य प्रबन्ध आदि के बारे में ही जान पाते हैं और वह राज वर्ग है। यदि हम जन वर्ग के बारे में इतिहास से जानना चाहते हैं तो असफल रह जाते हैं। लोक संस्कृति के बारे में हम कुछ नहीं जान पाते जिसके हम स्वयं एक सदस्य हैं। और यदि हम जनवर्ग के बारे में जानना चाहते हैं तो हमें इन्हीं लोकतत्वों पर दृष्टिपात करना पड़ता है। और आगे भी जब हम चाहते हैं कि हमारे साहित्य के द्वारा हमारी बाद की पीढ़ी साहित्य के माध्यम से लोक संस्कृति का ज्ञान करे तो हमें अपने साहित्य के उपादान भी इन्हीं लोकतत्वों से ढूढ़ना पड़ता है। क्योंकि लोक तत्व ही जन संस्कृति का दर्पण है। यदि हम यह जानना चाहते है कि लोक में किस प्रकार के विश्वास प्रचलित हैं, लोक की क्या प्रथाएं हैं लोक किस प्रकार अपनी आनन्द और विषाद की स्थितियों में अनुभूतियों को प्रकट करता है, तो हमें लोक तत्वों पर ही ध्यान देना पड़ता है। लोक तत्वों के ही माध्यम से हम उस युग की जनसंस्कृति का अनुमान लगाते हैं। जैसा कि डा० सत्येन्द्र ने कहा - कि यदि हम किसी महान साहित्य के मर्म को जानना चाहते हैं तो भी लोकतत्वों की उस साहित्य में शोध अत्यंतावश्यक है। क्योंकि "वाणी का यथार्थ मूल स्रोत लोकोद्‌गार का साधारण क्षेत्र है।" किसी कवि की महत्ता का यथार्थ ज्ञान हम उसकी लोकतात्विक शैली को ही लेकर कर सकते हैं। अपने साहित्य में साहित्यकार जितने ही लोकतत्वों को लेकर चलेगा उसका साहित्य उतना ही महान्, सर्वसम्मत, सर्वकालिक और जनवर्ग में उसका उतना ही प्रचार होगा जो किसी भी कवि की महानता की परख का निकष है। साहित्य यदि लोक विमुख होकर लिखा गया है तो कभी भी वह आगे उतना महत्व का नहीं रहेगा। जितना लोकतत्व युक्त होकर होता। उसकी श्रेणी साहित्य इतिहास की सूची मात्र में ही रहेगी। उसका महत्व केशव की रामचन्द्रिका के तुल्य होगा तुलसी के रामचरित मानस की भांति नहीं। मानस आज इतना जनप्रिय इसीलिए है

क्योंकि वह जनमानस का रहस्योद्घाटन करता है । मानव जीवन के विश्वास और उसकी परंपराएं उसमें निहित हैं ।

भारतेन्दु युगीन काव्य का लोक तात्विक अध्ययन भी इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण है । लोक तात्विक अनुशीलन का सांस्कृतिक तथा समाज शास्त्रीय महत्व है । लोक साहित्य लोक जीवन का दर्पण है । भारतेन्दु युगीन काव्य में प्राप्त लोक तत्वों के आधार पर भारतीय प्रथाओं, रीति रिवाजों और आंतरिक जीवन की मनोवैज्ञानिक गहराई को समझा जा सकता है । विभिन्न जातियों के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य तथा उनकी मूलभूत सांस्कृतिक दृष्टि को समझने के लिए लोक तत्वों का अध्ययन आवश्यक है । इनसे सामाजिक एवं कौटुम्बिक आदर्शों की सुन्दर व्याख्या मिलती ह, किस प्रकार का व्यवहार ग्राह्य या अग्राह्य है । इसकी मार्मिक विवेचना मिलती है इसी प्रकार प्राचीन काल से चली आती हुई परंपराओं, लोकाचार तथा प्रथाओं आदि के विश्लेषण में इनसे महत्व पूर्ण सहायता प्राप्त होती है।। वेद स्मृतियां और हमारे शास्त्रीय ग्रंथ भारतीय संस्कृति के जिन पक्षों के विषय में किसी प्रकार की सूचना नहीं देते लोक तत्वों से उनके विषय में संकेत मिलते हैं । आर्येतर सभ्यता की अनेकप्रथाएं जो आर्य प्रभुत्व की स्थापना के बाद भी भारत में बनी रही वे इनसे ही समझी जा सकती हैं । लोक तत्वों का अध्ययन नृतत्व शास्त्र की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है । ये लोकतत्व मनुष्य के सोचने समझने और कल्पना करने के मार्ग का निर्देश करते हैं । लोक तत्व मानव के विचारों के क्रमशः जटिलता ग्रस्त होने का संकेत करते हैं और आधुनिक मनुष्य के मानसिक गठन के क्रम विकास के बारे में संकेत करते हैं । इन सामाजिक लोकाचारों, विधि निषेध की बंधी बंधाई प्रणालियों को देखकर सभ्य मनुष्य की मानस ग्रंथियों का वास्तविक स्वरूप पहचाना जा सकता है । मनोविश्लेषकों ने मानव विकास क्रम का मूल इन्हीं लोकतत्वों में देखा है । लोक तत्वों के आधार पर ही मनोवैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला है कि यद्यपि आज संस्कृतियों में अनेक विभिन्नताएं दिखती हैं किन्तु इनका मूल एक है । नाना जातियों में विभक्त मनुष्य वस्तुतः एक है । ग्रामीण जातियों में प्रचलित विश्वासों के अध्ययन के आधार पर उन्नत समझी जाने वाली

जाति यों के अनेक पौराणिक आख्यानों का रहस्य भी इनमें प्राप्त है और कई बार दर्शनों के मूल भूत विचार भी इससे समझ में आ जाते हैं । काव्य रूपों, छंद रूपों तथा उपमानों के अध्ययन में भी इनसे सहायता मिलती है । इस प्रकार लोक तत्व के अध्ययन का नृतत्वशास्त्रीय और समाज शास्त्रीय महत्व के अतिरिक्त अन्य दृष्टियों से भी बहुत महत्व है ।

विषय पर हुए पूर्व अध्ययनों का संक्षिप्त परिचय:

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु मंडल के कवियों पर तथा समग्र से भारतेन्दु युगीन साहित्य पर डा० वार्ष्णेय[१], डा० किशोरी लाल गुप्त[२], डा० गोपीनाथ तिवारी[३], डा० रामविलास शर्मा[४], डा० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा[५] आदि अनेक विद्वानों ने शोध कार्य किया है, इसी प्रकार साहित्य में लोकतत्व अनुसंधान के भी अनेक प्रयत्न हुए हैं । डा० सत्येन्द्र का कार्य इस विषय में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । इन्होंने हिन्दी काव्य का लोक-तात्विक अध्ययन प्रस्तुत किया है[६] । डा० सत्येन्द्र के अतिरिक्त श्री ओम प्रकाश शर्मा ने सन्त साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि पर[७], डा० इन्द्रा जोशी ने उपन्यासों में लोकतत्व[८] पर, डा० रवीन्द्र भ्रमर ने मध्ययुगीन भक्ति काव्य

१- लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय: आधुनिक हिन्दी साहित्य (१८५०-१९००) हिन्दी परिषद्, प्रयाग ।

२- किशोरीलाल गुप्त: भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।

३- गोपीनाथ तिवारी: भारतेन्दु युगीन नाटक साहित्य ।

४- रामविलासशर्मा: भारतेन्दु युग, विनोद पुस्तक मंदिर, हास्पिटल रोड, आगरा।

५- राजेन्द्र प्रसाद शर्मा: पं० बालकृष्ण भट्ट(जीवन और साहित्य), विनोद पुस्तक मंदिर, हास्पिटल रोड, आगरा ।

६- सत्येन्द्र: मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, विनोद पुस्तक मंदिर, हास्पिटल रोड, आगरा, १९६०।

७- ओम प्रकाश शर्मा: हिन्दी साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि(अप्रकाशित) ।

८- इन्द्रा जोशी: उपन्यासों में लोकतत्व (अप्रकाशित) ।

में लोक तत्व[1], श्री चन्द्रभान ने रामचरित में मानस में लोक वार्ता[2] पर अनुसंधान किया है और अपने महत्व पूर्ण शोध प्रबन्ध हिन्दी जनता के सम्मुख प्रस्तुत किए हैं किन्तु आधुनिक हिन्दी साहित्य के लोक तात्विक अनुशीलन करने का प्रयत्न अभी तक नहीं हुआ । आधुनिक हिन्दी काव्य के लोक तात्विक अनुशीलन का प्रस्तुत प्रबन्ध इस दिशा में प्रथम प्रयास है । प्रस्तुत प्रबन्ध में लोक तत्व अनुसंधान का नई दृष्टि से स्वरूप विवेचन भी हुआ है ।

अध्ययन का स्वरूप और अपना दृष्टिकोण:-

भारतेन्दु युगीन काव्य का लोक तात्विक अनुशीलन विशेष महत्व पूर्ण है क्योंकि हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम लोक गीतों की शैली में गीत भारतेन्दु युगीन कवियों ने ही लिखे हैं । ये लोक गीत की शैली के गीत यद्यपि भारतेन्दु युगीन लेखकों द्वारा लिखे गए हैं किन्तु ये इतने स्वाभाविक बन पड़े है और लोक मानस के यह समस्त तत्वों से युक्त है कि इन गीतों को कवि व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध करते हुए भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार कर सकता है । इन गीतों में कवि व्यक्तित्व विगलित होकर जन मानस या लोक मानस में इतना घुल मिल गया है कि दोनों की पृथक सत्ता प्रतीत नहीं होती । यही कारण है कि भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा लिखे गए कजली, बिरहा, बावनी या चैती गीत पूर्ण तया लोक में गाए जाने वाले लोक गीतों के समान है दोनों में कोई अंतर नहीं होता । गीत शैलियों में ही नहीं, वरन् उपमान छंद संगीत सभी दृष्टियों से भारतेंदु युगीन काव्य लोकोन्मुख अधिक है । शास्त्रीय कम । इसलिए इस दृष्टि से भारतेन्दु युगीन काव्य का अनुशीलन आवश्यक है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध की मौलिकता:-

प्रस्तुत प्रबन्ध की मौलिकताएं संक्षेपतः निम्नांकित हैं -

१- रवीन्द्र भ्रमर: मध्ययुगीन भक्ति काव्य में लोकतत्व(अप्रकाशित) ।

२- चन्द्रभान: रामचरित मानस में लोक वार्ता:सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, सं० २०१२ ।

१- आधुनिक हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अनुशीलन करने का प्रयत्न अभी तक नहीं हुआ । इस प्रकार आधुनिक हिन्दी काव्य के लोक तात्विक अनुशीलन का, प्रस्तुत प्रबन्ध इसदिशा में प्रथम प्रयास है ।

२- अनेक नवीन लोक गीतों की शैलियों का जिनका न तो अभी तक कोई संग्रह ही प्रकाश में आया है और न जिन शैलियों से हिन्दी जगत परिचित है, उनका सर्वप्रथम विवेचन प्रस्तुत प्रबन्ध में किया है ।

३- प्रस्तुत प्रबन्ध में अनेक ऐसे नए भारतेन्दु युगीन कवियों की रचनाएं उद्धृत हैं जो अपने समय के प्रसिद्ध लोक कवि थे जो लोक शैलियों में ही लिखा करते थे और जिनकी रचनाएं हिन्दी प्रदीप, ब्राह्मण, आनंद कादम्बिनी, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, भारतेन्दु कु आदि श्रेष्ठतम पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं, किन्तु इतिहासकारों ने इन लोक कवियों की उपेक्षा की है और श्रेष्ठ कवि होते हुए भी इन कवियों को महत्व नहीं दिया और अपने इतिहास ग्रंथों में इनका उल्लेख तक नहीं किया । कवि परसन अपने युग की ऐसी ही विभूति था जिसने केवल दो वर्ष और केवल हिन्दी प्रदीप में लिख कर अपने को पत्रिका पाठकों के मध्य प्रिय बना लिया था । परसन के समान ही इस युग में अनेकों ऐसे लेखक हुए थे जो जन प्रिय लोक कवि थे किन्तु इतिहासकारों द्वारा उपेक्षित होते होते वे विस्मृत होने लगे । ऐसे महत्वपूर्ण कवियों और उनकी रचनाओं का मूल्यांकन प्रथम बार प्रस्तुत प्रबन्ध में हुआ है ।

४- लोक शैलियों के मूल में निहित लोक प्रवृत्तियों का यथा - लोक गीतों में पुनरावृत्ति प्रवृत्ति, अन्तहीन परिगणन प्रवृत्ति, लयात्मक शब्दों के प्रयोग, प्रश्नोत्तर तथा संबोधन प्रवृत्ति का भारतेन्दु युगीन काव्य के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत प्रबन्ध में विस्तृत विवेचन किया गया है ।

५- प्रस्तुत प्रबन्ध में लोकतत्वों की नृतत्वशास्त्रीय तथा लोक मानस के आधार पर विस्तृत व्याख्या भी की गई है ।

६- छंदों के लोक उद्भव पर विवेचन प्रस्तुत है ।

७- उपमानों के मनोवैज्ञानिक आधार को बताते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि उपमान विकसित मस्तिष्क की उपज नहीं वरन

अविकसित मस्तिष्क की उपज है और सर्व प्रथम उपमानों का प्रयोग कलात्मकता की दृष्टि से नहीं भावों की स्पष्टतर अभिव्यक्ति के लिए किया गया था । यही कारण है कि शिशु वर्ग या आदिम जातियों के मध्य उपमानों का व्यापक प्रयोग होता है । उपमानों की लोक तात्विकता निरूपित करते हुए भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त वर्ग, पशु वर्ग तथा मानव वर्ग से संबंधित ऐसे अनेक नवीन उपमानों का वर्णन किया गया है जिनका प्रयोग परिनिष्ठित साहित्य में देखने को नहीं मिलता है ।

८- लोक गीतों के संगीत पक्ष की अब तक अवहेलना हुई है । लोक संगीत के अध्ययन की दृष्टि से प्रस्तुत प्रबन्ध का विशेष महत्व है । गीत शैलियों उनकी लोक सांगीतिक विशेषताओं, लोक तालों, लोक रागों, लोक लयों तथा लोक वाद्यों का, उनके मूल रूप का, शास्त्रों में उनकी स्थिति का, इतना व्यापक अध्ययन हिन्दी में संभवतः सर्वप्रथम प्रस्तुत प्रबन्ध में किया गया है । लोक संगीत की दृष्टि से यह हिन्दी साहित्य के मूल्यांकन का प्रथम प्रयास है

९- लोक जीवन के विविध पक्षों के अन्तर्गत लोक पर्वों, लोकोत्सवों, लोकाचारों, लोक बैठकों, लोक प्रथाओं, लोक देवी देवताओं, लोकानुरंजन साधनों तथा लोक सज्जा प्रसाधनों का प्रस्तुत प्रबन्ध में विस्तृत अध्ययन है । लोकाचारों की पृष्ठभूमि में निहित लोक मानस का, विवाह, जन्म तथा मृत्यु के अवसर पर किए जाने वाले लोकानुष्ठानों का लोक वार्ता शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन भी प्रस्तुत प्रबन्ध में किया गया है ।

- - -

अध्याय १

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक शैलियां तथा लोक प्रवृत्ति

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक-शैलियां तथा लोक प्रवृत्ति

भारतेंदु युगीन कवि जन साहित्य लिखने के पक्षपाती थे । वे चाहते थे कि जहां उनके पूर्व का हिन्दी साहित्य अब तक शिष्ट वर्ग के मध्य ही बंधकर रह गया, जन जीवन तथा जनमानस से अस्पृष्ट रहकर वह एक ग्रामीण अशिक्षित अपढ़ गवांर की भावधारा तथा उनके जीवन की प्रवृत्तियों को समझने में अक्षम रहा, वही काव्य जनसामान्य संस्पृष्ट होकर शिष्ट वर्ग के साथ लोक वर्ग का भी बनना चाहिए, इसलिए उन्होंने लोक शैलियों का प्रयोग कर लोक प्रवृत्ति के अनुकूल रचनाएं की और शिष्ट साहित्य अर्थात् शिष्ट शैली में भी जो लिखा उसको लोक प्रवृत्ति के अनुसार ढाल कर लिखा और इसी के परिणामस्वरूप भारतेन्दु युगीन काव्य शिष्ट काव्य की अपेक्षा लोक काव्य अधिक बन गया । उसकी भावधारा बदल गई, विषय वस्तु बदल गए और भावों की अभिव्यक्ति की शैली बदलकर लोक शैली हो गई । जहां रीतिकालीन कवि पहले नायिका के नख शिख की रूढ़िगत उपमानों द्वारा ही अपनी काव्य कुशलता दिखला चुके थे वहीं भारतेंदु युगीन कवियों ने ग्रामीण नारी का भी स्वर सुना, गांव में खेलते हुए बालकों की प्रवृत्तियों का अनुशीलन किया और गांव में मस्त ग्रामीण के बिरहे तथा नारियों की कजरी और मलार की तानें भी सुनी ।

एक प्रकार से लोक शैलियों के प्रयोग द्वारा भारतेन्दु युग अपने पूर्व युग की तुलना में क्रान्तियुग था । भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने लोक गीत लिखे और सहयोगी कवियों को लोक गीततथा लोक शैली का महत्व समझाया और प्रेरणा दी कि सभी सहयोगी कवि लोक गीत लेखन में प्रवृत्त हों[1]। फलस्वरूप प्रताप नारायण मिश्र, चौधरी बदरी नारायण उपाध्याय प्रेमघन सभी लोक साहित्य के हिमायती बन गए और उन्होंने अपने चारों और ऐसे सहयोगी लेखकों का मंडल तैयार कर लिया जो अच्छी अच्छी लोक शैलियों में रचनाएं प्रकाशनार्थ दिया करते थे, और इस प्रकार भारतेन्दु ने अपनी पत्रिकाओं में, प्रताप

१- भारतेन्दु ग्रंथावली - तृतीय खण्ड- जातीय संगीत ।

नारायण मिश्र ने ब्राह्मण में[१], प्रेमघन ने आनंद कादम्बिनी[२] में तथा बालकृष्ण भटट ने हिंदी प्रदीप[३] में खूब लोकगीत आदि छापे और ग्रामीण शैली के महत्व को समझाते हुए ग्रामीण भाषा में लिखने के लिए कवियों को प्रोत्साहित किया । फलस्वरूप अनेक ऐसे प्रतिभाशाली कवि सामने आए जो लोक भाषा तथा लोक शैलियों में अपने भावों की अभिव्यक्ति कर जनता का मनोरंजन किया करते थे । कवि परसन अपने युग की ऐसी ही विभूति था जो लोक शैली के कारण ही पाठक वर्ग पर छा गया था । पाठक उसकी रचना बड़े चाव से पढ़ते एवं सुनते थे । यही कारण था हिंदी प्रदीप ऐसी उच्च कोटि की पत्रिकाओं के दो तिहाई भागों में उसकी रचनाएं छपा करती थीं और वह स्वयं जब गाता था तो सुनने वालों का मेला ही लग जाता था[४] ।

लोक शैलियों तथा लोक प्रवृत्तियों की भारतेंदु युगीन काव्य में एक प्रकार से भरमार हो गई थी और विवेच्य साहित्य का लोक तात्विक परिशीलन करते समय भारतेंदु युगीन काव्य का लोक प्रवृत्ति तथा लोक शैलियों की दृष्टि से अनुशीलन आवश्यक है किंतु विषय विवेचन से पहले आवश्यक है कि लोकप्रवृत्ति तथा लोक शैली का अर्थगत स्पष्टीकरण हो ।

लोक शैलियों से हमारा तात्पर्य उन समस्त शैलियों से है जो लोक मानस से संबंधित है तथा जिनका प्रचलन अशिक्षितों अपढ़ ग्रामीणों से है और जिनका प्रयोग ग्रामों में होता है जिनका प्रयोग शिष्ट कवियों-ाा०

१- ब्राह्मण: सं० प्रताप नारायण मिश्र

२- प्रेमघन सर्वस्व: द्वितीय भाग ।

३- हिंदी प्रदीप: जिल्द ८, संख्या ११, पृ० १-४,

जिल्द १०, संख्या १, पृ० १५-१६ ।

४- भट्ट का चेला बड़ अलबेला जहां गावत तहं लागत मेला
ध्यावत दीनानाथ बिरहिया ध्यावत दीनानाथ-
-हिन्दी प्रदीप, जि० १३, सं० ५,६,७,पृ० ५२-५३ ।

में नहीं होता है । प्रत्येक वर्ग की एक विशेष शैली होती है जिसके आधार पर निर्णीत होता है कि शैली लोक वर्ग की है या शिष्ट वर्ग की । एक का संबंध मुनिमानस से है एक का लोकमानस से । लोक शैलियों के मूल में लोक प्रवृत्तियां निहित होती हैं जिससे अन्य लोक सांस्कृतिक तत्वों के साथ भाषा तथा शैली का निर्माण होता है और लोक प्रवृत्ति के मूल में लोकमानस निहित रहता है । इस प्रकार सबके मूल में लोक मानस है, लोक मानस से लोक प्रवृत्ति का जन्म होता है और लोक प्रवृत्ति से लोक शैली का । वंशानुक्रमिक संबंध के सिद्धांत के समान इस प्रकार हम लोक साहित्य द्वारा लोक शैली का लोक शैली द्वारा लोक प्रवृत्ति का और लोक प्रवृत्ति द्वारा लोक मानस का अध्ययन कर यह निर्णय कर सकते हैं कि किस साहित्य में कितनी मात्रा में लोक शैली लोक प्रवृत्ति और लोक मानस का योग है । किन्तु शिष्ट साहित्य के मूल में कितनी मात्रा लोक शैली या लोक प्रवृत्ति गत है इसका अध्ययन जटिल है क्योंकि अनेक स्थलों पर यद्यपि लोक शैली का क्षीण तन्तु विद्यमान प्रतीत होता है किन्तु उनपर मुनिमानस या शिष्टता का आवरण इतना घना हो गया है कि दोनों का विश्लेषण करना एक समस्या हो जाती है यद्यपि लोक भाषा में लिखे गये लोक गीतों में यह स्थिति इतनी जटिलतर नहीं होती, इसीलिए ऐसे स्थलों पर यह संकेत मात्र दिया जा सकता है कि यह प्रमुख प्रवृत्ति लोक प्रवृत्ति के कुछ अंशों में समान है किन्तु यह निश्चित रूपेण नहीं कहा जा सकता कि यह पूर्णतः लोक प्रवृत्ति ही है क्योंकि यो तो प्रायः प्रत्येक देश के साहित्य में किसी न किसी रूप में लोक मानस रहता ही है, क्योंकि मुनिमानस के मूल में ही लोक मानस है और मुनि मानस का निर्माण ही लोक मानस से हुआ है । अतः इस प्रकार जहां मुनिमानस है वहां लोक मानस भी होगा किन्तु जैसा कि डा० सत्येन्द्र[१] का मत है कि मुनिमानस कभी लोक मानस पर इतना अधिक प्रबल हो जाता है कि यह कहा ही नहीं सकता कि इसमें लोक मानस का कितना तत्व है और ऐसे स्थलों पर मुनिमानस की सत्ता ही माननी पड़ती है और मानी जानी चाहिए क्योंकि लोक मानस तो विलुप्त प्राय सा ही रहता है ।

१- डा० सत्येन्द्रः लोक मानस के कमल लेख से उद्धृत ।

भारतेंदु युगीन काव्य के इस दृष्टि से मुख्यतः दो रूप हैं - पहला तो वह जो पूर्णतः लोक काव्य तथा लोक शैली के ही अन्तर्गत आएगा। क्योंकि वह लोक प्रवृत्ति के आधार पर लोक भाषा में, लोक शैली में ढालकर लिखा गया है। इस प्रकार के काव्य में लोक प्रवृत्ति लोक शैली तथा लोक-मानस का अनुसंधान किया जा सकता है और इस प्रसंग में प्रत्येक प्रदेश के लोक गीतों, विश्व के लोक गीतों की सामान्य सार्वभौम विशेषताओं की तुलना अपेक्षित है। दूसरा काव्य का वह रूप है जिसकी शैली अधिक संयत शिष्ट तथा परिमार्जित है। इस प्रकार के काव्य में भाषा (लोक) तत्व तथा ग्रामीण प्रवत्ति तत्व के समाप्त होने के कारण से लोक शैली या प्रवृत्तिगत विशेषताएं खोजना कठिनतर है। इस प्रकार के काव्य में लेखक का व्यक्तित्व अधिक मुखरित है तथा जन समाज की वर्गगत विशेषताएं कम हैं। किन्तु चूंकि भारतेन्दु युगीन कवि ग्रामीण शैली ग्रामीण भाषा के पक्षपाती थे अतएव उनके व्यक्तित्व की छाप इन कविताओं से भी से भी मिट नहीं सकीं और उनमें लोक मानस तथा लोक शैलियों की स्थिति विद्यमान ही है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है विवेच्य साहित्य का लोक शैली गत अध्ययन दो वर्गों में बांट कर किया जासकता है। पहला तो काव्य का वह रूप है जो पूर्णतः लोक गीत की शैली में ही लिखा गया है अतः इसका अध्ययन लोक गीत की तुलनाओं द्वारा अपेक्षित है और दूसरा काव्य का वह रूप है जो शिष्ट साहित्य के रूप में लिखा गया है और इस प्रकार के दूसरे वर्ग के साहित्य में यह अध्ययन करना है कि इसके मूल में, लोक मानस तथा लोक गीतों से इतर शैली में लिखे गए भारतेन्दु युगीन काव्य के लोक शैली तथा लोक प्रवृत्तिगत अध्ययन करने के पूर्व एक बात और कह देना प्रस्तुत प्रसंग में आवश्यक है, कि कवियों ने किसी विशेष कथा चाहे वह लौकिक हो या पौराणिक - को आधार मानकर काव्य की रचना नहीं की है - यदि कुछ एक दो गिनती के काव्य खण्डकाव्य की शैली मेंलिखे गये हैं (इन्हें भी कथा की स्थिति न होने के कारण खण्ड काव्य नहीं कहना चाहिए) तो भी उसमें केवल वर्णन की ही प्रधानता है कथा की स्थिति नहीं है, अतएव उनमें न तो

कथा के मूल उपादान, कथा की लोक स्वीकृति आदि के संबंध में अध्ययन किया जा सकता है और नहीं उनमें कथानक रूढ़ियों या अभिप्रायों का अध्ययन किया जा सकता है । जो एक दो अभिप्राय या रूढ़ियाँ छिटपुट रूप में आ गई हैं इनका उल्लेख मात्र ही संभव है । इस प्रकार यहां लोक शैली की जो वर्णन पद्धति है - मध्य बीच में आशीर्वादात्मक शैली का प्रयोग, साधारण बात कहकर मानस की चौपाई दोहराना, व्यंग शैली, स्यापा की शैली प्रश्नोत्तर शैली आदि पर तथा लोक विषयों पर ही विचार किया जा सकता है और यह स्पष्ट किया जा सकता है कि यह शैलियाँ कितनी मात्रा में लोक शैली से मेल खाती हैं । भारतेन्दुयुगीन काव्य यद्यपि अधिकांश रूप से लोकगीतों की ही शैली में लिखा गया है किन्तु फिर भी काव्य का विशाल परिमाण लोक गीतों की शैली में नहीं लिखा गया है फिर भी उसमें लोक शैली तथा लोक प्रवृत्ति के तत्व मिलते हैं उसमें लोक मानस की वर्णन पद्धति मिलती है, उसमें विषय लोक विषय है, उसकी भाषा लोक भाषा है और उसमें लोक शैली के ही अनुरूप लोक शब्दावली लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग है और वह लोक की छंद शैली अर्थात् लोक छंद में ही लिखे गए है । अतएव इस प्रकार उनमें लोक शैली के अनेक तत्व मिलते हैं । इन लोक शैली के अनेक तत्वों अर्थात् लोक छंदों का, लोक उपमानों का, लोक शब्दावली और लोक भाषा का यथास्थान विस्तृत परिचय प्रबन्ध में दिया गया जिससे उनका यहां विवेचन कुछ पुनरुक्ति मात्र होने के कारण अपेक्षित नहीं है । यहां प्रस्तुत अध्याय में लोक शैली तथा लोक प्रवृत्ति के उन्हीं तत्वों पर विचार किया जाएगा जिनका अन्य अध्यायों में विवेचन नहीं हुआ है ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने अनेक शैलियों के लोक गीत लिखे हैं । कजली, आल्हा, होली, बारहमासा, चैती आदि ऋतुगीत सोहर, नकटा, बन्ना, घोड़ी, ज्योनार, गाली आदि संस्कार गीत तथा पूरबी, झूलना आदि अनेक लोक गीत जो लोक वर्ग में प्रायः गाए जाते हैं लिखे हैं । इसके अतिरिक्त अनेक लोक शैलियों के गवड्डी शैली, पंडों की हरगंगा शैली, सुग्गे को सिखाने की पढ़ी परवती सीताराम वाली शैली, फकीरों की शैली, बच्चों को पाठ सिखाने की बारह खड़ी तथा ककहरा की शैली तथा लोक सीख आदि

कजली : -

लोक गीतों में सबसे अधिक कजली की शैली में गीत लिखे गए हैं। कजली सावन में स्त्रियों द्वारा गायी जाने वाली हिंदी प्रदेश की एक अति प्रचलित गायन शैली है। "कजली कज्जली या कजरी शब्द संस्कृत कज्जल से बने हैं जो बहुअर्थी है किन्तु मुख्यरूप से इसका अर्थ कालिमा से है जिससे उसके अर्थ[1] काजल या अंजन (२) वर्षा की काली घटा (३) कजली देवी अर्थात् विंध्याचल की काली देवी (४) कजली का त्योहार या उत्सव (५) कजली रागिनी का गीत है। सावन में गाए जाने वाले गीतों को कजली क्यों कहा गया। इसमें मत वैभिन्य है। ग्रियर्सन ने लिखा है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अनुसार मध्यभारत के परोपकारी राजा दादू राय की मृत्यु पर वहां की स्त्रियों ने अपने दुख को प्रगट करने के लिए कजरी नामक एक नए गीत के तर्ज का आविष्कार किया, जो बाद में कजली कहलाया। एक लोक कथा के आधार पर भी बहुत कुछ उपरोक्त कजली नामकरण का कारण दिया गया है। लोक कथा के अनुसार मध्यभारत के दादू राय राजा के कारण कजली की प्रथा चली थी। दादू राय के राज्य में एक बार अकाल पड़ा था उस समय राजा ने अपनी देशभक्ति के बल से पानी बरसाया था, जिससे वह बड़ा ही लोक प्रिय हो गया। किन्तु कुछ दिनों बाद उसका देहान्त हो गया उसकी पत्नी नागमती भी उसी के साथ सती हो गई। उस राज्य की स्त्रियों ने उसके प्रति अपने दुख को व्यक्त करने के लिए एक नया राग निकाला और उसका नाम कजली रक्खा गया, क्योंकि गीत गाते समय आंखों के आंसुओं के साथ स्त्रियों का काजल तक धुल जाता था[1]। उपर्युक्त कथन यद्यपि किसी लोक कथा और लोक श्रुति पर विद्यमान है किंतु कजली नामकरण का उपर्युक्त कारण सार्थक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उपर्युक्त कथन से पुष्ट होता है कि कजली एक शोक गीत है जो दादू राय की मृत्यु प्रसंग पर गया गया था किन्तु यदि कजली का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि उसमें शोक सम्बन्धी कोई भाव नहीं है वह तो प्रसन्नता और आनंद का गीत है जिसे सावन में स्त्रियां

१- लोक रागिनी : पृ० ७४।

प्रफुल्ल मन से नाच नाच कर गाती है । अतः कजली नामकरण का उपर्युक्त कारण सार्थक नहीं प्रतीत होता । भारतेन्दु ने कजली नामकरण के और भी कई प्रचलित कारण दिए हैं । "भारतेन्दु के अनुसार कुछ लोगों का कहना है कि दादू राय के राज्य में कजलीवन नामक एक वन था जिसके कारण इसका नाम कजली पड़ा।"[1] उपर्युक्त तर्क भी बहुत अधिक संगत नहीं प्रतीत होता क्योंकि उपर्युक्त कथन प्रमाणहीन है और केवल कजलीवन होने के कारण ही कजली नामकरण हो गया हो बहुत अधिक संगत नहीं है ।

कजली नामकरण का एक अन्य कारण प्रसिद्ध कजली रचयिता मिर्जापुरी प्रेमघन ने दिया है - "जैसे बसंतोत्सब के त्यौहार का नाम होलीदहन के कारण होली पड़ा, ऐसे ही सुप्रसिद्ध त्यौहार कजली तीज के रहने से इस बरसाती उत्सब का नाम भी कजली कहलाया और जैसे होली में गाये जाने योग्य गीतों का नाम होली पड़ा उसी प्रकार कजली के अवसर पर गाए जाने वाले गीत कजली नाम से विख्यात हुए।[2]" भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी कजली के नामकरण में इस प्रकार के कारण का उल्लेख किया है । उनका कहना है कि भादों की शुक्ल पक्ष की तीज का नाम कजली तीज है इस दिन खूब कजली गाई जाती है । अतएव क इससे भी कजली का संबंध हो सकता है । कजली नामकरण का उपर्युक्त कारण सर्वाधिक संगत प्रतीत होता है । इसके निम्नलिखित कारण हैं-

(क) इस महीने की शुक्ला तीज का नाम कजली तीज है और इस दिन कजली गाई जाती है अतएव कजली नामकरण का मुख्य कारण एक यह भी हो सकता है ।

(ख) मिर्जापुर में सबसे अधिक कजलियां गाई जाती है और वहीं यह कजली तीज का उत्सब भी सबसे व्यापक रूप में मनाया जाता है ।

(ग) कजली त्यौहार हर्ष का त्यौहार है और इस दिन कजरिया तथा विंध्याचलदेवी की पूजा होती है अतएव कजली में हर्ष तथा उल्लास के

१- लोक रागिनी : पृ० ७४ ।

२- प्रेम०सर्व० द्वितीय भाग ।

भाव व्यक्त हुए हैं ।

(घ) प्रसिद्ध कजली रचयिताओं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र आदि भी कजली नामकरण का उपर्युक्त कारण मानते हैं ।

इस प्रकार कजली के विषय में अन्तिम निष्कर्ष लेते हुए हम कजली के प्रमुख स्थान मिर्जापुर के निवासी जिन्होंने भारतेन्दुयुगीन कवियों में सबसे अधिक तथा विविध प्रकार की कजलियां लिखी हैं उन्हीं के ही शब्दों में कह सकते हैं:-

"कजली के स्वाभाविक उत्सवमय समय के आनंदमय क्रीड़ा कुतूहल युक्त बरसाती उत्सव को कजली उत्सव अथवा त्यौहार कहते एवं उससे तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले अनेक वर्णनीय विषयों के वर्णन से युक्त और कुछ स्थानिक तथा सामयिक बातों का भी बखान जिसमें होता, उस समय प्रायः उन्हीं क्रीड़ा कुतूहलों में एतद्देशीय बहुधा ग्राम्य नारियों से गाई जाने वाली एक विशेषगीत को कजली कहते हैं[1]।"

कजलियों के विषय तथा भाव सभी ग्राम्य ही होने चाहिए क्योंकि यह लोक शैली का ही गीत प्रकार है इस संबंध में भी प्रेमघन के विचार दर्शनीय हैं-

"संभ्रान्त कुल कामिनियों की मनोरंजन सामग्री तो केवल झूला झूलना एवं गाना बजाना मात्र है, उसमें भी मल्लारादि अनेक राग - रागनियों का समावेश रहता किन्तु कज्जली खेल के संग गाना बजाना वा अनेक क्रीड़ा कौतुक एवं वार्षिक उत्सव सम्बन्धी अनेक कृत्य विशेष में तो प्रायः ग्राम सुहासिनियों का ही भाग है । इसी से प्रधानता इसमें ग्राम्य भाषा और भाव आदि की स्वाभाविक होने से अति आवश्यक है[2]।"

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कजली एक पूर्णतया लोक

१- प्रेमघन सर्वस्वः द्वितीय भाग, पृ० ३३७-३३८ ।

२- वही ।

शैली का ग्रामीण नारियों द्वारा गाये जाने वाला एक गीत प्रकार है । भारतेन्दु युगीन कवियों में लगभग सभी प्रमुख कवियों ने कजली की शैली में विविध विषयों से संबंधित गीत लिखे हैं ।

भारतेन्दुयुगीन कवियों ने अनन्त कजरिया लिखी हैं[1] और उनके विषय प्रेम वा शृंगार के साथ ही साथ विनोद, सामान्य क्रीड़ा, कजरिया तथा विंध्यावली देवी, गोसंकट निवारसा, बाल्य विवाह, बाला-वृद्ध विवाह, स्वदेश दशा आदि अनेक विषय हैं; किन्तु यदि संपूर्ण भारतेन्दु-युगीन कवियों द्वारा लिखित कजलियों का विषयानुसार वर्गीकरण कर कजलियों का मूल्यांकन किया जाय तो ज्ञात होगा कि तीन चौथाई कजलियां अपनी स्वाभाविक प्रकृति के ही अनुसार प्रेम वा शृंगार तथा विनोद और क्रीड़ा सम्बन्धी ही हैं । शेष गोसंकट निवारस, स्वदेशदशा आदि के से संबंधित कजलियां हैं उनका परिमाण एक चौथाई से अधिक नहीं । प्रेम तथा शृंगार संबंधी कजलियों में प्रेमी का प्रेमिका की रूप प्रशंसा, दोनों के सौंदर्य का एक दूसरे पर प्रभाव वर्णन, प्रेमी का प्रेमिका से उसके प्राप्ति हेतु गंगा नहाने, मंदिर जाने कथा पुरान सुनने, माला हिलाने, पूजा करके देवताओं की मनौतिया मानने, पिया के परदेश छाने तथा अपनी सुधि बिसरजाने के लिए कहना, सूनी सेज को सांपिनसी कहना, प्रेमिका पर अन्य लोगों की दृष्टि तथा उसका इतराकर घूमना, जोवन रूप दिवानी होना, तथा सबसे अटपट बानी बोलना, सावन में पति वियोग में अपनी दशाओं का वर्णन तथा दूसरी ओर प्रिय की विकलता और उसकी याद न भूलने का कथन आदि बड़े विस्तार से वर्णित है । यहां भारतेन्दु युगीन कवियों की कजलियों में प्राप्त लोक शैलीगत विशेषताओं उनमें लोक विषयों का,

---

१- प्रेमघन सर्वस्व- प्रथम भाग- देखिएवर्षा बिन्दु-पृ०-४८१-५५१ में की कजलियां भारतेन्दुग्रंथावली - दूसरा खण्ड-दे०-पृ० ४८७-५१४- में की कजलियां ।प्रतापलहरी-सं० नारायणप्रसाद अरोड़ा।

हिन्दी प्रदीप: जि० १३, सं० ९-१० पृ० ४-५ ।

जि० ९, सं० २ पृ० १५ ।

जि० ११, सं० १२ पृ० ११-१२ ।

लोक लय, राग तालका उल्लेख, उनकी पुनरावृत्ति, प्रवृत्ति निरर्थक शब्दों के प्रयोग तथा अन्तहीन परिगणन की विशेषता का उल्लेख किया गया है। अन्तहीन परिगणन संबंधी लोक शैली की विशेषता प्रेमघन की कजलियों में बहुत मिलती है। उदाहरणार्थ कुछ कजलियों के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं जिनमें जब कवि रूप सज्जा का वर्णन करने चलता है तो उसको जितने भी श्रृंगार प्रसाधन है किसी की याद उसे नहीं भूलती। सबकी गणना एक क्रम से कराता जाता है। इसी प्रकार जब किसी मजलिस या मुजरा का चित्रण करने वह बैठता है, उसकी दृष्टि वहां आए हुए वादकों पर जाती है - तो उसको सदा यही चिंता लगी रहती है कि वह किसी वाद्य का नाम गिनाना भूल न जाए। उसे इसकी चिंता नहीं कि पाठक इससे ऊब भी सकता और यह एक काव्यदोष हो जाएगा। यह तो लोक शैली की स्वाभाविक विशेषता है। इसकी उपेक्षा वह कैसे कर सकता है। एक बनारसी लय की कजली है जिसमें प्रेमिका की रूपसज्जा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि इस रूप सज्जा ने मानों जादू डाल रक्खा है-

हम पर जानी! तू ने जादू डाला रे हरी ।।
सोहै सुंदर बाला, कानन में क्या झूमक वाला रामा ।।
गरवां में छहराला, मोती माला रे हरी ।।
कर चेहरा चौकाला, देकर सुरमें का दुम्बाला रामा ।।
कैसा मारा कहर नज़र का भाला रे हरी ।।
क्या लहंगा लहराला, लाल दुपट्टा गज़ब सुहाला रामा ।।
देखत चोली हरी हाय जिउ जाला रे हरी ।।
सरस प्रेमघन आला, पायल नूपुर सोर सुनाला रामा ।।
चलत चाल जैसे मतंग मतवाला रे हरी[1] ।।

इसी प्रकार वह वाद्यों के विषय में लिखता है तो ध्यान रखता है कि सभी वाद्यों की गिनती हो जाए। देखिए एक ही साथ चार पंक्तियों में नौ वाद्यों की गणना कराई गई है-

---

१- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० ५०२ ।

कोउ मृदंग, मुहचंग, चंग, लै सारंगी सुर छेड़ै रामा ।
हरि हरि कोउ सितार तंबुरा आनी रे हरी ।
कोउ जोड़ी झनकारैं, कोउ घुंघरू पग झनकारैं रामा ।
हरि हरि नाचैं कितनी माती जोम जवानी रे हरी[1]।।

कजली में निरर्थक शब्दों के प्रयोग की तथा पुनरावृत्ति की विशेषता भी व्यापक परिमाण में मिलती है । उदाहरणार्थ एक दो उदाहरण निरर्थक शब्दों के प्रयोग के तथा पुनरावृत्ति सम्बन्धी विशेषता के प्रस्तुत किए जाते है वैसे इनका विस्तृत अध्ययन आगे प्रस्तुत हैः-

बिजुरी चमकैं जोर से, नभ छाए घनघोर हो ।
मोर सोर चहुं ओर करैं दादुर बन कीनी रोर हो ।
सखी झुलावै प्रेम सों हो पहिरे रंग रंग चीर हो ।
झूलै प्यारी राधिका संग पीतम स्याम सरीर हो ।

इसमें निरर्थक शब्द "हो" की आवृत्ति है । इसी प्रकार अन्यत्र भी पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है -

एरी सखी झूलत हिंडोरे स्यामा-स्याम विलोको वा कदम के तरे
एरी सोभा देखत ही बनि आवै बिरिंचि सोहैं हरे हरे ।
एरी तहां रमकत प्यारी झूलैं दिए बांह पिय के करे ।
एरी छबि देखत ही हरिचंद नैन मेरे आवत भरे।[2]

इसके अतिरिक्त जिन कजलियों के विषय में प्रेम और शृंगार संबंधी न होकर समसामयिक परिस्थिति से संबंधित हैं उनकी शैली भी पूर्णतया कजली की अति प्रचलित लोक शैली ही है । उदाहरण के लिए एक मंहगी संबंधी कजली की शैली देखिएः-

मंहगी गजब जोर की घहरै, केहि विधि बचिहैं पापी प्रान ।
केहि विधि देइहैं मालगुजारी, रोवैं छाती फोड़ किसान ।

१- प्रेमघन सर्वस्वः- पृ० ४९८ ।

२- भा० ग्रं० - पृ० ४८८ ।

मेहरी लरिकन कहां खवैहैं - पलिहैं किमि चौबान ।

घर दुआर कैसे के रखिहै - चिन्ता चित्त लगान ।

छछुछा काल होय नहिं परजा - सुनि दुख द्रवत पखान ।

अहो अनाथ नाथ करुणानिधि कहं सोए भगवान[1]।

उपरोक्त कजलियों की किसी भी कजरी से लेकर तुलना की जा सकती है कि यह कजली पूर्णतया लोक शैली की ही कजरी है ।

होली :-

दूसरी महत्व पूर्ण लोक शैली जिसमें भारतेन्दुयुगीन कवियों ने लोकगीत लिखे हैं वह होली की शैली है । होली एक लोकोत्सव है[2] और यह विश्व के अनेक देशों में विभिन्न नामों से मनाया जाता है । इस उत्सव पर असभ्य,अपढ़,गंवार नारियों तथा पुरुषों द्वारा गीत गाए जाते हैं । वे होली गीत के अन्तर्गत हैं । होली एक शृंगारिक उत्सव है; इसे मदन महोत्सव भी कहते हैं, इसके गीत अ इसकी भावना के अनुरूप ही शृंगारिक गीत होते है । शृंगार के अधिदेवता कृष्ण और राधा हैं इसलिए अनेक होली संबंधी गीतों में राधा और कृष्ण को लेकर उनके होली खेलने रंग डालने तथ अबीर गुलाल खेलने सम्बन्धी प्रसंग को लेकर गीत लिखे गए हैं । भारतेन्दुयुगीन कवियों ने कजली के उपरान्त सबसे अधिक गीत"होली" के लोकगीतों की ही शैली में लिखे हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा चौधरी बदरीनारायण उपाध्याय प्रेमघन ने जो इस युग के दो विशेष महत्वपूर्ण कवि हैं ने होली सम्बन्धी गीतों के पूर्ण संग्रह ही लिखे हैं । प्रेमघन ने बसंत बिंदु शीर्षक से तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने होली और मधुमुकुल नाम से । भारतेन्दु - हरिश्चन्द्र कृत मधुमुकुल में संगृहीत सभी गीत जो होली संबंधी हैं शृंगारिक हैं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उसका समर्पण करते हुए स्वयं लिखते हैं -

---

१- हिंदी प्रदीपः जि० १२, सं० ९, पृ० ४ ।

२- पांचवे अध्याय के अन्तर्गत लोकोत्सव तथा लोकपर्व संबंधी विवरण देखिए ।

"यह मधुमुकुल तुम्हारे चरण कमल में समर्पित है, अंगीकार करो । इसमें अनेक प्रकार की कलियां हैं, कोई स्फुटित कोई अस्फुटित, कोई अत्यन्त सुगंधमय, कोई छिपी हुई सुगंध लिए, किन्तु प्रेम सुवास के अतिरिक्त और किसी गंध का इसमें लेश नहीं । तुम्हारे कोमल चरणों में ये कलियां कहीं गड़ न जाएं, यही सन्देह है[1] ।"

यह त्योहार फागुन मास में मनाया जाता है अतः इसे भोजपुर प्रदेश में फगुआ नाम से भी संबोधित करते हैं । इस उत्सव का तथा शैली का नाम होली क्यों पड़ा, उसके सम्बन्ध में एक अति प्रचलित अनुश्रुति है जिसका उल्लेख करना असंगत न होगा - प्रहलाद राम भक्त था और उसका पिता हिरण्यकशिपु राम विद्रोही । अतः प्रकृति के अनुसार "प्रहलाद राम का भजन करता था और हिरण्यकशिपु विरोध । हिरण्यकशिपु ने बहुत विरोध और प्रयत्न किए कि प्रहलाद राम भजन छोड़ दे किन्तु जब प्रहलाद ने अपना बाल हठ नहीं छोड़ा तो हिरण्यकशिपु ने उसको मारने के अनेक उपाय किए किन्तु संयोग से हिरण्यकशिपु अपने उपायों में सफल नहीं रहा अतएव हिरण्यकशिपु ने निश्चित योजना बनाई कि प्रहलाद को उसकी बुआ होलिका के साथ जलने को कहा जाएगा, चूंकि होलिका के पास एक विशेष प्रकार का वस्त्र था जिसपर अग्नि का कोई असर नहीं होता था अतः होलिका तो बच जाएगी किन्तु प्रहलाद भस्मीभूत हो जायगा । किन्तु राम कृपा से होलिका तो जल गई, प्रहलाद बच गया । तभी से होलिका की मृत्युतथा प्रहलाद की रक्षा के सम्बन्ध में प्रति वर्ष होली जलाई जाती है और गीत गाए जाते है । यह नहीं कहा जा सकता कि इस कहानी में कितना सत्य है किन्तु यह निश्चित है कि "होली" शब्द के संबंध में आज भी लोक मानस में यही कहानी घूमती है ।

ब्रज की होली विशेष प्रसिद्ध है और वहां के गीतों में राधाकृष्ण की होली खेलने का विषय प्रायः रहता है । होली समवेत स्वर से गाया जाने वाला गीत है । इस गीत को प्रायः दो मण्डलियां गाती हैं । एक मण्डली गीत

१- प्रा० ग्र० द्वितीय खण्ड - मधुमुकुल का समर्पण ।

की पंक्ति प्रायः गाती है और दूसरी मंडली उसकी टेक दोहराती है । और कभी-कभी गीत की एक-एक पंक्तियां एक एक वर्ग कहता है और गीतों का क्रम चलता रहता है । होली गाने की इस शैली के कारण होली गीत की दो शैलियां देखी जा सकती है । कल भि पहली शैली में तो टेक की पुनरावृत्ति बार बार प्रति पंक्ति के बाद होती है और दूसरी शैली में प्रति पंक्ति के अंतिम शब्दों की पुनरावृत्ति होती है जिससे गायक गीत की लय को ठीक करता रहता है । इस प्रकार होली की दो शैलियां हैं और इन दोनों ही शैलियों के गीत भारतेन्दुयुगीन कवियों ने लिखे हैं ।

(१) प्रथम प्रकार की शैली के गीत जिसमें एक व्यक्ति समूह गीत की पंक्तियां कहता है और दूसरा व्यक्ति समूह केवल टेक दुहराया करता है ।

जमना तीर खड़े खेलत, नंद के लाल ।।टेक।।
इत ते श्याम उड़ावत केसर, रोरी रूचिर गुलाल ।
उत पिचकारी भरि भरि धावत मारत है बृजबाल ।
जमुना तीर खड़े होली खेलत नंद के लाल ।।

बाजत ढोल मृदंग झांझ डफ मंजीरा करताल ।
भरे मदन मद सब बृजबासी, गावत तान रसाल ।
जमुना तीर खड़े होली खेलत नंद के लाल ।।

इतने में प्यारी प्रीतम संग कियो अजब यह ख्याल ।
चपला सी चौंधी दै मलि गई लाल गुलालन गाल ।
जमुना तीर खड़े होली खेलत नंद के लाल[1]।।

+ + +

सखी फाग के दिन आए रे । बन उपवन सुमन सुहाये ।।टेक।।
बौरे रसाल रसीले । फूले पलास सजीले ।
गहि अब गुलाब रंगीले । चित चंचरीक ललचाये ।
सखी फाग के दिन आए रे ।।

१- प्रेमधन सर्वस्वः पृ० ६२६ ।

कल कोकिल कूक सुनाई । जनु बजत मनोज बधाई ।
मिलि पौन पराग सुहाई, बिरही बनिता बिलखाये ।
सखी फाग के दिन आए रे[1] ।।

+ + +

ए हो छबीले छैला । अब तो रंग डालन देरे ।।टेक।।

दिन फागुन सरस सुहावन, होली हरख उपावन ।
प्यारे बदरी नारायन। आवहु लगि जाहु गले रे ।
एहो छबीले छैला अब तो रंग डालन देरे[2] ।।

+ + +

सखी राधिका बनवारी रंग रंगे खेलत दोउ होरी ।।टेक।।

श्यामा सखि संग लीने, रति को छटा जनु छीने ।
घन श्याम पै बरसावैं, कर लै लै रंग पिचकारी ।
सखी राधिका बनवारी रंग रंगे खेलत दोउ होरी ।।
बदरी नारायन जू कवि देखिए यह बन आज की छबि ।
सब गुवाल मद माते, गावत कबीर औ गारी ।
सखी राधिका बनवारी रंग रंगे खेलत दोउ होरी[3] ।।

(२) दूसरी प्रकार की होली शैली की शैली वह शैली है जिसमें दो समूह मिलकर गीत गाते हैं । एक वर्ग एक पंक्ति दोहराता है दूसरा व्यक्ति दूसरी ।

बिनती सुन लीजिए मोहन मीत सुजान, हहा । हरिहोरी मैं ।
रसिक रसीले प्रान पिय जिन जन गुनिये आन । हहा हरि होरी मैं ।

१- प्रेमघन सर्वस्वः- पृ० ६२८ ।

२- वही, पृ० ६३४ ।

३- वही, पृ० ६२८-६२९ ।

चल दलित ललित कुसुमावली लतिका कुसुमित कुंज, हहा हरि होरी मैं ।
मदन महिपति सैन सम अलि अवलिन को गुंज, हहा हरि होरी मैं[1]।।

इन गलियन क्यों आवत हौ जू, लाज संक नहिं आवत हौ जू ।।
लै लै नाम हमारो गाली, बंसी बीच बजावत हौ जू ।।
छैल अनोखे आप जानि जिय, आपै जोर जनावत हौ जू ।।
लालन गुवालन बाल लिए, लखि, अलिन नवेलिन धावत हौ जू ।।
बालन के भालन गालन मैं, लाल गुलाल लगावत हौ जू ।।
पिचकारी छतियन तकि मारत, चोरी चीर भिजावत हौ जू ।।
गारी कबीर अहीरन के संग निज कुल काम नशावत हौ जू ।।
पीपी भंग रंग से रंग तन, डफ करताल, बजावत हौ जू[2]।।

इन शैलियों के गीत केवल प्रेमघन काव्य में हो ऐसी बात नहीं है वरन् इस युग के अनेक कवियों ने इन शैलियों में गीत लिखे हैं[3]।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने कुछ विशेष शैली में ही होली के गीतों की रचना न कर अनेक प्रकार की लोक शैलियों में गीत लिखे हैं । कहीं ब्रज की होली का वर्णन है तो कहीं बनारस की होली का । होली की अति प्रचलित लोक शैलियों के दो एक उदाहरण और प्रस्तुत हैं । ब्रज की होली का एक उदाहरण देखिए जिसमें प्रस्तुत है कि होली पर सारा जन समाज कितनी मस्ती से होली खेलता है, उसे घर की चिन्ता नहीं है, घर में भूंजी भांग नहीं है तो भी होली के रंग में किसी प्रकार की कमी नहीं है । महंगी पड़ रही है, पानी न बरसने के कारण सारा अन्न महंगा हो गया बजरा तक सस्ता नहीं है किंतु होली की मस्ती में कमी नहीं है । इस गीत में होली के प्रति जो लोक वर्ग का उत्साह है । वह भली प्रकार दर्शनीय है । उदाहरण प्रस्तुत है -

---

१- प्रेमघन सर्वस्वः पृ० ६११ ।

२- प्रेमघन सर्वस्वः पृ० ६१७ ।

३- भा०प्र०पृ० ३७३, ३७५, ३७७ ।

जुरि आए फाके मस्त होली होय रही ।

घर में भूंजी भांग नहीं है तौ भी न हिम्मत पस्त ।

होली होय रही ।।

महंगी परी न पानी बरसा बजरौ नाही सस्त ।

धन सब गया अकिल नहिं आई तौ भी मंगल कस्त ।

होली होय रही ।।

परबस कायर कूर आलसी अंधे पेट परस्त ।

सूझत कुछ न बसंत माहिं ये भे खराब औखस्त ।

होली होय रही[1] ।।

इसी प्रकार होली के अनेक लोक प्रचलित शैलियों का प्रेमधन ने प्रयोग किया है । भारतेन्दुयुगीन कवियों के होली गीतों में अधिकांश गीतों में राधाकृष्ण की होली तथा शृंगार सम्बन्धी प्रसंग है ।

कबीर:-

होली के दिनों में ही एक गाया जाने वाला गीत और प्रसिद्ध है जिसे कबीर कहते हैं । होली गीत जहां प्रायः समूह द्वारा गाये जाते हैं वहीं कबीर गीतों की यह एक विशेषता है कि वे प्रायः समूह द्वारा गाये न जाकर पार्टी के अगुवा व्यक्ति द्वारा गाये जाते हैं । तथा जहां होली का गीत शृंगार प्रधान गीत होता है वहीं कबीर हास्य, तथा व्यंग्य प्रधान होता है ।

कबीर में अशिष्ट तथा यौन सम्बन्धी विषय होते हैं । संभ्रान्त घराने वाले इसेसुनना भी नहीं पसंद करते । कबीर में इन अशिष्ट तत्वों तथा यौन संबंधी तत्वों का क्यों समावेश है इस पर देशी तथा विदेशी विद्वानों ने पर्याप्त विचार किया है, क्योंकि भारत में ही नहीं वरन् अनेक देशों में किसी न किसी समय इस प्रकार के अश्लील गीत गाये जाने की प्रथा है । विदेशी तथा भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रकार के गीतों की पृष्ठभूमि में विद्यमान लोक मानस का अध्ययन करते हुए बताया है कि लोक मानस का विचार है तथा यह

१- भा०ग्रं०: पृ० ३९६ ।

मनोवैज्ञानिक सत्य भी है कि प्रत्येक मनुष्य में यौन सम्बन्धी कुण्ठा विद्यमान होती है और इन कुण्ठाओं का किसी न किसी माध्यम से दूर होना आवश्यक है अतः लोक वर्ग ने इन कुण्ठाओं से मानव को मुक्त करने के लिए एक समय निश्चित कर दिया है जब वह मुक्त हो सके । क्योंकि यौन कुण्ठा विकृत होकर कभी-कभी पतन का तथा व्यभिचार आदि का कारण बन जाती है अतः उससे मुक्त होना हित के पक्ष में है । भारत में चूंकि फाग मास कामोद्दीपन का मास है । इस ऋतु में प्रायः सभी नर नारियों में काम भावना तथा शृंगारिक भावना का उदय होता है अतएव इस ऋतु में ही कबीर गाए जाने की प्रथा रक्खी गई है ।

लोक मानस इतना बुद्धिवादी नहीं है अतः वह तर्क की शरण नहीं लेता वरन् उसने इसके पीछे लोक कथा सी जोड़ दी है जिसके कारण इस गीत को गाने की प्रथा सी पड़ गई है । लोक साहित्य में एक लोक विश्वास एक कहानी के रूप में इस संबंध में ग्रथित है ।

कथा है कि "ढौंढा नामकी एक राक्षसी है जो बच्चों को पीड़ा पहुंचाती है अतः उस राक्षसी से बचने का एक उपाय है कि बालक गण प्रसन्नता पूर्वक प्रसन्न चित्त होकर लकड़ी कण्डे आदि को एक स्थान पर एकत्रित कर किसी स्थान पर फाल्गुन की पूर्णिमा में जलावे, इस अग्नि की तीन बार परिक्रमा करके गावें, हंसे और जो मन में आवे सो बके, तो इन शब्दों को सुनकर वह राक्षसी समीप न आवेगी । तभी से इस दिन बालक गण खूब शोर मचाते हुवे जो मन में आता है सो बकते हैं ।"संभवतः लोक मानस ने उसी काम भावना को जो राक्षसी रूप में सबके हृदय में निवास करती है और ऋतु विशेष में परेशान करती है, का रूप दिया है । संभवतः इसी विश्वास से इस समय कबीर गीत गा जाते हैं ।

इन गीतों को"कबीर" नाम क्यों दिया गया यह स्पष्ट नहीं है । यद्यपि कुछ लोक-वार्ताशास्त्रियों तथा विद्वानों ने इस समस्या पर विचार करते हुए कहा है कि चूंकि कबीर की अटपट बाणी समाज को प्रिय नहीं रही, कबीर अक्खड़ थे । अतः उनके प्रति अपनी अस्वीकृति प्रगट करने के लिए लोगों ने इन गीतों को कबीर नाम दिया । किन्तु यह तर्क बहुत अधिक शक्तिशाली नहीं है,

क्योंकि कबीर दास अपने जीवन काल में जितना लोक प्रिय हुए उतना शायद ही हिंदी का कोई कवि नहीं । सूर तुलसी भी नहीं । कबीर हमेशा खरे शब्दों में समाज को उसके आडम्बरों तथा बाह्याचारों के लिए गाली देते थे । यदि कबीर लोक प्रिय न होते तो न तो उनकी कोई बात सुनता औरन अपनाता । वरन् उनको अपने जीवन से भी संभवतः हाथ धोना पड़ता । किन्तु कबीर अति लोक प्रिय थे इसीलिए उनकी मृत्यु पर हिन्दू तथा मुसलमानों में अस्थि अवशेष मांगने की कथा का जन्म हुआ । कबीर के अनेक पद चूंकि लोक मानस के अनुकूल हैं, उनकी शैली लोक शैली है, अतः वे लोक गीत बन गए । अतः ऐसे लोक प्रिय कवि के नाम पर इन अशिष्ट यौन गीतों का नामकरण हुआ हो, ठीक नहीं है । वरन् इसका कारण कुछ और ही रहा होगा और उसके संबंध में भविष्य का अनुसंधान संकेत करेगा ।

भारतेन्दुयुगीन कवियों के संबंध में एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि भारतेन्दुयुगीन कवियों ने कबीर शैली में अनेक लोक गीत लिखे हैं किन्तु उनके तथा लोक प्रचलित कबीरों में केवल शैलीगत साम्य हैं, उनमें व्यंग्य है, किंतु उनमें लोक कबीरों की अशिष्टता तथा यौन तत्व नहीं है क्योंकि भारतेन्दु युगीन कवियों ने जब लोक गीतों की शैली में अपने गीत लिखने का तथा लोक साहित्य को ऊंचा उठाने का कदम उठाया था उस समय उन्होंने निश्चित किया था कि उनके लोक गीत में अशिष्टता तथा यौन तत्व नहीं होगा । यही कारण है कि भारतेन्दु युगीन कवियों के कबीरों में यद्यपि लोक शैली की झांकी अवश्य मिलती है किन्तु वे पूर्ण-तया लोक गीतों के कबीरोंका प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं ।

भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा लिखित कबीरों की संख्या अत्याधिक है सभी विषय पर कबीर लिखे गए हैं[1]। बालकृष्ण भट्ट लोक शैली में गीत

१- हिंदी प्रदीपः जि० २, सं० ७, पृ० ११-१२ ।

जि० १२, सं० ५,६,७, पृ०-५२-५६, १७-१८ ।

प्रताप लहरीः पृ० १३८ ।

सारन सरोजः सं० १, सं० ७ ।

गोधर्म प्रकाशः भाग ३, अंक ३ ।

लिखने के पक्षपाती थे । उन्होंने अनेक लोक शैलियों में गीत लिखे हैं । कबीर की शैली में भी पर्याप्त लिखा है । भट्ट जी के कबीर बहुत कुछ सच्चे कबीरों का प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि उन्होंने अपने मंडल के पूर्व कवियों के उद्देश्यों को बहुत अधिक नहीं अपनाया है कि लोक गीतों का उनकी आत्मा को निकालकर उनका ढांचा ही ~~बदल~~ बदल दें । उन्होंने यद्यपि यौनतत्व को अपने कबीर में भी नहीं प्रविष्ट होने दिया है किन्तु साथ ही साथ प्रेमघन के कबीरों के समान बहुत कुछ रूप बदला भी नहीं है । बालकृष्ण भट्ट ने एक स्थान पर "कबीर"लिखने के पूर्व,"कबीर लिखने की भूमिका" लिखी है जिसका उद्धरण यहां असंगत न होगा । क्योंकि वह बालकृष्ण भट्ट की कबीरों की शैली पर प्रकाश डालता है -

" ये दिन होली के हैं इसमें क्या बालक क्या युवा क्या वृद्ध सभी बौरा उठते हैं और उस बौराहट में कहनी अनकहनी का कुछ विचार नहीं रखते जो कुछ खुराफात मन में आता है कह सुन डालते हैं । इस दन्त कथा के अनुसार हमें ऐसे निरे बसन्त को जिन्हें गाना बजाना कुछ आता ही नहीं,न इस अकाल पीड़ित कराल समय में गाना बजाना किसी को सुहाएगा कुछ खुराफ़ात बकना ही चाहिए । इससे हम अपने एक बड़े सहायक मित्र को गढन्त इन कबीरों का पाठ कर डालते हैं ।"

"अथास्य कबीर कन्छन्दमः दरिद्रादेवता निष्किन्चिता बीजं कौपीन धारी कंकालावशिष्ट ऋषिः रोदन शक्तिः परिहास निन्दा परिवाद फल प्राप्तये पाठे विनियोगः । असभ्यवाक् भक्तये नमः मुखेःजड़ता बीजाय नमः हृदिः, स्वार्थ साधन महामंत्रः पपादयोः निन्दा तन्द्रा देवते नेत्रयोः प्रत्यक्ष दुर्गत सहन हुंफट स्वाहा"[1]

इस भूमिका के उपरान्त भट्ट जी कबीर लिखते हैं । शैली देखने के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

मनुष्य लपेटी योगिनी, नित उठ करै सिंगार,
योगी के मन तबौ न भावै देखि डरै संसार,
हाय नहिं कतौ मरन है दुनिया में ।।

\+ \+ \+

एक महा अघोरी देख के मोरे लागत जाड़,
मोरे लागत जाड़ भगत जी मोरे लागत जाड़,
मास रकत सब चूस के अब लड़ा चिचोरे हाड़,
हाय हाय यह बिपति निगोड़ी गहि लागी,
यह बिपति निगोड़ी गहि लागी ।।

+ + +

सतवन्तिन का सत छूटगा कसबिन होइ गइ रांड,
काम काज में सुस्ती फैले सजे सजीले सांड,
सखी अब साज सजावट काहे की ।।१।।

उपर्युक्त कबीरों की शैली पूर्ण तथा लोक शैली ही है । इसके अतिरिक्त अनेक कबीर है जिनकें व्यंगय की दृष्टि प्रधान है । अनेक गीत है जिनमें महंगी पर व्यंगय किया गया है, किसी में भारतीयों के न्याय के लंदन में होने पर व्यंग किया गया है तो कहीं बंगले में कलक्टर केसोने, दीन दुखियों के कष्ट तथा पटवारी के जबरदस्ती टिकट लेने को विषय बनाया गया है, तो कहीं डाका पड़ने का उल्लेख है जिसमें बनियों के रोने तथा डाकू के प्रसन्न होने का वर्णन है, तो कहीं देश के हाकिमों तथा अधिकारियों को उनके गुलत कार्य के प्रति सचेष्ट ह करने की ही भावना है । इस व्यंग दृष्टि वाले कबीरों के उदाहरण भी प्रस्तुत हैंः-

कबीर सुन लो भक्तों मोर कबीर,
फागुन मस्त महीना पहले होत रहा गुलजार ।
अब तो बजै दलिद्दर डंका ।
दिन दिन हो लंकार - भला नहिं ताकत रही जवानी में ।।

+ + +

पहिले सूखा फिर पनकलवा पीछे पड़ा दुकाला,
बारा अजुर नाज भा महंगा कौन करै प्रतिपाला
भला यह रैयत बिना गुसैंया की ।।

+ + +

बिना राज के दुनिया सूनी बिन मांझी की नाव,
हिंदस्वामिनी लंदन बैठी कैसे होय निभाव,
भला जिसका जी चाहै सो लूटै ।

\+ \+ \+

क्या है चीज़ हुकूमत, एक ने किया सवाल,
ज्वाब सहल है महसूलों से रैयत होय बेहाल,
भला नित होय रिहाई चोरों की ।

\+ \+ \+

रंडी बाजी पैकर लागत अवगुन मिटत हजार,
राज कोश की होत भलाई मिटत दुष्ट व्यवहार,
भला कहां ऐसी मत के हाकिम हैं ।

\+ \+ \+

ब्राह्मन ह्वै के नाच करावै उन पर कड़ा मसूल,
और जाति से उससे घटकर करो न्याव अनुकूल,
भला तब होय तरक्की रैयत की ।।

प्रेमघन आदि कवियों ने भी कबीर की शैली में गीत लिखे हैं उनमें भी कबीर की ही टेकें "भ्ररर रर रर हां" आदि प्राप्त है किन्तु बालकृष्ण भट्ट तथा प्रेमघन के कबीरों में विषयगत अन्तर है । प्रेमघन के क कबीर स्वदेश दशा से संबंधित कबीर हैं उनमें वह हास्य तथा उन्मुक्तता नहीं मिलती जो लोक वर्ग में प्रचलित कबीरों की है । यद्यपि शैली की दृष्टि से प्रेमघन के कबीर उसी छंद में लिखे गये हैं । कबीर छंद तथा कबीर सम्बन्धी अन्य विशेषताओं का विस्तार से परिचय "लोक संगीतात्मक तत्व" संबंधी अध्याय में प्रस्तुत है ।

बारहमासा:-

बारहमासा लोक गीतों का वह प्रकार है जिसमें किसी विरहिणी के वर्ष के प्रत्येक मास में अनुभूत दुखों तथा मनोवेदनाओं की विवृति पाई जाती है । चूंकि इनमें वर्ष के बारहों मास में अनुभूत दुखों का वर्णन होता है इसलिए इन्हें बारहमासा कहा गया है । इन गीतों की परंपरा प्राचीन है ।

जायसी कृत पद्मावत में नागमती का विरह वर्णन बारहमासे में वर्णित है । संभवतः जायसी को लोक में प्रचलित इस बारहमासी शैली ने इतना प्रभावित किया होगा कि जायसी ने उनकी मधुरता से अभिभूत होकर अपने ग्रंथ में नागमती का वियोग वर्णन इसी शैली में किया । ब्रज,अवधी,मैथिली,मालवी,भोजपुरी सभी में बारहमासा लिखने की प्रथा है ।

बारहमासा की उत्पत्ति कहां से हुई इसमें विद्वानों में मतभेद है । सुकुमार सेन आदि का विचार है कि बारहमासी परंपरा कालिदास के ऋतु संहार से प्रारम्भ होती है और इसी का प्रभाव आगे के बारहमासा की शैलियों पर पड़ा है किन्तु आशुतोष मुकर्जी[1] आदि विद्वान बारहमासा की उत्पत्ति लोक-गीतों से मानते हैं । वस्तुतः बारहमासा की लोक गीतों से उत्पत्ति मानना अधिक संगत है क्योंकि किसी भी व्यक्ति के मन में इस प्रकार की शैली का जो अकृत्रिम है और जिसमें क्रम से प्रत्येक मास का वर्णन है अधिक स्वाभाविक है । बारह मासा की लोक गीतों में उत्पत्ति हुई यह अधिकांश विद्वान मानते हैं । बारहमासा की शैली किस प्रकार लोक वर्ग से शिष्ट वर्ग में आगई इस पर लेखकों ने विस्तार से विचार किया है[2]।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने अन्य लोक शैलियों के गीतों की अपेक्षा बारहमासी शैली में बहुत कम गीत लिखे हैं । किन्तु फिर भी जो इने गिने बारहमासे लिखे हैं वे लोक शैलियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं । भारतेन्दु ने

१- Bengali Lok Sahitya- 2nd Edition, Calcutta p.62.

2. The conclusion we suggest should be drawn is that the Baramasi originated in folk poetry; that owing to its intrinsic attractiveness and its great popularity in Bengal, it found a place again and again in the classical literature, being of course always reshaped and remoulded by various poets according to their poetic aims, imagination and creative ability; at the same time, however it followed its own course of development in folk poety itself, being influenced in its turn by those forms and types created in the sphere of art and literature, especially in Vaishnava poetry- Folklore, vol.III No.4 p.163.

दो बारहमासे लिखे हैं जो आषाढ़ के प्रारम्भ होते हैं और जिनमें विरहिणी पति के वियोग में अपनी स्थिति बताती है । एक बारहमासे की टेक "बिनु श्याम सुन्दर सेज सूनी देख के व्याकुल भई" तथा दूसरे की टेक "कैसे रैन कटे बिनु पिय के नींद नहीं आती" है और इन टेकों की पुनरावृत्ति प्रत्येक मास की दशा बतलाने के उपरान्त होती है । अवधेय है कि दोनों बारहमासों में बहुत कुछ एक ही भावों की पुनरावृत्ति विभिन्न शब्दों में होती है ।

असाढ़ के विषय में अपनी मनोदशा का वर्णन करते हुए विरहिणी कहती है कि पिय विदेश गए तब से मनभावना उन्होंने कोई संदेश नहीं भेजा । इधर असाढ़ मास लग गया है । वियोग की वर्षा होना प्रारम्भ हो गयी है । बादल घुमड़ रहे हैं । एक नई विपत्ति उठ खड़ी हुई है । बिना श्याम के सूनी सुन्दर सेज देखकर हृदय व्याकुल हो उठता है । दूसरे बारहमासे में भी आषाढ़ का वर्णन बहुत कुछ इसी प्रकार का है । नायिका कहती है कि असाढ़ मास में बदरा उमड़ घुमड़ कर छा रहे हैं वर्षा ऋतु आ गयी है । घनघोर घटा देखकर मोर सोर कर रहे हैं, पपीहे पीपी की रट लगा रहे हैं । काम का आवेग बढ़ रहा है जिसे देखकर मेरी तबीयत घबरा रही है । बिना प्रियतम के किस प्रकार रात कटे नींद नहीं आती[1]।

इसी प्रकार सावन दुखित करने वाला, दामिनि तथा जुगनू का चमकना ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि वे मुझे दुखी समझकर आंख तरेर कर देख रहे हैं, पपिहा प्रिय का नाम रट रट कर कामाग्नि उद्दीप्त करने वाला प्रतीत होता है । क्वार मास में विरहिणी को स्मरण हो आता है कि सब मिलकर सांझी खेल रहे हैं, पूर्ण चांदनी में प्रिय के गले में हाथ डाले स्त्रियां घूम रही हैं । कार्तिक में याद आता है कि पवित्र कातिक में सारी स्त्रियां नहाकर दीप जलाती है । अगहन के संबंध में उसे जो सबके मन को भाने वाला मौसम है जब बड़ा जोर का पाला पड़ रहा है, उसे बड़ा कष्ट कर लगता है क्योंकि सब स्त्रियां तो शाल-दुशाला ओढ़ कर अपने प्रियतम से लपट करसो रही हैं और मैं अकेले घर में बिना प्रिय के तड़प रही हूं । एक रात एक युग सी प्रतीत हो रही है ।

१- भा०ग्रा०- पृ० ५०७-५०९, ५२६-५२८ ।

रात्रि किस प्रकार कटे । बिना पिय के नींद नहीं आती । इसी प्रकार नायिका प्रत्येक मास में अपनी वियोग संबंधी मनोदशाओं का वर्णन करती है[१]।

इन दोनों बारहमासों की शैली पूर्णतया लोक शैली है और इनमें वर्णित भाव भी लोक मानस की प्रकृति के अनुरूप ही अति साधारण है उनके भाव आरोपित नहीं प्रतीत होते । प्रत्येक मास के वर्णन के बाद टेक की पुनरावृत्ति है जो लोक शैली के पूर्णतया अनुरूप हैं और इन टेकों की पुनरावृत्ति से भाव का प्रभाव गम्भीरतर होता है । भाषा भी इनकी शैली के अनुरूप ही लोक भाषा है । दोनों बारहमासों के कुछ अंश शैली के लिए प्रस्तुत हैं -

सावन सुहावन दुख बढ़ावन गरजि घन घन घेरहीं ।
दामिनि दमकि जुगनूं चमकि मोहिं दुखी जानि तरेरहीं ।।
पपिहा पिया को नाम रटि रटि काम अग्नि जरावई ।
बिन श्याम सुंदर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।।
भदौं अंधेरी रात टपकैं पात पर पानी बजै ।
हरि काम के भय सुंदरी मिलि नाह सो सेजिया सजै ।।
मैं भींजि मारग देखि पिय को रोय तजि आसा दई ।
बिनु श्याम सुन्दर सेज सूनी देख के व्याकुल भई ।।[२]

+ + +

फागुन खेलैं फाग रंग गावैं मीठी बोली ।
चलै रंग की पिचकारी उड़ै अबिर भोली ।।
देखि मेरे हिय लागी होली ।
भयौ काम को जोर दहकि गई यौबन से चोली ।।
जाय यह कोई समुझाती ।
कैसे रैन कटे बिनु पिय के नींद नहीं आती ।।
चैत चांदनी देख भया दुख सखी मेरा दूना ।
कामदेव ने अंग अंग मेरा जला जला भूना ।।

१- भा०प्र० पृ० ५०७-५०९, ५२६-५२८ ।

२- वही, पृ० ५०८ ।

पिया बिन अब मैं जीऊँ ना ।
कहां जाऊँ क्या करूं दिखाता सारा जग सूना ।।
धरनि मैं मैं समाय जाती ।
कैसे रैन कटे बिनु पिय के नींद नहीं आती[1] ।।

बारहमासे की लोक शैली गत एक और विशेषता उल्लेखनीय है । बारहमासे में जैसा ऊपर कहा जा चुका है साल के बारहौ महीने में विरहिणी की मनोदशाओं का वर्णन होता है किन्तु इनमें शैलीगत विशेषता यह है कि बारहौं मासों के वर्णन के उपरान्त अंत में एक और पद उसी बारहमासा की शैली में होता है जिसमें किसी महीने का वर्णन नहीं होता है वरन् समाहार स्वरूप "बारहमासा" शब्द का उल्लेख मात्र होता है जो बारहमासे के समाप्त होने का सूचक समझना चाहिए । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी लोक शैली के अनुसार एक इस परम्परा का निर्वाह किया है और दोनों ही बारहमासों में प्रत्येक मास का वर्णन करने के उपरान्त समाहार स्वरूप एक पद और लिखा है , उदाहरणार्थ के लिए पंक्तियां प्रस्तुत हैं -

बारहमास पिया बिन खोए रोइ रोइ हारे ।
बन बन पात पात करि ढूंढ़ा मिले नहीं प्यारे ।
मेरे प्रानों के रखवारे ।
हरिचंद मुखड़ा दिखलाओ आंखों के तारे ।
पीर अब सही नहीं जाती ।
कैसे रैन कटे पिय बिनु नींद नहीं आती[2] ।

+ + +

इमि खोजि बारहमास पिय को हारि भामिनि भौनही ।
धरि रूप जोगिनि को रही अवलम्ब करि इक मौनही ।
हरिचंद देख्यौ जगत को सब एक पिय मोहन मई ।
बिनु स्याम सुन्दर सेज सूनी देखि के व्याकुल भई[3] ।

१- भा०ग्रं० पृ० ५२८ । २- वही , पृ० ५२९ ।
३- वही , पृ० ५०९ ।

लावनी :-

लावनी भी लोक गीतों की एक अति प्रचलित शैली है । इस शैली में भारतेन्दु युगीन कवियों ने गीत भी पर्याप्त संख्या में लिखे हैं[1]। संगीतराग कल्पद्रुम में लावणी एक उपराग है जो देशी राग के अन्तर्गत है माना गया है, और देशी राग की परिभाषा देते हुए कहा गया है - "देशे देशे भिन्न नाम तद्देशी गानमुच्यते" अर्थात् देश देश के गाए जाने वाले भिन्न राग देशी कहे जाते हैं । स्पष्ट है कि यह राग किसी लोक गीत से विकसित हुआ रहा होगा । अनुमान है कि इसका सम्बन्ध प्राचीन काल में लावनी देश अर्थात् लावाणक देश से था जो मगध देश के समीप था और लावणक होने के कारण ही इसका नाम लावणी पड़ा जो विकसित होते होते लावणी से लावनी बन गया । इस प्रकार यह पूर्णतया प्रारम्भ में एक लोक गीत ही था जिसकी राग को या गाने की तर्ज को लावनी राग कहा जाता था बाद में इसको तानसेन ने अन्य राग-रागनियों के समान शास्त्रीयता दी ।

मराठी में लावनी के लिए ही लावणी शब्द है जो लोक काव्य का एक रूप माना जाता है और जिसमें मुख्यरूप से शृंगार रस सम्बन्धी गीत ही हैं । अच्युत बलवन्त कोल्हकर ने लावणी की परिभाषा देते हुए लिखा है - "कि जो गीत हृदय पर ऐसी छाप लगा दे कि उसको भुलाया न जा सके वह लावणी । व्युत्पत्ति कोष में लावणी का अर्थ ग्राम्य प्रेमगीत दिया है । लावणी की उत्पत्ति पर अनेक लोगों ने विचार किया है और अपनी अपनी दृष्टि से

१- गोधर्म प्रकाश - भाग १, सं० ३, भा० २, सं० ४, भा० ३ सं० ३, भा० २, सं० १, ३।
भारतोद्धारक - भाग १, सं० २ ।
हिन्दी प्रदीप- जि० ११, सं० २,३,४, पृ० १७ ।
हिन्दी प्रदीप- जि० १२, सं० २, पृ० ६ ।
ब्राह्मण - खं० १, सं० २ ।
गोधर्म ० - भाग २, सं० ३,४ ।
वही - भाग १, सं० ३ ।

निष्कर्ष दिए हैं, किन्तु वे निष्कर्ष दृढ़ प्रमाणों पर आधृत न होने के कारण ग्राह्य नहीं हो सकते । सबसे संगत प्रमाण रागकल्पद्रुम का ही प्रतीत होता है कि लावाणक प्रदेश से सम्बन्धित होने के कारण इसका नाम लावनी पड़ा होगा ।

लावनियां अनेक विषयों पर लिखी गई हैं, कहीं यह लावनी गो संकट निवारण के लिए लिखी गई है तो कहीं समसामयिक परिस्थितियों का इनमें वर्णन है किन्तु अधिकांश लावनियां प्रेम या शृंगार संबंधी ही हैं । भारतेन्दु युगीन कवियों में अधिकांश लेखकों ने लावनियां लिखी हैं । भारतेन्दु ने उर्दू, संस्कृत तथा ब्रज का पुट लिए हुए खड़ी बोली तीनों में ही लावनियां लिखी है । प्रताप नारायण मिश्र ने भी उपरोक्त तीनों ही भाषाओं में लावनियां लिखी हैं । दोनों ही कवियों की रचनाओं में से उदाहरण प्रस्तुत है -

<u>संस्कृत:</u>

किमप्यन्यन्तु न याचेऽहम । देहि मे नाथ ! दृढ़ स्नेहम् ।।
वैभवस्याकान्छा नैवास्ति । ममत्वीप्सिता प्रेमभिलास्ति ।।
नमोक्षस्याप्यमृत तृष्णास्ति । प्रेमजाले मतिः प्रसन्नास्ति।।
दृढ़म्बध्नीश्व प्रार्थयेहम ।   देहि में नाथ० ।।१।।

गमय दूरे शुष्कज्ञानम् ।   कुरूत प्रेमप्रमाददानं ।।
वतस्त्यक्त्वा लौकिक मानम् । करिष्ये प्रेमासव पानं ।।
येन शुद्धत्व धमन्देहं ।   देहि में नाथ० ।।२।।[2]

+   +   +

कुंजं कुंजं सखि सत्वरं
चल चल दयितः प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरं
सर्वा अपि संगताः
नो दृष्टवा त्वां ता सु प्रियसखिहरिणा हं प्रेषिता
मानं त्यज बल्लभे

१- सम्मेलन पत्रिका - भारतेन्दु अंक सं० २००८, पृ० ३०३ ३१ ।
२- प्रताप लहरी - पृ० ८४ ।

नास्ति श्री हरि सदृशो दयितो वच्मि इदं ते शुभे

गतिर्भिन्ना

परिधेहि निचोलं लघु

जायते विलम्बो बहु

सुंदरि त्वरां त्वं कुरू । श्री हरिमान्से वृणु

चल चल शीघ्रं नोचेत्सर्वं निष्फलिंहहि सुंदरं।[१]

ब्रजभाषा:-

रसहू अनरस मैं एक सरिस रस राखै ।

सोइ सरस हृदय बस प्रेम सुधारस चाखै ।

चित ते बिसरावे चिन्ता दुहु लोकन की।

सब शंक तजै निज जीवन और मरन की।

समुझै इकही सी प्रीति बैर जग जन की।

मन भावन पै सब करै भावना मन की ।

मोरे भावन हू और न कछु अभिलाषी ।।

सोइ सरस०।।[२]

\+ \+ \+

संजोग साज सिंगार न तुव बिनु भावै ।

तन चंद चांदनी औरहु बिरह जरावै ।

जल चंदन माला फूल न कछु सुहावै ।

तुम आगम बिनु करमींजि मींजि पछतावै ।

भई रैन बैन बिनु डसन मदन बिष व्याली ।

मति करन बिलंब उठि चलु बेगहिं सुनु आली[३]।।

१- भा०ग्र०, पृ० ६६६ ।

२- प्रताप लहरी, पृ०८७ ।

३- भा०ग्र०- पृ० २९३ ।

उर्दू:-

तुम्हारे बंदे बने तुम्हारी बरसों ख़िदमतगारी की ।
तुम्हारी ख़ातिर हमने सब तरह से अपनी ख्वारी की ।
बेइज़्ज़त बेदीन बेहया होके नाज़बरदारी की ।
तिसपर तुमने वाह ! क्या शर्त अदा की यारी की ।
अरे ज़ालिमों ! तुमसे बेवफ़ाई के सिवा कुछ हो तो सही ।
- दिल में तुम्हारे०[1] ।।

+ + +

बिना उसके जल्वा के दिखाती कोई परी या हूर नहीं ।
सिवा यार के, दूसरे का उस दुनिया में नूर नहीं ।
जहां में देखो जिसे ख़ूबरू वहां हुस्न उसका समझो ।
झलक उसी की सब माशूकों में यारो मानो ।
जहां कोई खुशगुल मिले तुम वहां उसी का बोल सुनो ।
ज़ुल्फ़ों को भी उसी का पेंच समझकर जाके फंसो ।
नशीली आंखें वहां नहीं हैं जहां मेरा मख़मूर नहीं ।
-सिवा यार के०[2] ।।

खड़ी बोली:-

झूठे झगड़ों से मेरा पिण्ड छुड़ाओ ।
मुझको प्रभु अपना सच्चा दास बनाओ ।
है काम क्रोध मद लोभ ने मुझको घेरा ।
लूटे ही लेते हैं विवेक का डेरा ।
यद्यपि बल साहस करता हूं बहु तेरा ।
पर हाय ! हाय ! कुछ बस नहीं चलता है मेरा ।
मरता हूं मरता हूं बस धाओ धाओ ।
- मुझको०[3] ।

१- प्रताप लहरी, पृ० ७९ ।   २- भा०प्र०-,पृ० १९४ ।
३- प्रताप लहरी, पृ० ८५ ।

हमने जिसके हित लोक लाज सब छोड़ी ।
सब छोड़ रहे एक प्रीति उसी से जोड़ी ।
रही लोक वेद घर बाहर से मुंह मोड़ी ।
पर उन नहिं मानी सो तिनका सी तोड़ी ।
इक हाथ लगी मेरे जग बीच हंसाई ।
उस निरमोही की प्रीति काम नहिं आई ।
करि निठुर श्याम सों नेह सबी पछताई[1]।।

इस प्रकार विभिन्न भाषाओं में लावनियों की रचना करने से यह बात स्वतः सिद्ध है कि लावनी का उस समय बहुत अधिक प्रचलन रहा होगा जिससे कवियों ने लावनी संबंधी इतने प्रयोग किए ।

लावनी के विषय भारतेन्दु युगीन कवियों ने विविध रक्खे हैं । भारतेन्दु युग में गौरक्षा आन्दोलन बहुत जोरों से चल रहा था । भारतवासी गोवध रोकने का यथाशक्ति प्रयास कर रहे थे । कुछ गो प्रेमियों ने गोधर्म प्रकाश आदि विभिन्न पत्रिकाएं ही निकालीं, जिनमें गो की महत्ता सिद्ध कर उसकी रक्षा के लिए निवेदन किया । गोसंकट पर, गोदशा पर लावनियां भी लिखी गईं जिनमें से एक दो उदाहरण प्रस्तुत हैं-

बां बां करि त्रिन दांबि दांत सो दुखित पुकारति गाई है ।
बेगि बचावो दुहाई है हे नाथ दुहाई है ।
एक दिना वह रह्यो मोहि तुम जमुना तीर चरावतहे ।
केवल ममहित जगत्पति ते गोपाल कहावतहे ।
मम तनु धारिनि धरिनि सदन सुनि विविध रूप धरि धावतहे ।
हा ! करुनाकर ! आज कहां, पिछली पिरीति बिसराई है ।
बेगि बचावो दुहाई है हे नाथ दुहाई है[2]।

१- भा०ग्र०: पृ० १९५ ।
२- प्रताप लहरी: पृ० २७ ।

इसी प्रकार भारतेंदु युगीन कवियों ने गौरक्षा संबंधी अनेक लावनियां लिखी हैं[1] । किंतु अधिकांश लावनियां प्रेम संबंधी ही है । शृंगार रस राज रहा है और लावनी में ही नहीं वरन अधिकांश शैलियों में शृंगार रस पर जितने गीत लिखे गए हैं किसी पर नहीं । लावनी में शृंगार बहुलता के संबंध में प्रसिद्ध लावनी बाज स्वामी नारायणानंद सरस्वती भी यही लिखते हैं-"शृंगार रस कविता की जान है ऐसा कहा जाता है और प्रत्येक कवि या शायर शृंगार रस वर्णन में ही ख्याति प्राप्त करता रहा है । इसलिए "लावनी" में भी शृंगार रस का प्राधान्य रहा और हिंदी के नायिका भेद आदि विषयों पर विशद रूप से लिखा गया है । साथ ही प्रेम या इश्क का वर्णन इश्क मजाज़ी के रूप में इतना हुआ कि आबाल वृद्ध "लैलामजनू", "हीरारांझा" "यूसुफ़ जुलैखा", "शीरीं फरिहाद" आदि के किस्सों से भली भांति परिचित ही नहीं हुए बल्कि इश्क के रंग में अपने को शराबोर पाने लगे और सूफी शायरों के उद्योग से इश्क हकीकी की तरफ भी बढ़े और महात्मा सुकरात मंसूर शम्शतबरेज़ आदि पर बलि बलि जाने लगे"[2] ।

लावनी गीतों की विशेषता है कि यह केवल हिंदी में ही नहीं उर्दू में भी भारतेंदु युगीन कवियों ने लिखी है और इस पर भारतीय संस्कृति के साथ साथ मुस्लिम संस्कृति का भी प्रभाव पड़ा है । इस प्रभाव का कारण बताते हुए नारायणानंदजी का कहना है कि लावनी मुख्यतः फकीरों का गाना है इसको गाने और चलाने वाले हिंदू तथा मुसलमान दोनों ही जाति के फकीर थे दोनो ने ही इसमें रचना की । अतः इसमें भारतीय संस्कृति के साथ ही साथ मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव भी पड़ा । लावनी की लोक संगीत की दृष्टि से क्या विशेषता है इसका विवेचन लोक संगीत संबंधी अध्याय में है ।

आल्हा-

आल्हा वर्षा ऋतु में पुरुषों द्वारा ढोल तथा मृदंग पर गाया जाने वाला अति प्रचलित लोकगीत है जिसमें आल्हा ऊदल के शौर्य का वर्णन

१- गोधर्म प्रकाश भा० १, सं० ३, १८८६ ई०, भा० २, सं० ४, भा० ३, सं० ३ ।

२- लावनी का इतिहासः नारायणानंद सरस्वती पृ० २ ।

रहता है । वर्षा ऋतु में ग्राम ग्राम में ढोल तथा मृदंग पर गाए जाते हुए आल्हा की तानें सुनी जा सकती हैं । पर शैली वीर रस तथा ओजप्रधान शैली मानी जाती है और इस शैली में भारतेंदु युगीन कवियों ने अनेक गीत लिखे हैं । मुख्यरूप से यह वीर रस का गीत है और इसमें आल्हा ऊदल के शौर्य का ही वर्णन रहता है किंतु बाद में इस शैली ने लोक में इतना प्रचलन पाया कि अनेक प्रकार के भाव इसी शैली में लिखे जाने लगे । आल्हा शैली में सबसे पहले कवि जगनिक ने आल्हखंड लिखा था । जगनिक महोबा तथा कालिंजर के शासक परमाल के आश्रित कवि थे, यद्यपि जगनिक कृत इस आल्हखंड की कोई प्रति अब उपलब्ध नहीं है और इसके साहित्यिक रूप न रहने पर भी जगनिक की यह आल्हखंड की शैली आज तक चली आ रही है और आज भी आल्हा नाम से ही जानी जाती है । इसकी शैली गायकों की ही शैली है- इसलिए इसमें अनेक पुनरावृत्तियां हैं । युद्ध के एक ही प्रकार के वर्णन हैं पूर्वापर संबंध के अभाव हैं । शैथिल्य भी कथा की दृष्टि से बहुत है । अतिशयोक्ति पूर्ण अनेक प्रसंग हैं ।

भारतेंदु युगीन कवियों ने आल्हा शैली के अनेक गीत लिखे हैं । प्रताप नारायण मिश्र ने भी आल्हा छंद में कानपुर माहात्म्य लिखा है जिसमें लोक प्रवृत्ति के अनुकूल ही अनेक देवीदेवताओं, वीर पैगम्बरों का उल्लेख है, लोक शब्दावली का प्रयोग है तथा आल्हाखंड के समान ही लोक शैली का अनुसरण किया गया है ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि आल्हा में पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति बहुत मिलती है । अवधेय है कि आल्हा की पुनरावृत्ति कजली होली चैती पूर्वी आदि की पुनरावृत्ति के समान नहीं होती है वरन् इसकी पुनरावृत्ति एक विशेष प्रकार की होती है । उदाहरणार्थ जहां अन्य गीतों में रामा हरी, सांवलिया हो आदि की पुनरावृत्ति होती है, यहां एक विशेष कथन की- ज्वानो सुनियो कान लगाय, यह नासंका कोउ करियो, यह सबधरती का प्रभाव आदि की पुनरावृत्ति होती है । जहां किसी महत्वपूर्ण बात कही

जाती है वहां ज्वानौ सुनियौ कान लगाय की पुनरावृत्ति होती है और जहां लोक गायक को प्रसंग समाप्त करना होता है और नई बात कहनी होती है वहां भी यहां की बातैं हियैंन रहिगैं से बात समाप्त कर ज्वानौ सुनियौ कान लगाय कह कर नई बात प्रारंभ की जाती है । उदाहरणार्थ ऊपर गौवध निवारण संबंधी प्रसंग के उपरांत कहा गया है अंत में-

> खबरि फैलि गई यह कम्पू मां ज्वानौ सुनियौ कान लगाय
> अब न गैया मारी जैहैं करिहैं लाला लोग उपाय
> कोउ कहैं भैया यह न ह्वैहै जालिम राज मल्च्छिन बयार
> कोउ कहै यहि मां शंका नाहीं ईश्वर रखिहै धर्म हमार
> कोउ कहै गोरा केहिका द्वै हैं कोउ कहै राम रचै सो होय
> ऐसे जै मुंह तै बातैं रहि हांकें अपनि अपनि सब कोय[1]।

इसी प्रकार अब उपरोक्त गौ संबंधी प्रसंग को समाप्त कर अब दूसरा प्रसंग शुरू करना है तो उपरोक्त प्रसंग की समाप्ति तथा नए प्रसंग का आरंभ हियां की बातैं हियमैं रहिगै से ही प्रारम्भ होता है-

> हियां की बातैं हियमैं रहिगै अब कछुसुनौ सभा के हाल
> लाला फूल चंद औ मक्खन लाल की कोठी कै सब बात[2] ।

इसी प्रकार किसी महत्वपूर्ण प्रसंग के पहले ज्वानौ सुनियौं कान लगाय तथा विषय समाप्त करने के लिए हियां की बातैं हियमैं रहिगै की पुनरुक्ति अनेक स्थलों पर होती है[3] ।

इसी प्रकार जहां किसी अघटित घटना का वर्णन करना होता है या किसी व्यक्ति से कोई दोष हो जाता है वहां लोक शैली तथा लोक

१- प्रतापलहरी पृ०२१३ ।

२- वही पृ० २१३

३- वही पृ० २०६,२१२,२१३,२१५,२१६,२१७ ।

मानस उसको दोषी न मानकर यही कहता है कि यह सब धरती का प्रभाव है । यहां इस प्रवृत्ति के मूल में वही लोक अभिप्राय काम कर रहा है जिसके अनुसार लोकमानस किसी कार्य में अपने को कारण न मानकर अदृश्य सत्ता को ही कारण मान लेता है । यह लोक मानस की एक प्रमुख विशेषता है । आल्हा में भी यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है । उदाहरण के लिए आल्हा की ही पंक्तियां प्रस्तुत है । -

तहां न सूझी यह बरमा को हुवै के इन्द्रिन के बस मांहि ।
सगी कन्नियां पर मन डोलो तन को हरै पाप को नाहिं ।।
दोष लगावै जो देवुतन को तेहि पापी को जन्म नशाय ।
मोरे मन मां यह आवतु है यह सब धरती को परभाव[1]।।

पौराणिक कथा है कि ब्रह्मा अपनी पुत्री संध्या पर कामासक्त हो गए थे, किंतु लोक मानस इसमें ब्रह्मा को दोषी नहीं मानता वह इस को धरती का ही प्रभाव मानता है । और साथ ही यह कहता कि देवताओं को जो दोष लगाता है वह पापी है । इसी प्रकार जयचंद का देशद्रोह जिसने पृथ्वीराज से विद्रोह कर मुसलमानों को बुलाकर भारत की नाक कटायी उसमें भी लोक मानस जयचंद को दोष नहीं देता वह यही कहता है कि यह सब धरती का प्रभाव है-

राजा कनौजी कनउज वाले उपजे हम हिन्दुन के काल ।।
जयचंद तुरकन को बुलवायो करिकै बैर पियौरा साथ ।।
नास कराय दओ भारत को सिगरो धरम मुसल्लन हाथ ।।
दोष कन्नौजी को का कहिए का जसु करो पियौरा राय ।
कनउज दूर नहीं कम्पू ते यह सब धरती को प्रभाव ।।

इस प्रकार "धरती को परभाव" की उक्ति बहुत बार आल्हा में हुई है[2] ।

इसी प्रकार जहां किसी स्थान की, वस्तु की या व्यक्ति की विशेषताएं बतानी होती है वहां वह विशेषताएं बतलाकर जब उसकी

१- प्रतापलहरी पृ० २०५ ।

२- वही, पृ० २०५,२०७,२०६,२१०, २२० ।

ज्ञात कराना चाहता है या किसी में गुण या दोष की स्थिति सिद्ध करना चाहता है तो वे वह विविध दोष या गुण गिनाकर नहीं, वरन, थोड़े से गुण या दोष गिनाकर "कहं लौं बरनौं" द्वारा काम बना लेता है । उदाहरणार्थ उसे वीरों का वर्णन करना है तो यहां न वह वीरों की संख्या बताता है न गुण, सीधे कहता है-

कहँ लौ बरणौं मैं बीरन का काँपै नाम सुनै संसार
नबरि उठावै जहं कोउ एतुई तीनिउ लोक होइ गरिछार[1] ।

इस प्रकार यह प्रवृत्ति आल्हा में अनेक स्थलों पर देखी जाती है[2] ।

इसी प्रकार जहां किसी द्वारा संकट की घोषणा होती है या किसी युद्ध की घोषणा होती है वहां लोक मानस जनवर्ग की स्थिति को "इतना कहते धरती परिगा" द्वारा स्पष्ट करता है । प्रसंग है कि लोगों ने प्रयास किया कि राज्य में गोवध बंद हो किंतु कैम्प से गोरों की आज्ञा आई कि यदि कहीं गोरक्षिणी (सभा) खोली गई तो राज्य विनष्ट कर दिया जाएगा । इतना सुनकर राजा तथा प्रजा सभी को धक्का लगा-

पै कम्पू के मनइन मिलिकै उलटी रीति चलाई हाय
गउ रक्षिनी जो कहुं ह्वैगी तुम्हरो राज्य भंग ह्वै जाय
इतना कहतै धरती परिगा राजा गये सनाका खाय
मनमां स्वार्थ मनै बिसूरै हाय अब करिहै कौन उपाय[3] ।

इसी प्रकार प्रतापनारायण मिश्र तथा अन्य कवियों द्वारा रचित आल्हा में लोक शैली के स्थान पर विविध प्रसंगों में पुनरुक्तियां होती हैं ।

इसी प्रकार शैली की दृष्टि से आल्हा की एक विशेषता यह भी कही जा सकती है कि छंदों में पूर्वापर क्रमनिश्चित नहीं रहता । उसमें

१- प्रतापलहरी पृ० २१७ ।
२- वही पृ० २१०,२१७ ।
३- वही, पृ० २१२ ।

शैथिल्य अवश्य रहता है । यह क्रम शैथिल्य प्रतापनारायण मिश्र तथा अन्य कवियों द्वारा रचित आल्हा की शैली में भी देखा जा सकता है । कहीं तो देवताओं की स्तुति का प्रसंग है फिर उसके बाद ही - ब्रह्मा के अपनी कन्या पर मन डोलने का उल्लेख है फिर राम महावीर लक्ष्मण का उल्लेख है । और उसके बाद जयचंद के देश द्रोह का वर्णन प्रारंभ हो जाता है फिर शिव और कुबरी पीर का माहात्म्य वर्णन शुरू होता है । फिर कलियुग वर्णन प्रारंभ हो जाता है । इस प्रकार क्रम वर्णन भी ठीक नहीं है । इसी प्रकार क्रम शैथिल्य के अनेक उदाहरण आल्हाओं में मिलते हैं ।

आल्हा में लोक प्रवृत्ति के अनुकूल ही बीच में विभिन्न लोक देवताओं और लोक देवियों का उल्लेख मिलता है, बीच में लोकोक्तियों तथा भाग्यवादी उक्तियों का समावेश है । इसी प्रकार अनेक लोक सांस्कृतिक तत्वों का भी उल्लेख है । जिनका प्रस्तुत प्रबंध में यथास्थान उल्लेख हुआ है । आल्हा में कहीं कहीं लोकसील के उदाहरण भी मिलते हैं । परसन द्वारा आल्हा शैली में लिखित गीत में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है -

ब्राह्मन ह्वै के जोहर जोतै-औराजा ह्वै बेचै गाय ।
छत्री ह्वै के रण से भागै-तिनकर कांध गीध नहिं खाय ।।
गई जवानी फिर बहुरै न- नाहीं अमृत मोल बिकाय ।
कमल पहाड़न में उपजै न- मोती फरत न देखे डार ।
ताल बिगरिगा जब काई भा- बुगलन खोय दीन्ह दरबार ।
नारि बिगरिगा जब नैहरा मां तब स्वामी का दिहिस तुकार ।
सिंगिया माहुर न महुरहिक्कहि औरो विष भा रै भरि जाय ।
नारि कर्कशा मुद जिनके घर फुहर फार करेजा खाय[1]।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से सिद्ध है कि भारतेंदु युगीन कवियों द्वारा आल्हा की शैली में लिखित गीत लोक शैली का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं ।

१- हिंदी प्रदीप जि० १२, सं० १२, पृ० २८ ।

पूरबी-

पूरबी छपरा शहर (सारन जिला बिहार) का खास गीत है। बिरह वर्णन इसका मुख्य विषय है किंतु शृंगार रस के गीत भी इस शैली में बहुत हैं। पूरबी के स्वरों में फगुआ (होली), कजरी तथा चैती का मिश्रण होता है। ऐसा संगीतज्ञों का विचार है। इस गीत के अविष्कारक के संबंध में एक लेखक का विचार है कि "छपरा जिले के पकड़ी स्थान के निवासी स्वर्गीय महामलिक ने इसका अविष्कार किया था और उस समय इस गीत का नाम "बिरहिनी" था। पूरबी नाम बहुत बाद में प्रचलित हुआ[1]।" किंतु लेखक ने प्रमाणों से अपने कथन की पुष्टि विधिवत नहीं की है अतः इसके उदभावक या मूल आविष्कारक के संबंध में अंतिम निर्णय नहीं लिया जा सकता।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र प्रताप नारायण मिश्र ने पूर्वी गीत लिखे हैं और जैसा कि ऊपर ही कहा जा चुका है, इसकी शैली बहुत कुछ कजली होली आदि के समान है। कजली के समान ही हो रामा आदि शब्द की पुनरावृत्ति भी इनमें मिलती है। यों तो कवियों ने ईश्वर स्तुति भी की है और ईश्वर के गुणों का वर्णन किया है। उदाहरणार्थ इस शैली का एक गीत प्रस्तुत है।

बहुं ओर मेरे मेरे नाथ की महिमा अमित लखि परैहो।
सब भांति सर्व समर्थ है अति अकथ प्रभुता करै हो।
बलदेव प्यारे विपिन में जो जहं विटप अगनित खरे हो।
बलदेन को तुममे गया ? ताहूं रहत नितहरे हो।
बलदेव प्यारे समुद में अति अगम जल जह भरेहो।
बन्धन न कहुं कछु देखिए हरठौरते नहिं हरेहो।
बलदेव प्यारे अगिन में जहं सब पदारथ जरे हो।
विद्वान मूरख एक को तोहि बिन न कारज सरै हो[2]।

1- सुधा: वर्ष ४, खण्ड १, सं० २, पृ० १७३-१७६।

2- प्रतापलहरी: पृ० १५०।

-किंतु अधिकांश पूरबी शैली में लिखित गीत शृंगार रस प्रधान हैं और उसमें भी विरह प्रसंग अधिक है । भारतेंदु की पूरबी भी लोक शैली का स्वरूप प्रस्तुत करती है-

अजगुत कीन्ही रे रामा
लगाय कांची प्रीति गए परदेसवा अजगुत कीन्ही रे रामा
बारी रे उमिरि मोरी नरम करेजवा विपति नई दीन्ही रे रामा ।
अजगुत कीन्ही रे रामा ।।
हरीचंद बिनरोइ मरौंस्ते वै खबरियौं न लीन्ही रामा
अजगुत कीन्ही रे रामा[1] ।।

इसी प्रकार एक और पूरबी गीत है, जो वियोग संबंधी ही है जिसमें नायिका प्रियतम से कहती है कि उसके बिना प्राण तड़प रहे हैं[2] । एक पूरबी में नायिका प्रेमी से कहती है कि तुम्ही अनोखे हो कि फागुन मास में विदेश चले । इस ऋतु में कोई प्रेमी काम के कारण अपने पत्नी को छोड़ कर नही जाता और फिर यदि तुम चले जाओगे तो तुम्हारे बिना क प्राण कैसे बचेंगे[3]। इसी प्रकार अन्य सुंदर पूरबी गीत भी भारतेंदु हरिश्चन्द्र आदि कवियों ने लिखे हैं[4] ।

चैती-

चैती भोजपुरी लोक गीतों का एक प्रकार है और उसक उत्तरी भारत में जिस प्रकार एक विशेष प्रदेश में वर्षा ऋतु में कजली मलार सावन हिंडोला गाए जाते हैं वैसे ही बसंत ऋतु में फाग और चैती गाए जाते हैं । चैती गीतों का प्रचार मिथिला और भोजपुर प्रदेश में विशेष है । मैथिली में

१- भा० ग्रं० पृ० १८९ ।

२- वही, पृ० १९० ।

३- वही, पृ० ३०० ।

४- वही, पृ० ४२०, ३७४ ।

इसे चैतावर कहते हैं तथा भोजपुरी में चैती, चैता या घाटो कहते हैं । शैली की दृष्टि से इसके प्रारंभ में और अंत में रामा और हो रामा या हे रामा का प्रयोग होता है । गीत का प्रारंभ ऊँचे स्वर से किया जाता है मध्य में ही अवरोह होता है अंत में फिर आरोह होता है । चैती भी सामूहिक गीत है । कई व्यक्ति इसे मिलकर गाते हैं । विषय प्रेम तथा विरह और ऋतु संबंधी आनंद आदि होते हैं[१]।

भारतेंदु युगीन कवियों ने चैती शैली में गीत कु बहुत कम लिखे हैं । जहां कजली लावनी और होली आदि गीतों की बहुतायत मिलती है, वहीं चैती गिनी गिनाई है । चूंकि जैसा ऊपर कहा जा चुका है यह भोजपुर प्रदेश में गाया जाता है, अतः इसकी भाषा भी प्रायः भोजपुरी ही होती है । प्रेमघन कृत चैती का एक उदाहरण प्रस्तुत है जिसकी भाषा भोजपुरी है और जिसका विषय शृंगार से ही संबंधित है । इनमें चैती की प्रकृति के अनुसार ही रामा और हो रामा की टेकें हैं-

नाहक जियरा लगावल रामा बेदरदी के संग ।। टेक।।
आशा में यह रूप सुधा के अपनहुं मनवा गंवावल रामा (रामा)
अलक जाल महमान पंछी कहं बरबस आनि फंसावल रामा ।
कबहूं न हंसि बोली प्रि प्रीतम रोवत जनम गवांवल रामा ।
बद्रीनाथ प्रीति निरमोही सो करिहम भल पावल रामा[१] ।।

- - - - -

कैसे लागी लगनिया हो रामा ।
मिलत बने न बैन बिछुरत नहिं कीजै कौन जतनिया हो रामा ।
श्री बद्रीनारायन जू यह, अजब नैन उलझनिया हो रामा[२] ।

चैती की शैली गत तथा सांगीतिक विशेषताओं पर लोक संगीत संबंधी अध्याय में विस्तार से लिखा गया है ।

१- प्रेमघन सर्वस्व पृ० ६३९ ।
२- वही, पृ० ६३९ ।

बन्ना-सेहरा-घोड़ी आदि संस्कार संबंधी गीतों की शैली-

मानव जीवन में जन्म विवाह तथा मृत्यु तीनों ही प्रसंग बहुत महत्वपूर्ण हैं । जन्म और मृत्यु प्रकृति संबंधी हैं अतः मानव जाति के लिए आश्चर्य कारक रहे हैं । आदिम मानस के लिए जन्म और मृत्यु इसलिए रहस्यात्मक थे कि वह यह नहीं समझ पाता था कि ~~लोकप्राणी~~ कोई प्राणी अचानक इस लोक में कैसे आ गया जो उसके ही समान है । उसके ही जाति का एक प्राणी है । इस अवसर पर वह एक नए प्राणी को पाकर प्रसन्न होता था उसकी सुरक्षा के लिए विविध अनुष्ठान आदि करता था और इसी प्रकार प्रसन्न होकर वह गीत गायाकरता था जिसमें उसकी प्रसन्नता की अभिव्यक्ति होती थी । जन्म के समान ही मृत्यु भी आदिम मानस के लिए रहस्यमय बात थी क्योंकि जो व्यक्ति कुछ क्षण पहले ही हंसता और बोलता था उसके समान ही व्यवहार करता था वह अचानक क्यों मौन हो गया । अतएव इस प्रसंग पर अपने समुदाय के एक प्राणी को खोकर वह दुःख मनाता था । इसीलिए मृत्यु संबंधी गीतों में शोक की ही भावना मिलती थी । विवाह का लोक जीवन में विशेष महत्व था । विवाह से भी एक नए प्राणी का आगमन होता था जो सुख दुख के प्रसंगों में उसके साथ ही मिलकर भागी होता था । फिर प्रजनन का भी आदिम समाज में विशेष महत्व था और प्रजनन की दृष्टि से विवाह का महत्व था, इससे विवाह प्रसंग भी हर्ष और प्रसन्नता का प्रसंग था अतएव इस प्रसंग पर भी लोक मानस ने विविध गीतों की रचना की है जो मुख्य रूप से प्रसन्नता सूचक है ।

भारतेंदु युगीन कवियों ने जन्म से संबंधित गीत- सोहर और ढाढ़ी आदि लिखे हैं तथा विवाह से संबंधित बन्ना, सेहरा, घोड़ी, ज्योनार, गाली आदि अनेक गीत लिखे हैं । इन संस्कार गीत की शैलियों के विषय में कहने के पूर्व यह कहना आवश्यक है कि जो भावों की स्वच्छंदता, उल्लास और गायन शैली की रोचकता आल्हा कजली होली बारहमासा पूरबी चैती आदि में मिलती है वह इनमें नाममात्र को भी नहीं मिलती । कारण स्पष्ट

है कि संस्कार संबंधी गीत भाव प्रधान नहीं वस्तु प्रधान है । इनमें अंतहीन परिगान की प्रवृत्ति बड़ी व्यापक है जिससे गीतों में बुला देने की शक्ति आ जाती है । भाव भी एक ही है । बन्ने या बन्नी का रूप वर्णन हो रहा है तो लोक गायक को यही चिन्ता है कि किसी सज्जा प्रसाधन का नाम न भूल जाए जिससे उसका वर्णन अधूरा रह जाए । अंतहीन परिगणन की प्रवृत्ति गाली में, ज्योनार, बन्ना बन्नी घोड़ी सभी में देखी जाती है । गाली में प्रत्येक वर पक्ष में संबंधी को लेकर गाली दी जाती है और प्रयत्न यह रहता है कि कोई व्यक्ति छूटने न पाए, ज्योनार में विविध व्यंजनों की परिगणना होती है, बन्ना बन्नी में शोभा वर्णन होता है । अंतहीन परिगणन की प्रवृत्ति के अतिरिक्त संस्कार संबंधी गीतों में भावों की पुनरावृत्ति भी बहुत होती है और फिर ये भाव बहुत रोचक भी नहीं होते । एक ही बात घुमा फिरा के दूसरे शब्दों में बार बार कही जाती है । इसके संबंध में उदाहरण देना असंगत न होगा-

बना मेरा ब्याहन आया बे ।
बना मेरा सब मन भाया बे ।
बना मेरा छैल छबीला बे ।
बना मेरा रंग रंगीला बे ।

बनरा रंगीला रंगन मेरा सबन के दृग छावना ।
सुंदर सलोना परम लोना श्याम रंग सुहावना ।
अति चतुर चंचल चारु चितवन जुबतिचित्त चुरावना ।
ब्याहन चला रंग रस लला जसुमति लला मन भावना ।।

उपरोक्त पंक्तियों में यदि भाव ढूढ़ा जाय तो केवल भाव यही है कि बनरा अति शोभावाला है और इसी कथन को कुछ शब्दों की पुनरावृत्ति द्वारा तथा कुछ नए शब्दों के प्रयोग द्वारा बार बार दोहराया गया है । पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति तथा अंतहीन परिगणन की प्रवृत्ति संस्कार संबंधी गीतों में सर्वाधिक मिलती है । संस्कार गीतों की इन शैलियों के विषय में विस्तार से लोक संगीत संबंधी अध्याय में विवेचन है ।

दूसरी कोटि के लोक गीतों में इन लोक गीतों को रक्खा गया है जिन में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक स्थितियों का वर्णन किया गया है । और जिनके शीर्षक कवियों ने नहीं दिये हैं । उपरोक्त पद्धति के लोक गीतों के संबंध में यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि इनमें तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन है तो क्या इनमें पूर्णतया लोक मानस की स्थिति प्राप्त हो सकती है और क्या यह पूर्णतया लोकगीत की कोटि में आ सकते हैं । अतः उपरोक्त प्रकार के लोक गीतों की लोक शैलियों पर विवेचन करने के पूर्व यह कह देना आवश्यक है कि प्रत्येक प्रदेश के लोक गीत चाहे वे कश्मीर के हो, या राजस्थान के या मध्य प्रदेश के या उत्तर प्रदेश के, पंजाब के या आसाम, मुंडा आदि के और चाहे वे विदेशी लोकगीत ही क्यों न हों सभी प्रदेश के लोक गीतों में तत्कालीन परिस्थिति का वर्णन मिलता ही है । और इस कारण वे लोक गीत की कोटि से उपेक्षित नहीं किए जा सकते । जिस प्रदेश की जो विशेषताएं है उसकी वे विशेषताएं उन गीतों में आ ही जायगीं । फिर कुछ लोक गीत तो ऐसे भी हैं जिनमें गांधी नेहरू के वर्णन भी है किन्तु वे लोक प्रवृत्ति तथा लोक मानस में ढलकर उभरे हुए चित्र हैं । भारतेंदु युगीन कवियों ने विभिन्न लोक शैलियों में अपने भावों की अभिव्यक्ति की है, सरकार पर बहुत अधिक व्यंग्य किए हैं, इससे यह सिद्ध है कि इनमें यद्यपि लोक मानस, पूर्व के लोक गीतों के समान उभर कर या इतना अधिक स्पष्ट रूप में नहीं आता क्योंकि यह भावना जनमानस की होते हुए भी पूर्णतया लोक मानस की नहीं है किन्तु साथ ही साथ लोक मानस शून्य भी नहीं, क्योंकि जनमानस के मूल में भी लोक मानस है । उसी प्रकार जिस प्रकार लोक मानस के ऊपर कभी कभी मुनिमानस इतना अधिक प्रभावशाली हो जाता है कि लोक मानस की स्थिति ही बिल्कुल विलुप्त प्रायः सी हो जाती है । उसी प्रकार यद्यपि इन गीतों में भी लोकमानस विद्यमान है और इसलिए लोक गीतों की ही कोटि में परिगणित होने वाले ये लोक गीत हैं ।

पंडो की शैली-

भारतेंदु युगीन कवियों ने नई नई लोक शैलियों का प्रयोग किया है, जिनका विस्तृत विवरण नीचे प्रस्तुत है । भारतेंदु युगीन कवियों में कुछ कवियों ने उन पंडों की शैली में भी रचनाएं की है जिनमें पंडे लोग हरगंगा हरगंगा कहकर गंगा के नाम पर यजमानों से धन लूटा करते हैं और इस प्रकार अपनी जीविका निर्वाह करते हैं । प्रतापनारायण मिश्र ने हरगंगा शैली में एक गीत लिखा है जिसमें उन्होंने अपने पत्र "ब्राह्मण" के ग्राहकों से जिन्होंने काफी समय से चंदा नहीं दिया था उनसे शुल्क मांगने का प्रयत्न किया है । प्रतापनारायण मिश्र की शैली देखिये जो गंगा में चिल्लाते हुए पंडों की शैली के पूर्णतया अनुरूप है - ।

आठ मास बीते जजमान । अब तौ करो दक्षिणा दान । हरिगंगा ।
आजु कान्हि जो रुपया देव । मानौं कोटि यज्ञ करि लेव । हरिगंगा ।
मांगत हमका लागै लाज । पर रुपया बिन चलै न काज । हरिगंगा ।
तुम अधीन ब्राह्मण के प्राण । ज्यादा कौन बकै जजमान । हरिगंगा ।
जो कहुं देहो बहुत खिझाय । यह कौनिउ भलमंसी आय । हरिगंगा ।
सेवा दान अकारथ होय । हिंदू जानत है सब कोय । हरिगंगा ।
हंसी खुसी से रुपया देव । दूध पूत सब हमसे लेव । हरिगंगा ।
कासी पुन्नि गया मा पुन्नि । बाबा बैजनाथ मा पुन्नि । हरिगंगा[1] ।

उपरोक्त गीत में जजमान, शब्द का प्रयोग, हरिगंगा की पुनरावृत्ति, पंडे का जजमान को पुन्य मिलने का आश्वासन देना, सेवादान का माहात्म्य समझाना, आदि विशेषताएं पंडे के गंगा पर चिल्लाते हुए वचन की साम्यता के कारण पंडो की शैली का एक पूर्ण रूप खड़ा कर देती है ।

सरबनों की शैली

इसी प्रकार हरगंगा शब्द की पुनरावृत्ति वाला एक गीत हिंदी

१- प्रतापलहरी, पृ० ४६ ।

प्रदीप की फाइल से और प्रस्तुत है जो बहुत कुछ इसी शैली में विषय भेद से गाया जाता है और लेखक इस शैली के विषय में स्वयं कहता है "हमारे देश में सरवन नाम से मांगने वाले कीरतनिए फकीरों को सब जानते होंगे । आज इन्हीं के ढंग का एक तान गाय हम अपने पाठकों को प्रसन्न किया चाहते हैं "[1]।

यह लोक गीत सरवन फकीरों की शैली का है, किंतु इनकी शैली ही सरवन फकीरों की है विषय वस्तु पूर्णतया दूसरे ही है । कीरतनियों के गीतों के विषय-वस्तु जहां दाता को दान की महिमा समझाना, धर्म का उपदेश देना तथा उसका महत्व तथा उसकी कीर्ति का वर्णन करना होता है वहीं इस गीत में पटवारी, काश्तकार जमींदार, म्युनिसपेलटी, कानून आदि पर व्यंग करना है । इस गीत का एक अंश देखिए जिसमें म्यूनिसपेलटी, भंगियों तथा भुखमरी पर व्यंग किया गया है-

-हम

हमको मानो बसे रहे तुम हरगंगा । अन्नवस्त्र की पीड़ा सह लो और न दिक्कत हरिगंगा ।

भूख लगे तो रेल तार को दर्शन करलो हरगंगा । मंहगी होय बेरामी बाढ़े हरगंगा ।

सूरज निकले बीच चौक में धूर बुहारो हरगंगा । सात बजे से आठ बजे लौ सड़क बटोरो हरगंगा ।

बिना सुरज के निकले भंगी कभी न जागो हरगंगा । एक साथ सब धूर उड़ावो बाएं दाएं हरगंगा ।

जिधरै भुके बटोही उधरै धूर भोंक दो हरगंगा । सिविल लाइन में तीन बजे से सड़क बटोरो हरगंगा ।

शहर बीच दिन धूल उड़ावो बड़ा पुण्य है हर गंगा लाला टांग पसारे सोवैं जिनका कुछ डर हरगंगा ।

मनुसलपेटी यम की बेटी करै सफाई हरगंगा । भंगी बादशाह के प्यारे क्योंकर जागे हरगंगा[2]।

1- हि० प्र० जि० १२, सं० ७, पृ० १

2- हिंदी प्रदीप, जि० १२, सं० ७, पृ० १ ।

अजपा जाप करने वालों की शैली :-

इसी प्रकार परसन ने अजपा जाप करने वालों की शैली में जो गंगा जी में माला फेरते हुए गाते रहते हैं, में भी कविता लिखी है[1] जिसमें वे कहते है - जग में आना व्यर्थ ही रहा क्योंकि यहां आकर मैंने किसी प्रकार का नाम नहीं किया और जैसे आए थे वैसे ही चले जा रहे हैं - उदाहरण के लिए गीत का थोड़ा सा अंश प्रस्तुत है -

बिरथा जनम राम जी दीन्ह - जस आए तैसे चलि जावै ।
जग में कछु निज नाम न कीन ।।
भए न सेठ श्रेष्ठ लक्ष्मी बिन - ना अंगरेज पहुनई कीन्ह ।
सी०एस०आई० केहि विधि होइबै - जब हम देश भक्ति है कीन ।
बिरथा जस आए जग में ।।
ना पुरब, का लोग डुबोया - कान न कोचमैन का कीन ।
ना तिरबेनी के संगम में परनारी पर संग हम कीन ।
बिरथा जस आए जग में ।।
ना हम जरे परोसी देखत - ना हम कुकुर जाति कै कीन ।
पंचाइत में बैठ के कबहूं सपन्यो ना परपंची कीन ।
बिरथा जस आए जग में ।
वेल्यू पेबिल न लौटावैं दे के दाम पत्र लै लीन ।
रक्षा सहा सब सोच बहावा - प्रति पाती बांचत हस दीन ।
बिरथा जनम राम जी दीन - जस आए तैसे चलि जावै ।
जग में कछु निज नाम न कीन ।।

१-"पण्डित जी महाराज मुझे पंच महराज का चेला बनने का बहुत दिनों से से चला-था सो इस हाल के सूर्य ग्रहण में त्रिवेणी स्नान के मिस पूर्ण हुआ---- मन आया चलो उरगा भी नहा लें यह सोच फिर गंगा किनारे लौट आए और नहा कर धोती धुला रहे थे, इतने में अजपा जाप करने हारे पहुंच तो गए और गंगा जी में हिल जाप करने लगे । अंधियारे के कारण स्वरूप तो न देख पड़ा कि जाप करने वाले पंच महाराज किस रूपरंग के हैं किन्तु जो जाप जोर जोर करते थे साफ सुनाई पड़ता था और सरस्वती देवी की कृपा से याद करता गया, आपके पाठकों के विनोदार्थ लिख लाया हूं मन में आवै छाप दीजिए ।-

धर्मोंपदेशकों की शैली :-

लोक वर्ग में धर्मोंपदेशकों की शैली भी बहुत प्रचलित है जिसमें वह राम नाम का महत्व बतलाते हुए, संसार की असारता और दोषों का वर्णन करते हुए राम नाम जपने का उपदेश प्रतिदिन प्रातः काल करते हुए देखे जाते हैं और ये धर्मोंपदेशक मैं ही सब भजन गाते हुए द्वार-द्वार भीख मांगते रहते हैं। इनकी शैली अपने अलग ढंग की है तथा प्रभावकारी मानी जाती है और जिससे दाता के अन्तस पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार की शैलियों में भी विवेच्यकाल के कवियों ने रचनाएं प्रस्तुत की हैं -

खेती करो हरि नाम की, कौड़ी लगैन छदाम की ।
बाबा जोगी मंतर बेचै झोली बांधे काम की ।
न्याव कुन्याव अदालत बेचे जाल बिछाए दाम की ।
खेती करो हरि नाम की ।।
जुलुम जोर नित चुंगी बेचैं, ड्यूटी आठो जाम की ।
बिना दिए नहिं बचे बटोही राम बड़े मतिधाम की ।
खेती करो हरि नाम की ।।
रंडीसंडी गरमी बेचैं लिए तराजू- चाम की ।
नव सिख बैद हकीमी डाक्टर औषध के अंजाम की ।
खेती करो हरि नाम की ।।

गलत संकलप तीरथ पंडे सुधनाही परिनाम की ।
बालकपन से खेले कूदें ढूंढ़े गैल अराम की ।
खेती करो हरि नाम की [1] ।।

उपरोक्त गीत की टेक खेती करो हरिनाम की टेक अति प्रचलि है और इसकी शैली फ़कीरों की शैली है जिसका प्रयोग प्रातः काल और संध्याका भिक्षाटन करते समय फ़कीर लोग करते हैं ।

1- हिन्दी प्रदीपः जिल्द १२, सं० ३, पृ० ३ ।

भिखमंगे फकीरों की एक और शैली का प्रताप नारायण मिश्र ने प्रयोग किया है जिनको गाकर फकीर लोग भीख मांगते हैं । इस प्रकार की शैली में आज भी फकीर लोग भीख मांगते देखे जा सकते हैं । यह शैली दान लेने के संबंध में प्रभावात्मक शैली है । उदाहरण प्रस्तुत है :-

सर पै क्यों लेहै बरहमन काखूं,
ए राहे हुस्न बे बुते बे पीर ।
बन न औरंगजेब आलमगीर ।।
तू जो दिल को मेरे दुखाता है ।
हैफ है घर खुदा का ढाता है ।।
बस समझने से था हमें सरोकार।
अब मान न मान तू है मुख्तार ।।
खैर खिसियाते हो तो जाते है यहां क्या है ।
फकीराना आये सदा कर चले ।।
मियां खुश रहो हम दुआ कर चले[1] ।।

उपर्युक्त शैली दोहा तथा बिरहे की मिश्रित शैली है चूंकि मुसलमान फकीर इस शैली में भीख मांगते हैं अतः उर्दू के शब्दों की अधिकता स्वाभाविक है ।

फकीरों की ही मिलती जुलती शैली में कवि परसन कृत "कहने से कोई नहीं मानता मुद पीछे पछताता है,"है, जिसे "नए तानसेन की राग" शीर्षक कवि ने दिया है । इस शैली तथा इस कविता भेद केवल यही है कि फकीर जहां "कहने से कोई नहीं मानता मुद पीछे पछताता है"की टेक के बाद संसार की असारता का, मिथ्या भोग का आडम्बर बताते हुए ईश्वर भजन की ओर प्रेरित करता है वही इस गीत का विषय संसार की असारता का वर्णन न कर अंग्रेजों की कुटिल नीतियों का वर्णन करता है और यह बताता है कि ये अंगरेज़ हमारे शुभ चिन्तक नहीं हैं, हमें धोखा देने वाले है । यह सोना-चांदी नाज सब

१- प्रतापलहरी - पृ० २५८ ।

बिलायत भेजते हैं और वहां से अस्थि चर्म के बने हुए घृणित पदार्थ भेजते हैं। फिर अंत में कवि लोक शैली के ही अनुसार यह कहकर गीत समाप्त है कि इसमें किसी का दोष नहीं और कहने से कोई लाभ नहीं यह कुदिन ही है और ईश्वर से हमारी यह प्रार्थना है कि वह ईश्वर जो सुखदाता है सुख का स्रोत है हमारी रक्षा करे । सम्प्रति गीत विषयगत भेद रखते हुए पूर्णतः लोक शैली में लिखा गया है -

कहणा से कोई नहीं मानता मुद पीछे पछताता है -
रावने के संग कुटुंब साथ लै व्यर्थहि प्राण गंवाता है ।

दुर्योधन की बड़ी कथा सब सकल लोक विख्याता है -
कृष्णचंद की बात टाल के सहयोगदा को धाता है ।

कहने से --------

भारत के बलवान करन को अंगरेजन नहिं भाता है -
भाई इसमें नेक भूठ नहिं बहुत ठीक यह बाता है ।

कहने से --------

सोना चांदी रुई नाज सब लदा बिलायत जाता है -
बदले जिसके अस्थि आदिका घृणित पदारथ आता है ।

कहने से --------

परजा भूखी मरै अन्न बिन कुछ नहिं इनसे नाता है -
नया नया नित टिक्कस टटका गढ़ गढ़ लन्डन से लाता है ।

कहने से ---------

गोरी काली प्रजा एक सम - कहने को यह बाता है ।
काली न्योछावर गोरी पर साफ दिखलाता है ।

कहने से -----

लाभ नहीं कुछ कहने से है कुदिन दिनों दिन आता है ।
ईश्वर रक्षा करै हमारी जो सब सुख का सोता है ।
कहने से कोई नहीं मानता मुद पीछे पछताता है[1] ।।

१- हिंदी प्रदीप - जिल्द ११, सं० ८, पृ० १६-१७।

बारह खड़ी तथा ककहरा शैली :-

भारतेन्दुयुगीन कवियों ने बारहखड़ी तथा ककहरा की लोक शैली में भी गीत लिखे हैं । बारहखड़ी तथा ककहरा की शैली वे शैलियां है जिनमें छोटे बच्चों को हिंदी वर्ण याद कराये जाते हैं । चूंकि पद्य शैली में किसी वस्तु को याद करना सरल होता है इसलिए यह वर्ण भी पद्य में ही रटाए जाते हैं । आज भी म्युनिसपेल्टी में बच्चों को पढ़ाते समय इस शैली का प्रयोग होता है । भारतेन्दु युगीन कवियों को यह शैली विशेष प्रिय है और इस शैली में कई कविताएं लिखी गई है । बारहखड़ी की भारतेन्दु युगीन कवियों ने दो शैलियां प्रयुक्त की है । पहली शैली को हम प्रताप नारायण मिश्र द्वारा प्रयुक्त शैली तथा दूसरी कवि परसन द्वारा प्रयुक्त शैली कह सकते हैं । दोनों शैलियों की शैलीगत विशेषता पर कुछ लिखने के पूर्व उनकी शैली का उदाहरण दे देना अधिक उपयुक्त होगा । बारहखड़ी शैली को ककहरा शैली भी कहते हैं । प्रताप नारायण मिश्र ने "कलियुग ककहरा" के नाम से इस शैली का प्रयोग किया है ।

(१) प्रताप नारायण मिश्र द्वारा प्रयुक्त शैली :-

कक्का का करम धरम सब दूर बहिए । खख्खा खा खुलं खजाने होटल जैए ।।
गग्गा गा गोरों का सा भेष बनैए । घघ्घा घा घर के धान पयार मिलैए ।।
चच्चा चा चुरुट संग बाजार चबैए । छछ्छा छा छल बल करि दूध दूध चिल्लैए।।
जज्जा जा जुवा नहीं बूढ़ी फिकवैए । झझ्झा झा झगड़ा करि धर्मी
कहवैए ।।
टट्टा टा टेबिल पर खाना चुनवैए । ठठ्ठा ठा ठाढ़े मूतत शरम न लैए ।।
डड्डा डा * डगर चलत भुई खोदत रहिए । ढढ्ढा ढा ढोंगी बनि बिन बात न
कहिए ।।
तत्ता ता ता को टा उच्चारण कीजै । थथ्था था थाती धरी हजम करि
लीजै ।।
दद्दा दा दान नहीं पर चंदा दीजै । धध्धा धा धरम के नाते ईसा की जै[1]।।

१- प्रताप लहरी - पृ० २५१-२५२ ।

(२) दूसरी शैली : परसन द्वारा प्रयुक्त शैली :-

ककका करम फूट हिन्दुन को कुदिन कुदशा उड़ानी है ।
खख्खा खरच कुग्गगह कर ख्गण की बेनी छानी है ।।
गग्गा गरब बपौती करते हित की तुलना बानी है ।
घघ्घा घर घर फूट छाती नहीं जुड़ानी है ।।
नन्ना नहीं जगत आलस से तनधन सबहिं नसानी है ।
चच्चा चार पिता धन बैठे जैसे मरगे नानी है ।।
छछ्छा छाछ लगे नहिं पाते दूध की कौन कहानी है ।
जज्जा जात पांत के नाते व्यर्थहि बनत गुमानी है ।।
झझ्झा झूर कहूं पनकलवा से महंगी घहरानी है ।
नन्ना नहीं मिलत मूठी अन्न जासो पीवत पानी है ।।
टट्टा टंटा करते घर में ऐसी कुमति समानी है ।
ठठ्ठा ठोकर घर घर खाते देखत लाज लजानी है[१] ।।

इस प्रकार उपरोक्त दोनों बारहखड़ी की शैलियों को देखने से कई शैलीगत अन्तर सामने आते हैं और जिनके आधार पर हम सरलता से यह निर्णय ले सकते हैंकि पहली शैली लोक शैली के अधिक निकट है या दूसरी शैली लोक के अधिक निकट है । प्रताप नारायण मिश्र ने अपने ककहरा में प्रत्येक वर्ण का द्वित्व प्रयोग कर उसके बाद उसका आकारांत रूप रखते हुए तीसरे शब्द का प्रथम वर्ण वहीं रखा है जिसका उन्होंने प्रारम्भ में द्वित्व किया है । उदाहरणार्थ - ककका का करम, खख्खा खा खुले । सबसे पहले क का तथा ख का द्वित्व रूप करके ककका और खख्खा शब्द बनाए गये हैं तदुपरान्त इन वर्णों के आकारांत रूप का और खा रखे गए हैं और उसके उपरान्त इन्हीं वर्णों के कारण प्रारम्भ होने वाले करम और खुले शब्द रखे हैं । यह शैली का क्रम पूर्ण गीत तक चलता है । प्रताप नारायण मिश्र ने प्रत्येक वर्ण के लिए एक पंक्ति ही लिखी है । एक वर्ण का एक ही पंक्ति में प्रयोग है । दूसरी शैली की बारहखड़ी में भी प्रथम शैली के ही समान, अर्थात प्रत्येक वर्ण का द्वित्व प्रयोग

१- हिंदी प्रदीप: जिल्द १२, सं० १०, पृ० १६-१७ ।

कर उसके बाद वाले शब्द का प्रथम वर्ण द्वित्व किए जाने वाले वर्ण का ही है किन्तु अंतर दोनों की शैली में यह है कि प्रथम शैली में जहां प्रत्येक वर्ण का द्वित्व प्रयोग कर उसके बाद उसका आकारांत रूप रख कर उसके बाद तीसरे शब्द का प्रथम वर्ण भ वही रक्खा गया है जिसका प्रारम्भ में द्वित्व किया गया है । वहीं दूसरी शैली में द्वित्व किए जाने वाले वर्ण का आकारांत रूप नहीं रक्खा गया है जिससे दूसरी शैली की प्रथम शैली की तुलना में स्वाभाविकता कम हो जाती है क्योंकि लोक शैली में जब बच्चे बारहखड़ी याद करते हैं तो वह आकारांत रूप अवश्य रखते हैं । उससे दोहराने तथा याद करने में सरलता होती है । दूसरा अंतर दोनों शैलियों में यह भी है कि प्रतापनारायण मिश्र ने प्रथम तीन ~~वर्गों~~ वर्गों कवर्ग चवर्ग टवर्ग के पंचम वर्णों का उल्लेख नहीं किया है और तवर्ग के पंचम वर्ण न तथा पवर्ग के पंचम वर्ण मा का उल्लेख करते हुए श ष का उल्लेख नहीं किया है किन्तु अ इ उ ए का उल्लेख किया है वहीं दूसरी ओर दूसरी शैली में जो परसन आदि कवियों की लिखी हुई बारहखड़ी की शैली है उसमें भी प्रथम तीन वर्गों कवर्ग चवर्ग टवर्ग के पंचम वर्णों का उल्लेख नहीं किया है किन्तु जहां प्रतापनारायण मिश्र ने इन वर्णों की स्थिति ही हटा दी है वहां दूसरी शैली में इन छुटे हुए तीन पंचम वर्णों ङ, ञ, ण के स्थान पर तवर्ग के पंचमवर्ण न की पुनरावृत्ति की है इस प्रकार न वर्ण के लिए पूरी बारहखड़ी में चार पंक्तियां हो जाती है । तीन पंक्तियां तो ङ, ञ, ण के लिए एक तवर्ग के पंचम स्थान पर तथा साथ ही साथ, जहां प्रतापनारायण मिश्र ने श ष वर्णों को छोड़ दिया है वहां परसन आदि ने इन दो वर्णों का उपयोग किया है किन्तु साथ ही साथ इन्होंने स्वरों को छोड़ दिया है जिनको प्रताप नारायण मिश्र ने अपनाया है । इस प्रकार दोनो में ही शैलीगत पर्याप्त अंतर है किन्तु दोनों ही शैलियां लोक प्रचलित शैलियां हैं।दोनों ही प्रकार की बारहखड़ी का लोक में प्रयोग मिलता है । किन्तु लोक शैली की दृष्टि से दूसरी प्रकार की बारह खड़ी की शैली में एक दोष स्पष्ट दिखता है और जो प्रथम प्रकार की शैली में नहीं मिलता है वह है प्रतिपाद्य सम्बन्धी । बारहखड़ी की शैली छोटे बालकों को व्यंजन ज्ञान कराने की शैली है अतः उसमें ऐसा सीधा सादा विषय भी होना चाहिए जिसको बालक सरलता के साथ हृदयगंम कर सकें और जो

उनसे सम्बन्धित हो । इस दृष्टि से प्रताप नारायण मिश्र की बारहखड़ी (कलियुग ककहरा) अधिक सफल है ।

पढ़ो परबती सीताराम की शैली:-

इसके अतिरिक्त एक नई लोक शैली "बट पट पंछी चतुर सुजान- पढ़ो परबती सीताराम" में परसन ने एक गीत लिखा है जिसमें उसने तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डाला है । लोक जीवन में तोता पालने तथा तोते को पाठ रटाने की शैली अति प्रचलित है किन्तु इस रोचक शैली के गीतों में न तो किसी ने गीत लिखे और न इस शैली के लोक गीतों का संग्रह ही हुआ । भारतेन्दु युगीन कवियों में अनेक कवि ऐसे थे जो लोक शैली में गीत लिखने के पक्षपाती थे अतएव ~~इन्होंने~~ उन्होंने नई नई शैलियों में प्रयोग किए । परसन इस युग का एक महत्व पूर्ण कवि था और जहां उसने अन्य लोक शैलियों में गीत लिखे वहां इसमें भी[+] । गीत ~~क~~ की कुछ पंक्तियां उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

वन में रहते वन फल खाते पीते ठंडा पान - अब तो पढ़े काठ के पींजरा लेव राम को नाम, जो गाढ़े आवत काम - पढ़ो परबती सीताराम।

उद्यम करते निज बस रहते - फिरते चारो धाम - अंगरेजी पढ़ किया नौकरी - छूटी आठो जाम - कहां ऐश आराम - पढ़ो परबती सीताराम

बीता वर धरती दब जाते - जग में होत सुनाम - अब तो पढ़े कचहरी के फंद - गाढ़ा खोदो दाम - जहां आ सुनो काफ़ औ लाम - पढ़ो परबती सीताराम ।

भाई की दो बाते सहते - कबहुं तो औतो काम - अब तो सहत विदेशी लातें - दे दे अपनो दाम - निज कर भए गुलाम - पढ़ो परबती सीता- राम ।

अबलन को विद्या सिखलाते नारी मिलत सुनाम - अब तो पढ़ी

+ "सम्पादक क जी महाशय- मैंने तो तोता तो नहीं पाला पर लोगों को पढ़ते सुन मुझे भी कुछ कुछ तोता पढ़ाना आ गया है । सो लिख लाया हूं । निज अमूल्य पत्र में स्थान दीजिए या न दीजिए परन्तु सुन तो लीजिए"- हि० प्र०जि० १३, सं०५,६,७, पृ० ५०-५२ ।

कर्कसा पाले लगत भयावन धाम - निस दिन लड़त रहत बेकाम-पढ़ो परबती सीताराम ।

तरुणाई में व्याह कराते कुल को चलतो नाम - असमय गुच्चू पाला खेलत - लड़के भए निकाम - बहुत चले सुरधाम - पढ़ो परबती सीताराम।।

देश सुधार में बाधा करते हुवै कृतघ्न अज्ञान - दै विश्वास घाट जो करते भोगैं नर्क महान - यह वचन शास्त्र परिमान । पढ़ो परबती सीताराम[1]।।

बिरहाः-

बिरहा अहीरों का एक जातीय गीत है और इसका प्रचलन लोक वर्ग में उतना ही अधिक है जितना कजली, चैती, होली या लावनी आदि का । किन्तु इस सम्बन्ध में एक बात विशेष महत्व की है कि भारतेन्दुयुगीन कवियों ने जहां एक ओर कजलियां तथा लावनियां एक अति विशाल परिमाण में लिखी हैं वहीं दूसरी ओर बिरहों की संख्या बहुत कम है । बिरहा एक अति प्रचलित लोक गीत है जिसमें संयोग, वियोग, तथा करुणा सभी के प्रसंग हैं और जब एक गायक मस्त होकर बिरहा की तानें छेड़ता है तो देखते ही बनता है । परसन ने बिरहा लिखा है जिसमें वेश्या, अंगरेजी सरकार, पुलिस, म्यूनिसपेल्टी, पायनियर आदि को अपने व्यंग का लक्ष्य बनाया है । इसकी लय गति भाषा शैली सभी लोक प्रवृत्ति के अनुकूल है । कवि अपने बिरहे के सम्बन्ध में गीत के पहले बिरहा लिखने का एक छोटा सा परिचय देता है -

" मिस्टर जनाब पण्डित साहब - कई महीनों से खड़ी और पड़ी बोलियों का झगड़ा सुन मेरा जी कर रहा था कि मैं भी कोई बोली लिखूं सो आज अहिराई बोली में जो पड़ी बोली का एक विशेष रूप है लिख-लाया हूं । अगर आपके पत्र की इससे कुछ मानहानि नहोती हो तो कृपा कर छाप दीजिए[2]। "

इस छोटे से बिरहा सम्बन्धी परिचय के उपरान्त वह बिरहा

१- हिन्दी प्रदीपः जि० १३, सं० ५,६,७, पृ० ५०-५२ ।

२- वही, पृ० ५२-५३ ।

गाता है -

पतिबरता का रोटी नहीं बिसुआ का पूरी । भई का मार मार पठवैं मंजूरी - आप चढ़े बड़ घोड़ बिरहिया । आप चढ़े बड़ घोड़ ।

भूखी ऊपर टिक्कस लागै दुखिया बेगारी । काम करावैं डाट डाट कै दे दे मार गारी - अंगरेजी सरकार बिरहिया अंगरेजी सरकार ।।

चोर को तो धरती नहीं भल मनई पकड़ती । थाना कोतवलिया माँ बैठ बैठ अकड़ती - पुलिस है जालिम जोर बिरहिया पुलिस है जालिम जोर ।।

रोजी न रुजगार लागै नहिं खेती बारी । भरत पेटा गिन लोग बिचारे दुवौ के दुखारी - ब्रिटिश सिंह के राज बिरहिया ब्रिटिश सिंह के राज ।।

भट्ट का चेला बड़ अलबेला - जहं गावत तहं लागत मेला - रावत आपन ढंग निराला - भरसक जो निज बच प्रतिपाला - ध्यावत दीनानाथ बिरहिया ध्यावत दीनानाथ[1]।

व्यापारियों की लटके की शैली :

लोक जीवन में गा गा कर अपनी चीज़ बेचने वालों की शैलियों से सभी परिचित होंगे कि किस प्रकार वे गा गाकर ग्राहकों को आकर्षित करते हैं तथा अपना सामान बेचकर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं । इस शैली का प्रचलन नगर में आज तक भी है । "चना जोर गरम" तथा चूरन बेचने वालों की शैली श्रोताओं को बहुत पसन्द आती है । बच्चे इन गाने वालों को प्रायः बहुत पसन्द करते हैं और इनकी शैली का अनुकरण भी प्रायः करते हैं । यह शैली भी भारतेन्दुयुगीन कवियों द्वारा उपेक्षित नहीं रही है और इस शैली में भी उन्होंने प्रयोग किए है । इस शैली में "चरपरी चटनी" नाम की कविता लिखी गई है जिसमें चटनी का वर्णन है और इसकी शैली पूर्णतया लोकशैली के अनुकूल है । इस शैली में भी "चना जोर गरम" तथा "चूरन वालों" की ही तरह

1- हिन्दी प्रदीप : जि० १३, पृ० ५,६, ७, पृ० ५२-५३ ।

हास्य का पुट भी है -

चटनी बनी मज़ेदार । खाती खट्टे की बहार ।।
चटनी मेरी बनी अनमोल । जिसमें मिले मसाले तोल ।।
इसमें पड़ा अर्क पोदानी । जिसको खाते जहान मदीना ।।
सब हिकमत छान बनाया । चाटे शुद्ध होय मन काया ।।
इसमें मिला मसाला धनियां । जिसको खाते हैं सब बनिया ।।
चटनी चाटे एडिटर लोग । जिनको व्यापा सेडिशन रोग ।।
चटनी चाटैं संत महन्त । फैलावैं अपना मुल्को मुल्कों पंथ ।।
चटनी चाटैं लोगु लुगाई । जिसमें पड़ी पसेरिन राई ।।
चटनी चाटैं हुंडी वाल । फौरन हो जावैं कंगाल ।।
चटनी जब से हिन्द में आई । तबसे सुस्ती आलस छाई ।।
चटनी चाटैं जो व्यापारी । पावैं रोजगार में ख्वारी ।।
चटनी चाटैं हिन्दू लोग । जिनको अकिल अजीरन रोग ।।
चटनी साहब लोग जो खावैं । सारा हिंद हजम कर जावैं ।।
चटनी अमैले लोग जो खाते । जिससे रकम हज़म कर जाते ।।
चटनी खाया है बंगवासी । पैदा हुई हसद की खांसी ।।
चटनी ग्राहक जन जो खावै । चंदा सालों का तुर्त चुकावैं ।।
चटनी ऐसी यह फैलाया । तन धन दौलत मान मसाया ।।
मेरी चटनी है पचलोना । जिसको खाता श्याम सलोना ।।
मेरी चटनी जो कोई खाय । मुझको छोड़ अन्त नहिं जाय[१] ।।

कबड्डी के बोलों की शैली :-

"चना जोर गरम" या "चूरन वालों" के लटके की शैली में जहाँ एक ओर कवियों ने गीत लिख कर अपने भावों की सफलता पूर्वक अभिव्यक्ति की है वहीं दूसरी ओर बालकों तथा युवकों के खेल कबड्डी में बोले जाने वाले बोलों की शैली में तत्कालीन परिस्थितियों पर व्यंग्य करते हुए "गबड्डी" नाम से

१- हिन्दी प्रदीपः- जि० २१, सं० १-२, पृ० ३-४ ।

भी एक कविता लिखी है । गबड्डी के बोलों की शैली सम्बन्धी विशेषता है कि उसमें "चलकबड्डी आइतहै" की बार बार पुनरावृत्ति की जाती है और उसका पहला बोल "चल कबड्डी आइतहै तबला बजाइत है । तबला का तोड़ ताड़ घुंघरू बजाइत है" प्रायः प्रत्येक कबड्डी खेलने वाले के मुंह से सुना जाता है इस शैली में गीत लिखकर कवि ने मठाधीशों, अध्यापक वर्ग, ज्योतिषियों, कथावाचकों पर व्यंग किया है । राजनीतिक धार्मिक स्थितियों की आलोचना की है । ब्राह्मणों, बनियों, पंडों तथा विद्यार्थी वर्ग पर भी छींटा कशी की है । इस गीत की शैली लोक वर्ग में गाए जाने वाले कबड्डी के बोलों की शैली से पूर्णतया मिलती है । उदाहरणार्थ गीत का कुछ अंश प्रस्तुत है:-

चल गबड्डी आइतहै तबला बजाइत है । तबला का तोर तार घुंघरू बजाइत है।
चल गबड्डी जाईत है रौंद फिर आइतहै ।अगरा बताय कर हींसा बाट लाइत है।
चल गबड्डी जाईत है, हाकिम बनकर आइत है। रैय्या को लूट लाट घर लौट जाईत है ।
चल गबड्डी जाईत है, कमिश्नर कहलाईत है । हां हुजूर कर कर चुंगिया लगाइत है ।
चल गबड्डी जाईत है, टिकस लगाइत है । दुखिया को मार मार रुपिया ले आइत है ।
चल गबड्डी जाईत है, हिन्दू कहलाइत है । ताजिया में जाई जाई शीरनी चढ़ाइत है ।
चल गबड्डी जाईत है, पाठ पढ़ाइत है । चेलन का मार पीट बैठ औंघाइत है।
चल गबड्डी जाईत है, कथा बांच आईत है । लपटा सा बाट बाट सीधा बांध लाईत है ।
चल गबड्डी जाईत है, ज्योतिषी कहाइत है । मध्यम ग्रह कहि कहि रुपिया बांध लाईत है ।

चल गबड्डी आईत है पाठशाला जाईत है । बगिया में घूमघाम घर लौट आईत है[1] ।।

पहेलियों तथा मुकरियों की शैली:-

पहेलियों तथा मुकरियों की शैलियां भी लोक शैलियां हैं । मुक-

१- हिन्दी प्रदीप:- जि० १३, सं० २,३,४, पृ० -७-१० ।

रियां पहेलियों का एक रूप ही है जिसमें उत्तर उन्हीं मुकरी में ही निहित रहता है और उत्तर कहकर मुकरने की शैली प्रधान रहती है । पहेलियों में भी कभी-कभी तो अर्थ उनमें निहित रहता है,कभी अर्थ संकेतित रहता है । पहेलियां केवल मनोरंजन की ही वस्तुएं नहीं हैं वरन् यह वर्ग विशेष की मनोवृत्ति की परिचायिका होती है तथा साथ ही बुद्धि मापक साधन भी । ये सब कोटि की जातियों में चाहे वे सभ्य हों या असभ्य तथा सब देशों में किसी न किसी रूप में प्रचलित मिलती हैं । इनका प्रयोग कभी कभी आनुष्ठानिक भी होता है । मंडला के गोंड़ और प्रधान तथा बिरहोर जातियों के विवाह में पहेलियां बुझाने का अनुष्ठान होता है किन्तु अब पहेलियों का आनुष्ठानिक रूप समाप्त हो गया है । इसकी उत्पत्ति पर फ्रेजर ने विचार करते हुए लिखा है "पहेलियों की रचना अथवा उदय उस समय हुआ होगा जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ी होगी[१]।" पहेलियों की शैली तथा प्रकृति के विषय में बताते हुए डा० सत्येन्द्र ने लिखा है -

"पहेलियां यथार्थ में किसी वस्तु का वर्णन करती हैं - ऐसा वर्णन जिसमें अप्रकट के द्वारा प्रकट का संकेत रहता है । अप्रकट इन पहेलियों में बहुधा वस्तु उपमान के रूप में आता है । यह स्वाभाविक ही है कि गांव की पहेलियों में ऐसे उपमान भी ग्रामीण वातावरण से ही लिए गए हैं । पहेलियां एक प्रकार से वस्तु को सुझाने वाले उपमानों से निर्मित शब्दचित्रावली हैं जिनमें चित्र प्रस्तुत करके यह पूछा जाता है कि यह किसका चित्र है । पर इससे यह ना समझना चाहिए कि उपमानों के द्वारा यह चित्र पूर्ण होता है । उपमानों द्वारा जो चित्र निर्मित होता है वह अस्पष्ट होता है, उससे अभिप्रेत वस्तु का अधूरा संकेत मिलता है, पर वह संकेत इतना निश्चित होता है कि यथा संभव उससे किसी अन्यवस्तु का बोध नहीं होता[२]।"

१-Frager, J.G.: The Golden Bough, Vol. IX p.121.

२- पहेलियां: डा० सत्येन्द्र: हिन्दी साहित्य कोश प्रथम खण्ड, पृ०४४६ ।

पहेलियां इस प्रकार लोक शैली का ही रूप है जिसका लोक वर्ग में बुद्धिमापन के लिए प्रचलन है । भारतेन्दु युगीन काव्य में अनेक पहेलियां प्राप्त है और जो लोक पहेलियों की शैली के पूर्णतया अनुरूप है । उपरोक्त डा० सत्येन्द्र द्वारा वर्णित पहेलियों की शैली सम्बन्धी बताई गई विशेषताओं के अतिरिक्त यह और विशेषता है उसमें भी जिससे प्रश्न पूछा जाता है उसको सम्बोधित कर कहा जाता है कि इसका अर्थ बताओ या बूझो । भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा लिखित पहेलियों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है-

"धर्गो कहां कहूं नाहीं ढूंढ़ों तो पासमा । मूड़ गोड़ कुछौं नाहीं चलै लम्बी चाल मा ।।

दांत जीभ एको नाहीं गिरै मीठे भात मा । अकल कहीं पाया नहीं बोले हर बात मा ।।

जान जान जानै और मानै अपमान मा । बब्बू राम कहै कोउ बतावै तो जहान मा।।१।।[1]

\+ \+ \+

गुंगा ह्वैके बात करै वेद सो पुरान की । अंधा ह्वै के देखा करै ज्योति रूपी ज्ञान की ।।

बहरा ह्वैके शब्द सुनै अनहद तान की । पंगुल ह्वै के बाट चलै सीधी असमान की ।।

अता पता होई कहूं कहै को जहान की।बब्बू राम जानै कोउ बात पर मान की।।२।।[2]

इसी प्रकार प्रताप नारायण मिश्र ने भी पहेलियां लिखी हैं-

वृषभ बसत पर बग नहीं, जल जुत पै घन नांहिं ।

त्रयनयन पै शंकर नहीं, कहौ समुझि मन मांहि[3] ।।१।।

\+ \+ \+

रक्त पियै राक्षस नहीं, बेगि चलै नहिं पौन ।

अंतरध्यानी सिंह नहिं, कहौ वस्तु वह कौन[4] ।।२।।

१- हिंदी प्रदीपः- जिल्द १२, सं० १, पृ०२४ । २- वही ।

३- प्रताप लहरीः प्रताप नारायण मिश्र पृ०२५५ ४- वही ।

उपरोक्त पहेलियों का यदि शैली की दृष्टि से अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होगा यद्यपि दोनों में भाषा गत कुछ अंतर है किन्तु शैली पूर्ण तया लोक शैली के अनुरूप है । सभी पहेलियों में जिससे प्रश्न पूछा गया है उसका संबोधन वाची शब्द उपस्थित है । उपरोक्त प्रथम दो पहेलियां में संबोधनवाची शब्द कोउ तथा शेष दो पहेलियों में कहो शब्द विद्यमान है । तथा उसी प्रकार सबमें अप्रकट द्वारा प्रगट का संकेत है जैसे प्रताप नारायण मिश्र की पहेली - वृक्ष बसत पर खग नहीं, जलयुत पै घन नांहि । त्रिनयन पै शंकर नहीं । कहो समुझि मन मांहि ।। मे नारियल जो प्रगट है, जो उत्तर है, इसके लिए अप्रकट का प्रयोग किया गया है, जिससे उत्तर का संकेत होता है । नारियल की उपरोक्त विशेषताएं संकेतित रहती हैं किन्तु उसका पूर्णतया स्पष्ट कथन नहीं रहता है जैसे नारियल के लिए कहा गया - वृक्ष पर बसता है पर खग नहीं है, जलयुक्त है पर बादल नहीं है, तीन नेत्र वाला है किन्तु शंकर नहीं । इस प्रकार नारियल का संकेत कर दिया गया है और एक पूर्ण शब्दचित्र उपस्थित कर दिया गया है । इसी प्रकार "चिंता" की विशेष-ताओं का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि रक्त पीती है अर्थात् व्यक्ति को दुर्बल बना देती है किन्तु वह राक्षस नहीं है, बहुत तेज उसकी गति है पर वह पवन नहीं है, अंतरयामी की सी उसकी स्थिति है, पर दिखाई नहीं पड़ती है किन्तु वह सिंह भी नहीं है, इस प्रकार की विशेषताओं वाली वस्तु कौन है । पाठक या श्रोताओं को इन विशेषताओं के द्वारा संकेत मिलता है कि उत्तर चिंता है जिसको पूछा जा रहा है क्योंकि वह व्यक्ति को इतना चिंतित कर डालती है कि उसका रक्त सूखता जाता है और वह दुर्बल होती जाती है, चिंता की गति बहुत तेज़ है कभी किसी वस्तु चिंता है तो दूसरे क्षण किसी दूसरी वस्तु की ओर इसी प्रकार बहु अन्तर अवस्थित भी है और इस प्रकार अप्रकट के द्वारा प्रगट का संकेत मिल जाता है । इसी प्रकार भारतेन्दु युगीन कवियों ने अनेक पहेलियां रची हैं जो लोक शैली के पूर्णतया अनुकूल है ।

पहेलियों का ही एक दूसरा रूप मुकरियां है जिसमें भी श्रोता से प्रश्न पूछा जाता है किन्तु पहेलियों तथा मुकरियों में सबसे बड़ा शैलीगत अंतर यह है कि पहेलियों में प्रायः अर्थ या उत्तर संकेतित मात्र रहता है और उसकी विशेषताओं मात्र से संकेत किया जाता है उनका प्रगट रूप से उल्लेख नहीं किया

जाता वहीं दूसरी ओर मुकरियों में उत्तर की विशेषताएं बतलाते हुए साथ ही साथ उत्तर भी बता दिया जाता है किंतु उत्तर बताकर कहा जाता है कि यह वास्तव उत्तर नहीं है अर्थात् इसमें उत्तर बताकर मुकरने की प्रवृत्ति है जिससे मुकरियों की संज्ञा दी गई है। मुकरियां लोक शैली की ही एक रूप है जिनमें अप्रत्यक्ष रूप से मुकरते हुए लक्ष्य पर व्यंग किए जाते हैं। यद्यपि हमेशा मुकरियां में व्यंग ही नहीं किए जाते है किन्तु मुख्य रूप से यह व्यंग शैली है। भारतेंदु युगीन साहित्य की मुकरियों में यह व्यंग दृष्टि और भी मुखर हो गई है। कांग्रेस, पुलिस, रेल, प्लीडर, टिकस,चुंगी, दलाल, ब्राह्मण, नीच, अंगरेजी, ग्रेजुएट, विद्यासागर, रेल, अखबार, छापाखाना, कानून, खिताब, जहाज, पर मुकरियां लिखी गई हैं और इनके विविध विषय हैं। शैलियों की दृष्टि से कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं।

सब गुरुजन को बुरो बतावैं, अपनी खिचड़ी आप पकावैं।+
भीतर तत्व न झूठी तेजी, क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेजी।।

तीन बुलाए तेरह आवैं, निज निज विपदा रोई सुनावै।।
आंखों फुटैं भरा न पेट, क्यों सखि सज्जन नहिं ग्रेजुएट[1]।।

+ + +

सीटी देकर पास बुलावै। रुपया ले तो निकट बिठावै।
ले भागे मोहिं खेलहिं खेल। क्यों सखि सज्जन नहिं सखि रेल।।
भीतर भीतर सब रस चूसै। हंसि हंसि के तन धन मन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज। क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेज।।
रूप दिखावत सरबस लूटै। फंदे में जो पड़े न छूटै।।
कपट कटारी जिय में हूलिस। क्यों सखि सज्जन नहिं सखि पूलिस।

+ + +

है जो चार वर्ण को बालक – पर दुष्टन के उर में सालक।
हू डज डेली मेनी प्रोग्रेस – क्यों सखि सज्जन नहिं सखि कांग्रेस।।

१– भा०ग्रं० द्वितीय खण्ड: पृ० ८१०–८१२।

चोर से मिल कर सेंध करावै- अरु साहबल को जाय जगावैं ।
मजिस्टरेट को देय न नोटिस - क्यों सखि सज्जन नहि सखि पुलिस
मध्यम लेख बनावत चरपर - नहिं पण्डित नहिं कोउ कविवर ।
पाठक जन को मन आकर्षन - क्यों सखि सज्जन नहि सखि -
परसन[1] ।।

उपर्युक्त सभी मुकरियों में मुकरियों की शैली, अर्थात् अभीष्ट वस्तु की विशेषताएं बताकर, क्यों सखि सज्जन कह कर मुकरने की शैली का, पूर्णतया निर्वाह किया गया है । रेल संबंधी भारतेन्दु की मुकरी का विश्लेषण कर उपर्युक्त कथन को स्पष्ट किया जा सकता है । रेल की विशेषता है कि वह सीटी देकर अपने आने की तथा सीटी देकर ही अपने जाने की सूचना देती है अर्थात् यात्रियों को वह सीटी देकर पास बुलाती है और टिकट लेकर ही यात्री रेलपर चढ़ सकता है अतः वह रुपया लेती है और फिर वह दौड़ लगाती है इतनी विशेषताएं रेल की बताकर कहता है कि यह रेल नहीं है इस प्रकार वह उत्तर बताकर उससे मुकरता है । इस प्रकार की मुकरने की शैली सभी मुकरियों में परिव्याप्त है और भारतेन्दु युगीन मुकरियां लोक मुकरियों का एक अच्छा स्वरूप प्रस्तुत करती हैं ।

मुकरियों से ही मिलती जुलती एक और शैली का भारतेन्दु युगीन कवियों ने उल्लेख किया है और उसको "मुकरियों का दादा" संज्ञा दी है । यद्यपि इनमें मुकरियों के समान मुकरने की प्रवृत्ति नहीं है किन्तु इनमें मुकरियों के समान ही लक्ष्य की विशेषताएं बतलाते हुए यह कहा जाता है कि यह इसका उत्तर है । बहुत कुछ इसमें परिभाषा देने की प्रवृत्ति व्याप्त है । उदाहरण देकर स्पष्ट करना अधिक संगत होगा ।

मोहन भोग सुहारी गटकैं, भांति अनेक नृत्य करि मटकैं ।
अहिरिन लटकिन राखै दासी, इनका कहीं कि अहीं उदासी ।।
दारे मस्त हथिनिया भूमै । मुख अरविंद कंचनी चूमै ।
भूपालन से लेयं जगीर । इनका कही कि अहीं कबीर ।।

1- हिन्दी प्रदीपः जिल्द १२, सं० ११-१२, पृ० २५ ।

रुपिया तीन नौकरी पावैं । आप खाय कि घर पठ वावैं ।।
चोर देख के जाय लुकाहीं । इनका कही की नहीं सिपाही ।।
बदमाशन से जाते बबरा । झुण्ड देख के जाते घबरा ।।
कहते होगा होगा होगा । इनका कही की नहीं दरोगा ।।
दुख सुख में द्वारे नहिं आवैं । सूखन देख के मुंह बिचकावैं ।।
हर बातों में करते दोखी । इनका कही कि नहीं परोसी ।।
पंचाइत मां कबहुं न आवैं । और न कबहूं हाथ धोआवै ।।
तमाखू सो करत न आदर । इनका कहीं कि नहीं बिरादर ।।
ससुरारी के नाथे फूलैं । मेहर के संग पलना भूलैं ।।
कौड़ी लावैं ना निज बूत । इनका कही कि नहीं सपूत ।।
नाम बपौती केर जगावैं । जब लग हेरै करजा पावैं ।।
धुर्रा निकरत देत वियाजन । इनका कही कि नहीं महाजन[1] ।।

उपर्युक्त पंक्तियों का यदि विश्लेषण किया जाय तो ज्ञात होगा कि इसके प्रथम तीन चरणों का रूप पूर्णतः मुकरियों की शैली से पर्याप्त मिलता है अन्तर केवल यही है कि उसमें उत्तर कहकर निषेध की प्रवृत्ति है और इसमें विशेषताएं बतला कर परिभाषात्मक रूप देने की प्रवृत्ति है । एक बात और "मुकरी के दादा" के सम्बन्ध में कही जा सकती है कि इसमें व्यंग्य की ही दृष्टि प्रधान है और इसके व्यंग्य मुकरी के व्यंग्य से अधिक तीव्र है । इन "मुकरियों के दादा" में जैसे कि आज के साधु सन्त जो अपने को "कबीर" कहते हैं अर्थात् कबीर के समकक्ष अपने को समझते हैं उनसे कवि कहता है एक कबीर था जो घर फूंक तमाशा देखने वाला था और संसार को मिथ्या माया मोह कहकर इससे विलग रहने के लिए कहा करता था और उसका सिद्धांत उसके ही शब्दों में था -

कबिरा खड़ा बजार में लिए लुकाठी हाथ ।
जो घर फूंके अपना सो चलै हमारे साथ ।।

१- हिन्दी प्रदीपः- जिल्द ११ , सं० १, पृ० २-४ ।

जहाँ आज अपने को कबीर कहलाने वाले महन्तों की स्थिति है कि उनके द्वार के आगे उत्तम कोटि की हथिनी झूमती है और जो कमलमुखी युवतियां हैं उनके साथ वे भोग करते हैं तथा राजाओं से जागीर लेते हैं वही आज के कबीर हैं अर्थात् आज इन्हीं को कबीर कहते हैं । इसी प्रकार सपूत पर व्यंग्य किया गया कि आज के सपूत उन्हीं को कहते हैं जो कि ससुरार के बल पर गर्व करते हैं, दिन रात पत्नी के साथ झूला झूलते हैं और नहीं वे अपने बल पर एक पैसा कमा सकते हैं ऐसे लोग ही सपूत हैं । इस प्रकार कबीर सिपाही, उदासी, दरोगा, कोतवाल, कलक्टर, सुराज, परोसी, गहीपति, निरादर, उपदेशक, निमाई, अमीर, सपूत , सभासद, महाजन, एडीटर, ग्राहक आदि पर व्यंग्य किए गए हैं ।

व्यंग शैलियां :-

लोक जीवन में व्यंग्य को बहुत महत्व है । लोक मानस को जहां भी मर्यादा के विरुद्ध कोई कार्य होता हुआ प्रतीत हुआ तो वह तत्काल विरोध करता है । इस प्रकार लोक में अनेक व्यंग शैलियों का प्रचलन है । यह व्यंग कहीं फैशन के विरुद्ध होता है, तो कभी मंहगाई के विरुद्ध तो कभी मर्यादा के विरुद्ध चलने वालों के प्रति होता है या ईमानदारी से अपना काम न करने वालों के प्रति होता है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने लोक प्रचलित व्यंग्य शैलियों में अनेक गीत लिखे हैं जो लोक मानस का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

इस शैली की चार प्रमुख कविताएं भारतेन्दु युगीन काव्य में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिनको देखकर लगता है कि लोक मानस कितना स्पष्ट झलक रहा है ।

लोक जीवन में मंहगाई पर बहुत लिखा गया है जिसके कारण हुई तत्कालीन दशा का वर्णन है । क्यों यह मंहगाई बढ़ी इसके कारण का उल्लेख है तथा इसके साथ ही साथ यह भी उल्लेख हुआ है कि इस मंहगाई के कारण से एक साधारण वर्ग की यद्यपि तो मौत ही है किन्तु सेठ लोग कितना इससे लाभ उठा रहे हैं । लोक वर्ग ऐसी मंहगाई में कुछ कर नहीं सकता अतः वह केवल यही कहता है कि "भैय्या जो है सो है" इसी में निर्वाह करना हैं । भूख और

मंहगाई के गीत लोक जीवन में बहुत प्रचलित है । एक लोक गीत है जिसमें गायक महंगाई के कारण हुई अपनी स्थिति का कितना सच्चा वर्णन करता है । वह कहता है कि उसकी प्रसन्नता समाप्त हो गई है और वह बड़ी दयनीय स्थिति में है -

"मंहगी के मारे बिरहा बिसरिगा
भूलिगा कजरी कबीर
देखि के गोरी का उभरा जोबनवा
उठे न करेजवा मा पीर"

उसी प्रकार भारतेन्दु युगीन काव्य में लोक गायक के इस प्रकार के स्वर बहुत सहज रूप में सामने आए हैं -

गल्ला कटे लगा है कि भैया जो है सो है ।
बनियन का गम भला है कि भैया जो है सो है ।
लाला की भैंसी शीर मां शाशी जब ।
दूध औहमा मिल गवा कि भैया जो है सो है ।
इक तो कहत मां मर मिटी खिलकत जो हैगा सब ।
तेह पर टिकस बंधा है कि भैया जो है सो है ।
अगरेज से अफ़गान से वह जंग होत है ।
अखबार मां लिखा है कि भैया जो है सो है ।
कुप्पा भए है फूल के बनिया अफर्ते माल ।
पेट उनका दमकला कि भैया जो है सो है ।
अखबार नाहीं पंच वे बढ़कर भवा कोउ ।
सिक्का य जम गवा है कि भैया जो है सो है[1] ।।

इसी प्रकार मंहगाई के कारण परेशान होकर लोकात्मा चिल्ला उठती है कि इस मंहगाई का कारण प्रतिदिन का बढ़ने वाला टिकट्स है और सरकार चाहती है कि प्रजा अब भूखी ही मरकर सीधे यमपुर को जाए । लोक

१- हिन्दी प्रदीपः- जि० ३, सं० ११, पृ० १०-११ ।

मानस यह भली प्रकार समझता है कि इसका प्रभाव सेठों तथा रईसों पर नहीं पड़ता । इसमें साधारण आदमी ही पिसता है । उसके ही धनोपार्जन के साधन गाय आदि की कुगति होती और अंत में वह कह उठता है कि देश में चारों तरफ मंहगाई बहुत बढ़ गई है । गीत की शैली पूर्णतया लोक शैली है । "भूख के गीत" में इस प्रकार की लोक वर्ग की भावधारा बहुत स्पष्ट रूप से सामने आती है ।

नित नित बढ़त टिकसवा देसवा मांहि ।
परजा यह यमपुर मा भूखन चांहि ।।

दिन दिन बनत कानुनवा फैलत जाल । बिनही श्रम के लूटत धन औ माल ।। –
केवल डाक अफिसवा कछु भल कीन्ह । मितवा केर संदेशवा नित उठ दीन्ह ।।
नित नित नई कुरितिया बाढ़त जाय । अस कोउ नाहि देखाय जो देत मिटाय।
कसकत बार बहुरिया रंडिया होय । है विधि केहिं निधि पार उमरिया होय।
मात पिता के मत पर परै न गाज । जिन मोर साज्यो बारे व्याह को साज।।
गैयन केर कुगतिया सही न जाय । सेठ जी ठाढ़ निहारे चिफलत लाय ।।
देसवा परन महंगिया चहुं दिस आय । दस सेरवा के आगे नाहिं बिकाय[1]।।

इसी प्रकार महंगी सम्बन्धी अनेक लोक गीत इस युग के कवियों ने लिखे हैं[2] जिनका विस्तार भय से उल्लेख असंगत है ।

व्यंग्य का दूसरा विषय ग्रामीण जीवन में फैशन का आगमन होना है । ग्रामीण जीवन में भी शहर के ही समान मेमों के फैशन का प्रचार हो रहा है और अब स्त्रियां लहंगा दुपट्टा पहन कर घर में रत कर काम नहीं करना चाहतीं वे लिख पढ़ कर "सैंया फिरंगिन" बनना चाहती हैं और लहंगा दुपट्टा छोड़कर अब वह मेमों का गाउन पहनना चाहती है । अब वे परदे के कारण "कोठे" या "अटारी" पर नहीं रहना चाहती है वरन् वे अब नदी तट पर बने हुए सुंदर बंगले में रहना चाहती हैं और इस प्रकार अब वह पुरानी

१- हिन्दी प्रदीपः जि०१२, सं०११-१२, पृ० ३० ।

२- वही, सं० ९, पृ० ४ ।

रीति पर नहीं चलना चाहती हैं वरन् चाहती हैं कि नई रीति रसम का वे अनुसरण करें । लोक-मानस के लिए यह अचानक परिवर्तन कैसे सह्य हो सकता था, जिस रीति परंपरा का पालन उसके पूर्वजों ने किया था, उसने किया था उसका विरोध वह कैसे सहन कर सकता था । लोक मानस के लिए इतनी पुरानी रूढ़ियों का बंधन एकदम हट नहीं सकता अतः उसने अपने समय के नारी समूह पर व्यंग किया और नारी के ही शब्दों में उसके वचन कहलाकर उसकी हंसी करवाई । वस्तुतः यह लोकमानस की प्रकृति का एक सच्चा परिचय है । उदाहरण प्रस्तुत है - नारी अपनी इच्छा को प्रकट करते हुए कहती है -

लिखाय नहिं देत्यो, पढ़ाय नहिं देत्यो, सैया फिरंगिन बनाय नहिं देत्यो।-
लहंगा दुपट्टा नीक न लागे, मेमन का गौना मंगाय नहिं देत्यौ ।
वे गोरिन हम रंग संवलिया, रंग में रंग मिलाय नहिं देत्यौ ।
हम न सोइबे कोठा अटरिया, नदिया पै बंगला छवाय नहिं देत्यौ ।
सरसो का उबटन हम न लगैबै, साबुन से देहिया मलाय नहिं देत्यौ ।
डोली मियाना में कब लग डोली, घोड़वा पै काठी कसाय नहिं देत्यौ ।
कब लग बैठी काढ़ै घुंघटुवा, मेला तमासा में जाए नहिं देत्यौ ।
लीक पुरानी कब लग पीटौ नई रीति रसम चलाय नहिं देत्यौ ।
गोबर से न लीपब पोतब, चूना से भितिया पोताय नहिं देत्यौ ।
खुसलिया छदन्बी नन्कू हनकां, विलायत का काहे पठाय नहिं देत्यौ ।
धन दौलत के कारन बलमा, समुंदर में बजरा छोड़ाय नहिं देत्यौ ।
बहुत दिनां लग खटिया तोड़िन, हिंदुन को काहे जगाय नहिं देत्यौ ।
दरस बिना जिय तरसत हमरा,कैसर का काहे देखाय नहिं देत्यौ ।
हिज्र पिया तोरे पैयां पड़त हैं पंचमा एहका छपाय नहिं देत्यौ[1]।।

उपरोक्त गीत में लोक मानस ने आधुनिका नारी के विविध पक्षों पर व्यंग किया है वे विविध पक्ष- लिखना, पढ़ना, सैंया फिरंगिनि बनना, मेमो का गाउन, नदी पर बने बंगले में निवास, साबुन प्रयोग, घुड़-सवारी उत्सव में जाना, घर का चूना से पोतना, विदेश गमन, समुंदर में बजड़े

१- हिन्दी प्रदीप: जिल्द ३, सं० ११ पृ० ११ ।

पर घूमना है । अवधेय है कि आज नारी के लिए यह विविध पक्ष बहुत महत्व-पूर्ण नहीं है , साधारण वस्तुएं है किन्तु लोक मानस के लिए यह संशय की वस्तु है और उसे डर है कि आधुनिकता का यह प्रभाव ग्रामीण नारी को विनष्ट कर देगा । उसे पतन के गर्त में ले जाएगा । इसीलिए वह उन पर कटाक्ष करता है । इस शैली में एक विशेषता और है कि एक ओर ग्रामीण नारियों की विशेषताओं का वर्णन है दूसरी ओर वर्तमान आवश्यकताओं के प्रति आधुनिका का कथन है । एक ओर वह कहती है कि अब तक जो लहंगा दुपट्टा पहना अब मेमों के गाउन की इच्छा है इसी प्रकार कोठे अटारी पर अब रहने की इच्छा नहीं होती खुले हुए स्थान पर नदी के किनारे बने हुए बंगले पर रहने की इच्छा है । इसी प्रकार ग्रामीण नारी का अपने वर्तमान जीवन के प्रति असंतोष तथा आधुनिकता के प्रति आग्रह अंत तक दिखाया गया है । इसी प्रकार जहां उपरोक्त गीत में नारी के आत्मकथन की शैली में गीत लिखा गया है वहीं दूसरी ओर गांव के वृद्धों की शैली में "का भवा आवा है इ राम जमाना कैसा" गीत है जिसमें वृद्धों का शहर की नारियों की स्थिति देखकर हुए असंतोष तथा आश्चर्य का वर्णन है । शैली के उदाहरण के लिए गीत प्रस्तुत है -

का भवा आवा है ए राम जमाना कैसा । कैसी मेहरारू है ई हाय जनाना -
कैसा ।।
लोग क्रिस्तान भए जायँ बनैं साहब । कैसा अब पुन्न धरम गंगा नहाना कैसा।।
हाल रोज़गार गवा धूल में व्यवहार मिला । का सराफ़ी रही हुण्डी का-
चलाना कैसा ।।
धोए के लाज सरम पी गए सब लड़कन लोग । काहे के बाप मतारी रहे नाना
कैसा ।।
आंखी के आगे लगे पीए सबै मिल के सराब । हाय अब जात कहां पंच में जाना
कैसा ।।
पगड़ी जामा गवा अब कोट औ पतलून रही । जब चुरूट है तो इलइची का
खाना कैसा ।।
सबके ऊपर लगा टिक्कस उड़ा होश मोरा । रोवै का चाहिए हंसी ठीठी
ठठाना कैसा[1] ।।

१- हिंदी प्रदीपः जिल्द ११, सं० ११, पृ० १२ ।

उपरोक्त "लिखाय नहिं देत्यों" की शैली तथा "का भवा आवा है हेराम जमाना कैसा" की शैली पर्याप्त मिलती जुलती है दोनों में ही शहर की आधुनिकता को नीचा दिखाते हुए अपनी ग्रामीण संस्कृति का पक्ष लिया गया है ।"कामवा आवा है"कि शैली भी इस दृष्टि से समान है इसमें भी वर्तमान नागरिक संस्कृति के प्रति क्षोभ तथा आश्चर्य प्रगट करते हुए अपनी ग्रामीण संस्कृति के पक्ष में कहा गया है पर दोनों गीतों में शैली की दृष्टि से एक अन्तर विशेष है कि उस गीत का प्रथमार्ध ग्रामीण संस्कृति से तथा उत्तरार्ध नागरिक संस्कृति से संबंधित है जबकि इसका प्रथमार्ध शहर की तथा उत्तरार्ध लोक की संस्कृति से संबंधित है । तुलनात्मक दृष्टि के लिए प्रत्येक गीत की दो पंक्तियां उद्धृत की जाती हैं ।

लहंगा दुपट्टा नीको ना लागे,मेमन का गौना मंगाय नहिं देत्यो ।
सरसों का उबटन हम न लगैबे, साबुन से देहिया मलाय नहिं देत्यो ।।

+ + + +

लोग किरस्तान भए आधे बनथै साहब, कैसा अब पुत्र धरम गंगा नहाना कैसा।
धोए के लाज सरम पी गए सब लड़कन लोग । काहे के बाप मतारी रहे -
नाना कैसा ।।

बालकृष्ण भट्ट द्वारा लिखित गीत:- लिखाय नहिं देत्यो की चल चाल पर ही बालकृष्ण भट्ट के चेले तथा उस युग के महत्वपूर्णलोक शैलियों पर रचना करने वाले कवि परसन[1] ने एक गीत लिखा है जिसमें एक स्त्री अपने पति से कहती है कि वह पुलिस में नौकरी क्यों नहीं कर लेता जिससे उसको बहुत लाभ हो सकता है । अपनी स्त्री को सोना और रुपया से मढ़ सकता है,रात को जहां चाहे चोरी करा सकता है, भले आदमियों को डरा धमका सकता है, तथा विनादाम के चढ़ने के लिए टांगा मंगवा सकता है इस प्रकार कवि ने स्त्री- द्वारा अपने पति से पुलिस में नौकरी कर लेने के माध्यम से - पुलिस पर व्यंग किया इसकी भी व्यंगुप शैली लोक प्रवृत्ति तथा लोक मानस के पूर्णतया अनुरूप है -

---

1- हिंदी प्रदीप:- जिल्द १३, सं० ५, ६, ७ पृ० ५२-५३ ।

सैंया नौकरिया मिलाय नहिं लेत्यौ । बलमा नौकरिया मिलाय नहिं लेत्यौ ।।
जो मानो पिय हमरी सलहिया । पुलिस मा नौकरी मिलाय नहिं लेत्यौ ।।
सोना रुपैया के गहना से तुरतै । सैंया तुम मोहका मढ़ाय नहिं देत्यौ ।।
दिन के तड़ तेड माल कोठरिया । रतिया के चोरिया कराय नहिं देत्यौ ।।
बहुत दिनन की बाढ़ी हौंसिया । बलमा तुम हमरी पुराय नहिं देत्यौ ।।
बिन दामिन की बगुधी बहलिया । चढ़ने का टांगा मंगाय नहिं देत्यौ ।।
हाकिम की करिके खुशामद तुम बलमा । गुड सरविस की पेंशन मिलाय नहिं लेत्यौ ।।
सैंया नौकरिया मिलाय नहिं लेत्यौ[1] ।।

लोक सीख की शैली :-

जहां लोक वर्ग में व्यंग्य परक अनेक शैलियाँ- प्रचलित हैं वहीं लोक सीख की शैलियों ने भी लोक में बहुत प्रचलन पाया है । लोक मानस ने जहां मर्यादा में विरुद्ध नियंत्रण के लिए व्यंग की शैली अपनायी है वहीं दूसरी ओर वह सीख तथा उपदेश भी देता है । कभी यह सीख सामान्य जीवन के कार्य कलापों से संबंधित होती है जैसे पैसे का महत्व लोक वर्ग को समझाना कि बिना पैसे के दुनिया में किसी व्यक्ति का मूल्य नहीं । सब जगह पैसे की ही पूछ होती है और यदि पैसा न हो तो नंगे और भूखे रहना पड़ता है, पेट भी कभी नहीं भरता, और यह भी लोक मानस शिक्षा देता है कि लोग व्यक्ति से नहीं वरन् उसके धन से मित्रता करते हैं - पैसे की लोक शैली में महत्ता बताने वाला गीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

गर हो न पैसा पास । नंगू भूखे फिरे उदास ।।
पैसा मिल जाए तो जो चार । पूरन करे पेट का गार ।।
पैसे रहें पास जो चार । जोड़ू भी करते वे प्यार ।।
पैसे की जग में है यारी । पैसा नहीं तो ख्वारी ख्वारी ।।
पैसा करे तबाह । पैसा बढ़ावै जाह । पैसे की वाह वाह । पैसे की वाह वाह।
दुनिया यह सब पैसे की । माल खजाना दौलत खाना वाला खाना पैसे का ।।
माई बाप भाई बंधु रिश्तेदारी पैसे की ।
काका बाबा बाबा दादा मामा पैसे के ।।

राजपाट औ तख्त ताज सब राजा परजा पैसे का ।
खाना पीना लेना देना भीड़ भाड़ सब पैसे की ।।
दोजख भी दे यही, जन्नत भी दे यही ।
पदवी भी दे यही, इज्जत भी दे यही ।।
पैसे के सब गावैं गीत । इसीलिए बन जावैं मीत ।
पैसा है यह जग में सार । पैसे वाला सबका सरदार ।।
पैसे की वाह वाह । पैसे की वाह वाह[1]।।

इसी प्रकार "बार"शीर्षक लोक शैली में लिखित एक पद्यांश है जिसमें कवि ने "बार" शब्द का प्रयोग कई बार करते हुए अनेक प्रकार की सीख दी है । इस गीत में लोक गीतों की सार्वभौम प्रवृत्ति जिसका आगे विवेचन किया गया है "बार" की पुनरावृत्तिके रूप में प्रगट हुई है । इस गीत में भी लोक मानस के अनुकूल ही बहुत सामान्य तथा जीवन के लिए महत्वपूर्ण विषयों की सीख दी गई है जैसे- (१) पहले अपने घर में दीपक जलाकर तब दूसरे के घर में दीपक जलाओ अर्थात् पहले अपने घर का तथा स्वयं का ध्यान रखना चाहिए (२) पत्र को दो बार पढ़ना चाहिए (३) समय को अच्छी तरह पहचान कर तदनुरूप कार्य में प्रवृत्त होना चाहिए (४) जिसने एक बार झूठ बोला उसका विश्वास नहीं करना चाहिए आदि आदि । इसी प्रकार अन्य अनेक सामान्य बातों की सीख दी गई है जिसका जीवन में बहुत महत्व है । यह सीख की शैली प्रथम प्रकार की लोक सीख की शैली से भिन्न है । इसमें एक ही शब्द की अनेक बार पुनरावृत्ति की गई है और जहां प्रथम उल्लिखित लोक सीख की शैली में एक ही वस्तु का महत्व अनेक प्रकार से समझाया गया है वहीं इसमें अनेक सीख एक ही गीत में दी गई है । इस प्रकार जहां पहले में एक ही वस्तु "पैसे" का अनेक प्रकार से महत्व समझाया गया है वहीं इसमें अनेक सीख एक ही गीत में दी गई है । उदाहरणार्थ गीत प्रस्तुत है -

---

१- हिंदी प्रदीप: जि० २१, सं०३-४, पृ० २३-२४ ।

पहले निज घर दीपक बार-तेहि पाछे दूसर दरबार ।
चिट्ठी पढ़ लीजे दो बार-चाहे कितनी लागै बार ।
काल परिखए बारंबार-दुख को अधिक न आवै बार ।
पुण्य जेउ जो दीजै बार-पूस माघ जब लकड़ी बार ।
जब हो बार करो बार- तो भरसक नापी नहि बार ।
देउ तिलांजुलि वहि दरबार-बिना छूरा मुड़ै जहं बार ।
जेहि को झूठ प्रगट एक बार-फिर विश्वास न कोटिउ बार ।
मंहगी दीन पेटाग्नि बार-रक्षक कोउ न हा यहि बार ।
सागौ पात न मिल संसार-आंति सहारे पीवैं बार ।
चारो अंकुर भया करतार- प्रजा नैन नहि ठहरत बार ।
देशभक्ति है तीखी बार-तेहि को लेय नोचावै बार[1] ।।

इसी प्रकार दूसरी जगह जीवन की अन्य महत्वपूर्ण बातों की सीख दी गई है और कहा गया है कि भोदी की चाकरी, बालू की भीत, बादल की छांह तथा ओछे अर्थात नीच मनुष्य की प्रीति कभी स्थायी नहीं रहती और इसी प्रकार एक घर में पति पत्नी का मतवैभिन्य कलियुग का व्यवहार अर्थात् पतन की ओर ले जाने वाला है । इसी प्रकार सीख दी गई है जिस प्रकार संध्या समय कभी तरोई नहीं फूलती, सदा सावन नहीं रहता उसी प्रकार न तो सदा यौवन ही रहता है और न ही सदा कोई जीवित रहता है । इस प्रकार एक गीत में अनेक लोक सीख दी गई है-

क्या भोदी की चाकरी, क्या बालू की भीत, क्या बादल की छांह री
क्या ओछे की प्रीत ।

एकै घर में दो मता, कलियुग का व्यवहार खसम चले हैं द्वारिका,
मेहरी शाह मदार ।

सांझ न फूलै तोरई, सदा न सावन होय । सदा न जोवन थिर रहे +
सदा न जीवै कोय ।

बिसना बंदर अगिन जल कुटनी कटक कलार । ये दसहोहि न आपने,
सूजी सुवा सुनार[2] ।

1- हिंदी प्रदीप: जि० १२,सं० ८, पृ० १९ ।

स्वास्थ्य संबंधी उपदेश लोक शैलियों में बहुत अधिक मिलते हैं। कामथिक प्रभु के राज के विषय में चौपाई में लिखते हुए लेखक के ने पुलिस संबंधी कटाक्ष के अतिरिक्त स्वास्थ्य संबंधी भी सीख दी है-

सड़कन पर रबड़ी है सस्ती । घाम के होत धूर ह्वै लगती ।।
मील मील पर मदिरा बिकती । यह बड़ भाग स्वास्थ्य को हरती ।।
परवानों की गन्दी टूटटी । स्वास्थ्य को मार मिलायो मट्टी ।।
गली गली घूमत बदमाश । परजा को करते बहुनाश[1]।।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतेंदु युगीन कवियों ने चिर प्रचलित कजली, होली, बिरहा, चैती कबीर, आल्हा आदि की शैली में लोक गीत लिखे हैं तथा इनके अतिरिक्त अनेक नई लोक शैलियों में भी लोक प्रवृत्ति के अनुकूल रचनाएं की है। इन लोक शैलियों के मूल में तथा भारतेंदु युगीन काव्य में किन लोक प्रवृत्तियों का प्रयोग है और इन लोक प्रवृत्तियों के मूल में किस प्रकार लोक मानस निहित है इसका विवेचन आगे किया जाता है।

लोक शैली की सर्वप्रमुख विशेषता भावना की स्वच्छंद अभिव्यक्ति होती है। संस्कार या अनुष्ठान संबंधी गीतों में गायक को स्वच्छंदता का उतना अधिक अवसर नहीं होता जितना ऋतु गीत क्रिया गीत आदि में। इसीलिए संस्कार संबंधी गीतों में स्वच्छंदता की विशेष स्थिति नहीं मिलती है। भारतेंदुयुगीन कवियों ने सभी प्रकार के गीत लिखे हैं और उनमें यह प्रवृत्ति बहुत उभड़ कर सामने आई है ।

लोक मानस तथा लोक गीतों का सबसे प्रिय विषय शृंगार है इसीलिए लोक गीतों में जितने अधिक प्रसंग प्रेमी और प्रेमिका के प्रणय हाव भाव तथा क्रिया कलापों से संबंधित है, उतने किसी से भी नहीं है। कजली लावनी फगुआ सभी के विषय मुख्य रूप से इसी से संबंधित हैं,+

१- हिंदी प्रदीप: जि० १२, सं० १०, पृ० ७-८

और चूँकि लोक गीतों तथा लोक मानस की विशेषता है कि उसकी अभिव्यक्ति स्वच्छंद होती है, उसमें किसी प्रकार का दुराव छिपाव नहीं होता, इसी लिए शृंगार संबंधित भावनाएं स्वाभाविक रूप में अभिव्यंजित हुई हैं। उनके भाव आरोपित नहीं लगते। कहीं नायिका अपनी सखी से अपनी स्थिति के विषय में कहती है कि सूने भवन में अकेली सेज पर सपने में भी कितना प्रयत्न करने पर भी नींद नहीं आती और क्षणभर के लिए भी चैन नहीं पड़ती, रह रह कर जी घबड़ा उठता है-

छिन पल कल नहिं पड़त उन्है बिन रहि रहि जिय घबरावै।
सूने भवन अकेली सेजिया, सपनेहु नींद न आवै।
बदरी नारायन पिया पापी, अजहूं न सुरत दिखावै[१]॥

कहीं वह कहती है कि सैंया मेरी सेज पर आ जाओ और मेरे साथ हृदय से हृदय मिलाकर तथा म मुख से मुख जोड़कर शयन करो क्योंकि मेरी और तेरी जोड़ी अच्छी खासी है-

सेजरिया सैंया आजा मोरी।
सैन करो हिय सौं हिय मेले निज मुख सौं मुख जोरी।
बदरी नारायण है खासी जोरी मोरी तोरी[२]॥

कभी वह नायिका अपने प्रेमी से मनुहार करती है-

पैंया लागूं बलम इत आओ।
कबहूं तो दरसाय चंद मुख जिय की तपन बुझाओ।
बद्रीनारायन दिलजानी, भरभुज गरवां लगाओ[३]॥

तो दूसरी ओर प्रिय भी कहता है- हे दिलजानी। तुम्हारे जोबन गरसभीने हैं, उन्होंने दाड़िम श्रीफल तथा मदन दुंदुभी की छवि ग्रहण की है और अपनी प्रेमी की सुंदरता पर मुग्ध होकर वह कहता है कि म प्रिय। तुम्हारी प्यारी सूरत मेरे मन को भा गई है और अब इन आखों को किसी और की छवि नहीं जंचती-

---

१- प्रे० सर्व० पृ० ४२२। २- वहीं, पृ० ४५४।

३- वहीं, पृ० ४२५।

प्यारी प्यारी सूरत मन भाई रे ।
अब इन दृगन जंचत नहिं कोऊ जब सौं छबि दरसाई रे ।
बदरी नारायण पिय तोरी चितवन मन में समाई रे[१] ।।

प्रेमी की इस मनोमुग्धता को देखकर प्रेमिका भी उसके स्नेह से अभिभूत हो जाती है और कह उठती है कि प्रियतम तुम्हें बिना देखे यह नेत्र नहीं मानते । समझाने से कुछ समझते नहीं और बरबस ही हठ ठाने रहते हैं । तुम्हारे नेत्रों ने मुझे पूरी तरह अपनेवश में कर लिया है-

बिन देखे प्रीतम प्यारे नयनवां न मानैं- हो राम ।
समझाए समुझत कछु नाहीं रे- बरबस ही हठ ठानैं ।
बद्रीनाथ लाजकुल कानिहरे- ये जुल्मी नहिं मानै ।।
मन बरबस बस कर लीनो बालम तोरे नयनां रे ।।
बद्रीनाथ सुरत ना भूलत, झूलत बाके नयना रे[२]।।

लोक मानस में दुराव छिपाव की प्रवृत्ति नहीं है उसके भाव उन्मुक्त हैं । वह अपनी छोटी से छोटी भावना चाहे व शृंगारिक हो चाहे कारुणिक या विनोद संबंधी सबमें वह समान रस लेता है । शिष्ट साहित्य में वह भावनाएं परिष्कृत रूप में सामने आती हैं। उनमें जनमानस की स्वाभाविक भावनाओं का उल्लेख नहीं, यही कारण है कि वे जनमानस या लोकमानस को समान रूप से आकृष्ट नहीं करतीं। वहीं लोकगीत में शिष्ट साहित्य के पाठक को भी लोक साहित्य में रस मिलता है और वह चाहे अपने को कितना ही शिष्ट साहित्य की श्रेष्ठता सिद्ध करने का पक्षपाती समझे किंतु वह लोक गीतों की रसप्रेषणीयता शक्ति से इंकार नहीं कर सकता । जो लोक साहित्य में मुनिमानस को अशिष्ट लगेगा वही लोक साहित्य में गुण होगा क्योंकि मुनिमानस तथा लोक मानस में यही अंतर है कि मुनिमानस परिष्कार चाहता है तथा लोकमानस जीवन की

१-वही--पृ० कृ० प्र० सर्व० पृ० ४२५ ।

२- वही, पृ० ४२६ ।

स्वाभाविक अभिव्यक्ति ही साहित्य का उद्देश्य समझता है । जो मानव सोचता है, जो देखता है और जिसमें उसे रस मिलता है वह अशिष्ट नहीं है वह मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति से संबंधित होने के कारण एक बड़ा गुण है

लोक गीतों में प्रेमिका का प्रेमी को सेज पर बुझाने के प्रसंग अनेक हैं । प्रेमिका का प्रिय की तथा प्रिय का प्रेमिका की रूप प्रशंसा के अनेक प्रसंग है । वह इनमें कोई अशिष्टता नहीं समझता । लोक गीतों में कहीं प्रेमिका कहती है-

सेजरिया रे आवत काहे न पार ।
बीतत जात दिवस आवत नहिं, नाहक करत अनार ।
क्यों बैठाय अवधि नौका पर अब कस कसत कनार ।
प्रेम पयोनिधि, मैं गहि बहियां बोरत कत मझधार ।
बदरीनारायन छतिया लगि के करि जा तू प्यार[1] ।।

कहीं वह अपने नैनों को दोष देती है कि ये मेरे वश में नहीं रह गए हैं-

पापी नैना नहीं बस मेरे ।
रूप अनूपम अवलोकत ही जाय बनत चट चेरे ।
फिर नहिं इन्हें चैन सपने हूं, बिन वा छबिछन हेरे ।
लोक लाज तज यार गली में करत रहत नित फेरे ।
श्री बद्रीनारायण जू फंसि प्रेम जाल में तेरे[2]।।

दूसरी ओर प्रेमी भी नहीं चूकता वह अपनी प्रेमिका की भी पर्याप्त रूप प्रशंसा करता है । कहीं वह कहता है कि उसके शरीर की कांति दामिनि के समान शीघ्र प्रभाव डालने वाली है और वह कलह की खान है अर्थात वह इतनी रूपवती है कि उसके लिए लोग मारने मरने को तैयार हैं ।

१- प्रे० सर्व० पृ० ४२७ ।
२- वही, पृ० ४१६ ।

राह चलते रसिक युवक को देखकर वह भौंह रूपी कमान तानती है और वह नैन रूपी बान से सुरमा की सान चढ़ाकर प्रहार करती है । उसकी गोरी भुजाओं पर छिटकी हुई सघन श्याम लटकें उसकी छवि को द्विगुणित करती हैं। उसके गालों पर भुलनियों की झूलन, पैजावनि की झनकार झुमका गुंजों का गुंजन, नथनी का सौन्दर्य, मिसी तथा पान से शोभित अधर अत्यंत सुशोभित होते हैं । कहीं वह करंवदे के माध्यम से अपनी प्रेमिका का नख शिख वर्णन करता है और उन्मुक्त स्वरों में गा उठता है-

पाये भल लाये रंग लाल रे करंवदा । नाहीं ओस मेस दूनो गाल रे करवंदा ।
ओठ लखि विकल प्रबाल रे करंवदा । कुन्दन गिरत ससिहार रे करंवदा ।
देखि देखि नैनन के हाल रे करंवदा । कंवल कुड़ल छिव हाल रे करंवदा ।
लखि अंटखेलिन की चाल रे करंवदा । लजि लजि भजलैं मराल रे करंवदा ।
निरखत भुजन बिसाल रे करंवदा । कीच बीच धुसल मृणाल रे करंवदा ।
देखि देखि ठोढ़िया के ढाल रे करंवदा । पकि चुई परल रसाल रे करंवदा ।
लखि कुच कठिन कमाल रे करंवदा । दाड़िमहूं भयल हलाल रे करंवदा ।
ससि पर आयल ज्याल रे करंवदा । लखि भल चमकत भाल रे करंवदा ।
प्रेमधन धन अलि लाल रे करंवदा । लाजे लखि घुंघराले बाल रे करंवदा[1]।

किन्तु समस्त अंगों के सौन्दर्य वर्णन के उपरांत भी वह समझता है कि गोरी का रूप उसके स्तनों के कारण ही उभरता है और इसी जोवन के कारण वह गजब ढाती है इसीलिए तो गायक कहता है-

गजब कियो गोरिया तोरे जुबनां रे ।
लगत मरन नहि अस को जग मंह विष्ण बेधे सैना रे[2] ।

फिर वह जोबन को बड़ा जोड़ वाला कहता है क्योंकि-

जोबनवा तोरे बड़े बरजोर रे,
का करिहैं जानी बढ़े पर न जानी,
अबहीं तो हैं ये उठे थोरे थोरे रे ।

१- प्रे० सर्व० पृ० ५१३ ।
२- प्रे० सर्व० पृ० ४३० ।

छाती फारी देखे छाती पर तोरे,
नोकीले जैसे कटरिया के कोररे ।
प्रेम के पीर बढ़ावै भलकते,
है घन प्रेम छिपे चित चोर रे[1]।।

तो दूसरी ओर प्रेमिका भी अपने पति की रूपसज्जा का तथा रूप प्रशंसा का वर्णन करते हुए कहती है कि तुम्हारी सूही पगरी बहुत सुंदर लगती है । कहीं वह कहती है तुम्हारे बाके नैन बहुत रसीले हैं उन्होंने जादू डाल रक्खा है सिर पर मोरमुकुट, अधर पर मुरली कान में बाला और हृदय में बन माला बहुत शोभित है । कहीं नायिका अपने प्रेमी से कहती है कि मैं तुम्हें "छ्यल" बनाऊँगी । तुम्हारी पगड़ी जयपुर तथा ढाके से मंगवाकर सूही रंग में रंगवाउंगी । पगड़ी बांधकर फिर मुंह चूमूंगी और फिर हृदय की कसक मिटाउंगी । इस प्रकार हम देखते हैं कि शृंगार संबंधी प्रसंगों की लोक गीतों में उन्मुक्त अभिव्यक्ति हुई है । शिष्ट साहित्य में यदि इस प्रकार के प्रसंग आते तो उनमें अश्लीलत्व दोष ढूढ़ा जाता किन्तु लोक गीतों में यही विशेषताएं दोष के स्थान पर गुण हो जाती हैं क्योंकि लोक गायक अपने गीतों में शिष्टता का आवरण नहीं चाहता वह जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति का पक्षपाती है ।

भावों की स्वच्छंद प्रवृत्ति हमें उन व्यंगय गीतों में भी देखने को मिलती है जिनमें कबीर की ही भांति निःशंक भाव से धर्म के ठेकेदारों, साधारण मनुष्य का खून पीकर जीने वाले तथा काम चोर सत्ताधारियों और अपना कर्तव्य पूर्णतया न निबाहने वालों पर भी व्यंग किया गया है । लोक की व्यंग्य शैली का अनुमान कीजिए जिसका प्रभाव कितना तीव्र होता है कि उनके व्यंग से घबड़ा कर तत्कालीन सरकार पत्रिका जब्त करवा लेती थी । शिष्ट साहित्य मे यह स्वच्छंदता निर्भीकता ढूढ़े नहीं मिलती । कुछ उदाहरण देखिए जिनमें सिपाही, दरोगा, कोतवाल, कलक्टर, अंग्रेजी

1- प्रे० सर्वे० पृ० ५२३ ।

सरकार आदि पर व्यंग किए गए हैं-

पुलिस-

(१) रुपया तीन नौकरी पावैं । आप साय कि घर पठवावैं ।
चोर देख के जाएं लुका हीं । इनका कहीं कि क अहीं सिपाही[१] । ।

(२) चोर को तो धरती नहीं, भल मनई पकड़ती ।
थाना कोतवलिया मां बैठ बैठ अकड़ती ।
पुलिस है जालिम जोर बिरहिया,
पुलिस है जालिम जोर[२] ।।

(३) जो मानो पिय हमरी सलहिया-पुलिस मां नौकरी लिखाय नहिं लेत्यौं
सोना रुपैला के गहना से तुरतै-सैंया तुम मोहल्ला मढ़ाय नहिं लेत्यौं ।
दिन के तड़तेह माल कोठरिया-रतिया के चोरिया कराय नहि लेत्यौं
धन पतियन के माल खजाना-सैंया तुम घरमा बटाय नहिं लेत्यौं[३] ।

(सुराज (अंग्रजी राज)

(१) मन माने का करैं कुन्यांय, बोलन को नहिं देवै दाव ।
बहुराजन को दीनो राज इनका कही कि अहीं सुराज[४] ।

(२) भूखो ऊपर टिक्कस लागै, दुखिया बेगारी । ।
काम करावै डांट डांट के, दे दे मार गारी ।।
अंग्रेजी सरकार बिरहिया,
अंग्रेजी सरकार[५] ।

१- हिंदी प्रदीपः जि० १३,सं० १, पृ० २-४

२- हिंदी प्रदीप जि० १३, सं० ५,६,७, पृ० ५२-५३

३- हिंदी प्रदीप जि० १३, सं० २,३,४, पृ० २१-२२ ।

४- हिंदी प्रदीप जि० १३, सं० १,पृ० २-४

५- हिंदी प्रदीप जि० १३, सं० ५,६,७,पृ० ५२-५३ ।

दरोगा

(१) बदमासन से जाते घबरा, मुँह देख के जाते घबरा ।
कहते होगा होगा होगा इनका कहीं कि नहीं दरोगा[1]।

कलक्टर

(१) शहर की कबहूं खबर न मांगै, टेन औकलाक सोय के जागै
मनमौन का छोडे फइटर इनका कहीं कि नहीं कलट्टर[2] ।

इसी प्रकार अनेक लोगो पर व्यंग किया गया है । यह व्यंग सिपाही, दरोगा, कोतवाल, कलक्टर, पडोसी, महीपति, बिरादर, उपदेशक, अमीर, सपूत, महाजन एडीटर, ग्राहक, कमिश्नर, लाट, ज्योतिषी, कथावाचक, मठाधीशी आदि अनेकों पर हुआ है जिससे भारतेंदु युगीन कवियों की उन्मुक्त निःशंक तथा गंभीर लोक शैली में किए गए व्यंगों पर प्रकाश पड़ता है ।

लोक मानस ने अनमेल विवाह को भी कई दृष्टियों में हानिकारक तथा देशकी उन्नति में बाधक और नैतिक दृष्टि से हीन समझा है अतः उसने अनमेल विवाह पर भी लोक शैलियों में गीत लिखते हुए व्यंग किया है । यह अनमेल विवाह के प्रसंग केवल एक प्रदेश के लोक गीत में ही वर्णित नहीं है वरन अनेक प्रदेश के लोक गीतों में इनका वर्णन मिलता है ।

लोक गीतों में जहां अन्य विविध प्रसंगों का मुक्त वर्णन मिलता है वहां उसमें अनमेल विवाह अर्थात् बाला वृद्ध विवाह तथा बालक बाला विवाह पर भी बहुत कुछ कहा गया है जिसमें कहीं तो बालक पति के प्रति बाला का कथन है कि वह किस प्रकार अपनी इच्छाओं का दमन करती है, किस प्रकार वह अपने बाप को तथा अपने घर वालों को दोषा-

---

१- हिंदी प्रदीप जि० १३, सं० १, पृ० ३-४

२- हिंदी प्रदीप जि० १३,सं० १, पृ० ३-४ ।

देती है, कि किस प्रकार उन्होंने आंख मूंद कर बिना जाने बूझे विवाह रचा दिया और किस प्रकार छोटे पति के होने के कारण उसका यौवन समाप्त होता जा रहा है, दूसरी ओर उस बाला का वर्णन है जिसका संयोग वृद्ध पति से पड़ा है और वृद्ध पति किस प्रकार विविध आकर्षण तथा आशाएं दिखलाकर फुसलाना चाहता है और किस प्रकार बाला उसके फुसलाने में नहीं आती, उसकी उपेक्षा करती है तथा उलाहना देती है, क्योंकि वह समझती है कि जबतक उस पर जवानी चढेगी तब तक उसका पति परलोक गामी हो जाएगा। लोक मानस ने अनमेल विवाह की स्थिति को अच्छी तरह पहचाना है तथा पति ~~पत्नि~~ पत्नी के क्रिया कलापों का उनकी अनुभूतियों का तथा एक दूसरों के उलाहनों का बड़े रोचक तथा स्वाभाविक ढंग में वर्णन किया है।

अनमेल विवाह के प्रसंग केवल एक भाषा के ही गीत में नहीं वरन् सभी भाषाओं के लोक गीत में मुखरित हुए हैं। कुछ लोक गीतों से अनमेल विवाह संबंधी उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

भोजपुरी प्रदेश का एक अनमेल विवाह संबंधी गीत है जिसमें एक ग्रामीण युवती का अल्पवयस्क पति पाने के कारण दुख का द्रावक वर्णन है। युवती अपनी स्थिति बताते हुए कहती है-

बनवारी हो, हमरा के लरिका भतार ।टेक।
लरिका भतार लेके सूतली ओसरावा ।
बनवारी हो, रहरी में बोलेला सियार ।।बनवारी।।
खोले के त खोली बंद खोलेला किवार ।
बनवारी हो जरि गइलि एड़ी से कपार ।।बनवारी।।
सुते के त सिरवा सुतेला गोनतारि ।
बनवारी हो जरि गईले एड़ी से कपार ।
रहरी में सुनि के सियार के बोलिया ।।बनवारी।।
बनवारी हो रोवे लगले लरिका भतार ।।बनवारी।।
आंगना से माई अइ ली, दुअरा से बहिना ।
बनवारी हो, के मारल बबुआ हमार।।[1] बनवारी।।

इसी प्रकार बालक बाला संबंधी अनमेल विवाह के अनेक प्रसंग भोजपुरी लोक गीतों में है[1]। मैथिली में विद्यापति द्वारा लिखित नचारी में भी अनमेल विवाह का ही प्रसंग है जिसमें पार्वती की मां बूढ़े शिव को देखकर रुष्ट होती है और अपनी बेटी को भाग लेकर निकलने का तथा क्रांति करने का प्रयत्न करना चाहती है और कहती है-

हम नहिं आजु रहब एहि आंगन, जौ बुढ़ होएत जमाइ, गे माई ।
पहिलुक बाजत डामरू तोड़ब, दोसरे तोड़ब रुंडमाल,
बरद हांकि बरिआत बेलाएब, धिआ लै जाएब, पराई गे माई[2]।

लोक गीतकारों ने भी अनमेल विवाह के प्रसंग में शिव और पार्वती विवाह को आलंबन बनाकर कई गीत लिखे हैं[3]। इस प्रकार प्रत्येक भाषा के लोक साहित्य में अनमेल विवाह संबंधी अनेक प्रसंग आए हैं ।

भारतेंदु युगीन कवियों ने अनमेल विवाह संबंधी कई गीत लिखे है अनमेल विवाह संबंधी गीतों का मुख्य रूप से निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर अध्ययन किया जा सकता है-

(१) बालक-बाला विवाह- इस वर्ग में वे अनमेल विवाह संबंधी गीत परिगणित होंगे जिसमें पति अल्पवयस्क तथा पत्नी युवती है ।

(२) बाला वृद्ध विवाह- जिसमें पत्नी युवती तथा पति वृद्ध हो ।

उपर्युक्त दोनों प्रसंगों से संबंधित गीत भारतेंदु युगीन कवियों ने लिखे हैं ।

प्रथम प्रकार के गीतों में कहीं बाला अपने पति को जो अवस्था में उसके लड़के के समान लगता है का वर्णन करती है कि वह भौंरा चकई खेलता है, गुल्ली डंडा खेलता है । उसके छोटे छोटे दांत हैं और थोड़ा थोड़ा तुतलाकर बोलता है और वह उसे सोहर गागाकर सुनाया करती है । पत्नी अपने पति को कभी चंदरी, ओढ़नी पहनाकर काजल, सेंदुर लगाकर

१- भोजपुरी ग्रामगीत: कृष्णदेव उपाध्याय पृ० १२९ ।
२- विद्यापति पदावली: रामवृक्ष बेनीपुरी पृ० ३०३ ।
३- मैथिली लोकगीतों का अध्ययन: तेजनारायण लाल पृ० १५२ ।

माथे पर टिकुली लगाकर एक छोटी दुलहिन का रूप बनाकर गोदो में उठाकर पुचकार कर खिलाती है तो कहीं वह शरमाकर कहती है कि उसका छोटा पति इतना अधिक छोटा है कि वह पैर उठाकर भी उसका वक्ष नहीं छू पाता और इस प्रकार वह व्याकुल होकर अपने छोटे से पति की खिल्ली उड़ाती है। इस प्रकार के स्थानिक ग्राम्य स्त्री की भाषा शैली देखिए:-

भौंरा चकई बहाय, गुल्ली डंडा खिलराय,
तनी नाचः इतराय, मोरे बारे बलमूं ।
करि हैयवां हिलाय, औ भउँह मटकाय,
ताली दै कैचकाय, मोरे बारे बलमूं ।
खोंड़ी दतुली दिखाय, तनी तनी तुतराय,
गाय सोहर सुनाय, मोरे बारे बलमूं ।
आनः यहर नगिचाय, घंघरी देई पहिराय,
सुन्दर ओढ़नी ओढ़ाय, मोरे बारे बलमूं ।
नैना काजर सुहाय, देई सेंदुर पहिराय,
माथे टिकुली लगाय, मोरे बारे बलमूं ।
नई दुलही बनाय, गोदी तोहके उठाय,
मुंह चूमब खेलाय, मोरे बारे बलमूं ।
पावै पावों न उठाय, छाती,बाल पिय पाय,
गोरी कह तौ सरमाय- मोरे बारे बलमूं ।
प्रेमघन अकुलाय, रस बिना बिलखाय,
कहैं खिल्ली सी उड़ाय, मोरे बारे बलमूं[1]।।

दूसरी ओर अल्पवयस्क पति वाली युवती पत्नी का कथन है कि वह चाहे अब नैहर में व्यर्थ ही अपनी जवानी व्यतीत कर डाले पर इस छोटे से पति को लेकर वह क्या करेगी । क्योंकि वह तो "जोबन जोर जवानी

१- प्रेमघन सर्वस्वः पृ० ५४४-५४५ ।

में मदमाती" हुई है और दूसरी ओर नादान छोटा पति है । वह सोचती है कि उसका नादान पति तो घड़ी उठाकर भी उसका यौवन नहीं स्पर्श कर सकता है । वह कहती है कि पति की दशा देखकर तो लगता है कि माता-पिता ने मुझे धोखा दिया अब किस प्रकार मधु और माधव मास व्यतीत होंगे इसमें हे राम तुम्हीं सहायक हो । बाला अपने माता पिता को तथा परिजनों को भी दोष देती है जिन्होंने बिना समझे बूझे विवाह कर दिया वह कहती है -

> बूढ़े बेइमान बाप जी पूजन पांव लगे हैं रामा ।
> हरि हरि मानो उनके फूटे दोउ नैनवा रे हरी ।।
> पकरि हाथ संकलपत बेचारी बेटी बेदरदी रामा ।
> हरि हरि कैसे बची करी अब कवन बहनवा रे हरी ।।
> नहिं उर दया, धर्म नहिं, लज्जा लोक लेस मन ल्यावै रामा।
> हरि हरि बोरत बाई जनम मोर दुसमनवा रे हरी ।।
> बेचत गाय कसाई के कर । कोऊ हरकत नाहीं रामा ।।
> हरि हरि जुरे नात औ भाई सबै सयनवा रे हरी[1]।।

अपने परिजनों तथा पिता माता को दोष देने के अतिरिक्त अपने नादान पति की मांडव में स्थिति का वर्णन भी बड़े रोचक शैली में वह करती है -

> गोदी चढ़े दूध से पीयत दूलह ब्याहन आए रामा ।
> हरि हरि लै बैठाए माड़व बीच अंगनवा रे हरी ।।
> बरबस पकरि नारि घिसियावैं पैर परै नहिं आगे रामा ।
> हरि हरि नाहीं मानै हमरा कोउ कहनवा रे हरी[2]।।

अंत में बाला कहती है कि अब तो धैर्य नहीं रक्खा जाता काम-देव अपने तीखे बाणों से प्रहार करने लगा है । वह कहती है या तो मैं अब

१- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० ५३५ ।
२- वही, पृ० ५३५ ।

विष खाकर मर जाऊँगी या कारी कटारी से अपनी आत्म हत्या कर लूँगी या फिर किसी और स्थान पर निकल जाऊँगी । ऐसे देश कुल और जाति में मेरा निर्वाह नहीं हो सकता ।

दूसरा अनमेल विवाह सम्बन्धी वह लोक गीत है जो बाला वृद्ध विवाह से संबंधित है । इस अनेमल विवाह से संबंधित गीत में यही दिखाया गया है कि वृद्ध किस प्रकार समझा बुझाकर झुलनी झूमक चम्पाकली टीका, बुंदा बाला, सारी लहँगा चोली आदि विविध वस्तुएँ दिखाकर पत्नी को प्रसन्न करना चाहता है किन्तु वह यही कहती है -

> चलः हटः जिनि फाँसा पट्टी हमसे बहुत बघारः रामा।
> हरि हरि फुसिलावः जिनि दै दै बुन्दा बाला रे हरी ।।
> भोली गुनि भरमावः काउ रिझावः ? हम ना रीझब रामा
> हरि हरि समुझावः जिनि कै कै बुन्दा बाला रे हरी[1] ।।

वृद्ध राजपाट धन धाम सभी उसके नाम लिख देने को कहता है, चुमकारता, पुचकारता है अनेक प्रकार के प्रेम दिखलाता है किन्तु वह कहती है अपना सारा धनधाम राजपाट किसी और के नाम लिख दो । मुझे यह सब नहीं चाहिए और उसको समझाती है - कि तुम अस्सी बरस के हो जितने हमारे दादा है और मैं अभी केवल बारह बरस की बाला हूँ । जब तक मैं जवान होऊँगी तब तक तुम परलोक वासी होंगे फिर हम लोगों का संयोग कैसे हो सकता है । कहीं मुर्दा और जिन्दा का मन मिल सकता है और तुम्हें तो चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए । तुम मुंह दिखलाने योग्य नहीं रहे और यदि अपनी खैरियत चाहते हो तो अब राम नाम की माला का जाप करो । इन अनमेल विवाह सम्बन्धी गीतों की शैली पूर्णतया लोक शैली है जिनसे तत्कालीन समाज में नारी की विषम स्थिति का परिचय मिलता है कि कहीं तो वह किसी छोटे बालक के साथ ब्याह दी जाती थी और कहीं किसी वृद्ध के गले मढ़ दी जाती थी तथा जीवन भर उसे उसको साथ रहना पड़ता था ।

१- प्रेमघन सर्वस्वः पृ० ५३५-५३६ ।

लोक गीतों की दूसरी मुख्य विशेषता उनकी पुनरावृत्ति प्रवृत्ति है । और यह लोक गीतों की पुनरावृत्ति प्रवृत्ति केवल किसी विशेष प्रदेश के गीतों या हिन्दी लोक गीतों तक ही सीमित नहीं है वरन् विश्व के किसी भी कोने के तथा किसी भी जाति के लोक गीतों में यह प्रवृत्ति स्पष्टतः देखी जा सकती है । कारण स्पष्ट है लोक गीत गेय होते हैं और उनकी महत्ता उनकी संगीतात्मकता में है । संगीत में पुनरावृत्ति का विशेष महत्व है[१] और इसलिए लोक गीत, जो संगीत को आवश्यक तत्व मानकर चलता है, में पुनरावृत्ति का तत्व आ जाना नितान्त स्वाभाविक ही है ।

पुनरा वृत्ति से तात्पर्य उन अक्षरों, शब्दों, अर्ध पंक्तियों तथा पंक्तियों की एक से अधिक बार आवृत्ति से है जिनका प्रयोग लोक गायक भाव सौंदर्य, भाव स्पष्टता, रोचकता के लिए तथा इच्छानुसार करता है । लोक संगीत या लोक गीत में पुनरावृत्ति एक प्रमुख तत्व है और अनेक लोक गीत ऐसे हैं जिनमें से पुनरावृत्ति को यदि हटा दिया जाए तो सारी कविता ही परिमाण में आधी रह जाए और यदि पुनरावृत्ति तद्वत रहे तो लोक गीतों का नाद सौंदर्य द्विगुणित हो तथा भाव प्रवर्धन के साथ लोक गीतों का प्रभाव भी गंभीरतर हो । यह पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति प्रायः सभी देश तथा प्रान्त के लोक गीतों में पाई जाती है । मुण्डा लोक गीतों में एक अन्वेषक ने मुण्डा लोक गीतों की इस प्रवृत्ति की ओर संकेत भी करते हुए लिखा है -"मुण्डा गीतों की प्रत्येक पंक्ति बड़ी सुन्दरता के साथ दोहराई जाती है जो लोक गीतों के सौंदर्य में चार चांद लगा देती है । अगर इस पुनरावृत्ति को हटा दिया जाए तो सारी मुण्डा कविता परिमाण में आधी रह जाए और सौंदर्य में उतना भी न शेष रहे ।" शास्त्रीय संगीत में लोक गीतों की यह पुनरावृत्ति सम्बन्धी विशेषता असंस्कृत, भाव बोधन और रस प्रेषणीयता में बाधक लगेगी किन्तु दूसरी ओर लोक गायक के लिए यही पुनरावृत्ति रस प्रेषणीयता में साधक तथा भाव बोधन में सक्षम समझी जाती है ।

१- Robert Greves: The English Ballad p.97.

पुनरावृत्ति प्रवृत्ति लोक गीतों में इतनी व्यापक क्यों होती है ? यह प्रवृत्ति चाहे अफ्रीका के लोक गीत हो चाहें अमरीका, भारत या किसी अन्य देश के लोक गीत हों सभी में यह पुनरावृत्ति एक सामान्य प्रवृत्ति के रूप में मिलती है । ऐसा क्यों है ? यह एक समस्या है । इसके पीछे ऐसे कुछ कारण अवश्य होंगे जो देशकाल की सीमा लांघकर प्रत्येक लोक गीतों में अन्तर्निहित हैं जिनका लोक गायक, लोक गीत, लोक शैली, तथा लोक मानस से घनिष्ठ सम्बन्ध है और जिनका अनुसंधान इस दिशा में एक नया चरण है । लोक गीतों में पुनरावृत्ति के अनेक कारण हैं जिनमें से प्रमुख कारण निम्नलिखित रूप में निर्देश किए जा सकते हैं ।

(१) <u>शब्द भंडार की कमी</u>:-

लोक गायक के पास भावों की कमी नहीं, किन्तु शब्द भांडार की कमी अवश्य है । उसके पास छोटा शब्द भंडार है जिसके द्वारा उसे अपने अनन्त भावों की अभिव्यक्ति करनी है, तथा अपने सुख दुख को, अपने हृदय की आशाओं और व्यथाओं को दूसरों तक पहुंचाना है यही कारण है कि उसे थोड़े से ही शब्दों को लेकर बार बार विभिन्न स्वरों और लयों में दुहराकर अपनी बात दूसरों तक पहुंचानी होती है । इसी शब्द भांडार के ही कारण उसे प्रतीकों का भी सहारा लेना पड़ता है और इसी कारण से लोक भाषा प्राय: कभी कभी अटपटी सी भी हो जाती है । यही कारण है कि लोक गीत के शब्द सामान्य अर्थ रखते हुए भी दूरार्थ रखते हैं और पाठक तथा श्रोता को रसपान करने के लिए िन उन सीमित शब्दों की अभिव्यंजना को बहुत दूर तक हृदयंगम करना पड़ता है । लोक गीतकार को उत्तराधिकार रूप में संगीततत्व मिला है, क्योंकि यह मानव की सहजात प्रवृत्ति से संबंधित है, और इसका संबंध आवेग(Emotions) से है । लोक मानस में आवेग की प्रधानता रहती है, लोक मानस चूंकि सहज और निर्विकार मानस के से संबंधित है इसलिए उसका आवेग से निकटतम संबंध होना निश्चित ही है और इसीलिए आवेग प्रधान लोक मानस जिससे लोक गीत की रचना होती है, में स्वरों की प्रधानता रहती है उनमें स्वरों का ही महत्व भाषा से अधिक हो जाता है । भाषा विकास का रूप है इसीलिए लोक गायक तथा लोक गीतकार को भाषा तत्व

उतना दाय में नहीं प्राप्त हुआ जितना स्वरतत्व या संगीततत्व । भाषा तत्व का अधिकार प्राप्त न होने के कारण उसका शब्द भंडार सीमित रहा और दूसरी ओर संगीतात्मकता के कारण लोक गीतों में पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति को बल मिला । लोक गीतों में पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति का एक महत्व पूर्ण कारण शब्द भंडार की कमी है ।

(२) सामूहिक गान में सरलता: -

लोक गीतों की यह सामान्य प्रवृत्ति है कि वे अकेले नहीं गाए जाते, वे या तो किसी दूसरे व्यक्ति के साथ मिलकर गाए जाते हैं या एक समूह की अपेक्षा रखते हैं । यही कारण है कि लोग गीतों में प्राय: ऐसे संबोधनात्मक शब्दों का प्रयोग मिलता है या प्रश्नोत्तर शैली मिलती है या ऐसे शब्दों की लगातार एक ~~सके~~ क्रम से आवृत्ति मिलती है जिससे निश्चित होता है कि ये गीत अकेले प्राय: नहीं गाए जाते हैं । सामूहिक रूप से गाए जाने वाले लोक गीतों में निम्नलिखित गीतों की स्थितियां होती हैं ।

(क) दो व्यक्तियों द्वारा मिलकर गाए जाने वाले गीत- अनेक लोक गीत ऐसे है जो दो व्यक्तियों द्वारा मिल कर गाए जाते हैं । एक व्यक्ति गीत की एक पंक्ति दोहराता है और दूसरा व्यक्ति दूसरी पंक्ति कहता है और इस प्रकार अंत तक गीत का क्रम चलता रहता है । ऐसे लोकगीत में पुनरावृत्ति की दृष्टि से अवधेय है कि दो व्यक्तियों द्वारा गाए जाने वाले गीतों में प्राय: प्रत्येक गायक द्वारा दुहराई जाने वाली पंक्तियों के अंतिम शब्द या अंतिम अक्षर प्राय: एक से होते है जिनसे गायक को ज्ञात होता है कि गीत का एक चरण समाप्त हो गया और अब दूसरी पंक्ति दोहराने के लिए तैयार रहना चाहिए । इस पुनरावृत्ति के माध्यम से ही गीत में लय विक्षेप नहीं होता और गायक अपने क्रम के विषय में निश्चित रहता है, इससे गाने में सरलता होती है । दो व्यक्तियों द्वारा गाए जाने वाले गीतों को भी दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है ।

१- वे दो व्यक्तियों द्वारा गाए जाने वाले गीत जिनकी प्रत्येक पंक्ति के अंत में एक ही शब्द की पुनरावृत्ति गीत के अंत तक होती रहती है ।

२- वे दो व्यक्तियों द्वारा गाये जाने वाला गीत जिसमें एक व्यक्ति गीत गाता है तथा दूसरा व्यक्ति प्रत्येक गीत की पंक्ति के बाद गीत की टेक दुहराता जाता है । और इसी प्रकार पूरे गीत तक क्रम चलता रहता है ।

(ख) समूह द्वारा गाया जाने वाला लोक गीत- लोक गीतों में अधिकांश लोक गीत ऐसे हैं जिनके गाए जाने के लिए एक समूह की अपेक्षा होती है और जो अकेले गाए ही नहीं जा सकते हैं । प्रायः जितने भी संस्कार गीत हैं चाहे वे सोहर हों या विवाह सम्बन्धी, सभी साथ मिलकर ही गाए जाते हैं । ऐसे सामूहिक गीतों में यह पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति सबसे अधिक मात्रा में मिलती है । विवाह सम्बन्धी तो अनेक लोग गीत ऐसे भी हैं जिनमें केवल दो शब्द जो प्रायः नामवाची ही है, उनका ही प्रत्येक पंक्ति में परिवर्तन होता है अन्यथा संपूर्ण गीत में कोई भी ऐसा शब्द नहीं जिसकी पूर्ण गीत तक पुनरावृत्ति न हुई हो । सोहर, बन्ना, घोड़ी, ज्योनार, सेहरा आदि प्रायः इसी प्रकार के गीत होते हैं । जो संस्कार सम्बन्धी गीत नहीं है, उनमें भी, यदि वे समूह द्वारा गाए जाते हैं तो पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति बड़ी व्यापक है । प्रायः आरम्भ और अंत दोनों में शब्दों की पुनरावृत्ति होती है ।

३- <u>प्रश्नोत्तर शैली</u>:-

प्रश्नोत्तर शैली के कारण भी लोक गीतों में पुनरावृत्ति होती है। प्रश्नोत्तर शैली वाली कविता में प्रायः प्रथम पंक्ति में प्रश्न होता और दूसरी पंक्ति में प्रश्न का उत्तर देते हुए प्रथम पंक्ति के उत्तरार्ध भाग की पुनरावृत्ति कर दी जाती है । प्रश्नोत्तर शैली वाले लोक गीतों में कभी तो लगातार प्रश्न पूछे जाते हैं जिनसे प्रश्नवाची शब्दों की आवृत्ति होती रहती है तथा कभी - कभी लोक गीतों में प्रथमार्द्ध में प्रश्न कर उत्तर उत्तरार्ध में दिया जाता है जिससे प्रश्न के उत्तरार्ध भाग की उत्तर के उत्तरार्ध में पुनरावृत्ति हो जाती है । उदाहरण के लिए छत्तीस गढ़ी लोक गीत का एक अंश प्रस्तुत है ।

कौन तोरे करिही रामे रसोई

कौन करै जेवनार

कौन तोरे करिहै पलंग बिछौना

कौन जोहे तेरो बाट

दाई करिहै राम रसोई

बहिनी करे जेवनार

सुखी चेरिया पलंग बिछैहै

और मुरली जोहै मेरो बाट ।।

उपरोक्त उदाहरण प्रश्नोत्तर शैली के लोक गीत का है जिसके पूर्वार्ध में चार प्रश्न पूछे गए हैं और उत्तरार्ध में चारों प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं । प्रथमार्ध में प्रश्नवाची कौन शब्द की चारों प्रश्नों में लगातार आवृत्ति हुई है और इसी प्रकार प्रथमार्ध के राम रसोई, करे जेवनार, पलंग बिछौना तथा बाट की क्रम से पुनरावृत्ति हुई है । इसी प्रकार प्रश्नोत्तर सम्बन्धी अनेक लोक गीत प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिसमें प्रश्नोत्तर पद्धति के कारण ही पुनरावृत्ति का अनुसरण हुआ है । कहीं कहीं तो एक ही प्रश्न कई बार पूछा गया है और उसका ही कई प्रकार से उत्तर दिया गया है ।

(३) <u>भाव बोधन में स्पष्टता</u>:-

लोक गायकों का कहना है कि यदि एक ही अंश की बार-बार पुनरावृत्ति की जाए तो भाव अधिक स्पष्ट होते हैं और श्रोता उन भावों को आसानी से हृदयंगम कर लेता है । पुनरावृत्ति से भाव भी स्पष्ट होता है तथा प्रभाव भी गंभीरतर होता है । यही कारण है कि टेक, जिसमें सम्पूर्ण गीत का मूल भाव(Central Idia) केन्द्रित रहता है बार - बार प्रभाव के लिए ही दुहराया जाता है । पुनरावृत्ति से भाव बोधन में स्पष्टता आती है । इसकी पुष्टि बालकों के गीतों से विद्वानों ने की है । बालकों को जब गीत सिखाए जाते हैं तो उनमें नए शब्द अत्यल्प मात्रा में रहते हैं कुछ ही शब्दों की पुनरावृत्ति बार- बार होती है जिससे बालक उन्हें आसानी से समझ लेता है । इसके साथ ही साथ ही गीतों के प्रथम चरण तथा पद के टेक की पुनरा-वृत्ति में भाव बोधन स्पष्टता ही मुख्य कारण है ।

(४) गीतों को स्मरण रखना:-

लोक का संपूर्ण साहित्य लोक के कंठ में ही जीवित रहता है । शिष्ट साहित्य के समान न तो वह लिपिबद्ध होता है और नहीं लोक गायक जब कोई गीत गाता है या लोक वर्ग का कोई अनुभवी वृद्ध कथा सुनाता है तो वह पुस्तक खोलने बैठता है । उसने तो जैसे अपने पूर्वज से सुनकर सीखा था वैसे ही वह सुनाता है । उसका तो सारा का सारा साहित्य कंठ तथा स्मृति के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी चलता जाता है । इसीलिए वह जीवित साहित्य है, वह मृत नहीं होता, क्योंकि लोक ऐसे साहित्य को स्वीकार ही नहीं करता जो जनमानस की प्रवृत्ति से बिलकुल मिल न जाए और घुलमिलकर अपनी वैयक्तिकता नष्ट करके सामूहिक न हो जाए । इसीलिए वह अविनश्वर है । गीत भी स्मरण ही रखे जाते हैं और वे एक कंठ के दूसरे कंठ तक केवल स्मृति पर ही जीवित रखे रहते हैं । अतः गीतों का स्मरण रखने के लिए लोक मानस ने अनेक ऐसे सूत्र बनाए हैं जिन्हें वह सरलता से स्मरण रखता है और उन्हीं में से पुनरावृत्ति भी एक तत्व है । पुनरावृत्ति के कारण गायक को अनेक नए शब्द स्मरण नहीं रखने पड़ते वह बीच बीच में एक दो नए शब्द रखता है तथा शेष की पुनरावृत्ति करता जाता है । पुनरावृत्ति के मूल में लोक गीतों को स्मरण रखने की प्रवृत्ति भी एक प्रमुख कारण है । पुनरावृत्ति के कारणों पर विचार करने के उपरान्त उनके क्रम तथा प्रकारों का विवेचन भी आवश्यक है । लोक गीत लोक मानस की सहज उपज है । "लोक मानस निर्विकार होता है, उसके पास न कोई आदर्श है, न शास्त्र और नियम । उसकी स्फूर्ति से व्यक्ति और व्यक्तित्व का कोई अर्थ नहीं"[1]। इसीलिए पुनरावृत्ति के संबंध में भी कोई निश्चित नियम नहीं । किन्हीं लोक गीतों में एक विशेष क्रम मिलता लक्षित होता है, व किन्हीं में क्रम निश्चित करना कठिन हो जाता है । यह पुनरा वृत्ति की क्रमगत विशृंखलता केवल भारतीय लोक गीतों में ही नहीं मिलती, वरन् इस संबंध में देशी तथा विदेशी सभी विद्वान एकमत है कि लोक गीतों में पुनरावृत्ति का कोई एक निश्चित क्रम नहीं है । वे अधि-

---

१- लोक साहित्य विज्ञान - डा० सत्येन्द्र ।

कांश रूप से क्रम विमुक्त है । किन्तु फिर भी लोक गीतों में अनेक लोक गीत ऐसे हैं जिनमें एक विशेष क्रम है और उस क्रम का गीतों में पूर्ण निर्वाह है ।

लोक गीतों में पुनरावृत्ति के क्या प्रकार हैं ? और उनमें पुनरावृत्ति का क्या क्रम है ? यह निश्चित रूपेण निर्देश नहीं किया जा सकता, किन्तु फिर भी अधिकांश लोक गीतों में पुनरावृत्ति का सामान्य क्रम क्या है उसका निर्देश निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है । यह पुनरावृत्ति का क्रम केवल हिन्दी लोक गीतों में ही हो ऐसा नहीं है वरन् हिन्दी के अतिरिक्त भाषाओं के लोक गीतों में तथा विदेशी लोक गीतों तक में यह क्रम मिलता है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्राप्त लोक गीतों के आधार पर पुनरावृत्ति के मुख्य रूप से चार वर्ग किए जा सकते हैं और फिर इनके भिन्न अन्तर्गत विभेद और उपविभेद भी हैं । पुनरावृत्ति के प्रकार की दृष्टि से निम्नांकित वर्ग किए जा सकते है -

(क) <u>अक्षरों की पुनरावृत्ति:-</u>

१- प्रति पंक्ति के प्रारम्भ में अक्षर की पुनरावृत्ति

<u>जै</u> वृषभानु नंदिनी राधे मोहन प्रान पियारी ।
<u>जै</u> श्री रसिक कुंवर नंद नंदन सुंदर गिरिवर धारी ।।
<u>जै</u> श्री --ज नायिका जै जै कीरति कुल उजियारी ।
<u>जै</u> वृंदाबन चारू चन्द्रमा कोटि मदन मदहारी ।।
<u>जै</u> ब्रज तरुन तरुनि चूड़ामनि सखियन में सुकुमारी ।
<u>ज</u>यति गोप कुल सीस मुकुट मनि नित्य बिहार बिहारी ।।
<u>ज</u>यति बसंत जयति वृंदावन जयति खेल सुखकारी ।
<u>ज</u>य अद्भुत जस गावत शुक मुनि हरी चंद बलिहारी[१] ।

२- प्रति पंक्ति के प्रारम्भ और अंत की पुनरावृत्ति

१- भा०ग्र०- पृ० ३९३ ।

वह अपनी नाथ दयालुता तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
वह जो कौल भक्तों से था किया तुम्हें याद हो कि न याद हो।
सुनि गज की जैसे ही आपदा न विलंब छिन का सहा गया ।
वही दौड़े उठ के पियादे पा तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
वह जो चाहा लोगों ने द्रौपदी की शर्म उसकी सभा में लें ।
व बढ़ाया वस्त्र को तुमने जो तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
वह अजामिल एक जो पापी था किया नाम मरने पै बेटे का ।
वह नरक से उसको बचा दिया तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
व जो गीध था गनका जो थी व जो व्याध था व मल्लाह था ।
इन्हें तुमने ऊँचों की गति दिया तुम्हें याद हो कि न याद हो[1]।

३- प्रति पंक्ति के अंत में अक्षर की पुनरावृत्ति

प्यारी लागत तिहारी छवि प्यारी-प्यारी ना ।
गोरे गालन पै लोटत लट कारी - कारी ना ।
मुस्कुरानि मन हरै मोहनी डारी -डारी ना ।
मनहु प्रेमघन बरसैं तोपैं वारी - वारी ना[2] ।।

४- प्रति दूसरी पंक्ति के आरम्भ में अक्षर की पुनरावृत्ति

गारी देन जोग नहिं कबहूं समझि परी तुम प्यारे ।
सब सद गुन सों भरे पुरेहो तुम सारे के सारे ।।
लहियत नहिं उपमा सुखमा तुव घर की जात बिचारे ।
सब दिन तुम सत्कार्‌यो सब विधि पति उदारता प्यारे ।
झूठ नाहिं रतिहू आवति वे जब जाय आप के द्वारे ।
सो सौ मग सत्कार सदा लहि पीटत सुजस नगारे ।।
गिन विबुध सों जन में तुम वन्दित जाहु बिठारे ।
सुखदायक गुनि वन सदा प्रेमघन रस बरसावन वारे[3] ।।

१- भा०ग्र० पृ० ५४९-५५० ।

२- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० ९८८ , और देखिए भा०ग्र० पृ० ३०१, २९१ ।

३- वही, पृ० ५५७ ।

५- प्रति दूसरी पंक्ति के अंत में अक्षर की पुनरावृत्ति

झूलै नवल जला संग नवेली ललना ।
ताक झांक भी झुकनि में छुटत छल ना ।
झोंका लहि अकुलाय, प्यारी अंगन दुराय ।
डरी जाय जाय अंचल कहूं ते टल ना[१]।।

६- प्रति अर्ध पंक्ति के अन्त में अक्षर की पुनरावृत्ति

आए सखी सावनवा रे - सैंयूया छाये परदेस ।
अग बेदरदी बालम रे - नाहीं पठवै संदेस ।
उमड़े अवतो जोबना रे - नाही बालापन को लेस ।
हेरबै पिया प्रेमधन रे - धरि जोगिनिया के भेस[२]।।

७- प्रति दूसरी अर्ध पंक्ति के अंत में अक्षर की पुनरावृत्ति

मानः कि न मानः हम तो जाबै नैहरवां,
कजरी के दिन नगिचान बा, जिया ललचान बा ना ।
छोड़ि ससुरारि आईल बाटी सब सखियां,
छोटका बहनोयो मेहमान बा, मिलल मिलान बा ना[३]।।

(ख) शब्दों की पुनरावृत्तिः-

१- प्रति पंक्ति के आरम्भ में शब्द की पुनरावृत्ति

एरी सखी झूलत हिंडोरे श्यामा श्याम बिलोको ना कदम के तरे ।
एरी सोभा देखत ही बनि जावै बिरिहि सोहैं हरे हरे ।
एरी तहां रमकत प्यारी झूले दिए बांह पिय के गरे ।
एरी छबि देखत ही हरिचंद नैन मेरे आवत भरे[४]।।

१- प्रेमघन सर्वस्वः पृ० ४९२ ।

२- प्रेमघन सर्वस्वः पृ० ४९० ।

३- वही, पृ० ५२१ ।

४- भा०ग्र०पृ० ५०१, और देखिये पृ० ५८३ ।

२- प्रति पंक्ति के अंत में शब्द की पुनरावृत्ति

ऋतु आई बरखा की नियराई कजरी
सब सखियां सहेलिन मचाई कजरी
लगी चारों ओर सरस सुनाई कजरी
नभ नवल घटा की छबि छाई कजरी
पिया प्रेमघन ! आवो मिलि गाईं कजरी[1]

३- प्रति पंक्ति के आरम्भ और अंत में शब्द की पुनरावृत्ति

मैना सुनहीं गाली, बोलो बात संभाली रे मैना
मैना तेरी तरह कुचाली, सुन बनमाली रे मैना
मैना तेरे घर की पाली, सरहज साली रे मैना
मैना लेवं कान की बाली, झूमक बाली रे मैना
मैना ऐसी भोली भाली, रीझूं हाली रे मैना
मैना प्रेम प्रेमघन प्याली, बैठी खाली रे मैना[2]

४- प्रति दूसरी पंक्ति के आरम्भ में शब्द की पुनरावृत्ति

बनी शकल गुण्डानी, बोलै गजबै बीहड़ बानी रामा ।
हरे चालै मिरजापुरियों की मस्तानी रे हरी ।।
कुरता भी बौकाला अला झूलै तिसपर माला रामा ।
हरे गण्डा गले भले गांधे सैलानी रे हरी ।।
कसी किनारदार धोती, घुटने के ऊपर होती रामा ।
हरे चलैं झूमते ज्यों हथिनी बौरानी रे हरी[3] ।।

५- प्रति दूसरी पंक्ति के अंत में शब्द की पुनरावृत्ति

गले मुझको लगा लो ए मेरे दिलदार होली में
बुझे दिल की लगी मेरी भी तो ऐ यार होली में

१- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० ४८८, और देखिए भा०ग्रा०पृ०५०१,५१६, हि०प्र०जि०वृ २, सं०११, पृ० १०-१३ ।

२- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० ४८९, भा०ग्रा०- पृ० २९० ।

३- वही पृ० ४२९ ।

नहीं यह है गुलाले सुर्ख उड़ता हर जगह प्यारे
य आशिक की है उमड़ी आहे आतिशबार होली में
जबां के सदके गाली ही भला आशिक को तुम देदो
निकल जाय य अरमा जी का ए दिल दार होली में[1]

६- प्रति दूसरी पंक्ति के आरम्भ और अंत में शब्द की पुनरावृत्ति

जुरी जमात गूजरी जमुना कूल कदम कुन्जन में रामा ।
हरि हरि हिलि मिलि खेलैं कजरी राधा रानी रे हरी ।
कोउ मृदंग मुहचंग चंग लै सारंगी सुर छेड़ैं रामा ।
हरि हरि कोउ सितार करतार तमूरा आनी रे हरी ।।
कोउ जोड़ी टनकारैं कोउ घुंघरू पग झनकारैं रामा ।
हरि हरि नाचैं कितनी माती जोम जवानी रे हरी[2]।।

७- प्रति अर्ध पंक्ति के अंत में शब्द की पुनरावृत्ति

पटवारी का एक ट बनगा हरगंगा । झटपट धाय महीने भर में नंबर पढ़गा हरगंगा।
मई जून में रुपया लैबै हरगंगा । रुपया केर जरूरत हमको हरगंगा ।
सबसे निर्बल काश्तकार है हरगंगा । पेट काट के लादी ढोवै हरगंगा ।
मतलब सोझै उजुर न लावैं हरगंगा । जमींदार को घाटा नाही हरंगगा।
हमको देहु आपको झटका हरगंगा । लोटा थाली नथुनी झुलनी बचे न पावै हरगंगा ।
पटवारी और गिदविर से रहे सलतनत हरगंगा ।
मढ़े रियाया चिंता क्या है भेड़ बकर हैं हरगंगा[3]।

(ग) अर्ध पंक्ति की पुनरावृत्ति:-

१- प्रति पंक्ति के आरम्भ में अर्ध पंक्ति की पुनरावृत्ति

हरि हो-मानो कहनवा हमार, बजाओ फिर बांसुरियां ।

१- भा० ग्र० पृ० ४२२, और देखिए पृ० ४८९-४९० ।

२- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० ४९८ ।

३- हि०प्र०जि० १०, सं० ७, पृ० -१-४, और देखिए हि०प्र०जि० १२,सं० ३,पृ०४।

हरि हो - गावत राग मलार, बजाओ फिर बांसुरियां ।

हरि हो - बर्षा के आइल बहार, बजाओ फिर बांसुरियां ।

हरि हो - छाये मेघ दिसि चार, बजाओ फिर बांसुरियां ।

हरि हो - जमुना बढ़ी जलधार, बजाओ फिर बांसुरियां ।

हरि हो - लख न परत वाको पार, बजाओ फिर बांसुरियां[१] ।।

२- प्रति पंक्ति के अंत में अर्ध पंक्ति की पुनरावृत्ति

बिनती सुन लीजिए मोहन मीत सुजान, हहा । हरि होरी मैं ।

रसिक रसीले प्रान पिय जिय जनि गुनिये आन, हहा । हरि होरी मैं ।

चल दल लसित द्रुमावली लतिका कुसुमित कुंज, हहा । हरि होरी मैं ।

मदन महीपति सैन सम अलि अवलिन की गुंज, हहा । हरि होरी मैं ।

बरस दिनन पर पाइयत भागिनि यह त्यौहार, हहा। हरि होरी मैं ।

मदमाते युव युवति जन करत केलि व्यवहार, हहा । हरि होरी मैं ।[२]

३- प्रति दूसरी पंक्ति के अंत में अर्ध पंक्ति की पुनरावृत्ति

सारी धानी मोल मंगावः कुरती करौंदिया रंगवावः ।

चुनिके हमके पहिरावः मोरे बांके बलमा ।।

रौंजै पिया प्रेमघन आवः झूठे प्रेमजाल फैलावः ।

झांसि मैं सावन बितावः मोरे बांके बलमा[३] ।।

(घ) टेक या पूर्ण पंक्ति की पुनरावृत्तिः

गीत के आरम्भ की कड़ी जिसमें प्रायः पूरे गीत का मूल भाव (Central Idia) केन्द्रित रहता है और जिसे गायक कभी कभी प्रत्येक पंक्ति के बाद या इच्छानुसार किसी पंक्ति के बाद दोहराया करता है, टेक कहलाती है । टेक लोक गीतों तथा शास्त्रीय गीतों दोनों में ही होते हैं ।

१- प्रेमघन सर्वस्वः पृ० ५२४ ।

२- वही, पृ० ६११, और देखिये वही, पृ० ६१२, हिं०प्रदीप,जि०३,सं०११, पृ० १०-११ ।

३- प्रेम० सर्व०: पृ० ४९२, भा०ग्रं० पृ० ३०५ ।

लोक गीतों में प्रायः तुक और मात्रा का लोक गीत कार ध्यान नहीं रखता, इनमें नैसर्गिक संतुलन बोध पर आधारित एक स्वाभाविक लयात्मकता होती है और बार - बार दुहराई जाने वाली टेक के कारण ये सुगेय बने रहते हैं। भारतेन्दु युगीन काव्य में प्राप्त लोक गीतों में भी कवियों ने टेकों का प्रयोग किया है। ये टेकें गीत को और अधिक भावपूर्ण तथा लयात्मक बनाती हैं। संगीत में विशेषकर लोक संगीत में टेकों की पुनरावृत्ति के कारण वही हैं जिनका पुनरावृत्ति के कारणों के संबंध में विवेचन किया गया है। भारतेन्दु युगीन लोक गीतों में लोक प्रवृत्ति के अनुकूल कवियों ने टेक के प्रयोग किए हैं। लोक गीतों में शैली की दृष्टि से प्रयुक्त होने वाली टेकों के दो विभेद कर सकते हैं। पहली तो वे टेके हैं जिनमें गीत का विशेष भाव निहित रहता है और जिनको गायक इच्छानुसार प्रत्येक पंक्ति के बाद या दो पंक्तियों के बाद दोहराता है। इस प्रकार की टेकों का प्रयोग लोक गीत तथा शास्त्रीय संगीत दोनों में ही होता है। भारतेन्दु युगीन काव्य में प्राप्त लोक गीतों में इस प्रकार की टेकों के उदाहरण अनेक हैं[१]। दूसरे प्रकार की टेकें वे हैं जिनका प्रयोग केवल लोक गीतों में और वह भी कुछ विशेष लोक गीतों में ही होता है। गीत के भाव से इसका कोई संबंध नहीं रहता वरन् यह केवल गीत की शैली तथा गीत के प्रकार का परिचायक होता है। होली पर गाए जाने वाले प्रसिद्ध गीत "कबीर" की टेक "कबीर भर रर र र र र हां" तथा "अ र र र र र कबीर" ऐसी ही टेक हैं जिनसे केवल यह ज्ञान होता है कि यह कबीर गीत है तथा गीत की शैली का विशेष रूप से परिचायक है। भारतेन्दु युगीन कवियों ने कबीर गीतों में लोक प्रचलित इसी प्रकार की टेकों का प्रयोग कर गीत के प्रचलित रूप को सुरक्षित कर रखा है। दोनों प्रकार की टेकों वाले कबीर के एक एक उदाहरण प्रस्तुत है -

कबीर भर रर र र र र हां।

होरी हिंदुन के घरे भरि भरि धावत रंग

सब के ऊपर नाचत गारी गावत पीये भंग,

भला- भले भागैं बेधरमी मुंह मोरे[२]।।

१- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० ४०९, ४२४, ४२७, ४५७, ४८९, आदि।

२- वही, पृ० ६४०-६४१।

अरार रा ररा कबीर सुनलो भगतो मोर कबीर ।
सपना देखैं सैयद बाबा कुटिल फिरिस्ता ठाढ़
बदनामी का काम बतावैं जो दुनियां में बाढ़,
भला यह मतलब हिकमत अमली का[1] ।।

उपर्युक्त पुनरावृत्ति सम्बन्धी विवेचन से स्पष्ट है कि भारतेन्दु-युगीन कवियों के गीतों में लोक गीतों की पुनरावृत्ति सम्बन्धी विशेषता पूर्णतः मिलती है । और इस भारतेन्दु युगीन कवियों के लोक गीतों में पुनरावृत्ति का वही स्वरूप तथा क्रम रक्खा गया है जो साधारण लोक में प्रचलित और गाए जाने वाले लोक गीतों में मिलता है ।

लोक गीतों की शैली गत विशेषताओं में एक प्रमुख विशेषता यह है कि लोक गायक को गीतों का कलेवर बढ़ाना अति प्रिय है । स्त्रियों के गीतों में जो प्रायः संस्कार सम्बन्धी हैं, में यह विशेषता अति विस्तार से लक्षित होती है । यदि कोई लोक गीत ज्योनार सम्बन्धी है तो गायक विविध प्रकार के खाद्य पदार्थों या पकवानों की ही गिनती गिनाता चलेगा । यदि गाली गीत है तो दादी, नानी, पितामह, पिता, बुआ, चाची, मौसी, बहिन, भाइ जब तक सभी लिए गायक गीतों की पंक्तियों को नहीं दुहरा लेता है तब तक उसका गीत पूरा नहीं होता है । उसी प्रकार यदि सेहरे का गीत है तो परिवार के सभी लोगों का सेहरा गीत में उल्लेख होगा इस प्रकार लोक गायक लोक गीतों को बिना परिश्रम के नाम वाची शब्दों का परिवर्तन मात्र करके बढ़ाता चला जाता है और उसके गीत का कोई अंत नहीं होता है । लोक गीतों की यह प्रवृत्ति चाहे जिस प्रदेश के गीत हों अवश्य मिलेगी । इस प्रकार की प्रवृत्ति का सीधा सम्बन्ध लोक मानस से है । लोक मानस सोचता है कि प्रत्येक परिवार के व्यक्ति का नाम लेने से वह व्यक्ति अपना वैयक्तिक महत्व समझेगा और सुख पूर्वक आशीष देगा । विवाह या जन्म सम्बन्धी प्रसंग मानव जीवन के अति सुखकारी प्रसंग है अतः ऐसे अवसर प लोक गायक किसी को भी भुलाना नहीं चाहता वह सबका स्मरण करता है

१- हि०प्र०जिल्द ११, सं० ५,६,७, पृ० ५२-५६ ।

भारतेन्दु युगीन कवियों केसंस्कार सम्बन्धी लोक गीतों में यह प्रवृत्ति अति व्यापक है । ज्योनार सम्बन्धी गीत में कवि केवल यह कह कर कि तुम हमारे घर के अतिथि हो, विविध व्यंजनों के मुंगौरे, सेव, पूरी, टिकिया, पापर, चटनी, अचार, नमकीन, कचौरी, भाजी खस्ता, मिरचा, साग, बुरमा, मिठाई किसी का नाम गिनाना नहीं भूलता, लोक गायक को यहां यह चिन्ता नहीं रहती है कि विविध व्यंजनों को गिनाने से इसमें बाधा होगी कि नहीं । उसे तो केवल यही चिन्ता की किसी व्यंजन का नाम गिनाना वह भूल न जाय । प्रेमघन कृत ज्योनार सम्बन्धी एक गीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत है जिसमें यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है -

तुम जेंवहु जू जेवनार । हमारे पाहुने ।
आये से हमरे घर में तुम होवहु परम सुखार ।
बड़े मुंगौरे सेव समोसे पूरी मुख के द्वार ।
वे टिकिया पापर तुम रीझौ कैसे कौन प्रकार ।
ताही लगि रस चखो सलोनो निज रुचि के अनुसार ।
चाटहु चटनी जो रुचि राचै चाखहु सुभग अचार ।
अब कहिन तुम नमकीन छोड़िहौ ले रस सब रस सार ।
पूरी गरम कचौरी भाजी खस्ता भरि भरि थार ।
लेहु न मिरचा चीखि आपने रुचि संग संग सुधार ।
मोहन भोग कियो बुरमा हित गुप चुप करि प्यार ।
तुम लगि निज कुल भावती मिठाई न परस्यो यहि बार ।
बहु विधि गोरस मधुर मुरब्बे मेवन की भरमार ।
लेहु स्वाद सब सहित प्रेमघन के सारे सरदार[1] ।।

इसी प्रकार "गाली" लोक गीत में भी किसी एक व्यक्ति को ही गाली नहीं दी जाती वरन् पितामही, मां, चाची, बहिन, नानी, भाभी, फूफी सभी व्यंग्य में लक्ष्य बनते हैं । प्रेमघन कृत गाली में भी यही प्रवृत्ति लक्षित है -

---

१- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० ४५८ - ४५९ ।

का गुन दीजै कौन तुम्हैं गाली ।
जग अपमान सहत बहु दिन जिन, जिय न गुलानि कछु धारी ।
कियो कलंकित आर्य वंश,तुम, बनि हिन्दु अभिनारी ।
कहलाए काले का पुरुष, दास बनि सर्वस हारी ।
पितामही भारती तुम्हारी तुम सौ समुझि निकारी ।
सात सिंधु तरि म्लेच्छन के घर, जाय बसी कर यारी ।
श्री सम्पति हरि लियो विधर्मिन, जौ तुमारि महतारी ।
चची चातुरी शक्ति धीरता तुव तिय संग सिधारी ।
भोगे तुव भगनी वीरता, बड़ाई प्रभुता प्यारी ।
फोरि फूट कुटनी के बल, बहु बार यवन दल भारी ।
धर्म प्रथा नानी मर्यादा भाभी तुव हर हारी ।
बारि नारि बन घर घर नाची, अंचल अलक उघारी ।
फूफी ईशभक्ति भावी तव देस प्रीति मतवारी ।
बनि तजि तुमै नीच रति राची करि तिन सवन सुवारी ।
समुझि निलज्ज नपुंसक तुम कह निपट अपंग अनारी ।
तुव पत्नी स्वाधीनता सरकि पर घर पांय पसारी ।
सुता सभ्यता पोती कीरति नातिनि नीति दुलारी ।
गई कहां नहि जान परै कछु तजि तुव घर कर भारी ।
कुल करतूति बुरी अपनी सुनि, सांचे सांचे ढारी ।
दोष प्रेमघन पै न देहु पिय बिन कछु कहे लबारी[1]।।

इसी प्रकार विवाह गीतों में जब बन्ने या बन्नी का रूप वर्णन लोक गायक करता है तो छोटे से छोटे आभूषण तथा छोटे छोटे शृंगार तक को गिनाना नहीं भूलता। उदाहरणार्थ भारतेन्दु हरिश्चन्द ने एक घोड़ी लिखी है जिसमें नीली घोड़ी पर चढ़कर जामा पहने हुए, पटुका कसे हुए सिर पर सेहरा तथा स रंगीले तुर्रे वाले मोर को पहने, हाथों में मेंहदी लगाए हुए, फूलों की बेनी जो भबिया पर लटक रही है लगाए हुए तथा दूसरी ओर केसरी सारी

1- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० ४५८ ।

पहने हुए, मौरी लगाए हुए, चूड़ी नक बेसर पहने हुए सेंदुर लगाए हुए मुंह में पान खाए हुए बन्ने और बन्नी का वर्णन है, जिसको देखकर लोगों की आंखे गिरा रही हैं[१]।

इस प्रकार मेले या अन्य उत्सवों पर जब लोक कवि नायिका या नायक की साज सज्जा का वर्णन करता है तो वह एक तरफ से सज्जा प्रसाधनों की गणना सी करता चलता है और इसी प्रकार पुरुष सम्बन्धी प्रसंगों में वह पुरुष की साज सज्जा का विस्तार से वर्णन करता हुआ चित्र सा खड़ा कर देता है। इस प्रकार के उदाहरण भारतेन्दु युगीन काव्य से अनेक प्रस्तुत किये जा सकते हैं। एक स्थान पर मिर्जापुरी गुण्डों का चित्र खींचते हुए कवि इन प्रसिद्ध गुण्डों की टेढ़ी पगड़ी पर लगे हुए बेढंगे सतरंगे साफें, गुलेनार और धानी दुपट्टा, चौकाला कुरता तथा गले में झूलती हुई माला का, कसी हुई किनारेदार धोती का जो घुटने के ऊपर पहनी जाती है, का तो कवि वर्णन करता ही है साथ ही साथ गले में बांधे हुए गण्डे का जो सज्जा प्रसाधन के साथ लोक विश्वास मूलक भी है का, तथा बेड़े काले टीके तथा ऊंचे महाबीरी टीके का वर्णन करना नहीं भूलता है। साथ ही साथ लोक वर्ग में पुरुष जाति के मुख्य शृंगार लाठी और कमरे में बंधी हुई कटारी का वर्णन करना भी नहीं भूलता है। इस अन्तहीन परिगणन की प्रवृत्ति का एक उदाहरण और देखिए जिसमें कवि त्रिकोन के मेले में विंध्याचल के पहाड़ पर लगे हुए मेले में आई हुई स्त्रियों के सोलहों शृंगार का वर्णन करना वह नहीं भूलता और लिखता है-

आई सावन की बहार, विंध्याचल के पहार।
पर मेला मजेदार लगा, चलः चलो यार।
लिय सहित उमंग मिलि सखियन संग।
चली मनहुं मतंग किए सोलहो सिंगार।

चोली करौंदिया जरतारी, सारी धानी या अंगारी।
चादर गुल अब्बासी धारी, गातीं कजली मलार।

१- भा०ग्रं०: पृ० २९२।

पहिने बेसर बेंदी वाला, झूमड़ झूमक मोती माला ।
कटि किंकिनी रसाला, पग पायल झंकार[1] ।।

यह लोकप्रवृत्ति भारतेन्दु युगीन कविके गीतों में प्रायः ही देखी जा सकती है । अन्तहीन परिगणन की प्रवृत्ति केवल हिन्दी गीतों में ही नहीं वरन् प्रायः समस्त देश तथा प्रान्त के लोक गीतों में मिलती है और यह लोक गीत की एक सार्वभौम विशेषता है । कनउजी लोक गीत जो यज्ञोपवीत संबंधी है उसका एक उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें परिवार के सभी लोगों का नाम गिनाया गया है और गीत की शब्दावली प्रायः सम्पूर्ण पंक्तियों की समान है ।

कासी वेद पढ़ि आए नरायन बरुआ ।
किन जा दई है पीरी लंगुरिया ।
किन इउ जनओ कराओ ।
आजा मेरे दईहै पियरी लंगुरिया आजी ने जनओ कराओ ।
बाबू ने दईहै पियरी लंगुरिया माया ने जनओ कराओ ।
चाचा मेरे दई है पियरी लंगुरिया चाची ने जनओ कराओ ।
भइया मेरे दईहै पियरी लंगुरिया भौजी ने जनओ कराओ[2] ।।

इसी प्रकार मुंडन का एक कनउजी लोक गीत और प्रस्तुत है जिसमें आजा आजी, दादा, अम्मा, शब्दों का प्रयोग हुआ है और इन शब्दों को हटा दिया जाय तो गीतों में विशेष भेद नहीं है । उदाहरण -

अथइयां बइठे आजा उनके मुन्नाराम ।
एहो आजा अंगे लुटनी पसारे ।
मुड़ाबौ आजा झालरि रे ।।
अथइयां बइठी आजी उनकी मुन्नाराम ।
एहो आजी आंगे लुटनी पसारे ।
मुड़ाबौ आजी झालरि रे ।।

१- प्रेमघन सर्वस्वः पृ० ५३० ।

२- कनउजी लोक गीतः संतराम अनिल, पृ० २५५ ।

अथइया बइठे दादा उनके मुन्नाराम ।
ओहो दादा आगे लुटनी पसारे ।
मुड़ावौं दादा भ्फालरि रे ।।
अम्मा उनकी ओंग बइठारे भ्फालरि मुड़ामैं ।
दादा उनको खरचै दाम भ्फालरि मेरो पाउँनि रे[1]।

इसी प्रकार मैथिली लोक गीत में भी परिगणन कराने की प्रवृत्ति भी पर्याप्त मात्रा में देखी जा सकती है ।

लोक शैली की यह एक प्रमुख विशेषता उसकी वर्णन पद्धति में है । शिष्ट शैली में जब कोई कवि लिखता है तो वह सदा यह स्मरण रखता है कि उसके वर्णन लोक की साधारण वस्तुओं का उल्लेख प्रायः नहीं ही होना चाहिए नहीं तो उनमें ग्राम्यत्व दोष माना जाता है और यदि किसी ग्रामीण जीवन का वह वर्णन कर रहा है तब भी वह ग्राम जीवन की छोटी से छोटी वस्तुओं का उल्लेख नहीं कर पाता किन्तु लोक कवि जब लिखता है तो उसकी वर्णन पद्धति एक विशिष्ट प्रकार की होती है वह छोटी से छोटी ग्राम जीवन की वस्तुओं की उपेक्षा नहीं करता, वरन् वह छोटी से छोटी वस्तुओं का वर्णन करता चलता है और जब तक वह प्रत्येक वस्तु का वर्णन यथावत् नहीं कर लेता, वह वर्णन समाप्त नहीं करता । इस प्रकार एक प्रकार से उसकी व र्णन शैली में एक रसता आने लगती है । यह एक रसता संस्कार गीतों में भी इसी परिगणन पद्धति के कारण आती है । लोक गीतों के इतर शैली में लिखे गए काव्य में भी यह विशेषता मिलती है । उदाहरणार्थ प्रेमघन ने अपने जन्म स्थान दत्तापुर का एक लम्बा वर्णन प्रस्तुत किया है।इसमें यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है । कवि "सिपाहियों की रहनि" का वर्णन कर रहा है कि सिपाहियों के सायंकाल के कृत्य क्या है और इसमें जब कवि एक एक सिपाही का कर्म गिनाना शुरू करता है तो प्रतीत होता है कि वर्णन जबरदस्ती बढ़ाया जा रहा है । किन्तु यही जहाँ शिष्ट काव्य में दोष माना जाएगा वहाँ लोक शैली की विशेषता है । उदाहरणार्थ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

---

१- कनउजी लोक गीत : सन्तराम अनिलः पृ० २५५ ।

घोई भंग कोऊ कूंडी सोंटा सो रगड़त ।
कोउ अफीम की गोली लै पानी सो निगलत ।।
कोउ हुक्का अरु कोउ भरि गांजा पीयत ।
कोउ सुरती खात बनै कोउ सुंघनी सूंघत ।।
कोउ लै डोरी लोटा निकरत नदी ओर कहं ।
कोउ लै गुलेल गलटा बहु भरि थैली मँहँ ।।
कोउ लिए बंदूक जात जंगल मंह आतुर ।
मारत खोजि सिकार सिकारी जे अति चातुर ।।
कोउ फंसावत मीन नदी तट बंसी साधे ।
भक्त लोग जंह बैठे रहत ईस अराधे ।।
संध्या समय लोग पहुंचत निज निज डेरन पर ।
निज निज रुचि अनुसार वस्तु लीने निज निज कर ।।
कोउ खरहा कोउ साही, मारे अरु निकिआए ।
कोउ कपोत कोउ हारिल पिंडुक तीतर लाए ।।
कोउ तलही मुर्गाबी, कोउ कराकुल मारे ।
काटि छांटि पर चर्म अस्थि लेइ दूर पवारे ।।
कोउ भाँजी जंगली, कोउ काछिन ते पाए ।
बहुतेरे पलास के पत्रन तोरि लिआए ।।
बिरचत पतरी अरु दोने अपने कर सुन्दर ।
कोउ मसाले पीसत कोउ चटनी ह्वै तत्पर ।।
कोउ सीधा नवहड़ ल्यावत मोदी खाने सन् ।
खरे जिते रुक्का लीने बहुत आगन्तुक जन ।।
जोरत कोउ अहरा, कोउ पिसान लै सानत ।
कोउ रसोई बनवत अरु कोउ बनवावत[1] ।।

इस प्रकार यह परिगणनात्मक वर्णन पद्धति केवल सिपाहियों की रहनि सम्बन्धी प्रसंग में नहीं मिलती । वरन् इसी प्रकार जहां प्रातःकाल

1- प्रेमघन सर्वस्व: प्रथमभाग, पृ० 22-23 ।

के कार्य कलापों का वर्णन करना आरम्भ करता है कवि वहां भी "दाढ़ी भारने, जुल्फ संवारने, चंदन घिसकर तिलक लगाने, कसरत करने, डंड बैठक करने, मुगदर हिलाने, लेजिम भनकारने नाल उठाने, ताजठोंकने, आसन लगाने पूजाकरने, पूजा में विविध पाठ करने । किसी कर्म को भी गिनाना नहीं भूलता । सबको एक तरफ से गिनती चल गिनाता चलता है[१]। इसी प्रकार जब कवि नागपंचमी का वर्णन प्रारम्भ करने चलता है तो वह उसके महत्व या कारण आदि का वर्णन न कर वह उत्सव का लंबा चौड़ा वर्णन करता है[२]। वह न तो पुरुषों के व्यायामिक लोकानुरंजनों चटकी, डांड़, कूदीकूदना को भूलता है, न पुरुषों के सावन मलार गाने तथा स्त्रियों के कजली गाने के प्रसंग का उल्लेख करना भूलता है और न वह उस अवसर पर बहिनों के गुड़िया सिराने के लाद चना घुंघनी मिठाई आदि खाद्य पदार्थ के प्रसंगों का वर्णन करना भूलता है । इसी प्रकार बाल विनोद प्रसंग में वह सभी बाल विनोदों क वर्णन करता है ।

लोक शैली की दृष्टि से वर्णन की यह परिगणन पद्धति केवल भारतीय लोक गीतों या लोक काव्यों मे ही नहीं मिलती वरन् यह सार्वभौम प्रवृत्ति है । इस परिगणनक पद्धति की स्थिति लोक गीतों में भी देखी जा चुकी है और तत्सम्बन्धित उदाहरण पूर्व ही दिए जा चुके हैं ।

इसी प्रकार इस सम्बन्ध में एक और विशेषता कथनीय है कि वह साधारण से साधारण लोक मेंप्रचलित वस्तुओं की ही गिनती करता है जहां वह लोकानुरंजनों का वर्णन करता है वहां वह चटकी डांड और पैतरा लड़ने का निसाने बाज़ी, गुलेल और गुलटा चलाने का ही उल्लेख करता है । लोक में अप्रचलित वस्तुओं की गणना नहीं कराता । ये प्रवृत्ति सर्वत्र दर्शनीय है ।

अन्तहीन परिगणन प्रवृत्ति की दृष्टि से भी भारतेन्दु युगीन काव्य लोक काव्य का सच्चा प्रतिनिधित्व करता है ।

निरर्थक किन्तु लयात्मक शब्दों का प्रयोग लोक गीतों की एक प्रमुख विशेषता है । लोक गीतों में गायक अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है

१- प्रे०कु०: पृ० १९- २० ।
२- वही, पृ० २४-२५ ।

जिनका अर्थ कुछ भी नहीं होता है । ये शब्द कभी टेक रूप में प्रयुक्त होते हैं कभी एक कड़ी को दूसरी गीत की कड़ी से जोड़ने के लिए, कभी गायक में जोश भरने के लिए तो कभी केवल तुक या लय के लिए । भारतेन्दु युगीन कवियों ने भी लोक गीतों में लोक प्रवृत्ति के अनुरूप अनेक ऐसे निरर्थक किन्तु लयात्मक शब्दों का प्रयोग किया है ।

लोक गीतों में निरर्थक शब्दों के रूप में रामा, हो, हरी, हे हरी ने सबसे अधिक प्रचलन पाया है । इन निरर्थक शब्दों का प्रयोग किसी एक भाषा के लोक गीत में मिलता है + ऐसा नहीं है । रामा और हरी इन दो शब्दों जिनका प्रयोग लोक गीतों में निरर्थक शब्दों के रूप में ही होता है । यह दो रामा और हरि शब्द ने इतना प्रचलन क्यों पाया निश्चित रूपेण नहीं कहा जा सकता, किन्तु संभवतः इसका कारण यही है कि राम और हरि जनजीवन में इतना घुल मिल गए है कि लोक मानस उनका प्रयोग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में करता ही है । इन निरर्थक शब्दों के विषय में एक बात और कथनीय है कि लोक गीतों में प्रयुक्त निरर्थक शब्द यद्यपि अकारान्त और आकारांत दोनों ही प्रकारों के हैं किन्तु लोक गीतों मे अधिकता निरर्थक आकारांत शब्दों के प्रयोग की ही है । कौन सा निरर्थक शब्द किस प्रकार के लोक गीतों में प्रयुक्त होता है ? कजली, होली, चैती, बिरहा आदि में किस प्रकार के निरर्थक शब्दों का प्रयोग होता है ? यह निश्चित रूपेण निर्देश नहीं किया जा सकता है । लोक में इस प्रकार का कोई नियम नहीं है कि किस प्रकार के निरर्थक शब्दों का प्रयोग किस प्रकार के लोक गीत में हो तथा उसका स्थान क्रम क्या हो किन्तु लयात्मक निरर्थक शब्दों का प्रयोग लोकगीतों की प्रवृत्ति गत एक प्रमुख विशेषता है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में निम्नलिखित लयात्मक किन्तु निरर्थक (अर्थ की दृष्टि से) शब्दों का प्रयोग लोक गीतों में हुआ है :-

रामा[१] हरी[२]

१- प्रे०सर्व० पृ० ५८६, ५८१, ५३४, ५३५ ।

२- वही, पृ० ५८६ ।

हो[१]	ओ[२]
अरे[३]	रे[४]
बरे हां[५]	गुयुमां[६]
ना[७]	न[८]
अर रर रर र र हां[९]	अरा ररा र रा र रा[१०]
ह हा हा[११]	हां हां[१२]
बारे हां[१३]	री[१४]
हहा[१५]	ला ला[१६]
एरी एरी[१७]	एरी हां[१८]
गुइयां रे[१९]	ये जी[२०]
यार[२१]	हरे[२२]
बू[२३]	

१- प्रेमघन सर्वस्व: पृ०५६६,४२४,४२५ ।

२- वही, पृ० ६०५ ।

३- भा०ग्रं० पृ० ३६३, ३९६ ।

४- वही, पृ० ५८४, ५८०, ५६० ।

५- वही, पृ० ६३४, ६३३ ।

६- वही, पृ० ५६६ ।

७- वही, पृ० ५२३, ५२०, ५२१, ४८८ ।

८- वही, पृ० ५२२,५२५,५२६,

९- वही, पृ० ६४० ।

१०- हि०प्र०जि० ११,सं०५,६,७,पृ०५२-५६।

११-प्रेमघन सर्वस्व:पृ०६३० ।

१२- वही, ६१६ ।

१३- वही, पृ० ६३३।

१४- वही, पृ० ४३० ।

१५- वही, पृ० ६२९, ५९० ।

१६- वही, पृ० ६१६ ।

१७- वही, पृ० ५९६ ।

१८- वही, पृ० ५९६ ।

१९- वही, पृ० ५६५ ।

२०- वही, पृ० पृ० ५६३, ४५७ ।

२१- वही, पृ० ५६१ ।

२२- वही, पृ० ५२९-५३० ।

२३- वही, पृ० ६३६ ।

उपर्युक्त उल्लिखित निरर्थक शब्दों में से रामा, हरि हो, हो, रे, आदि अति प्रचलित है और इनका प्रयोग अनेक प्रदेश के गीतों में मिलता है । भारतेन्दु युगीन काव्य में उपयुक्त निरर्थक शब्दों के प्रयोग की लोक प्रवृत्ति दर्शनीय है । क्रों

लोक गीतों की लोक शैली सम्बन्धी विशेषता में एक विशेषता यह भी है कि उनमें संबोधनात्मक शब्दों का प्रयोग तथा साथ ही साथ प्रश्नोत्तर प्रणाली की स्थिति मिलती है । अनेक लोक गीत तो ऐसे ही हैं जो किसी व्यक्ति विशेष को ही संबोधित करके लिखे गए हैं और इनका संबोधन वाची शब्द आद्यन्त पूर्ण गीत में प्रयुक्त होता है । कहीं यह सम्बोधन सांवर गोरिया (कृष्ण और राधा) के प्रति होता है तो कहीं यह विंध्याचल की देवी सांवलिया (अष्टभुजी) के प्रति । कहीं कजलियां बनिजरवा को सम्बोधित कर लिखी गई हैं, तो कहीं बेइमान बुंदेलवा को संबोधित कर । कहीं विरहिणी नायिका अपने बालम को संबोधित कर कहती है कि - हे बालम तुम्हारी सूरति नहीं भूलती और जैसे चकोर चंद को निहारता है वैसी ही मेरी स्थिति भी है तो कहीं वह पपिहरा को संबोधित कर कहती है कि पिउ-पिउ द्वारा पिया की भूली यादों को क्यों ताज़ा करती हो । इसी प्रकार कहीं छोटी ननदी को संबोधित कर गीत लिखे गये हैं तो कहीं परदेसिया को सम्बोधित कर । कजलियों में यह संबोधन प्रवृत्ति सबसे अधिक व्यापक है वैसे होली आदि गीतों में भी यह प्रवृत्ति विस्तार से लक्षित होती है । भारतेन्दु युगीन काव्य में प्राप्त लोक गीतों में प्रायः प्रमुख रूप से संबोधन वाची शब्द निम्नलिखित हैं -

गुजरिया - नैन तोरे बांके रे गुजरिया[१]।

जनिया - - तोरी सांवरी सूरत लागे प्यारी जनिया[२]।

सांवलिया(प्रिय)- मैं बारी कहां जाउं अकेली, डगर भुलानी रे सांवलिया[३]।

बेइमनवा (प्रेमी)- तोसे तो डर लागे रे बेइमनवा[४]।

१- प्रेमघन सर्वस्वः पृ० ४९३ ।

२- वही, पृ० ४९१ । ३- वही, ४९३ ।

४- वही, ४९८ ।

जानी (प्रिय)- नई तरहयारी है यह या नई सितमगारी है जानी[१] ।

दिलवर- दिलवर लगी नई बतलाओ किससे यारी है जानी[२] ।

सांवरगोरिया- दोउ मिलि करत बिहार सांवर गोरिया[३] ।

बनिजरऊ- जिनि: कर: जाए के बिचार बनिजरऊ[४] ।

छोटी ननदी- भैयूया न आयल तोहार छोटी ननदी[५] ।

परदेसिया- अजहूं न आयल हमार परदेसिया[६] ।

मोरे बालम- नाही भूलै सूरति तोहार मोरे बालम[७] ।

पपिहरा- पिया पिया कहां सुनाव रे पपिहरा[८] ।

गुयूयां- कुन्ज गलीन भुलाय क गई गुयूयां रे[९] ।

बुंदेलवा- मिलल बलम बेइमान रे बुंदेलवा[१०] ।

सांवलियां- धनि विंध्याचल रानी रे सांवलिया[११] ।

कजरिया (देव) - काजल सी कजरारी देवि कजरिया[१२] ।

सैंयूया- सुनि सुनि सैंयूया तोरी बतियां जियरा हमार डरै ।

जियरा हमार डरै ना[१३] ।

बिहारी- धीरे धीरे झुलावो बिहारी[१४] ।

हरि- हरि हो मानो कहनवा हमार बजाओ फिर बांसुरिया[१५] ।

दुइरंगी- हमैं न सुहाय तोरी बात रे दुइरंगी[१६] ।

सांवर गोरवा- सोहै न तोको पतलून सांवर गोरवा[१७] ।

गोरी गोरिया- पिया के तो लिहलीं लोभाय, गोरी गोरिया[१८] ।

प्यारे- अब तो आवो प्रिय प्यारे[१९] ।

१-प्रे० सर्व० पृ० ५०९ । २- वही, पृ० ५०९ । ३- वही, पृ० ५०७ ।
४- वही, पृ० ५०७ । ५- वही, पृ० ५०८ । ६- वही, पृ० ५०८ ।
७-वही, पृ० ५०९ । ८- वही, पृ० ५०९ । ९- वही, पृ० ५०९ ।
१०-वही, पृ० ५१३ । ११- वही, पृ० ५१७ । १२- वही, पृ० ५१८ ।
१३ वही, पृ० ५२० । १४- वही, पृ० ५२१ । १५- वही, पृ० ५२४ ।
१६-वही, पृ० ५२५ । १७-वही, पृ० ५२५ । १८- वही, पृ० ५३३ ।
१९-वही, पृ० ५४६ ।

सखी- सखी री जनि पनिया कोउ जाव- सखी मग रोकत ठाढो नंद कुमार[1] ।

संवलिया (सैंयां)- संवलिया रे हो सैंयूणा लागी तुमसी प्रीति[2] ।

गुजरिया (गुयूयां)- गुजरिया रे हो गुयूयां पानी कैसो जांव[3] ।

सैलानी- चले आओ मेरे सैलानी[4]।

मलिनिया- नैनवा लगाय जाय मलिनियां[5] ।

पिया- जाव जहां जहांरैन सैन किये, माफ करो न लगो छतियां पिया[6] ।

गोरिया- सूही ओढ़नियां ओढ़ि केरै- केकर जिय हरबे गोरिया[7] ।

बालमूरे- सुघरी सेजरिया साजि के रै- जोहौं तोरी बटिया बालमू रे[8]।

संबोधन प्रवृत्ति के मूल में प्रश्नोत्तर प्रणाली है । अधिकांश लोक गीतों में ऐसा प्रतीत होता है कि गीत किसी प्रश्न के उत्तर के रूप में कहा जा रहा है और यदि प्रश्न नहीं भी किया जा रहा है तो वह वार्त्ता का एक अंक है । यह प्रश्नोत्तर या वार्त्ताशैली के गीत दो प्रकार में विभाजित किए जा सकते हैं । पहला वे गीत जो पुरूष को संबोधित कर स्त्री वचन के रूप में लिखी गई है दूसरे वे गीत जो स्त्री को संबोधित कर पुरूष वचन के रूप में लिखे गए । ये प्रश्नोत्तर शैली के लोक गीत केवल हिंदी लोक गीतों की ही विशेषता नहीं है वरन् विश्व के अनेक गीतों में और हिंदी भाषेतर लोक गीतों में भी यह प्रवृत्ति और स्पष्टतर देखी जा सकती है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत है । छत्तीस गढ़ी लोक गीत का एक प्रश्नोत्तर शैली वाला गीत देखिए-

कौन तोरे करिहै रामै रसोई, कौन करे जेवनार ।

कौन तोरे करिहै पलंग बिछौना, कौन जोहे तेरो बाट ।

दाइ करिहै रामै रसोई, बहिनी करे जेवनार ।

सुलखी चेरिया पलंग बिछैहै, औ मुरली जोहे बाट[9] ।

१-प्र० सर्व०,पृ० ५५७ । २- वही, पृ० ५५७ ३-वही, पृ० ५५७ ।

४- वही,पृ० ५५२ । ५- वही, पृ० ५७६ । ६-वही,पृ० ५७८ ।

७- वही, पृ० ५८० । ८- वही, पृ० ५८० ।

९- धीरे बहो गंगा- देवेन्द्र सत्यार्थी ।

उपरोक्त छत्तीसगढ़ी गीत की प्रथम चार पंक्तियों में किसी स्त्री से किसी ने प्रश्न किया है कि तेरी रसोई कौन करेगा, जेवनार पलंग बिछौना, बाट कौन देखेगा, उत्तरार्ध की चार पंक्तियों में उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर दिया गया है । इसी प्रकार मगही गीतों में प्रश्नोत्तर शैली को देखिए -

कउन बन उपजे है नरियर, कउन बन उपजे अनार है ।
ललना कउन बन उपजे, गुलाब त चुनरी रंगायब है ।।
बाबा बन उपजे है नरियर, भइया अनार है ।
ललना सभी बन उपजे गुलाब त चुनरी रंगायब है[१] ।।

उपरोक्त गीतों की पंक्तियों में भी ललना से प्रश्न किए गए हैं जिसका उसने उत्तर दिया है । बंगला लोक गीत देखिए जिसमें प्रश्न और उत्तर की ही शैली है -

सात भाई चाम्पा जागो रे
केनो बोन पारुल डाको रे
राजार माली एसे छे फूल देवे कि देबेना ?
न दिबो न दिबो फूल
उठिबो शतेक दूर
आगे आशुक राजार बड़ो रानी
तबे दिबो फूल[२] ।।

इसी प्रकार एक मैथिली झूमर में प्रश्न किया गया है कि कौन फूल आधी रात को खिलता है, कौन फूल सबेरे खिलता है और उत्तर दिया गया है- बेला फूलता है आधी रात में और चम्पा फूल सबेरे खिलता है मधुवन में-

---

१- मगही संस्कार गीत- डा० विश्वनाथ प्रसाद ।
२- बेला फूले आधी रात- देवेन्द्र सत्यार्थी पृ० २१ ।

कौन फूल फूलै आधी आधी रतिया ।
कौन फूल फूलै भिनसार मधुबन में ।।
बेला फूल फूलै आधी आधी रतिया ।
चम्पा फूल फूलै भिनसार मधुबन में[१] ।।

इसी प्रकार कनौजी लोक गीतों में भी प्रश्नोत्तर प्रणाली देखी जा सकती है-

को मेरे मुंजवन जेये मुंजिया कहिए ।
को ले आवै मूंज को जनयी चहिए ।
आ जा मेरे मुंजवन जैए मुंजिया कहिए ।
बेई लै आमैं मूंज को जनेऊ चहिए[२] ।

इस प्रकार प्रत्येक भाषा के लोक गीत में यह प्रश्नोत्तर प्रणाली देखने को मिलती है और जिन लोक गीतों में स्पष्टतः प्रश्न नहीं पूछे गए उनमें भी यही प्रतीत होता है कि वे या तो किसी के प्रश्न के उत्तर के रूप में कहे जा रहे हैं या ये गीत दो व्यक्तियों की वार्ता में से किसी का किसी के प्रति कथन है । भारतेंदु युगीन काव्य में प्राप्त लोक गीतों में, लोक गीतों की यह सार्वभौम विशेषता दर्शनीय है ।

कोई नायिका अपने प्रेमी से कह रही है कि हे संवलिया तू तो अब मेरा मित्र हो गया-

सवलिया रे तू तो भयो मीत मोर ।
कहर करत निस बासर डोलत बांके भौंह मरोर ।
भोली सूरत पै सत कोटिन मदन निछावर थोर ।
बदरी नारायण जू वारी तुम पर नंद किशोर[३] ।।

१- बेला फूले आधी रात पृ० २३ ।
२- कनउजी लोक गीत संतराम अनिल पृ० १५५ ।
३- प्रे० सर्व० पृ० ४१३-४१४ ।

इसलिए अब तुम मेरी सेज पर आ जाओ क्योंकि हमारी तुम्हारी उपयुक्त जोड़ी है-

सेजरिया सैंया आजा मोरी ।
सैन करो हिय सौं हिय मेलि निज मुख सौं मुख जोरी ।
बदरी नारायण है खासी, जोरी मोरी, तोरी[1] ।।

और फिर प्रेमी की खुशामद करते हुए नायिका कहती है-

पैंया लागू बलम इत आओ ।
कबहूं तो दरसाय चंद मुखजिय की तपन बुझाओ ।
बदरीनारायण दिलजानी भरभुज गरवां लगाओ[2] ।।

और जब प्रिय किसी प्रकार नहीं मानता और सेज पर आने के लिए तत्पर नहीं होता तो वह कहती है-

सेजरिया रे आवत ~~कहत~~ काहे न यार ।
बीतत जात दिवस आवत नहिं, नाहक करत अनार ।
क्यों बैठाय अवधि नौका पर, अबकरा कसत कनार ।
प्रेम पयोनिधि, मैं गहि बहियां बोरत कस मंझधार ।
बदरीनारायण छतियां लगि कर जा तू प्यार[3] ।

इसी प्रकार कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका की रूप प्रशंसा करते हुए अपनी प्रेमिका की गोरी सूरत को मन में काम को उद्दीप्त करने वाला तथा नैनों को कटार की तरह कहता है जिससे वह पुरुष का हृदय पर प्रहार कर उसको वश में करती है-

---

१- प्रे० सर्व० पृ० ४१४ ।
२- वही, पृ० ४१४ ।
३- वही, पृ० ४२६ ।

तोरी गोरी रे सूरतिया प्यारी प्यारी लागै रे ।
मन्द मन्द मुस्कानि लसे उर पीर काम की जागै ।
बरसावत रस मनहुं प्रेमघन बरबस मन अनुरागै[1] ।

- - - -

मारी तूने कैसी जनियां । बाँके नैनों की कटार ।
पलक म्यान सौ बाहर कर दीन करेजे पार ।
व्याकुल करत प्रेमघन मन हक नाहक हाय हमार[2] ।

फिर आगे प्रेमी कहता है-

एक दिन तोरे रे जोबन पर चलिहैं छूरी तलवार
रतनारे मतवारे प्यारे दूनौ नैन तोहार ।
धानी ओढ़नी ओढ़ै सीस पर अँगिया गोटेदार ।
यार प्रेमघन ललचावत मन बरबस हाय हमार[3] ।

और आगे वह कहता है कि वह इस रूप पर ही मुग्ध होकर उससे मिलने के लिए विविध उपाय कर रहा है किन्तु फिर भी वह अपनी प्रेमिका को नहीं पा रहा है । प्रेमी अपने विविध कार्यों का उल्लेख करते हुए कहता है-

तोह से यार मिलै के खातिर सौ सौ तार लगाइला,
गंगा रोज नहाइला, मन्दिर में जाइला,
कथा पुरान सुनीला, माला बैठि हिलाइला हो ।
नेम धरम औ तीरथ बरत करत थकि जाइला,
पूजा कै कै देवतन से करि जोर मनाईला हो ।
महजिद में जाइला ठाढ़ होय चिल्लाइला,
गिरिजाघर घुसि कै लीला लखि लखि चिलखाइला हो ।
नव समाजन की बक बक सुनि सुनि घबराइला,
पिया प्रेमघन मन तजि तोहके कतहुं न पाइला हो[4] ।

१- प्रे० सर्व० पृ० ५८३ ।   २- वही, पृ० ५८३ ।
३- वही, पृ० ५८३ ।   ४- वही, पृ० ५८३ ।

राधा और कृष्ण लोक मानस को बहुत प्रिय रहे हैं और वह इतना घुल मिल गए हैं कि प्रत्येक प्रेमी कृष्ण और प्रेमिका राधा बन जाती है । यही कारण है कि लोक गीतों का एक बहुत बड़ा परिमाण राधा और कृष्ण को संबोधित कर ही लिखा गया है । राधा और कृष्ण की प्रेम क्रीड़ा का लोक गीतों में विशद वर्णन मिलता है । कृष्ण राधा से हास परिहास करते हैं, रास्ता रोक कर कभी तो दही की मटकी फोड़ डालते हैं और कभी मार्ग में अकेला पाकर गले लगा लेते हैं। अतः राधा कृष्ण की छेड़खानी के प्रत्युत्तर रूप में कहती है-

छेड़ो छेड़ो न कन्हाई मैं पराई ललना ।
नोखे छैल भए तुमही, फिरो घूमत बन दुखदाई ललना ।।
इन चालन लालन अनेक बस करि कलंक कुल लाई ललना ।
पिया प्रेमघन माधव तुम, हठि करत हाय ठगहाई ललना[1] ।।

और इधर तो राधा ने कृष्ण को उलाहना दिया तो दूसरी ओर उलटे ही कृष्ण राधा की रूप प्रशंसा करने लगते हैं-

तोरी सांवरी सूरत लागै प्यारी जनियां
तोरी सब सज धज अति न्यारी जनियां
मतवारी की अँखियन की चितवन सो जनु हनत कटारी जनियां
मंद मंद मुस्काय मोहनी मंत्र मनहुं पढ़ि डारी जनियां
मीठी बतियन मोहत मन सब सुध बुधि हरत हमारी जनियां ।
मनहुं प्रेमघन बरसत रस छवि भूलत नाहिं तिहारी जनियां[2] ।।

और अपने इस उलाहने के रूप में अपनी रूप प्रशंसा सुन कर तथा अपने उलाहने का कोई असर न देखकर राधा चिढ़ सी जाती है और मान करते हुए कहती है- हे मुरारी मैं तुम्हारी गाली सुनना नहीं चाहती।जरा बात संभाल के बोलो । हे बनमाली न तो मैं तुम्हारी तरह कुमार्ग पर

१- प्रे० सर्व० पृ० ४९१।

२- वही, पृ० ४९१ ।

जाने वाली हूं । न मैं तुम्हारी घर की पाली हुई हूं । अर्थात तुम्हारे आश्रित हूं जिससे तुम जो चाहों सो करो और न ही मैं तुम्हारी सरहज या साली हूं जिस कारण से तुम मुझसे मज़ाक करते हो । अतएव हे मुरारी न तो अब मैं तुम्हारे साथ जाऊंगी और नहीं तुम्हारी बात मानूंगी -

मैना । सुनहो गाली, बोजो बात संभाली रे मैना ।
मैना । तेरी तरह कुचाली, सुनबनमाली रे मैना ।
मैना । तेरे घर की पाली, सरहज साली रे मैना ।
मैना । लेवें कान की बाली, भूमकवाली रे मैना ।
मैना । ऐसी भोली भाली, रीझूं हाली रे मैना ।
मैना । प्रेमघन घाली, बैठी बाली रे मैना[1] ।

\- \- \- \-

जाउं तोरे संग मुरारी- मैना । मैना । रे मैना ।
मैना । मानूं बात तिहारी- मैना । मैना । रे मैना ।
मैना । जाउं घरवां मारी- मैना । मैना । रे मैना ।
मैना । जाउं तापै वारी- मैना । मैना रे । मैना ।
मैना । करिहौ तो सो यारी- मैना । मैना रे । मैना ।
मैना । निरी प्रेमघन वारी- मैना । मैना । रे मैना ।
मैना । ब्याही तेरी नारी- मैना । मैना । रे मैना[2] ।

इसी प्रकार कुछ गीत है जिनमें सखी अपनी सखी से कह रही है कि हे साँवर गोरिया सखी तुझ पर संवरा मुग्ध हो गया है और वह तुझे देखने के कारण ही आजकल सवेरे शाम घूमता रहता है और जब से तुम्हारे नैनों से इसके नैन उलझ गए हैं उसे अब एक क्षण को भी चैन नहीं है इसलिए तुम उससे मिलकर और पिय को जीवन दान देकर कृतार्थ

१- प्रे० सर्व० पृ० ४९० ।

२- वही,, पृ० ४९० ।

करो-

तोहिं पर संवरा लुभान सांवर गोरिया ।
संवरी सूरत, रस भरी अंखियां, लखि बिन मोलवै बिचार मा० ।
तोरी देखन काज आजकल, घूमै संभवी बिहान सा० ।
एकहु पल नहिं चल कल ओके जबसे नैन उरझान सा० ।
मिलि रस बरस प्रेमघन पिय पर दैके जोबनवा के दाम सा० [1] ।।

दूसरी ओर कहीं प्रेमिका अपने बनिजरउ पति से कहती देखी जाती है-

जिन्कर : जाए कै बिचार बनिजरउ ।
झिमिझिम रिमिझिम देव बरी से, बढ़िआए नदिया और नार बनि० ।
और महीना बनह बैपारी, सावन गटई के हार बनि जरउ ।
काउ नफा फेरि आव भै जैब्बा:बढ़ि गए जोबना के बजार । बनि० ।
बरस: रस मिलि पिया प्रेमघन मानः कहनवा हमार बनि० [2] ।।

इसी तरह आगे झूला झूलते हुए राधा का चित्र है और बिहारी झुला रहे है । कृष्ण तीव्रता से झुलाना चाहते हैं किन्तु राधा बार बार उन्हें रोकती है इस प्रकार पूरे गीत में कृष्ण को संबोधित करके कहे गए राधा के वचन है-

धीरे धीरे झुलावो बिहारी ।
जियरा हमार डरै । जियरा हमार डरै ना ।।
छतियां मोरी धर धर धरकत, दे मत झोंका भारी ।
जियरा हमार डरै । जियरा हमार डरै ना ।।
लखत कैंक नहिं संक तुमैं कछु, हौ कस निपट अनारी ।
जियरा हमार डरै । जियरा हमार डरै ना ।।
दया वारि बरसाय प्रेमघन । रोक हिंडोर मुरारी ।
जियरा हमार डरै । जियरा हमार डरै ना [3] ।।

१- प्रे० सर्व० पृ० ५०८ । २- वही, पृ० ५०८ । कह ३- वही, पृ० ५२१ ।

इसी प्रकार एक बाला के वचन देखिए जो ग्राम भाषा में अच्छी तरह गूँथे गए हैं और एक वृद्ध के प्रति है। बाला की अवस्था १२ वर्षों की है और उसका एक वृद्ध से जो मृत्यु के निकट है, विवाह कर दिया गया है। वृद्ध उसको फुसला कर प्रेमापात्र करना चाहता है उसके लिए विविध वस्तुएँ लाता है जिससे वह प्रसन्न हो तथा उसे पति मानकर तदनुरूप व्यवहार करे किन्तु वह बाला कहती है-

चलः हटः जिनि भाँसा पट्टी हमसे बहुत बघाराः रामा।
हरि हरि फुसिलावः जिनि दै दै बुरा बाला रे हरी।
चोली गुनि भरभावः काउ रिझावः ? हम ना रीझब रामा।
हरि हरि समुझावः जिनकै बहुत कसाला रे हरी।
लाजिब काउ दिखावः हम ना पहिरब झुलनी झूमक रामा।
हरि हरि चम्पाकली टीक ना बुंदा बाली रे हरी।
जब लग चढ़ै जवानी हम पर तब लगि तू मरि जाब्यः रामः।
हरि हरि तब हमार फिरहोयः कवन हवाला रे हरी ॥
फेरि कैसे मन मिलै कहः तो मुरदा औ जिन्दा कै रामा।
हरि हरि होय प्रेम कैसे, कहँ रस कै ढाला? रे हरी[१] ॥

उपरोक्त गीत में प्रश्नोत्तर की प्रणाली बड़े रंजक तथा सहज रूप में सामने आती है इसी प्रकार अनेक उदाहरण इस संबंध में प्रस्तुत किए जा सकते हैं-

बीच बीच में प्रश्नोत्तर शैली में उक्तियाँ लिखना भी लोक शैली की ही विशेषता है। एक प्रश्न कहकर उसके दूक उत्तर रूप में पद कहना एक प्रश्न का उत्तर अनेक रूपों मे देना या एक पद में ही कई प्रश्न पूछते पूछते उत्तर देना लोक शैली की ही विशेषता है। इस प्रश्नोत्तर शैली में कवियों ने कई कविताएँ लिखी हैं जिनका विवेचन आवश्यक है। एक

१- प्रे० सर्व० पृ० ५३५-५३६ ।

एक प्रश्नोत्तर शैली की कविता है- जिसमें प्रथम चरण में प्रश्न पूछा गया तदुपरांत उत्तर दिया गया है-

कब लग परसन आवत हंसी । जब लौं पेट में रोटी धंसी ।।
कासे लगत जगह हैफिक्का । रोग ग्रसित बा सुन नहिं सिक्का ।।
निधन गोरक्षा में कोलाहल । दिन में जिन्हें दिनौंधी आवत ।।
काहे में द्विजवर बहु दीन । षट् कर्मन कोई तजदीन ।।
कौन रीति अति देश बसाती । बाल विवाह अरु ठकुर सुहाती ।।
दूध पैं चुंगी नित लगवायो । जिन बिन मेहनत बहुत कमायो ।।
कांगरेस देख कौन घबराते । जो बिन अकल नौकरी पाते ।।
भारत वासी क्यों बिलखाहीं । नहि कटि पट नहिं पेट अघाहीं ।।
अंगरेजी में कौन निखटका । ज्वारी चोर उचक्का लुबका[1]।।

इसी प्रकार अनेक प्रश्नों का एक साथ पूछना भी लोक शैली के ही अन्तर्गत आता है । इस प्रकार की भी शैलियां कवियों ने अपनायी है । रसिक वाटिका में प्रकाशित एक पद में इसी प्रकार चार प्रश्न एक साथ पूछे गए है -

पूरन रूप सुवर्णहि के बल केवल रूप सुवर्ण निहारी
नीति सुरीतिह के विपरीत करी अति प्रीति प्रतीहि अनारी ।
छीन सबै धनलीन जबै लखि पीन कहे गणिका ललकारी
को है? कहां को ? तु आयो कहां ? चलजा भडुएं हम कौन - तिहारी[1]।

इसी शैली में कवि दयानिधि की कविता "भारतेन्दु" में प्रमाणित हुई थी जो इस प्रकार है -

चारहू दिसा में मेरे गढ़ पुर कोट केते । केत गाम ? तिनको हिये में निज धारयो ।
आमद कितीक ? जाकी ताकी याद करे पुनि इतनो उठत है सो खरच निहा- र्यो ।।
केतो धन बचे ? केतो उठत सिपाहिन को ? ताको सब ब्योरो सुनि समझ सुधारयो ।
राजनीति राजन को दिन दया निधि चार घड़ी चार घड़ी रात रहे इतनो ------बिचारयो[2]।

इस प्रकार संबोधनात्मक प्रवृत्ति तथा प्रश्नोत्तर प्रणाली की दृष्टि से भी भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा लिखित गीत लोक गीत का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत करते हैं । उनमें संबोधन तथा प्रश्नोत्तर की वही प्रवृत्ति है जो लोक गीतों की सार्वभौम विशेषता है और जो केवल हिंदी लोक गीतों में ही नहीं वरन् किसी भी प्रदेश के लोक गीतों में स्पष्टतः देखी जा सकती है ।

चित्रांकन पद्धति भी लोक गीतों की विशेषता है । चित्रांकन का जितना सफल रूप लोक गीतों में देखने को मिलता है शिष्ट साहित्य में नहीं । लोक गायक शब्दों के माध्यम से स्थिति का चित्र उतारना चाहता है इसकारण से भी उसके गीतों में प्रायः पुनरुक्ति तथा अन्तहीन परिगणना की स्थिति आती है । यदि लोक गायक किसी मेले कावर्णन कर रहा है तो वह भाव प्रधान होकर उसके कारण और उसके महत्व पर विचार करने नहीं बैठता वरन् वह मेले में आए बाल वृद्ध युवा नर नारियों की साज सज्जा का, स्थान की विशेषता का वर्णन करता है और इस प्रकार सूक्ष्म विश्लेषण करता है इसी प्रकार यदि उसे किसी मजलिस का चित्र खींचना है तो वह प्रत्येक मजिलिस में बैठे हुए व्यक्ति की स्थिति का वर्णन करेगा । उसके गीतों को पढ़कर लगता है मानों स्थिति वास्तविक ही है और वह स्वयं उस स्थिति का एक अंग है जिसके कारण से वह ऐसा रूप खींच सका ।

भारतेन्दु युगीन लोक गीतों में प्रेमघन तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि अनेक कवियों ने इस चित्रांकन शैली में सफलता पाई है । कुछ उदाहरण देकर उपर्युक्त कथन की सार्थकता स्पष्ट की जा सकती है ।

सर्व प्रथम मेले के प्रसंग को लीजिए । कवि त्रिकोन के मेले जो सावन के प्रत्येक मंगलवार को विंध्याचल के पहाड़ पर होता है का वर्णन करता है । कवि इस मेले के प्रसंग का प्रारम्भ ही बड़े नाटकीय ढंग से करता है वह कहता है कि सावन की बहार में विंध्याचल के पहार पर मजेदार मेला लगा देखकर एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि चलो मेला देखने चला जाए । यहां "चलः चलीपार" चित्रांकन की पद्धति को और सार्थक करता है । फिर स्त्रियों के साथ तथा सखियों के साथ प्रसन्नता पूर्वक सोलहों सिंगार का वर्णन करता है । सोलहों सिंगार कह कर ही वह मौन नहीं रह जाता वरन् चोली करौंदिया जरतारी, धानी तथा बंगारी सारी, गुल अब्बासी धारी चादर,

बेसर बन्दी, बाला, झूमड़, झुमक, मोतीमाला कमर में किंकिनी पैरों में पायल की झन्कार का वर्णन कर उनके शृंगार का वर्णन करता है फिर बताता है -

आई सावन की बहार विंध्याचल के पहार ।
पर मेला मजेदार लगा बल - चली यार ।
तिय सहित उमंग, मिलि सखियन संग ।
चली मनहुं मतंग, किये सोरहौं सिंगार ।
चोली करौंदिया जरतारी, सारी धानी या अंगारी ।
चादर गुल अब्बासी धारी गाती कजरी मलार ।
पहिने बेसर बन्दी बाला, झूमड़ झूमक मोतीमाला ।
कटि किंकिनी रसाला, पग पायल झन्कार[1]।

इसके बाद ही कवि मेले वर्णन के प्रसंग को पूर्ण नहीं समझता इसके बाद वह इन युवतियों के शृंगारों का, मतवारे रतनारे कजरारे नैनों का, मन्द मन्द मुस्कराकर डालने वाली मोहिनी का युवक रसिक जनों पर पड़े हुये प्रभाव कावर्णन करता वह नहीं भूलता । वह उन प्रेमी जनों की मनोदशाओं का रोचक वर्णन करता है -

"प्रेम जुव जन भंग, पीये सनित सुढंग ।
रंगे मदन के रंग, संग लगे हियहार ।।
कोउ कलपै कराहैं, कोउ भरै ठण्डी आहैं ।
कोउ अड़े दें कि राहैं, बड़े तड़े कोउ तार[2]।।"

इसी प्रकार स्त्रियों के कजली खेलने का चित्र है जिसका पूर्ण चित्र प्रेमघन ने उतारा है । कवि कहता है कि सभी नारियां हिल मिलकर कजरी खेल रही हैं । कोई मृदंग बजा रहा है, कोई मुंहचंग और चंग लिए हुए है और कोई सारंगी पर सुर छेड़ रहा है तो कहीं कोई सितार करतार तंबूरा ले आया है, कोई जोड़ी बजा रही है तो किसी के पैर में घुंघरू झनक रहाहै

१- प्रेमघन सर्वस्वः पृ० ५३० ।

२- वही ।

और सभी युवतियां मतवाली सी होकर नाच रही हैं और कजली की गीतें कोकिल कंठी नारियां गा रही है । तदुपरान्त उनके हावों भावों का हंसकर कमर लचकाने का, नाक सिकोड़ने का, गर्दन हिलाने का तथा नैन बान मारने का तो कभी कहर भाव बतलाने का वर्णन है । कहीं उनके सुरपुर की सुन्दरियों के लजाने का वर्णन है तो कहीं अपनी इन विशेषताओं के द्वारा उन नारियों द्वारा कृष्ण के मोह लेने का वर्णन है -

जुरी जमात गुजरी जमुना कूल कदम कुंजन में रामा ।
हरि हरि हिलि मिलि खेलैं कजरी राधा रानी रे हरी ।।
कोउ मृदंग, मुहचंग, चंग, लै सारंगी सुर छेड़ै रामा ।
हरि हरि कोउ सिंगार, करतार, तमूरा ग्रानी रे हरी ।।
कोउ जोड़ी टनकारै, कोउ घुंघरू पग झनकारै रामा ।
हरि हरि नाचैं कितनी माती जोम जवानी रे हरी ।।
छायो सरस सनाको सुर को, गावैं मोद मचावैं रामा ।
हरि हरि गीतैं कजली की कल कोकिल बानी रे हरी ।।
हंसत लंकलचकावैं, नाक सकोरैं, ग्रीव हलावैं रामा ।
हरि हरि नैन बान मरैं जुग भौंहैं तानी रे हरी ।।
कहर भाव बतलावैं, सुरपुर की सुंदरनि लजावैं रामा ।
हरि हरि मोह लियो मन श्याम सुन्दर दिल जानी रे हरी[१] ।।

प्रेमघन ने कजली में मिर्जापुरी गुण्डों का भी यथार्थ चित्र उतारा है तथा चित्र में उनकी साज सज्जा, उनके क्रिया कलाप, उनके हाव भावों का भी रोचक वर्णन किया है । यह गुण्डों का चित्र इतना सार्थक बन पड़ा है कि गीत को पढ़कर ही गुण्डों का साकार रूप सामने उभर आता है । इस चित्र के मुख्यरूप के तीन अंग हैं ।

पहला चित्र का अंग है जिसमें गुण्डों की रूप सज्जा का वर्णन हुआ है कि वेक्या वस्त्र पहनते हैं, उनके आभूषण क्या है और उनकी साज-सज्जा के प्रसाधन क्या हैं । वस्त्रों में टेढ़ी पगड़ी पर बेढंगी सतरंगी साफे का

१- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० ४९८ ।

वर्णन है और उस पर गुलेनार तथा धानी दुपट्टे का उल्लेख है । चौकाला कुरता तथा घुटने के ऊपर पहनी जाने वाली किनारेदार कसी धोती उनका वस्त्र है । आभूषणों में गले में पहना हुआ हार तथा गले में ही बांधा जाने वाला गण्डा साज सज्जा के रूप में कमर में जहर बुझी हुई कटारी औ छुरी, कंधे पर मोटी लाठी, मस्तक पर बेंड़ा काला टीका तथा ऊंचा महाबीरी टीका तथा मुंह में चबाए हुए पान की शोभा का वर्णन है । इन समस्त विशेषताओं को देखिए प्रेमघन ने इनका किस प्रकार स्वाभाविक वर्णन किया है -

बनी शकल गुण्डानी बोलैं गजबैं बीहड़ बानी रामा ।
हरे चलैं मिर्जापुरियों की मस्तानी रे हरी ।।
टेढ़ी पगड़ी पर सतरंगा साफा भी बेढंगा रामा ।।
तर डटा दुपट्टा गुलेनार या धानी रे हरी ।।
कुरता भी चौकाला, डाला झूलै तिसपर माला ।
हरे गण्डा गले गले गाँधे सैलानी रे हरी ।।
कसी किनारदार धोती घुटने के ऊपर होती रामा ।
हरे चलैं झूमते ज्यों हथिनी बौरानी रे हरी ।।
काला कमर बंद का फांडा ऊंचा, हथवा बांडा रामा ।
हरे कमर कटारी छुरी जहर बुझानी रे हरी ।।
कांधे मोटी लाठी, पैसा कौड़ी एक न गांठी रामा ।
हरे तौभी डकरैं पी पी करके पानी रे हरी ।।
काला टीका बेंडा पर, महाबीरी ऊंचा टेढ़ा रामा ।
हरे मुंह में चाभत पान, बैल ज्यों सानी रे हरी[१] ।।

चित्र का दूसरा पक्ष है गुण्डों के क्रियाकलापों तथा स्वभाव वर्णन का । इसमें गुण्डों की निम्नलिखित विशेषताएं बतलाई गई हैं । (१) उनकी बानी बीहड़ होती है (२) यद्यपि उनकी जेब में एक कौड़ी भी नहीं होती तो भी वे पानी पी पी कर खूब डकार लेते हैं ।(३) सूखे चने खाते हैं तथा बूटी

१- प्रेमघन सर्वस्वः पृ० ५२९ ।

छानते हैं। (४) दिन भर तो वे अखाड़े में बिताते हैं किन्तु संध्या होते ही एक इक्का भाड़े पर करके लक्खी या तिरमोहानी पर जमे रहते हैं (५) सहयोगियों के संग खड़े होकर वे युवतियों को घूरते हैं (६) अण्ड बण्ड बात करते हैं और बीच बीच में मूंछ ऐंठते जाते हैं । (७) रास्ते में बोली ठोली कसते हैं चाहे उनको इस पर दस गालियां ही खानी पड़े (८) बिना कारण के लोगों से लड़ते हैं चाहे उल्टे ही पिट जाएं इसका उन्हें चिन्ता नहीं है (९) कान्स्टेबिल और कोतवाल को भी मारे और इससे जेल जाते हैं (१०) जब जेल से छुटकर आते हैं तब गुरु मियादी की पदवी पाते हैं (११) और फिर गुरु मियादी का पद पाकर तो इन्हें कोई चिन्ता नहीं रह जाती ये महाजनों को डरवाते हैं और जुआ खुलवाते हैं। इस प्रकार रूप सज्जा के अतिरिक्त प्रेमधन ने गुण्डों की स्वभावगत विशेषताओं का वर्णन करके भी उसका यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है[1]। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी चित्रांकन पद्धति में बहुत सफल रहे हैं। भारतेन्दु के संस्कार गीत में यह प्रवृत्ति बहुत स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए कवि भारतेन्दु लिखित "घोड़ी" तथा "बनरा" के उदाहरण दिए जाते हैं जिनमें वर की छवि का वर्णन किया गया है। "घोड़ी" में वर के घोड़े पर चढ़कर आने, मस्तक पर मौर, कमर में पटुका, जामा, हाथ में मेंहदी आदि का वर्णन है उसी प्रकार दुलहिन श्री वृषभानु कुमारी की साज सज्जा का वर्णन है -

नीली घोड़ी चढ़ि बना मेरा बन आया। भोले मुख मरवट सुंदर लगत सुहाया।
जामा जीरा जरकसी चमक मन भाया। सूहा पटुका कटि कसे भला छबि छाया।
हाथों मेंहदी मन हाथों हाथ चुरावैं। मधुरी मूरत लखि अंखिया आज सिरावैं।
सिर मौर रंगीला तुर्रों की छबि न्यारी। मोती लर गूंथा सेहरा मुखमन हारी
फूलों की बेनी झब्बिया लटकै प्यारी। सिर पेंच सीस कानन कुंडल छबि-
भारी[2]॥

तैसी दुलहिन संग श्री वृषभानु कुंवारी। मौरी सिर सोहत अंग केसरी सारी॥
मुख मरवट कर में चूरी सरिस लेवारी। नकबेसर सोभित चितहिं चुरावन वारी।

१- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० ५२९-५३० ।

२- भा०ग्रं०: पृ० २९१ ।

सिर सेंदुर मुख मैं पान अधिक छबि पावै । मधुरी मूरत लखि अंखिया आज सिरावैं[१] ।।

इसी प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने दुलहिन राधा गोरी का कई स्थानों पर और रूपांकन किया है । भारतेन्दु की चित्रांकन पद्धति के रूप में दुलहिन राधा का एक और चित्र प्रस्तुत है ।

चलौ सखि मिल देखन जैये दुलहिन राधा गोरी जू ।
कोटि रमा मुख छबि पै वारौं मेरी नवल किसोरी जू ।
घंघरी लाल जरकसी सारी सौंधे भीनी चोली जू ।
मरवट मुख मैं सिर पर मौरी मेरी दुलहिया भोली जू ।
नक बेसर कनफूल बन्यो है छबि का पै कहि आवै जू ।
अनवट बिछिया मुंदरी पहुंची दूलह के मनभावै जू ।
ऐसे बना बनी पैरी सखि अपनो तन मन वारी जू ।
सब सखियां मिलि मंगल गावत हरीचंद बलिहारी जू[२] ।।

लोक शैली की विशेषता चित्रांकन क पद्धति भी है लोक गीतों में इस प्रवृत्ति का वर्णन किया जा चुका है और लोक गीतों की तथा लोक शैली की यह सार्वभौम विशेषता है । लोक शैली की यह चित्रांकन पद्धति भारतेन्दु युगीन कवियों की लोक गीतेतर रचनाओं में भी भली भांति देखी जा सकती है । कहीं कवियों ने किसी स्थिति का ऐसा वर्णन किया है कि चित्र खड़ा हो जाता है, कहीं किसी व्यक्ति का तो कहीं किसी प्रदेश का कवियों ने चित्र खींचा है । कुछ उदाहरण द्वारा उपर्युक्त कथन की पुष्टि की जाती है । कवि कचहरी में बैठे हुए एक मुंशी का चित्र खींचता है - जिससे शब्दों के माध्यम से ही मुंशी जी का साकार रूप सामने आ जाता है -

तिन सबको प्रधान, कायथ इक बैठ्यो मोटो ।
सेत केस कालो रंग कछु डीलहु को छोटो ।।
रूखे मुख पर रामानुजी तिलक त्रिसूल सम ।
दिये ललाट लगाए चस्मा धुरकत हरदम ।।

१- भा०ग्रं० पृ० २९२ ।

२- वही, पृ० ७२ ।

पाग मिरजई पहिनि, टेकि मसनद परजन पर ।
करत कुटिल जबदीठ, लगत वे कांपन थरथर ।।
बाकी लेत चुकाय छिनहिं मे माल गुजारी ।
कहलावत दीवान दया की बानि बिसारी ।।
वाके सन्मुख सबै देखि रूख नयन उचारत ।
जाय पीठ पीछे पै मन के भाव उघारत ।।
कहत लोग यह चित्र गुप्त को वंश नहीं है ।
साच्छात ही चित्र गुप्त अवतार नयो है ।।
पूजा करत देर लौं बन वैष्णव भारी ।
पढ़ि रामायण रोवत है पर अति व्यभिचारी ।।
बिन पाये कछु नजर मिलावत नजरन लाला ।
लाख बीनती करौ बतावत टाले वाला ।।
लिये हाथ मैं कलम कलम सिर करत अनेकन ।
गड़बड़ लेखा करत सबन को धारिकसक मन[१]।।

इसी प्रकार मकतब खाने मैं पढ़ाते हुए मौलवी साहब के गोरे चिट्टे नाटे मोटे स्वरूप को उनकी पाजामा कुरता टोपी आदि वेशभूषा को प्रातः काल उनके नमाज़ पढ़ने उनका नाश्ता करने, क्लास में उनको पढ़ाते देखकर लड़कों के हंसने, मौलवी साहब के आशीर्वाद ~~कक~~ देने आदि की पद्धति का बड़ा सुन्दर चित्रांकन किया है[२]। इसी प्रकार जहां नागपंचमी का या विजयादशमी - रामलीला आदि का कवियों ने वर्णन किया वहां ऐसा ही प्रतीत होता है कि कवि ने मेले का पूर्ण चित्र खींचा है ।

लोक मानस आस्तिकवादी तथा भाग्यवादी होता है इसीलिए प्रत्येक कार्य के आरम्भ में वह ईश्वर की वंदना करना नहीं भूलता और प्रत्येक प्रकार के कष्ट में वह भाग्य का साथ नहीं छोड़ता वह सोचता है कि ईश्वर का यही विधान था इसीलिए ऐसा हुआ । लोक मानस कार्य के पीछे कारण

१- प्रेमघन सर्वस्वः पृ० १२ ।
२- वही, पृ० १७ ।

को नहीं मानता और यदि कारण की पृष्ठभूमि में किसी को मानता है तो केवल ईश्वर को, अपने इष्टदेव को या अपने कुलदेवता को । यही उसके जीवन की प्रवृत्ति उसके साहित्य में भी आती है वह अपने गीतों की टेक रूप में रामा और हरी को रखता है जिससे प्रत्येक बार गीतों की टेकों की पुनरावृत्ति के समय कल्याणदायक ईश्वर का ही नाम निकले । और इसी प्रकार अलौकिक प्रसंगों में जहां उसे तनिक भी शंका होती है कि इसपर विश्वास लोग नहीं करेंगे । शंका का कारण है वह फौरन कहता है - इसमें शंका नहीं (यानै संसय नेक नांहि) आदि । अलौकिक लीला का प्रथम रोला भी इसीलिए उपरोक्त पद्धति के अनुसार "यामैं संसय नेक नांहि" द्वारा ही प्रारम्भ होता है क्योंकि कवि को संदेह है कि जनवर्ग इस अलौकिकत्व को ना समझ सकें और चरित्र पर आक्षेप करें कि कृष्ण वसुदेव पुत्र होकर नंदकुमार कैसे हो गए है -

श्री वसुदेव सुन ह्वै नंद कुमार कहावत ।
यामैं संसय नेक नांहि नारद समुझावत[1]।।

इसी प्रकार सीता के सम्बन्ध में जब राम से वह बिलग हुई कवि यही कहता है कि - यह नासंका कोउ करियो सहजै सिया जगत की माय ।"

बीच - बीच में लोक देवी-देवताओं का उल्लेख , लोक विश्वासों का प्रयोग, लोक उपमानों, लोकोक्तियों,मुहावरों का प्रयोग, साधारण मानव में अलौकिकत्व की व्यंजना करना जैसे अलौकिक लीला में यशोदा की कथा जिसको कृष्ण से बदलकर अलौकिक प्रेरणा से कारागार में वसुदेव ले आए थे, उस कन्या को कंस के द्वारा देवकी की कन्या समझकर मारने के लिए भूमि पर पटकना, तथा उसका मरने के बजाय हाथ से छूटकर आकाश में पहुंच जाना और वहां से कंस के मृत्यु की सूचना देना, तथा इसी प्रकार की अनेक अलौकिकता पूर्ण बातों में विश्वास करना लोक मानस की

१- प्रेमघन सर्वस्वः अलौकिक लीला ।

ही प्रवृत्ति है । इस प्रकार की शैली का काव्य में प्रयोग लोक शैली के ही अन्तर्गत है । इस प्रकार के अलौकिकता पूर्ण प्रसंगों का भी भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयोग मिलता है । लोक उपमानों, लोकोक्तियों, मुहावरों आदि का विवेचन प्रस्तुत प्रबन्ध में यथास्थान किया गया है ।

निष्कर्ष:-

लोक शैली तथा लोक प्रवृत्ति के आधार पर भारतेन्दुयुगीन काव्य का मूल्यांकन करने से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं ।

(१) लोक शैलियों के प्रयोग की दृष्टि से भारतेन्दु युग अपने पूर्ववर्ती हिन्दी युगों की तुलना में एक क्रान्तियुग था । हिन्दी साहित्य में प्रमुख कवियों द्वारा लोक गीतों की शैली में रचना करने के प्रयोग सर्वप्रथम भारतेन्दु युग में ही मिलते हैं ।

(२) भारतेन्दु युगीन कवियों ने केवल कजली, होली, आल्हा चैती, पूरबी, बारहमासा आदि चिरपरिचित लोक गीतों की शैलियों में ही रचनाएं नहीं कीं, वरन् इन प्रचलित लोक गीतों की शैलियों के साथ ही साथ उन अनेक नई लोक शैलियों में भी रचनाएं की हैं जिनका अभी तक संग्रह कार्य ही नहीं हो सका है । फकीरों की शैली, पंडों की शैली, सरवनों की शैली, ककहरा तथा ब बारहखड़ी की शैली, कबड्डी के बोलों की शैली, व्यापारियों के लटके की शैली, पढ़ो परबती सीताराम की शैली आदि ऐसी अनेक नई लोक शैलियों का प्रयोग भारतेन्दु युगीन कवियों ने किया है, जिन का संग्रह कार्य तक भी अभी शेष है ।

(३) भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त नई लोक शैलियों का लोक वार्ता की दृष्टि से विशेष महत्व है क्योंकि इन नई लोक शैलियों के गीतों में भी जनता का हृदय प्रतिबिम्बित है । इन शैलियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, साहित्यिक चिंतन और समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण से तो महत्व है ही साथ ही सांस्कृतिक एकता की स्थापना में भी इनका अमूल्य योग है । इन नई शैलियों में ही लोक मानस की व्यंग्य प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक

विद्यमान है । इनमें लोक जीवन की छाया है । सच पूछा जाय तो भारतेंदु युग एक ऐसा युग था जब जातीयता या राष्ट्रीयता की गंभीर तथा अतिशय भावना ने संपूर्ण राष्ट्र को लोक कवि बना दिया था ।

(४) चूंकि भारतेन्दु युगीन कवियों ने कथात्मक काव्य की रचना नहीं की इसलिए इनमें लोक शैली की दृष्टि से न तो लोक कथानक रूढ़ियों का अनुसंधान किया जा सकता है, न कथानकों के लोक प्रिय रूप की स्वीकृति आदि पर ही विचार किया जा सकता है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने या तो वर्णनात्मक काव्य की ही रचना की है, या लोक गीत या गीतों की शैलियों में रचनाएं की है । अतः इनमें ही लोक शैली गत विशेषताओं का अनुसंधान संभव है ।

(५) लोक शैली की प्रमुख विशेषता भावों की स्वच्छंद अभि-व्यक्ति है । इस विशेषता का दर्शन भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रायः सर्वत्र होता है । यह स्वच्छंदता की प्रवृत्ति मुख्य रूप से शृंगार सम्बन्धी प्रसंगों में या व्यंग्य प्रसंगों में देखी जा सकती है ।

(६) लोक शैली की प्रमुख विशेषताएं जहां तक लोक गीतों का संबंध है, पुनरावृत्ति प्रवृत्ति, लयात्मक शब्दों का प्रयोग, संबोधन वाची शब्दों का प्रयोग, प्रश्नोत्तर की प्रवृत्ति, अन्तहीन परिगणन की प्रवृत्ति तथा चित्रांकन प्रवृत्ति है । यह समस्त लोक शैली गत विशेषताएं भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा लिखित लोक गीतों में देखी जा सकती है । अन्तहीन परिगणन प्रवृत्ति तथा चित्रांकन प्रवृत्ति वर्णनात्मक काव्यों की भी लोक शैली गत विशेषता है। भारतेन्दु युगीन वर्णनात्मक काव्यों में भी उपर्युक्त दोनों ही लोक शैली गत विशेषताएं प्राप्त हैं और इनका विस्तृत विवेचन पहले किया जा चुका है ।

(७) इस प्रकार लोक शैलियों तथा लोक प्रवृत्ति की दृष्टि से भी भारतेन्दु युगीन काव्य लोक काव्य अधिक है शास्त्रीय काव्य कम ।

- - -

अध्याय २

भारतेन्दु युगीन काव्य में लोक भाषा तत्व

भारतेन्दु युगीन काव्य में लोक भाषा तत्व

परिचय:

हिन्दी साहित्य में शताब्दियों बाद भारतेन्दु युगीन कवियों ने लोक भाषा तथा लोक शैली के महत्व को समझा था और इसीलिए उन्होंने अपने सहयोगी कवियों से आग्रह किया था कि वे ग्रामीण भाषा तथा शैली में गीत लिखकर तथा मित्र कवियों से लिखवा कर भेजें[1], जिससे उनका प्रकाशन हो सके और लोक साहित्य की उपेक्षा के कारण हिन्दी साहित्य का जो एक बहुत बड़ा भाग उपेक्षित ही रहा है उसकी पूर्ति हो और शिष्ट साहित्य को ही सर्वस्व मान बैठे हुए रसिक व्यक्ति यह अनुभव करें कि शिष्ट कही जाने वाली कविता से कहीं अधिक रस ग्रामीण कविता में है और ग्रामीण कविता में ही सच्ची कविता का दर्शन पाया जाता है, इसमें चित्त की एक सच्ची और वास्तविक भावना

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का श्री राधाचरण गोस्वामी को लिखा गया पत्र

श्री गोस्वामी राधाचरण जी को लिखित

अनेक कोटि साष्टांग प्रणाम

आपका कृपा पत्र मिला, चन्द्रिका सेवा में भेजी है, स्वीकृत हो । आप अनेक ग्रंथों का अनुवाद करते हैं तो चैतन्य चन्द्रोदय का अनुवाद क्यों नहीं करते ? बड़ा प्रेममय नाटक है उसके छन्दमात्र मैं दत्तचित्त होकर बना दूंगा, उत्साह कीजिए, जातीय गीत भी कुछ बने और छपें, मैं बहुत उद्योग करता हूं किन्तु किसी से बनाकर न भेजे ।

आपका
हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र- ब्रजरत्नदास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी १९३५ परिशिष्ट ब पत्र व्यवहार से उद्धृत - पत्र १ ।

की तस्वीर खिंची हुई पाई जाती है[१]। फलस्वरूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से चौधरी बदरी नारायण उपाध्याय, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र,

---

१- "अब ग्राम्य कविता पर ध्यान दीजिए मल्लाहों के गीत, कहारों का कहरवा, बिरहा अथवा आल्हा आदि सब महाभद्दी और केवल गंवारों की रोचक कविताएं है इनकी प्रशंसा में यदि हम कुछ कहें तो नागरिक जन जो भाषा की उत्तम कविता के रसपान के घमंड में फूले नहीं समाते अवश्य हम पर आक्षेप करेंगे और निपट गंवार समझेंगे । निःसंदेह ये ग्राम कविता है और मलार ठुमरी का स्वाद लेने वालों की दृष्टि में महाभद्दी और घृणित हैं पर इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि कविता के बंधे कायदे पर न होने से उनमें कोई भी गुण हई नहीं और सर्वथा दूषित ही है । अब हमारे पाठक जन पूछ सकते हैं आपने उसमें ऐसा कौन सा गुण पाया जो उस पर इतना लट्टू हो रहे हैं ? माना वे सर्वथा दूषित और कविता के गुणों से वंचित हैं पर उनमें सच्ची कविता का लसरा पाया जाता है अर्थात् उनमें चित्त की एक सच्ची और वास्तविक भावना की तस्वीर खिंची हुई पाई जाती है और आपकी Classic उत्तम श्रेणी की भाषा कविता का ढ़ंग इसमें नहीं पाया जाता जो यहां तक कृत्रिमता पूर्ण रहती है कि उसमें जोड़ की एक निराली दुनियां केवल कवि जी के मस्तिष्क ही मात्र में स्थान पाए हुए हैं ।

जिन लोगों की की हुई ये कविताएं हैं वे अवश्य ग्रामीण है तब उच्च श्रेणी की उक्ति युक्ति की आशा ही उनमें नहीं हो सकती पर बिना कुछ बनावट के अपने चित्त की भावना निष्कपट हो स्वच्छंदता के साथ उनमें दरसाई गई है - काव्य के नियम और कायदों से वे कोसो दूर हैं, उनके ख्याल अभी उस दरजे को पहुंचे ही नहीं कि नियम क्या वस्तु है इसका ध्यान स्वप्न में उन्हें आया हो, तब खरी और सच्ची होना उनकी कविता के लिए स्वयं सिद्ध है - आपकी नागरिक कविता को पहले पहल जो लोग काम में लाए जैसा चांद कवि पद्मावत सूर और तुलसी दो एक और भी उनके वास्ते या उनके समय में चाहे भले ही वे कविताएं सजीव और ओजपूर्ण रही हों और यही कारण है कि अब भी उनको पढ़िये तो उनमें वैसा ही

बालकृष्ण भट्ट, परसन, मधुसूदन गोस्वामी, राधाचरण गोस्वामी आदि सभी प्रमुख कवियों ने इस आंदोलन में सक्रिय भाग लिया और फलस्वरूप इन प्रमुख संपादक कवियों ने अपने यारों और लेखकों का ऐसा मंडल तैयार कर लिया जो लोक भाषा तथा लोक शैली में ही कविताएं लिखा करते और अपनी कविताएं प्रकाशनार्थ दिया करते थे। इस प्रकार इस युग में लोक गीतों की शैली में लिखने वाले कवियों की भरमार हो गई और सभी बड़े छोटे कवि लोक साहित्य, लोक शैली, लोक भाषा तथा लोक संस्कृति के हिमायती बन गए। जिन आचार्य कवियों ने विरोध किया उनको इन कवियों ने तथा संपादकों ने लोक साहित्य तथा लोक गीत का महत्व समझाया, उनसे तर्क किए और उनको प्रभावित कर अपने पक्ष में कर लिया[1]। वस्तुतः भारतेन्दु युग की यह एक विशेष देन है और इस दृष्टि से यह युग अपने पूर्ववर्ती युगों की तुलना

१—"चल जाने से अब वह आपकी नागरिक कविता फीकी और घिनौनी मालूम होती है – और दूर तक डूबकर सोचिए तो कविता पहले ग्रामीण हुए बिना प्रचलित नहीं हो सकती और उसी ग्राम्य कविता को मांजते मांजते वही नागरिक या उच्च श्रेणी की कविता बन जाती है –"

– हिन्दी प्रदीपः जिल्द १०, सं० १, पृ० १५–१६।

१— "सच पूछिए तो ऐसी भाषा से बढ़ कर संसार में कोई दूसरी मीठी भाषा नहीं हो सकती इस कारण अगर ठेठ हिन्दी शब्दों की अगर आपको खोज है तो गतकाल के या वर्तमान समय के नदी जोती प्रायः एक ही ठौर पर बसने वाली कवियों की वाणी से लेकर सहस्रों धारा से चलती हुई सभी व ग्रामीण भाषा को देखिए। यदि आप यह कहें कि शिक्षा के अभाव से ऐसे लोग असभ्य या अश्लील शब्द अपनी बोल चाल में बहुत भरते हैं तो साथ ही उसके यह भी सोचना चाहिए कि कितने हजारों लाखों शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनके पुष्टभाव या अर्थ गौरव को देखकर चकित होजाना पड़ता है।————और जो लोगों के घर के भीतर बोली जाती है और जिस भाषा का बरताव नौकर चाकर के साथ किया जाता है उसकी सहज गति या प्रभाव होने के कारण उसमें एक विचित्र लालित्य माधुर्य या कोमलता आ जाती है और जिसमें अब तक हजारों लाखों अति पुष्ट अर्थ के द्योतक –

में क्रान्ति का युग भी सिद्ध हुआ जबकि शिष्ट साहित्य के समान धरातल पर लोक साहित्य को भी प्रतिष्ठा मिली और अब तक हिंदी के विद्वानों तथा कवियों ने साहित्य के इस प्रमुख अंग की उपेक्षा की थी उसकी बहुत सीमा तक पूर्ति हुई ।

इस प्रकार भारतेन्दु युग में लोक भाषा का पुनः महत्व बढ़ा और वह साहित्य का माध्यम बनी । भारतेन्दु युगीन काव्य का लोक तात्विक अध्ययन करते हुए उसका लोक भाषा की दृष्टि से भी परिशीलन आवश्यक है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य यों मुख्य रूप से ब्रजभाषा में लिखा गया है किन्तु ब्रजभाषा के अतिरिक्त कवियों ने संस्कृत, बंगला, पंजाबी, गुजराती तथा खड़ी बोली और भोजपुरी आदि में भी रचनाएं की हैं । उन भारतीय

१- हिन्दी शब्द भरे हैं और जो दुर्भाग्य से मनुष्यों की सभ्य मंडली से निकाल कर अलग फेंके दिए गए हैं ———————हरिश्चन्द्र आदि के पूर्व हिन्दी की क्या दशा थी और जब उन्होंने अपना बहुत सा वित्त और मानसिक शान्ति को धूर में मिला बड़े यत्न के उपरान्त मार मार कर लोगों को हिन्दी पढ़ने का शौक दिलाया तब क्या दशा थी और अब क्या है । सच पूछिए तो इस थोड़े से समय में हिन्दी की कुछ कम विजय नहीं हुई । वे ही सब शब्द जो किसी समय गंवारों की भाषा समझे गए थे वे अब कालचक्र के हेर फेर से अधिकार शाली पढ़े लिखे लोगों के बर्ताव में फिर आने लगे वरन् ठेठ से ठेठ हिंदी शब्दों की खोज लोगों को है और वह ठेठ हिन्दी हमारे ग्रामीण जनों के ही कंठ का आभरण है - हिन्दी प्रदीपः जि०८, सं०११, पृ० १-४ ।

\+ \+ \+ \+ \+ \+

"यही ब्राह्मणों की अदूरदर्शिता थी कि उन्होंने पहले पिछले कोरे लोक भाषा में धर्म की शिक्षा का क्रम नहीं चलाया था, जिस कारण सत्य धर्माचार शिथिल हो गया और नाना प्रकार के अनाचारों का प्रचार हो चला था, जिसके संशोधन के अर्थ लोग उद्यत हुए । नए नए धर्म और आचार विचार की शिक्षा सुनकर अपने धर्म से अनभिज्ञ जन अचानक बहक चले ।"

प्रेमघन सर्वस्व द्वितीय भाग पृ० ३०५ ।

भाषाओं के अतिरिक्त कवियों ने अंग्रेजी तथा ~~फ़ारसी~~ उर्दू की शब्दावली का भी यत्र तत्र प्रयोग किया है । अवधेय है कि अंग्रेजी शब्दावली के प्रयोग अधिकांशतः व्यंग सम्बन्धी प्रसंगों में ही है । संस्कृत, बंगला, उर्दू आदि के सम्बन्ध में यह बात विशेष महत्व की है कि यद्यपि उपर्युक्त भाषाओं का प्रयोग कवियों ने किया है किन्तु यह प्रयोग शैली लोक शैली में ही है अर्थात् संस्कृत में कजली लिखी है उर्दू में ग़ज़ल लोक प्रचलित शैली में लिखी है और बंगला शब्दावली का प्रयोग उन्होंने पूरबी आदि की शैली में किया है । गुजराती में "गरबा" लोक गीत की भाषा विद्यमान है और भोजपुरी तथा खड़ी बोली और ब्रजभाषा में प्रयोग तो लोक गृहीत हैं ही । भारतेन्दु द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा के सम्बन्ध में श्री ब्रजरत्नदास के विचार द्रष्टव्य हैं:-

"उनके समय तक के कविगण प्राचीन परम्परा गत काव्य की जिस ब्रजभाषा को अपनाते चले आते थे, उसके बहुतेरे शब्दों को बोलचाल से उठे हुए शताब्दियों व्यतीत हो गए थे पर वे उनके द्वारा व्यवहृत हो रहे थे । इसके सिवा अपभ्रंश काल तक के कितने शब्द, जो किसी के द्वारा कहीं बोलचाल में प्रयुक्त नहीं होते थे वे भी बराबर कविता में लाए जा रहे थे । भारतेन्दु जी ने ऐसे पड़े सड़े शब्दों को बिलकुल निकाल बाहर किया और इस प्रकार काव्य भाषा को परिमार्जित कर उसे चलता हुआ सरल साफ रूप दिया । इस परिष्करण से जनसाधारण की बोलचाल की भाषा से काव्य की जो ब्रजभाषा दूर पड़ गई थी और जिसे समझना भी सुगम नहीं रह गया था फिर अपने सीधे मार्ग पर आ गई । जो लोग इसके साथ अन्य रसों में वीर तथा रौद्र रसों में अधिक शब्दों की जो पच्चीकारी की जाती थी, तोड़ मरोड़ उनमें होते थे और अंग भंग किए जाते थे तथा मनगढ़त शब्दों का प्रयोग हो रहा था उसे दोष को भी भारतेन्दु ने अपनी कविता में नहीं आने दिया और उससे अपनी भाषा को बचाते रक्खा । भारतेन्दु जी के सवैये तथा कवित्तों के सर्वप्रिय होने और उन्हीं के सामने ही उन सबके प्रचलित हो जाने का एक प्रधान कारण भाषा परिष्कार था[1] ।"

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र- ब्रजरत्नदास पृ० २५९ ।

ब्रजरत्नदास जी के उपर्युक्त कथन से भारतेन्दु द्वारा प्रयुक्त ब्रज- भाषा के स्वरूप, उनके भाषा परिष्कार तथा भाषा को लोक प्रचलित रूप देने के प्रयत्न की बात स्पष्ट है । ब्रजरत्नदास का उपर्युक्त कथन भारतेन्दु के काव्य के सम्बन्ध के साथ ही संपूर्ण भारतेन्दुयुगीन कवियों की भाषा के सम्बन्ध में पूर्णतया घटित होता है । सभी कवियों ने भारतेन्दु के समान ही लोक भाषा तथा लोक शब्दावली का प्रयोग किया है जिसके सम्बन्ध में नीचे विस्तार से विवेचन किया जायगा । चूंकि भारतेन्दु युगीन कवियों ने सबसे अधिक ब्रजभाषा में रचना की है अतः सर्वप्रथम उनके द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा का थोड़ा विस्तृत स्वरूप विवेचन है जिससे स्पष्ट है कि भारतेन्दु युगीन कवियों ने लोक जीवन में बोली जाने वाली ब्रजभाषा का तथावत अपने काव्य में प्रयोग किया । संज्ञा, क्रिया, परसर्ग, सर्वनाम आदि के विवेचन से यह बात स्पष्ट की जासकती है ।

(क) संज्ञा:

ब्रजभाषा में संज्ञाएं अ आ इ ई उ ऊ ओ औ अंत वाली प्रयुक्त होती है । भारतेन्दु युगीन काव्य में इन सभी स्वरों से अंत होने वाली संज्ञाए प्राप्त हैं -

- अ - बैठकन, सहन (प्रे० सर्व० पृ० १५)
- आ - कथा, बारता (प्रे० सर्व० पृ० १५)
- इ - कुमति (प्रे० सर्व० पृ० ०५), सौति (प्रे० सर्व० पृ० ५०४)
- ई - अनोखी, संतोखी (प्रे० सर्व० पृ० १४)
- उ - डीलहु (प्रे० सर्व० पृ० १४)
- ऊ - अबहूं (प्रे० सर्व० पृ० ५)
- ओ - नयो (प्रे० सर्व० पृ० १४)
- औ - ज्यौं (प्रे० सर्व० पृ० ५), संभवौ (प्रे० सर्व० पृ० ५ १५)

१- लिंग:-

लिंग ब्रजभाषा में हिन्दी की अन्य बोलियों के समान केवल दो होते है - पुल्लिंग और स्त्रीलिंग । प्राणहीन संज्ञाओं का भी इन्हीं दो लिंगों के द्वारा ही द्योतन होता है । जैसे पुल्लिंग [illegible]

स्त्री लिंग चटनी (प्रे०सर्व०पृ०२६) । प्राणियों की द्योतक संज्ञाओं में प्राणियों के लिंग के अनुरूप ही संज्ञाओं में लिंग भेद होता है । जैसे स्याम पुल्लिंग (प्रे० सर्व० पृ०४९१), प्यारी (प्रे०सर्व०पृ० ४९१) । छोटे छोटे जानवरों चिड़ियों तथा पतिंगों की द्योतक संज्ञाओं में पुल्लिंग या स्त्रीलिंग दोनों के लिए एक ही रूप प्रयुक्त होता है । जैसे कोइल स्त्रीलिंग (प्रे०सर्व०पृ० ४९०), बीर बहूटी, झिल्ली घोड़ी स्त्रीलिंग (प्रे०सर्व०पृ०४९), अहि, वृश्चिक, मूषक, साही, विषखोपरे पु० (प्रे०सर्व०पृ० ४९), दादुर चातक पुल्लिंग (प्रे०सर्व०पृ०४९०)।

प्राणियों की द्योतक पुल्लिंग संज्ञाओं में प्रत्यय लगाकर स्त्री रूप बनाए जाते हैं -

(क) अकारांत संज्ञाओं में अ के स्थान पर इन इनि या इनी हो जाता है - जैसे सांप सांपिनि (प्रे०सर्व०पृ० ४९५), नाग नागिन (प्रे०सर्व०पृ० ४२७) ।

(ख) आकारांत संज्ञाओं में आ के स्थान पर ई हो जाती है - जैसे छबीला, छबीली (प्रे०सर्व०पृ०५०५) ।

(ग) ईकारांत संज्ञाओं में ई के स्थान पर इनि हो जाती है जैसे माली, मालिनि(प्रे०सर्व० पृ० ६०५) ।

(२-) वचन:-

ब्रजभाषा में एक वचन तथा बहुवचन दो वचन पाए जाते हैं । बहुवचन के चिह्न कारक चिह्नों से पृथक् नहीं किए जा सकते हैं अतः इनका विवेचन इस स्थल पर संगत नहीं है ।

प्रस्तुत प्रसंग में ब्रजभाषा स्वरूप विवेचन में डा० धीरेन्द्र वर्मा कृत ब्रजभाषा तथा ब्रजभाषा व्याकरण से सहायता ली गई है ।

(३) रूप रचना:-

ब्रजभाषा में संज्ञा के चार रूप मिलते हैं -(१) मूल रूप एकवचन (२) मूल रूप बहु वचन (३) विकृत रूप एकवचन (४) विकृत रूप बहुवचन ।

मूल रूप एक वचन में संज्ञा बिना किसी परिवर्तन की व्यवहृत होती है । मूल रूप एक वचन और बहुवचन में प्रायः भेद नहीं रहता किन्तु ओकारांत संज्ञाओं का मूल रूप बहु वचन ओ के स्थान पर ए करके बनता है । अकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं में प्रायः अ के स्थान पर ऐ हो जाता है जैसे कलीलै । आकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं में या के स्थान पर प्रायः आं हो जाता है जैसे अंखियां (प्रे०सर्व० पृ० ४४३), छतियां (प्रे०सर्व० पृ०४९५), गलियां(प्रे०सर्व० पृ० ६०४) मूल रूप एक वचन तथा विकृत रूप एक वचन में साधारणतया भेद नहीं होता । संयोगात्मक विकृत रूपों से एक वचन नीचे लिखे प्रत्यय लगाकर बनाए जाते हैं ।

- हिं - मलारहिं (प्रे०सर्व० पृ० १०), काजहिं(प्रे०सर्व० पृ० ४)
- ऐ - महै (प्रे०सर्व० पृ० ११), दूतै(प्रे०सर्व० पृ० ५)
- हि - काहुहि (प्र०ल० पृ० ८८), पियहि(भा०ग्रं० पृ० २८७)
- ऐं - यामैं (भा०ग्रं० पृ० २८७)
- ए - सांवरे (भा०ग्रं० पृ० २८०)
- इ - छबि(प्रे०सर्व० पृ० ४९१), बचनि(प्रे०सर्व० पृ० ५६४), आरति(भा०ग्रं० पृ० ६९)

विकृत रूप बहुवचन की रचना के लिए नीचे लिखे प्रत्यय लगाए जाते हैं -

न - अट्टालिकान (प्रे०सर्व० पृ० ९), गुलेलन कुलेलन(प्रे०सर्व० पृ० ११), बंसवारिन, दरीचिन (प्रे०सर्व० पृ० ९) ।

प्रत्यय लगाने के साथ अन्त्य स्वर यदि ह्रस्व हो तो प्रायः दीर्घ और यदि दीर्घ हो तो प्रायः ह्रस्व कर दिया जाता है । यदि संज्ञा, इकारांत या ईकारांत हो तो प्रत्यय के पहले य भी बढ़ा दिया जाता है । जैसे अंखियन (प्रे०सर्व० पृ० ५६४) ।

नि - किंकिनि (भा० ग्रं० पृ० ७१), जानि (भा०ग्रं०पृ० ८१), रैनि (भा०ग्रं०८४)

नु - बिनु (भा०ग्रं०पृ० ७०)

न्ह - बीथिन्ह

(ख) सर्वनामः

संज्ञा के ही समान भारतेन्दु युगीन कवियों ने उन्हीं सर्वनामों का प्रयोग किया है जिनका प्रयोग ब्रज प्रदेश में बोल चाल की भाषा में होता है। भारतेन्दु युगीन कवियों ने ब्रज में प्रचलित निम्नलिखित उत्तम पुरुष के सर्वनामों का प्रयोग किया है।

१- उत्तम पुरुष सर्वनामः-

मैं - लंगर डगर बिच करत ठिठोली मैं वारी सर मांव (प्रे०सर्व०पृ०६२७)

मैं तो तोहि बनाऊं नवल बाल, पहिराय सुरंग सारी गुपाल(प्रे०सर्व०पृ० ६२५)

हौं- कल हौं निकसी मारग याही रोकी मेरी गैल(भा०ग्रं०पृ० १७४)

हौं आई जल भरन अकेली नाहक जमुना घाट (भा०ग्रं,पृ० २९६)

हों - हों तो रंगीहूं तेरे रंग में, कत नाहक मारत पिचकारी (प्रे०सर्व०पृ०६१४)

हम - हम जाके हित बेल कुंज में बैठी त्यागि हवेली (भा०ग्रं०पृ० ३१९)

हम जो मनावत सो दिन आयो (भा०ग्रं०पृ० ५३३)

मो - प्यारी मो सों कौन दुराव(भा०ग्रं० पृ० ४५७)

मोहिं -आली आज अंगनवां नजर मोहिं लागी, अहो इन भूंठनि मोहिं भुलायो (भा०ग्रं०पृ० २७५)

हूं - तौ हूं बीर हठीली तू नहिं नेक दया उर आनै(प्रे०सर्व०पृ० ६०६)

"मुझको" अथवा "हमको" का अर्थ देने वाले कुछ संयोगात्मक रूप परसर्गों के बिना अन्य रूपों के साथ ब्रज में अधिकता से प्रयुक्त होते हैं। हमैं ऐसा ही अधिकता से प्रयुक्त होने वाला रूप है। भारतेन्दु युगीन काव्य में भी इसका प्रयोग बहुत मिलता है।

हमैं - तुमैं नहि नीकी लागै यह आली बसंत बहार (प्रे० सर्व० पृ० ६१८)

रंग लै और के संग तू खेल री, ऐसी होली हमैं हाय भावै नहीं (प्रे० सर्व० पृ० ६१९)

होरी की यह लहर जहर, हमैं बिन पिय जिय दुख दैया (प्रे० सर्व० पृ० ६१४)

उत्तम पुरुष वाचक सर्वनाम मूलक संबंध वाची विशेषणों में से निम्नलिखित मुख्य रूपों का भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयोग हुआ है ।

मेरो - सुनरी सखी मेरो नाम लेइ के मधुरे सुर गारी गाओ (भा० ग्रं० पृ० ३९७)

डफ बाजे मेरो यार निकट आयो (भा० ग्रं० पृ० ३९७)

सुफल काम सब मेरो ह्वै है जो कछु चित्त बिचारेउ (भा० ग्रं० पृ० ५३०)

हमारो- तुमरे प्रकट भई श्री राधा कह्यो हमारो कीजै (भा० ग्रं० पृ० ५३३)

पइयां परैं दूर रहौ अंग न छुओ हमारो हरिचंद तोपै बलिहारी (भा० ग्रं० पृ० ३८५)

हमरो - कठिन भयो अब घाट बाट में हमरो तुमरो संजोगवा (भा० ग्रं० पृ० १९०)

मेरे - तेरे औ मेरे प्यारे लटक साल पर लटकी (प्रे० सर्व० पृ० ५७९)

मैं उनकी वे मेरे रहिहैं सदा दिए मैं पीठि (भा० ग्रं० पृ० ४६८)

मेरे मन रथ चढ़ि पिय तुम आओ (भा० ग्रं० पृ० ४६८)

हमारे - हमारे भाई श्यामा जू की जीति (भा० ग्रं० पृ० ५३३)

हमारे तन पावस वास कर्‌यो (भा० ग्रं० पृ० ५३३)

हमरे - सखी हमरे पिया परदेस होरी मैं कासों खेलौं (भा० ग्रं० पृ० ३६७)

मेरी - श्री बद्रीनारायण सजनी मान कही कछु मेरी (प्रे० सर्व० पृ० ६३५)

यह तो खेल संजोगिन के हित मेरी बिरहानल दाहत चित (प्रे० सर्व० पृ० ६१९)

मेरी री मत कोउ होउ बसीठि (भा० ग्रं० पृ० ४६८)

हमारी - देखी सारी हमारी भिजा दीनो रे (प्रे० सर्व० पृ० ५८६)

मारी पिचकारी सारी हमारी भिजाई रे (प्रे०सर्व०पृ० ६१८)

हमरी - हमरी कुल कानि गई तो कहा तुम आपनी को तो छिपाए रहो (भा०ग्रं० पृ० ६१५) ।

२- मध्यम पुरुष सर्वनामः-

ब्रज में प्रचलित निम्नलिखित मुख्य मध्यम पुरुष वाची सर्वनामों का भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयोग हुआ है ।

तू - पाय परो पिय हाय पै माननी तू न मानै (प्रे०सर्व०पृ० ६०५)

तौहू बीर हठीली तू नहिं नेक दया उर आनै (प्रे०सर्व०पृ०६०६)

तैं - दै पूरी चंडाल तैं रहे मूंड पिर बाय (भा०ग्रं०पृ० १५४)

तुम - लेत पकड़ छाँडत नाहीं तुम, नाहक करत अकाज (प्रे०सर्व० पृ० ५८३)

बेदरदी तुम हाय दया तजि भूल गये सुधि मोरी (प्रे०सर्व० पृ० ६३३)

जो तुम निधरक झुकेई परतहौ मानत नाहिं निहोरी (भा०ग्रं०पृ०३९९)

तोहिं - तोहिं पर संवरा लुभान सांवरि गोरिया (प्रे०सर्व० पृ० ५०८)

सखिन तोहिं रति रन हित साज्यौ (भा०ग्रं० पृ० ३२५)

नव पल्लव हिलि तोहिं बुलावत निकट बिरिछ पाँती (भा०ग्रं० पृ० ३२४)

तोहि - मैं तो तोहि बनाऊं नवल बाल, पहिराय सुरंग सारी गुपाल (प्रे०सर्व० पृ० ६२५)

तोहि लगि जगत हौं जीव धारौ (भा०ग्रं०पृ० ३२३)

तुम्हैं - बद्री नाथ यार मत ल रोको - यार तुम्हैं बस सौंह हमारी (प्रे०सर्व० पृ० ५८१) ।

तुमहि - तुमहि कलंक हमैं लज्जा अति कहिहै कहा जहान (भा०ग्रं०पृ०६१९)

तुमहिं - तुमहिं सबै दिसि परत दिखाई (भा०ग्रं० पृ० ३१८)

तेरो - ए री प्रान प्यारी बिन देखे मुख तेरो मेरे (भा०ग्रं०पृ० ६१४)
यह ऊधम तेरो सुन पावै जो तो पकर मंगावै तोहिं लिए दियै (भा०ग्रं०पृ० ३७४)

तुमरो - अब तुमरो दुख सहि न सकत हम मिलि जाओ मीत सुजान हो जान (भा०ग्रं०पृ० ६०६)

कठिन भयो अब घाट बाट में हमारो तुमरो संजोगवा (भा०ग्रं०पृ०१९०)

तेरे - पिया प्यारे मैं तेरे पर वारी गई (भा०ग्रं०पृ० ४०३)
ठेका या ब्रज को तेरे माथे कौन दयो (भा०ग्रं० पृ० ३७६)

तुम्हारे - और रंग जिन डारो रंगी मैं तो रंग तुम्हारे (भा०ग्रं० पृ० ३९९)

तुम्हरे - तुम्हरे प्रगट भई श्री राधा कह्यो हमारो कीजै (भा०ग्रं०पृ०५३३)

तुमरे - तुमरे रूख फेरे करुनानिधि काल गुदरिया सीएँ (भा०ग्रं०पृ० ६०४)
तुमरे हित नंद लाल लाडिले हो छोड़ि सकल धन धाम (भा०ग्रं०पृ० क ३६२)

तिहारे - तिहारे संग को खेलै बनवारी (प्रे०सर्व०पृ० ६१८)
दगे नाम सों पार तिहारे छाप तेरी सिर ऊपर लै (भा०ग्रं०पृ०३६५

तेरी - निवानी तेरी सूरत मेरे मन बसी (भा०ग्रं० पृ० ४०२)
जनम जनम की दासी मैं तेरी तुमही मेरे नाथ (भा०ग्रं०पृ० ४०२)

तुम्हरी - तुम्हरी सुता जगत ठकुरानी जायो सुख लखि लीजै (भा०ग्रं०पृ० ५३४)

तुमरी - देखत नहिं तुमरी ओर, राधे माधो किशोर (प्रे०सर्व०पृ० ६३६)

गंगा तुमरी सांच बड़ाई (भा०ग्रं० पृ० ६१६)

तिहारी - दीन हीन सब भांति तिहारी क्यों सुधि धाई न लेत (भा०ग्रं० पृ० ३६१)

यह कैसी बान तिहारी मेरे प्यारे गिरिवर धारी हो (भा०ग्रं०पृ० १८५)

तोरी - मैं पैंया लागौं तोरी (भा० ग्रं० पृ० १८४)

३- दूरवर्ती निश्चय वाचक सर्वनाम :-

वह - निगलि गयो वह यदपि (प्रि० सर्व० पृ० ५४)

वे - जब वे गहे विराम (प्रि० सर्व० पृ० २१)

वै - सहज सवारी साजत वै (प्रि० सर्व० पृ० ११)

उन - उन कहँ अस जो याद किए नहिं अपने पाऊँहिं (प्रि० सर्व० पृ० १८)

४-निकटवर्ती निश्चय वाचक सर्वनाम:-

ये - ज्यौं ज्यौं विद्या स्वाद शक्ति ये पावत जैहै (प्रि० सर्व० पृ० १८)

जे - जे आए नहिं बालक तिन कहँ पकरि मंगावै (प्रि० सर्व० पृ० १८)

५- संबंध वाचक सर्वनाम:-

जो - व्यजन करत जो (प्रि० सर्व० पृ० ८)

जो अहो मितवर (प्रि० सर्व० पृ० ५६)

जे - होत न जानत जे मरिबे जीबे की कछु भय (प्रि० सर्व० पृ० २२)

६- नित्य सम्बन्धी सर्वनाम:-

सो - सो सम्प्रति प्रचलित जग की गति ओर निहारै (प्रि० सर्व० पृ० ४)

ते - आज चलावहिं ते कुदारि फरसा बिलखाने (प्रि० सर्व० पृ० ४७)

ता - कहा बापुरी कंस ता बैठी बनि करि सकै (प्रि० सर्व० पृ० ७२)

तिन - जे आए नहिं बालक तिन कह पकरि मंगावै (प्रि० सर्व० पृ० १८)

तिन सब कहै -(प्रि० सर्व० पृ० ५५)

७- प्रश्नवाचक सर्वनाम:-

को - मानुष की को कहै (प्रि० सर्व० पृ० १७)

८- अनिश्चय वाचक सर्वनामः-

कोउ - कोउ एक अनेक विषय के कोउ पंडित (प्रे० सर्व० पृ० ३)

(ग) क्रियाः-

भारतेन्दु युगीन काव्य में क्रिया के भी उन्हीं रूपों का प्रयोग है जिनका व्यवहार ब्रज प्रदेश की की बोलचाल की भाषा में होता है ।

१- वर्तमान निश्चयार्थः-

औं - खेलौं (भा० ग्रं० पृ० ३७१), मेलौं (भा० ग्रं० पृ० ३७१), डोलौं (भा० ग्रं० पृ० ३७१), परौं (भा० ग्रं० पृ० ३७१), तजौं (भा० ग्रं० पृ० ४०२), करौं (भा० ग्रं० पृ० ४०२), भरौं (भा० ग्रं० पृ० ४०२), हरौं (भा० ग्रं० पृ० ४०२) ।

ऐं - देखैं (प्रे० सर्व० पृ० १६०), करैं (प्रे० सर्व० पृ० १६०), गहैं (प्रे० सर्व० पृ० १६०), चलैं (प्रे० सर्व० पृ० १६०), तलफैं (भा० ग्रं० पृ० ३६८) ।

ऐ - गिनै (प्रे० सर्व० पृ० १६०) ।

औ - बिहरौ (भा० ग्रं० पृ० ३६७), लहौ (भा० ग्रं० पृ० ३६९), फेरौ (भा० ग्रं० पृ० ३६९), बहौं (भा० ग्रं० पृ० ३६९), बसौं (भा० ग्रं० पृ० ३६९) ।

भविष्यकाल वर्तमान निश्चयार्थ के रूपों में विशेषण का रूप लगाकर बनता है ।

-उं-गी - रहूंगी (भा० ग्रं० पृ० ३८२), मिलूंगी (भा० ग्रं० पृ० ३८२), पिऊंगी (भा० ग्रं० पृ० ३८२), भेटूंगी (भा० ग्रं० पृ० ३८२) ।

-औं-गी - खेलौंगी (भा० ग्रं० पृ० ३८२), राखौंगी (भा० ग्रं० पृ० ६१२), करौंगी (भा० ग्रं० पृ० ६१२), छाड़ौंगी (भा० ग्रं० पृ० ६१२), मलौंगी (भा० ग्रं० पृ० ३९६), गुहौंगी (भा० ग्रं० पृ० ३९६), आजौंगी (भा० ग्रं० पृ० ३९६) ।

भविष्य निश्चयार्थः-

इहौं- देखिहौं (प्र० त० पृ० २५७), लहिहौं (प्रे० सर्व० पृ० ५६), होइहौं (प्रे० सर्व० पृ० ५७), रहिहौं (प्र० त० पृ० २५७), करिहौं (प्र० त० पृ० २५५

इहै - होइहै (प्रे॰सर्व॰ पृ॰ ६०)

इहै - बचिहै (भा॰ग्रं॰ पृ॰ ३६७), निबहै (भा॰ग्रं॰ पृ॰ ३७४), चलिहैं (प्रे॰सर्व॰ पृ॰ ४८४)

इहौं - रहिहौ (भा॰ग्रं॰ पृ॰ ३६७), चितैहौ (प्रे॰सर्व॰ पृ॰ ५६) ।

<u>वर्तमान आज्ञार्थ:-</u>

मध्यम पुरुष बहु वचन का प्रत्यय औ जोड़कर बनता है । दीर्घ स्वरान्त धातुओं में बहुवचन के प्रत्यय का अ उसमें सम्मिलित हो जाता है ।

आओ (भा॰ग्रं॰ पृ॰ ३७०), दिखाओ (भा॰ग्रं॰ पृ॰ ३७०), गाओ (भा॰ग्रं॰ पृ॰ ३७०) बजाओ (भा॰ग्रं॰ पृ॰ ३७०), बसावो (भा॰ग्रं॰ पृ॰ ३७०), दिखाओ (भा॰ग्रं॰ पृ॰ ३७०) ।

<u>सहायक क्रिया:</u>

<u>वर्तमान निश्चयार्थ:-</u>

हौं - वह अति ही संतोषी मैं तो लोक ही को नामा <u>हौं</u> (भा॰ग्रं॰ पृ॰ ३००)

सिर धरि नृप आदेश जात <u>हौं</u> वृज प्रदेश अब (प्रे॰सर्व॰ पृ॰ ५७)

हौ - भाजत <u>हौ</u> कत पिचकारी मार (प्रे॰सर्व॰ पृ॰ ६१८)

है - वह तो धूत फफंदी ब्रज को तू <u>है</u> कुल की बाम (भा॰ग्रं॰ पृ॰ ३६२)

हैं - तू नंद गैयां तो <u>हैं</u> हमहू बरसाने की नार (भा॰ग्रं॰ पृ॰ ३६२)

<u>भूत निश्चयार्थ:-</u>

हो - मनमोहन चतुर सुजान छबीले <u>हो</u> प्यारे (भा॰ग्रं॰ पृ॰ ३६२)

हुतो - ह्यां तो <u>हुतो</u> एक ही मन सो हरि ले गए चुराई (भा॰ग्रं॰ पृ॰ ६५)

हती - नहिं वह कासी रहि गई <u>हती</u> हेम मम जौन (प्रे॰सर्व॰ पृ॰ १५६)

भयौ- जनम भयौ ब्रजराज आज अलि (प्रे० सर्व पृ० ४३२)

भये- हमरी बारी और भये कह तुम तौ सहज दयाल (भा० प्र० पृ० २७५)

भई- जो मैं डरपत हो सो भई (भा० प्र० पृ० ३६४)

भई- भई दिशा सब स्वच्छ अरु अतिहि अमल आकास (भा० प्र० पृ० १५३)

ह्वै- शोकाकुल ह्वै मौन (भा० प्र० पृ० १५३)

भविष्य निश्चयार्थ-

ह्वै हौं- लहि सब शांति अराम, आनंदित ह्वै हौं सबै (प्र० सर्व० पृ० ७३)

ह्वै है- फिर दुर्लभ ह्वै है फागुन दिन आठ गये लगि जायो (भा० प्र० पृ० ३८४)

ह्वै हैं- हरि संग बिहरत ह्वै हैं कोउ (भा० प्र० पृ० ३१९)

होइ हैं- कहा होइ हैं देह (प्रे० सर्व पृ० ७६)

भूत संभावनार्थ

होत- उत तौ होत ठगोरी (प्रे० सर्व पृ० ६१३)

कृदन्ती रूप

वर्तमान कालिक कृदंत

ब्रजभाषा में वर्तमान कालिक कृदंत के रूप अत त अतु अति तथा ती लगाकर बनते हैं ।

अत- आवत (प्रे० सर्व० २५), सुहावत (प्रे० सर्व० २५) सजावत (प्रे० सर्व २५) बनावत (प्रे० सर्व० २५) लखियत (प्रे० सर्व० १५७) ।

त- लहत (प्रे० सर्व० १५) रहत (प्रे० सर्व १५) करत (प्रे० सर्व० १४)

अतु- लखियतु, कहियतु, देखियतु

अति- लजावति (प्रे० सर्व० २७) बनावति (प्रे० सर्व २७) लजावति (प्रे० सर्व० १४ रिझावति (प्रे० सर्व० १४) आवति (प्रे० सर्व० १५)

ती- स मुसकाती (प्रे० सर्व० १४) इठलाती (प्रे० सर्व १४) मोहती (प्रे० सर्व० १०

भूत संभावनार्थ

भूत संभावनार्थ धातु में निम्नलिखित प्रत्यय जोड़कर बनाए जाते हैं ।

ती- नचावती (प्रे० सर्व० ११४)

तैं- होते (भा० प्र० ६५) संजोते (भा० प्र० ६५) करते (भा० प्र० ६५) धरते (भा० प्र० ६५)

भूतकालिक कृदंत-

भूत कालिक कृदंत के मुख्य रूप धातु में निम्नलिखित प्रत्यय लगाने से बनते हैं-

औ- जिआओ (भा० प्र० ३९९) दिखाओ (भा० प्र० ३९९) बुझाओ (भा० प्र० ३९९) आओ (भा० प्र० ३९९) ।

ए- मिलिए (प्रे० सर्व० ६०८)

ई- मिली (प्रे० सर्व० २१२), लगाई (प्रे० सर्व० २१२), जकरी (प्रे० सर्व० २१२)

ईं- आईं (प्रे० सर्व० ६०४)

यौ- मचायौ (भा० प्र० ३९८) छुड़ायौ (भा० प्र० ३९८) दहायौ (भा० प्र० ३९८) लगायौ (भा० प्र० ३९८)

क्रियार्थक संज्ञा

ब्रजभाषा में क्रियार्थक संज्ञा के रूप दो प्रकार के हैं, एक क वाले और दूसरे न वाले

न,नौ- लीनौ (प्रे० सर्व० १५४), जाने (प्रे० सर्व० १५४), मोल लैन (प्रे० सर्व० १५४)

ब,बे,बौ- चलिबौ (प्रे० सर्व० पृ० ९२) चलिबे (प्रे० सर्व पृ० ९२) बेचिबे (प्रे० सर्व० पृ० १५४) ।

पूर्वकालिक कृदंत

(क) पूर्वकालिक कृदंत के अकारांत या व्यन्जनान्त धातुओं के रूप इ लगाकर बनते हैं ।

घसि (प्रि॰ सर्व १५४), उठि (प्रि॰ सर्व॰ १५४) पहुंचि (प्रि॰ सर्व॰ १५४) बैठि (प्रि॰ सर्व॰ १५४) चाभि (प्रि॰ सर्व १५४) करि (प्रि॰ सर्व॰ १५४) ।

(ख) उकारान्त धातुओं में पूर्वकालिक कृदंत के चिन्ह- इ के लगाने के साथ अन्त उ के स्थान पर व हो जाता है ।

हवै (प्रि॰ सर्व १७२) छूवै (प्रि॰ सर्व॰ २९)

(ग) छन्द तथा तुकान्त की आवश्यकता के कारण कभी कभी इ के स्थान पर इया ऐं मिलता है ।

विचारैं (प्रि॰ सर्व॰ १६०), कहावैं (प्रि॰ सर्व॰१६०) छहरै (प्रि॰ सर्व॰ ११४), लाजै॰ (प्रि॰ सर्व॰ ११४) । दिखावैं (प्रि॰ सर्व॰ ११२), बिहरैं (प्रि॰ सर्व॰ ११४), हुलसी (भा॰ प्र॰ ३०२) धंसी (भा॰ प्र॰ ३०२) कसी (भा॰ प्र॰ ३०२) फंसी (भा॰ प्र॰ ३०२), छाई (प्रि॰ सर्व॰ २) उपजाई (प्रि॰ सर्व॰ २)

(घ) आकारान्त तथा ओकारांत धातुओं के पूर्वकालिक कृदंत के रूप य लगाकर बनते हैं । सुनाय (प्रि॰ सर्व॰ १५५), मचाय (प्रि॰ सर्व॰ १५५) जिमाय (प्रि॰ सर्व॰ १५५) नाय (प्रि॰ सर्व॰ १५५) जाय (प्रि॰ सर्व॰ १५५) सुहाय (प्रि॰ सर्व॰ १५५), गुर्राय (प्रि॰ सर्व॰ १५४) मंडराय (प्रि॰ सर्व॰ १५५)

(ङ॰) आकारांत धातुओं में ई लगाकर बने हुए रूप भी प्रयुक्त होते हैं आई (प्रि॰ सर्व ॰ १००) बुझाई (प्रि॰ सर्व॰ १०१)

(च) एकारांत धातुओं में अंत्य ए के स्थान पर ऐ करके पूर्वकालिक कृदंत के रूप बनाए जाते हैं ।

हेलै (प्रि॰ सर्व॰ ११८)

(छ) ऐकारांत धातुओं में धातु का मूल रूप बिना किसी प्रत्यय के पूर्वकालिक कृदंत के समान प्रयुक्त होता है ।

नावै (भा० ग्र० ४३१), वारै (भा० ग्र० ४४३), लागै (प्रे० सर्व० ११८)

जै (प्रे० सर्व० ४१) ।

(घ) परसर्ग-

ब्रजभाषा में विभिन्न कारकों में प्रयुक्त होने वाले निम्नलिखित परसर्गों का भारतेंदु युगीन कवियों ने प्रयोग किया है ।

कर्म-संप्रदान

को- रहत मित्रता को सो बरताव सदा हीं (प्रे० सर्व० पृ० ३)

सुनि जिनकी करतूति होय स्वजनन को सिर नत (प्रे० सर्व० पृ० ५)

कौं- ऊरधरेता जे भये ते या पद कौं सेइ (भा० ग्र० पृ० ८)

तिमि भवसागर कौं तरन या हित रेखा मीन (भा० ग्र० पृ० ११)

कौं- हरि मनमथ कौं जीति कै ध्वज राख्यो पद लाई (भा० ग्र० पृ० ११)

कर्त्ता-

नै- बालकन लखि नंद राय नै यौं कह्यो गोपन सौं (प्रे० सर्व० पृ० ११३)

जिहि भोज राजन नै बनाई राजधानी आगनी (प्रे० सर्व० पृ० ११४)

संबंध-

को-पथिक जन को जिय लरजत (प्रेमघन सर्वस्व)

होत सिकारी जन को मन सहसा आकर्षित (प्रे० सर्व पृ० २)

कौं- जो ऊपर दिसि कौं बढ़ी हेत सकल फल लेख (भा० ग्र० पृ० ३०)

कौ- आठौं दिसि भूलोक कौ राज न दुर्लभ ताहि (भा० ग्र० पृ० ९)

के- कबहुं काज के ब्याज (प्रे० सर्व० पृ० २)

जहं बीते दिन अपने बहुधा बालक पन के (प्रे० सर्व० पृ० १)

कै - बन कै पहार पर - (प्रे० सर्व० पृ० २)

जो याकैं सरसाहिं गयैं (भा० ग्र० पृ० १५)

कौन जानि घन की धुनि हर्षित (प्रे० सर्व० पृ० २)

सुधि आवत तब प्रियवही गांव की (प्रे० सर्व० पृ० ३)

करण-अपादान

सों- ईस कृपा सों यदपि निवास स्थान (अनेकन (प्रे० सर्व० पृ० ३)

पर उपकार बित्त सों बाहर होत जहां पर (प्रे० सर्व० पृ० ५)

तें- जाकी छटा प्रकासतें पावत पामर प्रेम (भा० प्र० पृ० ५)

शक्ति मन हरियाहिं तें शक्ति चिन्ह पद मांहि (भा० प्र० पृ० ८)

ते- सुनि आज ते वसुदेव सुत को आगमन ब्रजते इतै (प्रेमघन सर्वस्व)

सपनेहु सुख की आस न इनते दुसह दुखन की खान (प्रे० सर्व० पृ० ४३८)

पै- पै पद बल बृजराज के परम ढिठाई कीन (भा० प्र० पृ० ३५)

ताहू पै निस्तारियै अपनी ओर निहारि (भा० प्र० पृ० ३७)

तैं- वसुदेव सुत को आगमन बृज तैं इतैं (प्रे० सर्व० पृ० ११५)

प्रगटित जसुमति सीप तैं मधि ब्रज रतनागार (भा० प्र० पृ० ५)

अधिकरण-

में- हाटन में देखहु भरो बस अंगरेजी माल (प्रे० सर्व० पृ० ३८५)

परम शक्ति यामें अहै सोइ चिन्ह लखाय (भा० प्र० पृ० ८)

मैं- अति बिसाल परिवार बीच मैं प्रेम परस्पर (प्रे० सर्व० पृ० ३)

मिलि मयंक में ज्यों कलंक नहिं परत लखाई (प्रे० सर्व० पृ० ५)

पै- सबकी अटारिन पै ध्वजा फहरै पताका बात सों (प्रे० सर्व० पृ० ११५)

दूषण त्रिशिर घननाद रावण पै न काहू की चली (प्रे० सर्व० पृ० ११६)

पर- पहिले करन अरन भुजन पर सह गर्व सबन दिखावते (प्रे० सर्व० पृ० ११३)

कोउ हार गर मैं डारती बूरी भरी पर आइकै (प्रे० सर्व० पृ० ११६)

पैं- कोउ सीस पैं सारी परी सुधि नीय घूंघट नहिं परी (प्रे० सर्व० पृ० ११६)

का सुर का नर असुर सब पैं दृष्टि समान (भा० ग्र० पृ० १५)

माहिं- दर्शक गन मन माँहि उपजावत करुना भाय (प्रे० सर्व० पृ० ५८३)

इस प्रकार संज्ञा सर्वनाम क्रिया तथा परसर्ग संबंधी विवेचन से स्पष्ट है कि भारतेंदु युगीन कवियों ने ब्रजभाषा का वही रूप अपनाया है जो बोलचाल का तथा व्यवहार का रूप है। जिसमें बनावटी पन नहीं है, अप्रचलित शब्दों के प्रयोग नहीं, वरन् जो सहज है, प्रवाहमयी है और साधारणजन सामान्य वर्ग में बोली जाने वाली ब्रजभाषा है।

खड़ी बोली-

ब्रजभाषा के बाद खड़ी बोली को भी भारतेंदु युगीन कवियों ने अपने काव्य का माध्यम बनाया है और खड़ी बोली का लोक स्वरूप प्रस्तुत किया है। भारतेंदु युगीन कवि खड़ी बोली के महत्व को समझते थे और यह जानते थे कि खड़ी बोली के द्वारा कविता लोक प्रिय हो सकती है क्योंकि खड़ी बोली केवल सभ्य-व्यवहार या साहित्य की ही भाषा नहीं है वह दिल्ली के अलावा अन्य नगरों में बहुत से लोगों की मातृभाषा भी है। भाषा के संबंध में यही कहते हुए भारतेंदु ने स्वयं लिखा था -ऐसी ही पश्चिमोत्तर देश में अनेक भाषा हैं, पर उनमें ऐसे नगर थोड़े हैं जिनमें आबाल वृद्ध, वनिता सब खड़ी बोली बोलते हों। अतएव यद्यपि काशी ऐसे पूर्व प्रदेशों की मातृभाषा व नगर के बोल चाल की भाषा हिंदी है यह तो हम नहीं कह सकते पर यह कह सकते हैं कि इसी पश्चिमोत्तर देश में कई नगर ऐसे हैं जहां यही खड़ी बोली मातृभाषा है।" जनसाधारण के कवियों (अमीर खुसरो आदि) ने खड़ी बोली-काव्य रचना की परंपरा बहुत पहले से ही चला रक्खी थी और जिसका लोक वर्ग में बहुत अधिक प्रचलन हुआ था। अतः इस संबंध में कवियों को किसी प्रकार संदेह नहीं था कि खड़ी बोली द्वारा अपने विचार जनसाधारण तक और आसानी से पहुंचाए जा सकते हैं अतः कवियों ने ब्रजभाषा के साथ खड़ी बोली में भी पर्याप्त

काव्य-रचना की । भारतेंदु हरिश्चन्द्र के नाटकों में खड़ी बोली के गीत इस बात को और भी पुष्टि करते है कि खड़ी बोली कविता भारतेंदु काल में अवश्य ही अति लोक प्रिय थी । लावनी बाजों ने तो खड़ी बोली में लावनियां लिख लिखकर और गागा कर खड़ी बोली कविता को और बल दिया था। "इनके लिए दीर्घ ह्रस्व मात्राओं से खड़ी बोली में मीठे कड़वे बनाने का सवाल था । इनके यहां खड़ी बोली एक बहुत ही लचीला माध्यम बन गई थी और भारतेंदु ने जब उस परंपरा का सहारा लिया, उन्होंने खड़ी बोली में बहुत ही सरस कविता की"। इस प्रकार खड़ी बोली जो जनसामान्य की लोक व्यवहृत भाषा थी उसमें भारतेंदु युगीन कवियों ने रचनाएं की । अवधेय है कि भारतेंदु युगीन कवियों की खड़ी बोली आधुनिक पंत प्रसाद निराला की अत्यंत संयत और अप्रचलित खड़ी बोली नहीं है जिसका तथावत लोक में व्यवहार होता है वरन् भारतेंदु युगीन कवियों की खड़ी बोली जनभाषा का एक सच्चा रूप प्रस्तुत करती है ।

भारतेंदु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त खड़ी बोली की कविता के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है-

(१) माधव राका निसा रसीली, सजी सेज पर सोता था ।
जगा जो मैं गोविन्द नाम श्रोताजन आलस खोता था ।।
पर अद्यापि बड़ी दो रजनी, शेष विशेष सुहाती थी ।
मंजु मयंक मरीचि मालिका, मिस मानो मुसकाती थी ।।
फबती फैल रही थी चारों, ओर चांदनी मनभाती ।
मानो सुधा सुधाकर से ले, कर वसुधा को नहलाती ।।
निखर पड़ा सारा जग जिससे, शोभा नई लखाती थी ।
वहीं अटक सी जाती थी यह दीठ जहां पर जाती थी[1] ।।

(२) दांत तोड़ तोड़ तेरी दोहरी करेगा पीठ,
अमल कमल ऐसी आखें मुर्झावेगा ।
कानों की भी ताकत भभूट लेगा झोंकमार,
गाल पिचका के चर गर्दन हिलावेगा ।

१- प्रेमघन सर्वस्व पृ० १९१-२०१ ।

अम्बादत्त मालिक को भूला क्यों भटकता है,
कौन जाने कब तेरा काल मुंह आवेगा ।
जोबन के मद में न भूलना कभी तू यार,
रहना सचेत एक रोज चोर आवेगा[1] ।।

+ + + +

(३) हमने जिसके हित लोक लाज सब छोड़ी ।
सब छोड़ रहे एक प्रीत उसी से जोड़ी ।।
रही लोक वेद पर बाहर से मुखमोड़ी ।
पर उन नहिं मानी सो तिनका सी तोड़ी ।।
इस हाथ लगी मेरे जग बीच हंसाई ।
उस निरमोही की प्रीति काम नहिं आई[2] ।।

- - - -

(४) सुनत जनम वृषभानु लली को उठिधाई ब्रजनारी ।
मंगल साज लिए कर कंचन पहिरे रंग रंग सारी ।।
जो जैसे तैसे उठि धाई सुनतहि स्वामिनि नामा ।
भादों नदी सरिस उमगाई चहुं दिसि ब्रज की बामा[3] ।।

- - - -

(५) मृदंगादि बाजे बजाओ बजाओ, सितारादि यंत्रै सुनाओ सुनाओ ।
अरे ताल दै लै बढ़ाओ बढ़ाओ, बंधाई सबै धाई गाइ सुनाओ ।।
कहां है रबाबी मृदंगी सितारी, कहां है गवैये कहां नृत्यकारी ।
कहां आज मौला बकस बाजपेयी, कहां आज है छैन मोहन गोसाईं[4] ।।

(६) हम घर आवे धन सब हिंदुस्तान का, छल बल अपना हो न किसी के शान का ।
कुछ कसूर होय खुले हमारी पोल ना, इतना दे करतार अधिक नहिं बोलना ।

१- अंबिकादत्त व्यास कृत ।
२- भारतेंदु ग्रंथावली पृ० १९५ ।
३- वही, पृ० ५३२ ।
४- वही, पृ० ७०२ ।

लेक्चर अपना ब्याह बचन से तेज हो, फैशन पर कुर्बान हरेक अंग्रेज हो,
साबुन मलना फट्टूट से बोतल खोलना, इतना दे करतार अधिक नहिं बोलना[1]।

- - -

(७) बीती शीतकाल की संसति ब्यार बसंती डोली है ।
फूले फूल बिपिन बागन के बीह कोकिलन बोली है ।।
बदली गति मति जड़ चैतन की सुखमा सुखद अतोली है ।
भयो नयो सो जगत देखियत कहो आय गई होली है[2] ।

बड़ी बोली और ब्रजभाषा-

बड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों को मिलाकर भी तथा इसके अतिरिक्त बड़ी बोली, अवधी ब्रज आदि कई बोलियों के रूपों को मिलाकर भी कवियों ने रचना की है । एक उदाहरण कवि संतोष सिंह के कवित्त का जो १८७५ में हरिश्चन्द्र चंद्रिका में छपा था देखिए, जिसमें ब्रज तथा बड़ी बोली दोनों के मिश्रित रूप देखने को मिलते हैं-

हौं द्विज विलासी बासी अमृत सरोवर को,
कासी के निकट तट गंग जन्म पाया है ।
शास्त्र ही पढ़ाया कर प्रीति पिता पण्डित ने,
पाया कवि पंच नाम कीनी बड़ी दाया है ।
कहै तोष हरिनाम काव्य में ठहराया,
जैसा कुछ आया सो प्रबंध में बनाया है ।
प्रेम को बढ़ाया अब सीस को नवाया देखो,
मेरे मन भाया कृष्ण पांव पै चढ़ाया है[3]।

बड़ी बोली, ब्रज और अवधी-

एक उदाहरण प्रताप नारायण मिश्र के आल्हे से और प्रस्तुत है जिसमें बड़ी बोली ब्रज तथा अवधी तीनों का मिश्रण है-

---

१- प्रताप लहरी पृ० १८९ । २- वहीं, पृ० १३१ ।
३- हरिश्चन्द्र चंद्रिका-जनवरी १८७५ ।

देनी गैयै आदि अविधा जिनकी लीला अपरम्पार ।
हिन्द बासिनी बोतल धारिनि दुर्ग पदगदहा पर असवार ।
बड़े बड़े पण्डित बड़े बड़े भूपति जिनके बिना मोल के दास ।
बालक बुढ़वा नर नारिन के हिरदै बैठी करो बिलास ।।
गाजीपीर नारसिंह बाबा देउता सब मिलि होउ सहाय
जनम भूमि को जस गावत हौं भूलि अच्छर देउ बताय ।।
गावन बारे को गसदीजै औ बजवैये दीजै ताल ।
नाचन बारे को नैना देव मरद का देव ढाल तरवारि[1] ।

खड़ी बोली और फारसी का मिश्रण-

खड़ी बोली का मिश्रण केवल ब्रज अवधी आदि से ही नही वह फारसी से भी किया गया है ।

हद से ज़ियादा दिल अपने आशिक का सदा कुढ़ाते हैं ।
मुंह न लगावै, गले का हार उसके बन जाते हैं ।।
अपना सब कुछ इन पर बारे उसी को हाय सताते हैं ।
हाय या बेदीं खुदा का खौफ ज़रा नहि खाते हैं[2] ।

- - - -

होशियार भी इसके सबब से दीवाने बन जाते हैं ।
मौज में आकर, नाचते हैं, रोते हैं गाते हैं ।।
रंग ढंग पर अपने एक आलम के तई हंसाते हैं ।
पर मस्ती में, अहा ता । मज़ा भी क्या कुछ पाते हैं ।
दिल खुश कर लो अक्ल के बहकाने में मत आओ यारो ।
बड़ा मज़ा है,जो आँखें मूंद के पी जाओ प्यारो[3] ।।

१- प्रताप लहरी -पृ० २०५ ।

२- वही, पृ० ८१ ।

३- वही, पृ० ९१ ।

खड़ी बोली के अलावा भोजपुरी में भारतेंदु युगीन कवियों ने गीत लिखे हैं, किन्तु भोजपुरी में लिखे गीत ब्रज, खड़ी बोली तथा अवधी की तुलना में बहुत ही कम है। किन्तु जितने भी गीत भोजपुरी में कवियों ने लिखे हैं चाहें वे गिनती में कितने ही कम हैं किन्तु येगीत भोजपुरी भाषा का सच्चा रूप सामने रखते हैं। इन गीतों की भाषा तथा शैली दोनों ही भोजपुरी है। विस्तार भय से अधिक उदाहरण तो देना संभव नहीं किंतु बानगी के लिए एक दो उदाहरण देखे जा सकते हैं-

हम तो खोजि खोजि चौकाली चिड़िया रोज फंसाई ला।
जहां देखि आई, सुनि पाई, बसि उरि जोंईला हो ।।
चोखा चारा चाह जतन के जाल बिछाईं ला।
पट्टी टूटी और नैन के चोट चलाईला हो।
कम्पा दाम लगाइला चटपट चिड़ पाइला हो।
यार प्रेमघन। यही तार में सगतौं धाईंली हो[1] ।।

\- \- \-

तौह से यार मिलै के खातिर सौ सौ तार लगाईं ला ।।
गंगा रोज नहाईं ला, मंदिर में जाईं ला।
कथा पुरान सुनीला, माला बैठि हिलाईला हो ।।
नेम धरम औ तीरथ बरत करत थकि जाईला।
पूजा के देवतन से कर जोरि मनाईं ला हो[2] ।

अवधी-

भारतेंदु युगीन काव्य में अवधी के प्रयोग भी प्रायः मिल जाते हैं, यद्यपि शुद्ध व अवधी के उदाहरण काव्य में बहुत अधिक नहीं मिलते किन्तु अवधी आदि के शब्दों तथा क्रियाओं आदि के प्रयोग प्रायः मिलते हैं। अवधी के कुछ उदाहरण भारतेंदु युगीन काव्य में प्रस्तुत हैं जिनमें अवधी क्रियाओं तथा पद रूपों का प्रयोग मिलता है -

---

१- प्रेम प्रेम सर्व० पृ० ५८४।
२- वही, पृ० ५८३।

इन बगियन फेर न आवना ।
चंचल चंचरीक चंपा मैं, चखि जनि जनम गंवावना ।
बदरीनाथ बसंत बीते पर फिर पीछे मत आवना[१] ।।

- - -

आय कजरी के दिन नगिचान रंगावः पिया लाल चुनरी ।
रेशमी सबुज रंग अंगिया सिआवः
वेगि बैठि दरजिया की दुकान- रंगावः पिया लाल चुनरी ।
लाले रंग अपनी पगरिया रंगावः
होइ रंगवा से रंग के मिलान- रंगावा पिया लाल चुनरी ।
बगिया में झूलुआ डलवः झूलुः संग,
सुनः नई नई कजरी के तान- रंगावः पिया लाल चुनरी ।।
प्रेमधन पिया तरसावः जिनि जिया,
आयल बाटै सजि सावन समान- रंगावः पिया लाल चुनरी[२]।

हिन्दी के अतिरिक्त भाषाओं में गीत लिखने के प्रयत्नः-

भारतेंदु युगीन कवियों ने मुख्य रूप से भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी की बोलियों के अतिरिक्त अन्य प्रदेश की भाषाओं गुजराती, पंजाबी, बंगाली आदि में गीत लिखे हैं । गुजराती, पंजाबी तथा बंगाली भाषाओं में परिमाण की दृष्टि से सबसे अधिक गीत बंगाली में लिखे हैं, उसके उपरोक्त पंजाबी तथा गुजराती में । इनमें गुजराती में लिखा गया गीत तो गुजरात के प्रसिद्ध लोकनृत्य के साथ गाया जाने वाला गरबा गीत है इसी प्रकार पंजाबी तथा बंगाली में पूरबी भी लिखी हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी प्रदेश की लोक शैलियों में हिन्दी के अतिरिक्त पंजाबी बंगाली तथा गुजराती आदि अन्य भाषाओं के प्रयोग की प्रवृत्ति है ।

१- प्रे० सर्व० पृ० ५७१ ।

यह भारतेंदु हरिश्चन्द्र आदि कवियों की ही विशेषता है कि इन्होंने हिंदी के अलावा दूसरे प्रांत की भाषाओं का भी हिंदी की लोक शैलियों में प्रयोग करने का प्रयत्न किया कुछ उदाहरण देखिए । सर्वप्रथम बंगला तथा पंजाबी का पूर्बी शैली में प्रयोग देखिए-

बंगला (पूरबी) -

~~बेस्स्की~~
प्रानेर बिना की करी रे आमी कोथाय जाई ।
आमी की सहिते पारी बिरह अंत्रता भारी
आशाभरी भरी विष खाई ।
बिरहे व्याकुल अति जल हीन मीन गति
हरि बिना आमि ना बचाई[1] ।।

\- - -

पंजाबी (पूरबी)

बेदरदी वे लड़िबे लगी तैंड़े नाल ।
वे परवाही मारी जी तू मेरा साहबा असी इत्थों बिरह विहाल ।
चाहने वाली दी फिक्कर न तुझ नूं गल्लों दा ख्वाब न ख्याल ।
"हरीचन्द" ततबीर ना सुझदी आराम बैतुल-माल[2] ।

(होली)-

पंजाबी में होलियां भी भारतेंदु ने लिखी हैं-
तैंडा होरी खेल मैंडे जीउ नूं भांवदा ।
तु वारी कोई दी सरमन करदा बुरी वे गालियां गांवदा ।
पाय अबीर नैण विच साड़े बंसी निलज बजावंदा ।
हरीचंद मैन् लगी लड़ तैंडी नहि आस पुरांवदा[3] ।

१- भारतेंदु ग्रंथावली पृ० १९२
२- वही पृ० १९२
३- [illegible]

(होली) -

साहुला म्हारा भींजै न डारो रंग ।।
मति नाखौ गुलाल आंखिन मैं लीजा छौ कनि राढ़ै ।।
नाम लेइ म्हारो मति जाबो गारी संग बजाई कै चंग ।।
हरीचंद मद मात्यो मोहन मति लागो म्हारे संग[1] ।।

इसी प्रकार पंजाबी[2] तथा बंगला[3] भाषा में अनेक गीत भारतेंदु युगीन कवियों ने लिखे हैं । बंगला तथा पंजाबी के अतिरिक्त अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी कवियों ने अनेक गीत लिखे हैं ।

गुजराती :

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने गुजरात की गरबा शैली में भी गीत लिखे हैं जिसमें गुजराती भाषा का प्रयोग किया गया है और जिसमें गुजराती भाषा के ही थारा, लहरी, जोईने, सडा, जेव्हा, जेवा, जेनी, जेभा, जेवी, छै आदि शब्दों क्रियाओं तथा सर्वनाम आदि के प्रयोग किए हैं, तथा गीत की प्रकृति के अनुसार ही कृष्ण वर्णन गीत में हुआ है । भारतेन्दु द्वारा लिखित गरबा उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

थारे मुख पर सुंदर श्याम, लहरी लट लटके छै ।
जे ने जोई ने म्हारो मन लाल, जाइ- जाइ अटके छै ।।
थारा सुंदर नैन विशाल, प्यारा अति सडा छै ।
जेने जोई ने जगना रूप, लागे मूंडा छै ।
थारा सुन्दर गोल कपोल, गुलाब जेव्या फूल्या छै ।
जेने जोईने मन भ्रमर, जुवति ओ ना भूल्या छै[4] ।।

+ + +

१-भा०ग्रं० पृ० ३७७ ।

२- वही, पृ० ४२४-४२५ ।

३- वही, पृ० २१०-२१४ ।

४- वही, पृ० ३९४ ।

बाला वल्लभ सुमिरण करतां सहु दुख भागे छे ।
जेनो मंगलमय शुभ नाम अमृत जेवो लागे छे ।
जेनो सुंदर श्याम सरूप कृष्ण जेवो सोहे छे ।
जेने कुंकुम तिलक ललाटे म्हारुं मन मोहे छे ।
जेने नैणा जुगल विशाल कृपा रस भारी रह्या छे ।
जेमा राधा कृष्णना रूप शोभा करि रह्या छे[1] ।।

उपर्युक्त गरबा गीतों की भाषा तथा शैली पूर्णतया गुजरात में गाए जाने वाले गरबा गीतों के ही समान है ।

संस्कृत और उर्दू में प्रयोगः-

गुजराती बंगला पंजाबी आदि आधुनिक भाषाओं तथा खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि हिन्दी भाषाओं के अतिरिक्त भारतेन्दु युगीन कवियों ने संस्कृत, तथा उर्दू का भी अपने काव्य में प्रयोग किया है । और लोक गीत इन भाषाओं में लिखने के प्रयत्न किए हैं । उर्दू भाषा का प्रयोग लावनी है में जो हुआ है वह तो कुछ खप सा भी जाता है क्योंकि लोक वर्ग में लावनी में खड़ी बोली के सथ फारसी आदि शब्दों का भी प्रयोग होता ही है किन्तु संस्कृत आदि के,भारतेन्दु द्वारा कजली में प्रयोग, काव्यक्रीड़ा के अलावा कुछ नहीं लगते । न उनमें कजली की ध्वनि ही आ पाई है और न स्वाभाविकता । यही हाल उन लावनियों का भी हुआ है जो संस्कृति में लिखी गई हैं । यदि इन तथाकथित गीतों पर शीर्षक रूप में रक्खे गए लावनी, तथा कजली शीर्षक हटा दिए जाए तो यह निश्चित करना ही असम्भव है कि यह कजली या लावनी है भी या नहीं । उदाहरण के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत संस्कृत में लिखी एक लावनी देखिए जो हरिश्चन्द्र मैगज़ीन में प्रमाणित हुई थी । इस पर लिखा हुआ संस्कृत लावनी ही शीर्षक बताता है कि यह लावनी है अन्यथा इसका स्वरूप किस लोक गीत का है कहना कठिन है। उदाहरण स्वरूप लावनी का प्रारम्भिक अंश प्रस्तुत है -

---

१- भारतेन्दु ग्रंथावली: पृ० २९५ ।

कुंजं कुंजं सखि सत्वरं ।
चल चल दयितः प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरं ।।
सर्वा अपि संगताः ।
नो दृष्ट्वा त्वां तासु प्रिय सखि हरिणा हं प्रेक्षिता ।।
मानं त्यज वल्लभे ।
नास्ति श्री हरि सदृशो दयितो त्वमिम इदं ते शुभे ।।
गतिर्भिन्ना ।
परिधेहि निचोलं लघु ।
जायते विलम्बो बहु ।
सुंदरि त्वरां त्वं कुरु ।।
श्री हरि मानसे वृणु ।
चल चल शीघ्रं नोचेत्सर्वं निष्पन्तिहि सुन्दरं ।
अन्यद्गन मन्दिरं चल चल दयितः ।।
शृणु वेणुनाद मागतं ।
त्वदर्थ मेव श्री हरिरेशः समानयतुन्नीशतं ।।
त्वयूयेव हरिं सद्रतं ।
तवैतार्थमिह प्रमदाशतकं प्रियेण विनियोजितं ।।
शुभवन्ध्यमृतां संरन्तं ।
कक आकरायन्ति सर्वे समाप्त हरिणो मधुरं मतं[1]।।

ज्ञातव्य है कि लावनियों में जो उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है वह यद्यपि लावनी का यथावत रूप प्रस्तुत नहीं कर पाता किन्तु इतना अटपटा भी नहीं लगता कि लावनी ही जान न पड़े । लावनी की शैली उसमें पूर्णतया विद्यमान है भी । फिर यह बात भी है कि लावनी में उर्दू, शब्दों का प्रयोग प्रायः होता है जबकि लावनी तथा कजली आदि लोक गीतों में संस्कृत का रूप नहीं रहता है । उदाहरण के लिए एक लावनी प्रस्तुत की जाती है जिसमें अनेकों शब्द उर्दू के ही प्रयुक्त हुए हैं किन्तु वह अपने लावनी रूप को सुरक्षित

१- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ६६६-६६७ ।

किया हुआ है । उसमें इतने जटिल अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग नहीं कर दिया गया है कि वह अपने स्वरूप को ही विनष्ट कर दे -

> होशयार बस वही तो है उस यार का जो दीवाना है ।
> इल्मे मुहब्बत, पढ़ा है वह उस्तादे ज़माना है ।।
> गया है जो उस दरवाज़े का वह साहबे खज़ाना है ।
> मज़ा ज़ीस्त का, फ़कत उस जानी पर जो जाना है ।।
> बादशाह क्याहै मेरे राजा का जोकि गुलाम न हो ।
> किसी काम का, नहीं है इश्क से गर नाकाम न हो[1] ।।

उपर्युक्त लावनी में यद्यपि होशयार, यार, इल्मे, मुहब्बत, उस्ताद ज़माना, साहबे खज़ाना ज़ीस्त फ़कत जानी, गुलाम, इश्क , नाकाम अनेकों उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है किन्तु यह इतने सरल तथा लोक प्रिय शब्द हैं कि इनसे लावनी की शकल नहीं बिगड़ती और वह लोक प्रचलित लावनी का स्वरूप बनाए रखती है ।

लोक शब्दावली :-

लोक शब्दावली के अन्तर्गत उस समस्त शब्दावली की गणना होती है जो लोक मानस द्वारा निर्मित है और लोक प्रवृत्ति के अनुरूप ढलती रही है । लोक शब्दावली पर विचार करते समय सबसे पहले ध्यान देशज शब्दावली पर ही जाता है । देशज शब्दावली का तात्पर्य भी यही है कि जो देश में अर्थात् सामान्य जनवर्ग के मध्य की शब्दावली है और जिसकी कोई व्याकरणिक निरूक्ति या उत्पत्ति नहीं सिद्ध की जा सकती और उसकी उत्पत्ति का कारण केवल लोक मानस तथा लोक वार्ता में ही ढूंढ़ा जा सकता है । देशज शब्द में प्रयुक्त देश शब्द की समानता में संगीतशास्त्र में प्रयुक्त मार्गी संगीत की तुलना में देशी संगीत का देशी शब्द है । और वहां जो देशी संगीत की व्याख्या करते हुए देश की जो व्याख्या की गई है वही देशज में "देश" की है । देशी शब्दावली

1- प्रताप लहरी : पृ० ११६ ।

या देशज शब्दावली के साथ ही साथ "देशीनाम माला कोश" का भी प्रसंग आता है जिसमें कोशकार ने अपने समय में प्रचलित देशी शब्दों का कोश बनाया है । देशी नाम माला के कितने ही शब्द ऐसे हैं जिनके आज विद्वानों ने संस्कृत रूप खोज निकाले हैं किन्तु अवधेय है कि हेमचन्द्र के समय में वे शब्द देशी शब्द ही की कोटि में आते थे और पंडित वर्ग उन्हें संस्कृत की शब्दावली में नहीं रखते थे । देशीनामा के सम्बन्ध में यह और विशेष बात है कि कोश कार ने उन्हीं देशी शब्दों की गणना की है जिनका प्रयोग साहित्य में होने लगा था जिन देशी शब्दों का प्रयोग साहित्य में नहीं होता था उनकी गणना नहीं की गई है । किन्तु इससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि कोशकार के समय में ही साहित्य में लोक शब्दों का प्रयोग होने लगा था और लोक शब्दों के इस बढ़ते हुए प्रयोग बाहुल्य को देखकर ही हेमचन्द्र ने देशी नाममाला कोश तैयार किया था । इस प्रकार देशज शब्दों का प्रयोग एक विशेष सीमित अर्थ में होता है, किन्तु लोक शब्दावली का क्षेत्र अधिक व्यापक है । इसके अन्तर्गत देशज शब्दों की तो गणना है ही साथ ही उन शब्दों की भी गणना है जो मूलतः लोक शब्द नहीं है किन्तु लोक मानस ने अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल उन्हें ढालकर लोक शब्द बना लिया है । तद्भव शब्द इस प्रकार बहुत कुछ लोक शब्दावली के ही घेरे में आते हैं । एक उदाहरण द्वारा बात और अधिक स्पष्ट की जा सकती है ।लार्ड अंग्रेजी का शब्द है । यह शब्द विकृत होते होते लाट बन गया है और इसका प्रयोग अब लोक गीतों में तथा लोक वर्ग में बहुत होता है । इस प्रकार जहां लार्ड अंग्रेजी का शब्द था वही लोक प्रवृत्ति तथा लोकमानस के अनुसार ढलते ढलते लाट बन गया । इस प्रकार अनेक शब्द है जो आज विदेशी लगते ही नहीं । लोक मानस की इस प्रवृत्ति का डा० सत्येन्द्र ने उल्लेख किया है और कहा है कि इस प्रवृत्ति से अद्भुत अद्भुत परिवर्तन शब्दों के सन्दर्भ में हुए हैं ।

१- "लोक प्रवृत्ति इसके विरुद्ध सहज प्रवृत्ति होती है, उसमें शब्दों को मनोभावानुकूल देश की अवस्था के अनुरूप ही नहीं, मनुष्य की निजी भाव भूमियों के परिवर्तनों के अनुकूल भी ढालते रहने की परम्परा विद्यमान रहती है । इस प्रवृत्ति के आधीन अद्भुत अद्भुत विकार उत्पन्न होते रहते हैं ।"

– लोक साहित्य विज्ञानः डा० सत्येन्द्र ।

लोक शब्दावली का क्षेत्र इस प्रकार बहुत व्यापक हो जाता है और उसका हम निम्नलिखित प्रकार से अध्ययन कर सकते है ।

क- नाम वाची शब्दावली :

लोक शब्दावली में नामवाची शब्दावली का विशेष महत्व है क्योंकि इनके मूल में लोक जीवन के अनेक लोक विश्वास संयुक्त हैं, लोक मानस प्रवृत्ति का इनकी पृष्ठभूमि में योग है । इन नामवाची शब्दों द्वारा एक विशेष प्रदेश की संस्कृति उसके विश्वास और उसकी शब्द निर्माण प्रवृत्ति का अध्ययन किया जा सकता है । इस प्रकार नामवाची शब्दावली का लोक वार्ता की दृष्टि से विशेष महत्व है । भारतेन्दु युगीन काव्य में नामवाची अनेक लोक शब्द प्रयुक्त हुए हैं । इन प्रयुक्त शब्दों का हम दो वर्गों में विभाजन कर अध्ययन कर सकते हैं ।

(क) वे शब्द जो मूलतः लोक मानस द्वारा ही निर्मित हैं ।

(ख) वे शब्द जो मूलतः लोक शब्द नहीं हैं किन्तु लोक प्रवृत्ति के अनुसार ढलकर लोक मानस ने उनका सरलीकरण कर तथा विकृत कर उन्हें ग्रहण कर लिया है ।

(क) प्रथम वर्ग में उन शब्द विशेषों की गणना की गई है जो मूलतः लोक मानस के द्वारा ही निर्मित हैं । इन शब्दों के ही पीछे लोकमानस का विश्वास संयुक्त रहता है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने इस प्रकार के अनेक शब्दों का प्रयोग किया है जिनमें कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है -

१- सुसा[+] २- नोकराज[++]

३-टट्टू[१] ४- बिल्ली[२]

+ एक समय सुसा के मन्दिर नोकराज महराज सिधारे
शोक हैंड के तुरत सुस की इजी चैर पर लै बैठारे -प्रे० सर्व० पृ० २५५ ।

++ भरा कौन मद का वृथा आप गर्वः । सुसा शास्त्रि वर्य! सुसा शास्त्रि वर्यः -- पृ० २५८ ।

सूस तुम पंडित होउगे हो, बड़े लर लंठित होगे हो- पृ० २५८

१- कहनवा मानो हो मियां टट्टू । गेदा खेलो फिरहिरी नचा बहु हाथ से छुओ न लट्टू- प्रे० सर्व० पृ० २५५ ।

सुनो जी टट्टू जी महाराज, कि तुम बदमाशों के सरताज-प्रे० सर्व० पृ० २५८।

५- मन्नू लाल[1]   ६- पन्ना[2]

७- भारथदास[3]   ८- नकछेद अहिर[4]

९- भक्कड़ सिंह[5]   १०- नन्हू[6]

११-बच्चू राम[7]   १२- बच्चन[8]

उपरोक्त लिखित शब्द व्यक्तियों के नाम हैं और इनका काव्य में भी नाम रूप में प्रयोग हुआ है। मुन्ना, नौकराज, दद्दू तीन नाम तो प्रेमघन जी के भतीजों के हैं। इसी प्रकार गौरीशंकर प्रसाद की लड़की सावित्री को बिल्ली नाम दिया है। लोक मानस में इस प्रकार के नाम देने की प्रवृत्ति अति व्यापक है। लोक शब्दावली में ऐसे नामों को डाक नामों की संज्ञा दी गई है। इन डाक नामों की प्रथा यों तो भारत में सभी प्रांतों में पाई जाती है किन्तु बंगाल में यह प्रवृत्ति अति प्रचलित है। वहां प्रत्येक व्यक्ति के असली नाम के अतिरिक्त एक दूसरा नाम अवश्य होता है जिसका घर में प्रायः व्यवहार होता है।

यह डाक नाम क्यों रक्खे जाते हैं इस पर भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने पर्याप्त अनुशीलन किया है और इनके मूल में अनेक कारणों का अनुसंधान करते हुए निष्कर्षतः कहा है, कि ये नाम कहीं तो केवल स्नेह के आधार पर ही रक्खे जाते हैं, कहीं स्वभाव के अनुसार कहीं किसी देवी की मानता के कारण देवी के नाम पर- जैसे मातादीन आदि, तो कहीं किसी लोक विश्वास या टोटके के कारण नाम रख दिया जाता है जिससे अनिष्टकारी शक्तियां अनिष्ट न कर सके क्योंकि उनका अनिष्ट

१- प्रेमघन सर्वस्व -हास्य बिंदु।

२-३- भरथदास दिलदार यार भी हैं दीन्हेन धोखा बार बार

औरन सौं तुम सटत रोज हम कासी नाथ पर नहीं प्यार।

बलीला जी छांड दो तिरकुल्ली मेरी।

नहिं हम माधी साहुन पन्ना नाहम भारथदास- प्रे० सर्व० पृ० २६०।

४- नाकछेदि नकछेद अहिर की बाबूलाल बुलाओ बबा- प्रे० सर्व पृ० २५९।

५- हिंदी प्रदीप, जि० २, सं० २, पृ० १३।

६- वही।

७- अतापता होई कहूं कहै को जहान की। बच्चू राम जानै कोउ बात

केवल डाक नाम पर ही होगा क्योंकि उसी का प्रचलन है, इसलिए असली नाम पर प्रभाव न पड़ने के कारण व्यक्ति पर कोई संकट नहीं आ सकेगा । बंगाल में इस टोटके के कारण ही डाक नाम रखने की अधिक संभावना प्रतीत होती है क्योंकि जादू टोनों का बंगाल में सर्वाधिक प्रचलन है वहां के निवासियों का अनिष्टकारी शक्तियों पर ही सर्वाधिक विश्वास है । डाक नामों का हम कई वर्गों में वर्गीकरण कर सकते हैं[1] ।

१- नामों के ही किसी एक अंश को लेकर रक्खे जाने वाले नाम- जैसे कान्ति-मोहन के लिए कान्ति, या मानिक चंद के लिए मानिकी लोक वार्ता की दृष्टि से इन नामों का विशेष महत्व नहीं है ।

२- नामों के किसी अंश पर आधारित न होकर स्वतंत्र रूप से रखे गए नाम । इस वर्ग के कई उपवर्ग हो सकते हैं ।

क- ऐसे नाम जिनकी कोई व्याख्या नहीं की जा सकती ।

ख- स्वभाव के आधार पर रक्खे गए नाम

ग- दिन ऋतु विशेष में जन्म लेने के कारण रक्खे गए नाम

घ- विभिन्न सामाजिक स्थितियों को सूचित करने वाले नाम

ड०-जिनके मूल में किसी प्रकार का टोटका जुड़ा हुआ हो ऐसे नाम ।

इस प्रकार डाक नामों का अनेक वर्गों में विभाजन किया जा सकता है । भारतेंदु युगीन काव्य में उल्लिखित नाम जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है वे अनेक वर्ग से संबोधित हैं । कुछ तो केवल ऐसे हैं जिनकी कोई व्याख्या नहीं की जा सकती है और जिनके मूल में केवल स्नेह ही कारण बताया जा सकता है । सनेह के कारण निरर्थक तथा विचित्र नामों को रखने की प्रथा लोक में व्यापक है[2] । सुसा नोकराब मन्नू आदि ऐसे ही नाम है जो केवल सनेह के कारण रक्खे गए प्रतीत

१- लोक साहित्य विज्ञान-सत्येन्द्र

२- अभिधान अनुशीलन- विद्या भूषण विभु ।

होते है । नन्कू नाम शायद छोटे होने का बोध करता है जो व्यक्ति घर में छोटा होता है उसे नन्कू या ननकउ तथा बड़े को बड़कउ या बड़कू प्रायः कहा जाता है । टट्टू तथा बिल्ली नाम स्वभावपा प्रवृत्ति के अनुसार रक्खे जा सकते हैं जो व्यक्ति बहुत आलसी हो, काम धीरे धीरे करता हो उसे अडियल टट्टू के ही रूप में टट्टूह भी कहा जाता है । इसी प्रकार बिल्ली नाम भी बिल्ली के समान तेज दृष्टि वाली या बिल्ली के समान ही शीघ्र डरने वाली लड़की का नाम बिल्ली भी रक्खा जा सकता है । किन्तु इस सम्बन्ध में इस बात की ओरसंकेत कर देना आवश्यक है कि कवियों द्वारा इन नामों की व्याख्या न दी जाने के कारण यह नहीं कहा जा सकता है कि इन विशेष व्यक्तियों के यह नाम किन आधारों पर रक्खे गये हैं, किन्तु इतना निश्चित ही संकेत मात्र किया जा सकता है कि लोक मानस इन कारणों से भी ऐसे नाम करण करता है । अतएव इन प्रयुक्त नामों के पीछे केवल लोक मानस प्रवृत्ति के आधार पर कारण का संकेत किया गया है किन्तु यह निश्चित रूप सेसंकेत नहीं किया जा सका कि इन नामों का कारण क्या है । बच्चू, बच्चूराम और बच्चन स्नेह द्वारा निर्मित नाम है । और इनका मूल वत्स शब्द में खोजा जा सकता है । भक्कड़ सिंह तथा पन्ना नाम सामाजिक प्रवृत्तियों के सूचक है । लोक मानस का विश्वास है कि नामों का प्रभाव भविष्य के जीवन पर पड़ता है अतः यदि किसी का नाम माणिक लाल हजारीलाल आदि रक्खा जायेगा तो घर में धन की कमी नहीं होगी और माणिकलाल का घर माणिक से भर जाएगा, तथा हजारी लाल के पास हजारों रुपया होगा । इस प्रकार लोक जीवन में अनेक नाम रक्खे जाते हैं[1]। पन्ना नाम भी इसी लोक मानस प्रवृत्ति के कारण भी हो सकता है कि पन्ना नाम से घर पन्ना अर्थात् ऐश्वर्य आदि से पूर्ण रहेगा । अधिक लोक विश्वासी जनता के मध्य ऐसे नामों की स्थिति अधिक पाई जाती है । भक्कड़ सिंह नाम बहुत कुछ व्यक्ति विशेष की भक्की प्रवृत्ति का भी पर्याय माना जा सकता है ।

१- अभिधान अनुशीलनः विद्याविभूषण विभु ।

इनके अतिरिक्त दूसरे वर्ग के नामवाची शब्दों का अर्थात् ऐसे नामवाची शब्द जो मूलतः लोक शब्द नहीं है, किन्तु विकृत करके लोक वर्ग ने उनको अपना लिया है और उनका लोक जीवन में प्रयोग होता है। भारतेन्दु युगीन कवियों ने इस प्रकार के नामों का उल्लेख किया है। इस वर्ग के नामो की संख्या बहुत अधिक हैं कुछ नाम ही उदाहरण स्वरूप दिए जाते हैं -

मूलनाम	विकृत या लोक प्रचलित नाम
कृष्ण	कन्हैया
इंद्राणी	इंदरानी
विजय	बिजै
विक्टोरिया	बिकटुरिया
ब्रह्मा	बरह्मा
जयपुर	जैपुर
जयचंद	जैचंद
सत्यनारायण	सतनारायन
गणेश	गनेस
रविदत्त	रवीदत्त
काशी	कासी

इसी प्रकार पर्याप्त ऐसी नामवाची शब्दवली हैं जिनका लोक प्रवृत्ति के अनुसार परिवर्तन होकर लोक जीवन में प्रचलन हुआ है। इस प्रसंग में यह भी संकेत होना चाहिए कि किन नियमों के आधार पर किन-किन शब्दों का सरलीकरण लोक मानस किस प्रकार करता है। इन नियमों का प्रस्तुत प्रसंग में संकेत न कर तद्भव शब्दों के प्रसंग में संकेत किया जाएगा क्योंकि दोनों के सम्बन्ध में प्रायः एक से ही नियम हैं।

(ख) देशज - शब्दावली :-

लोक भाषा में सबसे अधिक महत्व देशज शब्दावली का होता है क्योंकि देशज शब्दावली ही लोक भाषा की निजी सम्पत्ति होती हैं और

तत्सम तद्भव या विदेशी शब्दों की तुलना में इन देशज शब्दों का ही सबसे अधिक व्यवहार होता है । भारतेन्दु युगीन काव्य में भी अनेक देशज शब्दों का प्रयोग हुआ है । कहीं यह देशज शब्द पारिवारिक वातावरण से संबंध रखने वाले शब्द हैं, कहीं संस्कार, त्यौहार या व्यवसाय वाची शब्द हैं । इसके अतिरिक्त कुछ देशज शब्दों का सम्बन्ध सज्जा प्रसाधनों से हैं, कुछ का मनोरंजनात्मक साधनों से, कुछ व्यसन सूचक हैं तो कुछ कला कौशल सूचक । कुछ देशज शब्द सम्बोधन वाची हैं तो कुछ मानव मानस की आश्चर्य वृत्ति आदि मानस वृत्तियों से सम्बन्धित है । भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त देशज शब्दों की तालिका उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जाती है -

देशज शब्दों की उनकी निर्माण प्रवृत्ति के आधार पर निम्न-लिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं -

१- ध्वन्यात्मक शब्दः-

अनुकरणात्मक या ध्वनिवाची शब्दावली का प्रयोग भी भारतेन्दु युगीन कवियों ने किया है । अनुकरणात्मक शब्द भाषा के प्राचीन तम शब्द रहे होंगे । और सबसे पहले मानव ने इन्हीं शब्दों द्वारा अपने भावों की अभिव्यक्ति की होगी । यही कारण है कि विश्व की सभी भाषाओं में अनुकरणात्मक या ध्वन्यात्मक शब्द पाए जाते हैं । भाषा विज्ञान में इन शब्दों को डिंग-डांग सिद्धान्त के अन्तर्गत माना जाता है और इनसे भी भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध पर विचार किया जाता है । भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि आदिम मानव ने विभिन्न ध्वनियों को सुनकर उन्हीं ध्वनियों के आधार पर उनका निर्माण किया होगा। तारापुर वाला ने भी इन ध्वन्यात्मक शब्दों को आदिम मानव मानस से संबंधित माना है[१]। इस प्रकार यह निश्चित रूपेण कहा जा सकता है कि ये ध्वन्यात्मक शब्द

१- Taraparewala: Elements of the Science of Language 1962 p.14.

लोक शब्द ही है। भारतेन्दु युगीन कवियों ने इन ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया है जिनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं।

हहरात - बहत नदी हहरात जहाँ नारे कलरव करि[१]।

झरि - निदरत जिनहिं नीर झर शीतल स्वच्छ नीर झरि[२]।

गरजत - जाके दुर्गम कानन बाघ सिंह जब गरजत[३]।

लरजत - भाजत हरि मृग जाल पथिक जन को जिय लरजत[४]।

हहरत - आगे आगे चलत लोग हहरत हिय हेरी[५]।

अरराहट - अरराहट कबीर की चहुं दिशि परत सुनाई[६]।

धमकत - धमकत ढोल रह्यौ अस फाग मच्यो निसिवासर[७]।

अरराय - देखत तिय अरराय कबीर गाय दोहराबैं[८]।

चुहत - चुहत ईख कोउ छीलि गडेरी के रस चूसत[९]।

उमड़-घुमड़ - उमड़ घुमड़ घन घटा घूमि छिति चूमत बरसत पानी[१०]।

टनकारैं - कोउ जोड़ी टनकारैं[११]।

झनकारैं - कोउ घुंघरू पग झनकारैं रामा[१२], पग पायल झनकार।

छम-छम - गतिगयन्द गामिनिया, छम छम बाजै पग पैजनिया रामा[१३]।

छलकैं - गोरे गालन अलकैं, छलकैं सरद चन्द पर जैसे रामा[१४]।

उमड़त-घुमड़त- जोबन उभरत आवैं, ज्यों नद उमड़त घुमड़त धावैं रामा[१५]

झोंका झंका- हरि हरि प्रबल पवन धरि झोंकैं झंका भारी रे हरी[१६]

सन सन - सनि सनि सरस समीर सुगन्धन सनकत सुख सरसाई रे[१७]।

दमकत - दसहूं दिशि दुति दमकत दामिनि[१८]।

जगमगात - जीगन जुत जगमगात जामिनि[१९]।

(१-)प्रे० सर्व० पृ० १। (२) वही, पृ० १। (३) वही, पृ० २। (४) वही, पृ० २। (५) वही, पृ० १२। (६) वही, पृ० ३५। (७) वही, पृ० ३६। (८) वही, पृ० ३७। (९) वही, पृ० ४४। (१०) वही, पृ० ५६१। (११) वही, पृ० ५०५। (१२) वही पृ० ५०५। (१३) वही, पृ० ५०७। (१४) वही, पृ० ५०८। (१५) वही, पृ० ५१२। (१६) वही, पृ० ५१४। (१७) वही, पृ० ५६१। (१८) वही, पृ० ५६० (१९) वही, पृ० ५६०।

थरथरात - थरथरात पग[१]।

हरहरात - हरहरात हिय जारी बयस हमारी[२]।

फहरत - ललित कंचुकी दीसत फहरत अंचल लगत समीर[३]।

छन छन छहरात-लेत छिति चूमि चूमि छन छन छन छबि छहरात[४]।

झकझारे - झकझारे तोर मोतियन को हार[५]।

सिसकत - सिसकत गारी देत कोउन कोउ अस बिहंसत[६]।

झिझकारैं - कोउ झिझकारैं कोउ न, कहूं बंक जुग भौंह मरोरैं[७]।

सनसनात - तैसी निसि सनसनात सुबहि साधिका[८]।

धुंकार - एरी हक धुंकार सुनि घर न रहौंगी मिलौंगी मीत को धाय[९]।

झनकत - झांझ झनकत करत घोर घंटा घहहरि घने
घुंघरू घिरत फिरत मिलि एक जथ[१०]।

खनकार - पैरिन की झनकार करत खनकार चुरी की[११]।

अगगग - अगगग अगगग अगगग घन गरजै[१२]।

झमकै - जुगनू चमकै बादल रमकै बिजुरी दमकै झमकै तरजै[१३]।

धमकत - धमकत ढोल रडत अरा फाग मचायो निसि बासर[१४]।

डकरत - भोजन के डकरत चलैं बूढ़े बैल समान[१५]।

कचरत - पाय दच्छिना टैंट मैं खोसत कचरत पान[१६]।

गुर्राय - जूठी पातर हित रहे नाउन सौं गुर्राय[१७]।

चाभि - स्वान चाभि निज ग्रास, दूजे हित बलुयो पराय[१८]

१- प्रे० सर्व० पृ० ५६२ । २- वही, पृ० ५६२ । ३- वही, पृ० ५६२ ।
४- वही, पृ० ५६३ । ५- वही, पृ० ५७९ । ६- वही, पृ० १० ।
७- वही, पृ० १० । ८- भा० ग्रं० पृ० ६६ । ९- भा० ग्रं० पृ० ३७६ ।
१०- भा० ग्रं० पृ० ४४७ । ११- प्रे० सर्व० पृ० १५ । १२- भा० ग्रं० पृ० ४८९ ।
१३- भा० ग्रं० पृ० ४८७ । १४- प्रे० सर्व० पृ० ३१ । १५- वही, पृ० १५४ ।
१६- वही, पृ० १५४ । १७- वही, पृ० १५४ । १८- वही, पृ० १५४ ।

घर घर घर - घर घर घर गिरैं भिरै[1]।

धाँसा - धमक धू धाँसा[2]।

करकरात - पातन की करकरात[3]।

२- मनोभावाभिव्यक्ति मूलक शब्दः

मनोभावाभिव्यक्ति मूलक शब्दों का सम्बन्ध भी लोक मानस से है और ये शब्द भी भाषा की आदिम स्थिति के सम्बन्ध में बताते हैं और इसीलिए इन्हें भी भाषा की उत्पत्ति के संबंध में निर्देश करने में सहायक माना जाता है। यह मनोविज्ञान का सामान्य सिद्धान्त है कि विभिन्न संवेगों तथा स्थितियों में मानव अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए विशेष मनोभावाभिव्यक्ति मूलक शब्दों का उच्चारण करता है[4]। जैसे मानव अपनी घृणात्मक भावना की अभिव्यक्ति के लिए छिःछिः शोक की भावना के लिए हाय हाय, प्रसन्नता के लिए वाह वाह अकस्मात किसी घटना के घटित होने से आश्चर्य चकित होकर दैया, हो आदि शब्दों का उच्चारण करता है। इस प्रकार के शब्दों को मनोभावाभिव्यक्ति मूलक शब्द कहेंगे। इस प्रकार की शब्दावली किसी एक प्रदेश या देश की भाषा में ही नहीं मिलती वरन् विश्व के प्रत्येक देश की भाषाओं में इस प्रकार की लगभग एक सी ही शब्दावली मिलती है। अतः इससे यह सिद्ध है कि इनका सम्बन्ध लोक मानस से हैं और यह लोक शब्दावली ही है। ऐसी

१- भारतेन्दु भा० १, अंक ३, पृ०५९।   २- भारतेन्दु भा० १, अंक ३, पृ०५९

३- भा०ग्रं, पृ० ६६।

४- Next we get the Pooh-pooh (or Interjectional) theory which takes its stand on the psychological fact that different perceptions excite different feelings and emotions in the human being, and there is an appropriate sound to express each human feeling.- p.14. Elements of Science of language. Taraporewala.

शब्दावली की संख्या अति सीमित होती है और प्राय: लोक भाषा में ही इन शब्दों का अधिक व्यवहार होता है । भारतेन्दु युगीन काव्य में इस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग हुआ है जो उनकी लोक भाषा की सजीवता को बनाए रखती है और स्वाभाविकता भी इस प्रकार बनी रहती है । भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त मनोभावाभिव्यक्ति मूलक शब्दावली की एक संक्षिप्त सूची उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

दईमारी - या दई मारी । कैलिया पापिन, मोहि बिरहिनहिं जरावत कोइलिया छिन छिन कूकि कूकि दई मारी, अरी जियरा डर पावै[२]।

हा - हा हरिचंद समान सो भयै गयो हरिचंद[३]।
हा मम प्राणोपम सुहृद हा प्यारे हरिचंद[४]।

हाय - हाय । प्रेम की आज सो बन्द भयो टकसाल ।
हाय । रसिकता मानसर को उड़ि गयो मराल[५]।।

धिक - धिक सम्वत उनईस सौ इकतालिस जो बात[६]।
धिक सांवहु ऋतु शिशिर जिहिं कहत जगत पतझार[७]।
धिक षष्ठी तिथि तोहि जो कियो अमित अपकार[८]।
धिक धिक पौने दस घड़ी बिती अरी वह रात[९]।।

वाह - वाह - कोउ मोहत वाह - वाह करि[१०]।
आह - भरत आह नाले कोउ[११]।

१- प्रे०सर्व, पृ० ११९। २- वही, पृ० ५६० ।
३- वही, पृ० १६७ । ४- वही, पृ० १७४ ।
५- वही, पृ० १७१ । ६- वही, पृ० १७५ ।
७- वही, पृ० १७५ । ८- वही, पृ० १७५ ।
९- वही, पृ० १७५ । १०- वही, पृ० ४ ।
११- वही, पृ० ४ ।

देया - काली बदरिया उमड़ि घुमड़ि कै, उमड़ि घुमड़ि कै हो,
देया । बरसन लागी चारिउ ओर[1]।

देया रे - कैसी करूं कहां जांउ अब दैय्या रे[2]।

हा हा - हा हा खाय करै बिनती तुव बिरह पिया अकुलावै[3]।

आहा - रंग उड़ि रहे बीर अबीर आहा । आज लखौ[4]।

हहा - बिनती यह सुन लीजिए मोहन मीत सुजान
हहा हरि होरी मैं[5]।

हां हां हां- पिचकारी ब्रजराज दुलारे (हां हां) रंग बरसावत कर लै रे
(लाला) श्री बद्रीनारायन गावत, सुख सरसावत मन हैरे मनहुं
मनोज सरूप संवारे (हां हां हां)[6]।

ओ हो - ओ । हो छैलछबीले । रंग अनि डालो कौन तिहारी बान[7]।

अरे - अरे गोरी जोबन मद इठलानी चलै गज मस्त सी चाल[8]।

अहो - पुनि पुनि कहत अहो पिय प्यार पांय परति अपना ओ[9]।

अरी मा - अरी मा । कौन पाप मैंने किए, बेटी जन्मी हिंदू जात हो।
अरी मा । निपट बटाउ लै चलो, बेटी लिखी विधाता हाय
हो[10]।

१- प्रे०सर्व० पृ० ५३५ । २- वही, पृ० ५१५ ।

३- वही, पृ० ६०८ । ४- वही, पृ० ६२६ ।

५- वही, पृ० ६२९ । ६- वही, पृ० ६१६ ।

७- वही, पृ० ६०५ । ८- भा०ग्रं०, पृ० ३९६ ।

९- भा०ग्रं०, पृ० ३१५ ।

१०- भारतेन्दु पुस्तक १, अंक ८, पृ० ११९ ।

३- अनुकरणात्मक शब्द:-

मनोभावाभिव्यक्ति मूलक तथा ध्वन्यात्मक शब्दों के ही समान अनुकरण से सम्बन्ध रखने वाले शब्द लोक शब्द की ही कोटि में आते हैं औ इनका सम्बन्ध भी लोक मानस तथा आदिम मानव मानस से है । भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि अनेक विषयों तथा वस्तुओं का नामकरण उनके द्वारा उत्पन्न की जाने वाली ध्वनि के आधार पर ही रक्खागया है । उदाहरण के लिए कोयल की कू कुहू ध्वनि के आधार भारत में कोयल तथा इंगलैंड में कुक्कू नाम पड़ा और इसी प्रकार पपीहे का नाम करण उसकी पी पी ध्वनि के आधार पर ही पड़ा । यह शब्द लोकमानस से सम्बन्धित इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि बच्चे प्राय: जानवरों को उनके नाम के आधार पर ही पुकारा करते हैं । इसी प्रकार शिशु मानस की ही तरह लोक मानस तथा आदिम मानस ने भी कुछ शब्द उन की ध्वनि के आधार पर ही बनाए होंगे[1]। भाषा वैज्ञानिकों ने माना है कि अनुकरणात्मक शब्द भाषा की आदिम अवस्था के सूचक है और यह भाषा के प्राचीनतम रूप हैं[2]। और यही कारण है कि प्रत्येक देश की भाषा में तथा असभ्य अशिक्षितों की भाषा में भी यह शब्द मिलते हैं । इस प्रकार अनुकरणात्म शब्दों की गणना भी लोक शब्दावली के अन्तर्गत ही करनी होगी । भारतेन्दु युगीन काव्य में अनुकरणात्मक शब्दों का भी प्रयोग हुआ है यद्यपि ध्वन्यात्मक शब्दों की तुलना में इन शब्दों की संख्या बहुत कम हैं फिर भ ऐसे शब्दों का नितान्त अभाव नहीं है और इनका प्रयोग हुआ है । कुछ शब्द उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है ।

१- An Essay on the origin of language- Farrar, F.W., John Murray, Abemarle Street, London, 1860 p.77.

2. "It was probably, by a strictly analogous process, that an immense multitude of such roots was primitive formed"- An Essay on the origin of language- Farrar, F.W. p.74.

किल कारत कोकिल कीर बजी बन बांसुरिया[1]।

झिल्लीगन झनकार चहूं दिशि बाजन रुचिर बनाए[2]।

कुहरत कोकिल कूर कसाइन, कूक हूक हिय मार मार[3]।

हिचकत कोकिल दादुर[4]।

गरजनि मनु बाजति दुन्दुभि दादु रन की छबि छाय[5]
कोकिल कल कूजत डार डार, लागत नहि मन उन बिन हमार[6]।

केकी कलित कलाप कलोलत, कूल कूल कल कुंजनि मैं[7]।

काली कोयल कूर कसाइन कूकि कराह रही मन मैं[8]।

मोर करत किलकारत, बजाओ फिर बांसुरिया[9]।

पी पी रटत पपीहा, नाचत मोर किए किलकार छोटी ननदी[10]।

पिया क पिया कहां ? न सुनाव रे पपिहरा[11]।

बन मैं बुलबुल बिहंग बोलैं, कल कुंजन कूकत कोइलिया[12]।

कालिन्दी कूल कलित कुंजनि कोकिल की कलरव भाई री[13]।

केकी कलरव करत नचत चातक चहुं दिसि चहकें रे[14]।

हो अबही ते मोर अलापै कोकिल किलकै कीर कलापै[15]।

पपीहन पी पी रट लाई[16]।

कोइल कुहुकै भंवर गुजारै सरस बहार[17]।

१– प्रे०सर्व०पृ० ५३५ ।
२– वही, पृ० ५५५ ।
३– वही, पृ० ५५५ ।
४– वही, पृ० ५५५ ।
५– वही, पृ० ५५५ ।
६– वही, पृ० ५५४ ।
७– वही, पृ० ५५३ ।
८– वही, पृ० ५५३ ।
९– वही, पृ० ५३४ ।
१०– वही, पृ० ५१६ ।
११– वही, पृ० ५१७ ।
१२– वही, पृ० ६०४ ।
१३– वही, पृ० ६०३ ।
१४– वही, पृ० वही ।
१५– वही, पृ० ५५५ ।
१६– भा०ग्रं०पृ० ५२६ ।
१७– भा०ग्रं० पृ० ८४० ।

कोइलि कुहुकि कुहुकि बोलैंगी बैठि कुंज के भौन[1]।

बोलैंगे पपिहा पिउ पिउ बन अरु बोलैंगे मोर[2]।

कांव कांव करि करि के, वृंद रहे मंडराय[3]।

कूकत कोइल चहंकत चातक[4]।

पपिहा पिया पिया चिल्लाय[5]।

चिड़ियों की चहचहाई[6]।

४- प्रतिध्वनि शब्द(द्वित्व मूलक):-

लोक भाषा में शब्दों के द्वित्व रूप अर्थात् एक से मिलते जुलते शब्दों का प्रयोग उसकी विशेषता है । इन द्वित्व रूपों के दो प्रकार होते हैं पहला तो वह रूप है जिसके दोनों अर्थ सार्थक हों और दोनों ही शब्दों के अर्थ होते हैं जैसे रुपया - पैसा । यहां रुपया पैसा दोनों ही सार्थक शब्द हैं और दोनों के ही अर्थ हैं । दूसरा वह रूप होता है जो अधिक प्रचलित है और जिसमें प्रथम शब्द के समानान्तर ही दूसरे शब्द का निर्माण होता है जो प्रथम शब्द से ध्वनि में साम्य रखते हुए भी निरर्थक होता है। ऐसे शब्दों का प्रयोग लोक भाषा की प्रवृत्ति से सम्बन्धित इन शब्दों का अर्थगत कोई महत्व नहीं है । इस प्रकार के शब्द के उदाहरण स्वरूप अनेक शब्द हैं जैसे - रेल-पेल, धक्का-मुक्का आदि । भारतेन्दु युगीन काव्य में इस प्रकार के अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जिनकी संक्षिप्त तालिका नीचे प्रस्तुत है। ऐसे शब्दों का लोक भाषा का स्वरूप समझने में विशेष महत्व है -

---

१- भा०ग्रं०पृ० १२२ । २- भा०ग्रं०पृ० १२२ ।

३- प्रे०सर्व०पृ० १५४ । ४- वही, पृ० ४८६ ।

५- वही, पृ० ४९१ ।

६- भारतेन्दु: पुस्तक १, अंक ४ ३, पृ० ८० ।

चूर-मूर, जोड़- तोड़, चबे-चबाए, चटक-मटक, किचकिचाना, हेल-मेल, गाली- गलौच, रोकड़-जाकड़, भीड़-भड़क्का, टाल- बेटाला, डाग-डांट रेल-पेल, हंसी-ठीठी, हित्ती-कित्ती, छल-छंद, उमड़त-घुमड़त, बेंच-बांच, खाना-पीना, अगड़म-बगड़म, फंका- फारी, टालै-नाला, हाल-बेहाला, लेना-देना, घर-बार, फकरि-जकरि, अरज, गरज, गारत- नारत, भीड़-भाड़, मानन-फानन, तीरथ-बरत, धक्का-मुक्का, टक-टकी, मिहिल-सिहिल, सज- धज, नेम-धरम, सटिक-फिटिक, घुकुर-पुकुर, पांच-सांच, अंड-बंड, पट्टी - टट्टी, दांव-पैंच, डह-डहो, हक्की-बक्की, घुरक-घुरक, बार-पार, होड़ा-होड़ी, सान सौकत, चट-पट, भोले - भाले, झट-पट, फकरि-जकिर, बच्चा-बच्ची, थूका-थूकी, रंडी-मुंडी ।

इन प्रतिध्वनित मूलक शब्दों के प्रयोग के पीछे लोक मानस की क्या भूमिका है इसका विवेचन आवश्यक है । यदि इन शब्दों की लोकभाषा में प्रयोग स्थिति को देखें तो बात बहुत कुछ स्पष्ट होती है । लोक भाषा में यदि इन द्वित्व मूलक शब्दों के विषय में जो प्रतिध्वन्यात्मक है, कारण का अनुसंधान करे तो ज्ञात होगा कि कुछ ऐसे प्रतिध्वन्यात्मक द्वित्व मूलक शब्द है जिनका प्रयोग लोक भाषा में उपेक्षा की दृष्टि से ही किया जाता है । जैसे लोटा - सांटा या लोटा - ओटा । रेल-बेल आदि । यहां पर इन शब्दों का प्रयोग उपेक्षा की दृष्टि से ही किया गया है । इसी प्रकार कुछ शब्दों के मूल में सरलीकरण की प्रवृत्ति है । लोक भाषा में सरलीकरण की प्रवृत्ति बहुत पाई जाती है और इसीलिए वह तत्सम शब्दों के रूपों का विकृत उच्चारण करता है । तद्भव शब्द के मूल में भी सरलीकरण की ही प्रवृत्ति विद्यमान है । अनेक प्रतिध्वन्यात्मक शब्द जैसे अगड़म-बगड़म, उमड़त-घुमड़त आदि ऐसे ही शब्द है जिनके मूल मे सरलीकरण की ही प्रवृत्ति है । इन उपेक्षा तथा सरलीकरण की प्रवृत्ति के अतिरिक्त किसी भाव पर बल देने (Stress) देने के लिए भी द्वित्वमूलक शब्दावली का प्रयोग होता है । उदाहरण के लिए चटक-मटक, जोड़-तोड़, टक-टकी आदि शब्द लिए जा सकते हैं जिनका प्रयोग लोक भाषा में भाव विशेष को बल देने के लिए ही हुआ है । भाव विशेष पर बल देने के लिए उपर्युक्त

प्रकार के प्रतिध्वन्यात्मक द्वित्वमूलक का ही मात्र प्रयोग लोक भाषा में नहीं होता वरन् एक ही शब्द को दोहराने की प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है । लोक मानस इस प्रकार के शब्दों को भाव पर बल देने के लिए ही प्रयुक्त करता है । इस प्रकार के उदाहरण लोक गीतों में भी बहुत देखे जा सकते हैं । भारतेन्दु युगीन काव्य से इस प्रकार के शब्दों के द्वित्व प्रयोग उदाहरणार्थ प्रस्तुत किए जाते हैं -

प्यारी प्यारी सूरत मन भाई रे[1]।
नहिं भूलत चित तै तोरी छबि मीठे मीठे बैन[2]।
प्यारी छबि प्यारी प्यारी है[3]।
छलिया छल छल छित छीनो रे[4]।
धावो धावो बनरा को छबि आओ[5]।
प्यारी लागत तिहारी छबि प्यारी प्यारी ना[6]।
गोरे गालन पै लोटत लट कारी कारी ना ।।
मुस्कुरानि मन हरै मोहनी डारी डारी ना ।
मनउ प्रेम घन बरसै तोपै वारी वारी ना[6]।।

जियरा रहि रहि के घबराय[7]।
दुरि दुरि दमकै दामिनि धाय[8]।
मंद मंद मुस्काय मोहनी मंत्र मनहुं पढ़ि डारी अनियां[9]।

इसी प्रकार के द्वित्व मूलक अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जहां पर भाव पर बल देने के लिए ही द्वित्व रूपों का प्रयोग हुआ है । यह प्रवृत्ति लोक भाषा में और विशेषकर लोक गीत में बहुत व्यापक है जो

१- प्रेमघन सर्वस्व:पृ० ४१४ । २- वही, पृ० ४१६ ।
३- वही, पृ० ४१७ । ४- वही, पृ० ४१७ ।
५- वही, पृ० ४५५ । ६- वही, पृ० ४८२ ।
७- वही, पृ० ४९० । ८- वही, पृ० ४९० ।
९- वही, पृ०४९१ ।

लोक मानस की भाषा को शक्तिशाली बनाने की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालती है ।

५- विविधः-

इस वर्ग के अन्तर्गत उन देशज शब्दों को रखा गया है जिनकी उत्पत्ति किसी प्रकार सिद्ध नहीं की जा सकती और नहीं जिनकी गणना उपरोक्त वर्ग में होसकती है ।।भारतेन्दु युगीन कवियों ने चूंकि अनेक लोक भाषाओं का प्रयोग किया है अतएव अन्य अनेक प्रान्तों के देशज शब्दों का भी प्रयोग हुआ है । इन समस्त देशज शब्दों को एक अलग वर्ग में ही रक्खा गया है । इस देशज शब्दावली में क्रिया, विशेषण, संज्ञा तीनों ही से ही सम्बन्धित शब्द हैं ।

कसबिन, दाढ़ीजार, चोचले, बुहुल, निगोड़ी, निष्ठादूदू, खटकीरा, भड़ुआ, ठाईं, डगरा, रांड, लूकठ, कुढ़ला, रपटि, गिटगिरी, ठांव, लरजत, कंटवासी, पोत, हींसा, दरीचिनि, लूह, जीगन, ठूह, लालरी, भभूबा, किल्ली, जंज पूक, टोटा, डुडुआ, गुरेरत, घुरकत, घोखत, घुटकुनी, पुरायठ, पुरेठा, गुलटा, रंडी, कुकुर, लरहा, भांभ, चटकत, कूरी, ढेढ, सिकिल, पन्नी, ऐढार, भभूका, मभुई, चौका, भावरि, लिगाए, छौंका, कबँधों, लुंडा, टिटुई, ठाठ, ढूंढर, अरसाने, चखनि, कहरैं, टहरै, छदाम, बिथरि, परान, ठीठी, बवाई, ठाहिं, सिसिआहीं, रांधहि, बीहड़, लड़ा, कांध, संकरी, कैले, ठठाना, चौबंद, बिरवा, नकन्याय, खन, बिरने, बुटैया, बिटेवा, चिकवा, भौंसी, ढिठाई, धाकर, रोलना, फट्ट, टका, धुम्यां, चटसार, चौंच, डीढ़ी, लंगर, दरी, भरि, ठौरन, सुपासन, ऐंडाते, घुरकट, सिकटी, घोरवत्, ठिठोली, अटपट, बीहड़, बौरानी, गुंपुणा, गुजरिया, डाला, बाटी, दुम्बाला, मूठ, सौसनी, इतराई, नथुनियां, लटकनियां, करधनियां, पैजनियां, लद्दू, भांसा, सूही, कंकरी, घुबरी, सारन, धोखा, चोट, बख चौंधी, भुमक, बेसर, भुमकिया, भुमनिया, बण्डू, बण्डूख, टटकी, पता, टीहिन, पांखिन, भरी, पौला, निसैनी, चोची, धराहरा, भात, रांधि, लोई,

कुम, बच्चा, बगर, डगर, जुफारू, मखत, कसकत, रिमफिम, फड़ी, टाट, टटिया, टैंट, मिरर्गत, पीक, लीक, मरोर, दिठौना, सुठौना, रिझौना ।

(ग) तद्भव शब्दावली :-

भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार मूल भाषा से नियमानुसार विकसित होने वाले शब्दों को तद्भव शब्द कहते हैं । हिन्दी क में ऐसे शब्द सबसे अधिक हैं जो प्राचीन आर्य भाषा से मध्यकालीन आर्यभाषा में होते हुए हिन्दी में आ गए हैं । साहित्यिक भाषाओं में प्रायः तद्भव शब्दों का प्रयोग न्यूनातिन्यून करने की तथा तत्सम शब्दों के अधिकाधिक प्रयोग की स्थिति मिलती है, क्योंकि तद्भव शब्दों को गंवारू तथा ग्रामीण समझा जाता है । हिन्दी में भी यही स्थिति है किन्तु वस्तुतः तद्भव शब्द ही किसी भाषा की पूंजी होती है क्योंकि जनवर्ग इन्हीं तद्भव शब्दों का व्यवहार करता है और इन्हीं को अधिक समझता है । यह शब्द जनता की बोलचाल के शब्द हैं । इनके प्रयोग से भाषा सजीव बनती है । लोक कवि अपने काव्य में इन शब्दों का अधिक से अधिक व्यवहार कर अपनी भाषा को शक्तिशाली बनाता है । भारतेन्दु युगीन काव्य में अनेकों लोक शब्द जो कि तद्भव ही है प्रयुक्त हुए हैं । इन तद्भव शब्दों की एक तालिका उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है - इन तद्भव शब्दों के साथ इनके मूल रूप जिनसे विकृत होकर यह शब्द बने हैं, भी साथ दिए जा रहे हैं -

पच्छ - पक्ष, ईस - ईश,
बरह्मा - ब्रह्मा, पूरब - पूर्व, मूरख - मूर्ख, दुर्दसा - दुर्दशा,
प्राग - प्रयाग, लोमस- लोमश, अवसि - अवश्य ,
कासी - काशी, सिच्छा - शिक्षा, नच्छत्र - नक्षत्र ।,
पुरुषान - पुरुषा, सरद - शरद, इरखा - ईर्ष्या,
इच्छा - रक्षा, अकास - आकाश, मंतर - मंत्र, बिसद- विशद,
धरमराज - धर्मराज, निसचर - निशिचर, स्वान - श्वान,
जुगुत - युक्ति , रामायन - रामायण, जोबन - यौवन,
जैपुर - जयपुर , लाची, इलायची, बरखा- वर्षा.

गती - गति, ग्रहन - ग्रहण, बेनु - वेणु, भाखा - भाषा,
परब - पर्व, बिसवा - वेश्या, इकतृत- एकत्रित, सिक्षक - शिक्षक ,
पतिबरता - पतिव्रता, मिरनाल - मृणाल, अतिसै - अतिशय,
बिरथा - वृथा, रच्छक - रक्षक, परजा - प्रजा, जगदीस - जगदीश,
ग्रीषम - ग्रीष्म, स्वारथ - स्वार्थ, संकलप - संकल्प, कर्कसा - कर्कशा,
इस्कूल - स्कूल, मिरग - मृग, घोड़ - घोड़ा, अस्नान - स्नान,
अभरन - आभरण, परजा - प्रजा, दलिद्दर - दरिद्र, संदेस - संदेश,
भैरौं, भैरव, बैपारी - व्यापारी, बिसास - विश्वास, गनेस - गणेश,
संजोगिनी - संयोगिनी, बरखा - वर्षा, जमुना - यमुना, अधार -आधार
बिथा - व्यथा, पिरीति - प्रीति, अभै - अभय, धनिवाद - धन्यवाद,
उज्जल - उज्ज्वल, पाख - पक्ष, परभाव - प्रभाव, देउता - देवता,
धन्नि - धन्य, परताप - प्रताप, अनुसासन - अनुशासन, सेर - शेर,
सुकुल - शुक्ल, परीखा - परीक्षा, परचारे - प्रचारे, बीरज - वीर्य,
छीन - क्षीण, छोभा - क्षोभ, सत - क्षत, खीन - क्षीण, बैस - वयस
ग्राम - ग्राम, लछिमन - लक्ष्मण, सतजुग - सतयुग, प्रकास - प्रकाश,
बास - वास, दछिन - दक्षिण, सरन - शरण, मरजादा - मर्यादा,
बिसाला - विशाल, जोग - योग, संजम - संयम, बिखाद - विषाद,
जामिन - यामिन ।

अंग्रेजी से विकसित:

टिकस) - टिकट (Ticket), इजीचेर - ईज़ीचेयर(Easy
टिक्कस) Chair)

कान्सटिबिलन - कान्सटेबल(Constable)

नैलून - नायलॉन

लइसेन्स - लाइसेन्स (Licence)

डाक्तर - डाक्टर (Doctor)

सर्टीफिकेट)
सर्टीफिकिट) सर्टीफिकेट (Certificate)
सार्टिक फिटिक)

कलट्टर - कलेक्टर (Collector)

पार्लीमेन्ट - पार्लियामेन्ट (Parliament)

कोरट - कोर्ट (Court)

अफलातून)
अफगातून) एरिस्टाटल (Aristable)

अंटी - ऐंटी (Anti)

मनुष्लपेटी - म्युनिपेल्टी (Municipality)

मजिस्टरेट - मजिस्ट्रेट (Magistrate)

अफिसवा - आफिस (Office)

सिविल लइन - सिविल लाइन्स (Civil Lines)

डूटी - ड्यूटी (Duty)

पोटिकल - पोलिटिकल (Political)

पनियर - पायनियर (Pioneer)

रसीडंट - रैजिडेन्ट (Resident)

लाट - लार्ड (Lord)

अरबी फारसी तथा उर्दू आदि से विकसित:

नहक - नाहक, होस - होश, कनून - कानून, सिकारी -शिकारी
तालुका - ताल्लुका, तोसदान - तोशदान, खुसियाली - खुशयाली,
नजर - नज़र, नसा - नशा, सोर - शोर, खुसामत, खुशामद,
बखत - वक़्त, महजिद - मसजिद, अकल - अक़्ल, मुफत - मुफ़्त,
मसूल - महसूल, जगीर - जागीर, तमाखू - तम्बाकू, महिमान - मेहमान,

इसी प्रकार सैकड़ों अन्य शब्द हैं जिनके तद्भव रूपों का भारतेन्दु युगीन कवियों ने प्रयोग किया है। लोक मानव इन तद्भव शब्दों का निर्माण किस प्रकार करता है इनके नियम क्या हैं इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख नियमों का तो संकेत किया जा सकता है किन्तु शेष के सम्बन्ध में यही कहा जाएगा कि इनका मूल मुख सुख नियम ही है जिसके कारण लोक वर्ग अपनी सुविधानुसार शब्दों को ढालता रहता है। लोक की इस तद्भव शब्द

ह -

१- दो संयुक्ताक्षरों के मध्य उच्चारण की सुगमता के लिए एक स्वर का प्रयोग कर देते हैं - वर्ण - वरन, इंद्राणी - इंदरानी, पूर्ण - परन आदि ।

२- संस्कृत का "य" लोक भाषा में "ज" हो जाता है - यमुना - जमुना, यशोदा - जसोदा, युक्ति - जुक्ति ।

३- क्ष के स्थान में च्छ, छ, ष और ख के प्रयोग होते हैं - लक्ष्मण - लच्छमन, लक्षन - लखन ।

४- समीकरण: मस्तिष्क जब पहली ध्वनि पर केन्द्रित हो जाता है तो आगे की भिन्न ध्वनि भी पहला रूप धारण कर लेती है - पद्म -पद्द, कृष्ण - किस्सू ।

५- विषमीकरण: इसमें समीकरण के विपरीत ध्वनि परिवर्तन होता है अर्थात् पार्श्ववर्ती दो ध्वनियां विषम कर ली जाती हैं । मुकुट - मौर।

६- आगम तथा लोप द्वारा भी शब्दों को सरल रूप देने की लोकमानसकी प्रवृत्ति है । आगम तथा लोप सम्बन्धी कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

आदि स्वरागम - तत्सम शब्द में आरम्भ में ही स के साथ संयुक्त व्यंजन होने से उच्चारण की सुविधा के लिए आदि में कोई स्वर बढ़ा लिया जाता है । साहित्यिक हिंदी में इस तरह के उदाहरण कम मिलते हैं, किन्तु बोलियों तथा लोक भाषा में इस तरह के उदाहरण अनेक हैं । उदाहरणार्थ स्त्री- इस्त्री, स्नान - अस्नान, स्टेशन -इस्टेशन, स्तुति - अस्तुति ।
मध्यस्वरागम की प्रवृत्ति भी लोक भाषा में बड़ी प्रबल है । जब उच्चारण सुविधा के लिए संयुक्त व्यंजनों को तोड़ने की आवश्यकता पड़ती है । तो प्रायः मध्य स्वर का ही आगम होता है । कार्य - कारज, जन्म - जनम, गर्व - गरब आदि ।

आगम के ही समान लोप की प्रवृत्ति लोक भाषा में शब्दों को छोटा रूप देने के लिए बहुत प्रयुक्त होती है - नरसिंह - नरसी ।

७- वर्ण विपर्यय भी लोक भाषा में बहुत देखा जा सकता है । लोक भाषा में व्यंग्य प्रसंग में वर्ण विपर्यय प्रायः शब्दों में किया जाता है, ।

कश्यप - पश्यक, पतंजलि - तपंजलि ।

८- बलाघात तथा भावातिरेक द्वारा भी तद्भव शब्दों का निर्माण होता है । बलाघात के समय किसी अक्षर विशेष पर अधिक बल पड़ने से समीपस्थ अक्षर दुर्बल हो जाते हैं । और किसी किसी का तो लोप भी हो जाता है । बलाघात के कारण नाम का अंतिम लघु वर्ण प्रायः गुरु कर लिया जाता है । इससे उच्चारण में सुविधा होती है - हरि - हरी, राम - रामा, परम - परमा। दीर्घीकरण की यह प्रवृत्ति ग्रामीणों तथा अशिक्षितों के मध्य ही अधिक देखी जाती है । भावातिरेक से भी ध्वनियों में परिवर्तन होता है । बच्चा - बच्चन, बच्चू । दुलार के कारण भी ध्वनियों में परिवर्तन कर दिया जाता है । नन्कू - नन्कउआ ।

९- र ड ल प्रायः परस्पर परिवर्तित हो जाया करते है - दुलार - दुलाल, तुलसी - तुरसी, इंदर - इंदल आदि ।

१०- तालव्य श का दंत्य स तथा दंत्य स का तालव्य श रूप भी लोकभाषा में कर दिया जाता है - गणेश- गनेस, प्रसाद - परसाद । नामों के अंत्याक्षर व को उच्चारण सुविधा के लिए ओ प्रायः कर दिया जाता है- भैरों - भैरव, राघो - राघव। इसी प्रकार ण का न भी सुविधा की दृष्टि से ही किया जाता है - गणपति - गनपति, प्रवीण - प्रवीन। अंतस्थ व का ब लोक भाषा में होना एक साधारण विशेषता है - बिहारी - बिहारी ।

लोकोक्तियां और मुहावरे:-

लोकोक्तियां और मुहावरे लोक भाषा की रीढ़ हैं और इसलिए लोक भाषा में इनका प्रयोग बाहुल्य है । लोक भाषा में लोकोक्तियों द्वारा सजीवता और स्फूर्ति पैदा होती है । ये भाषा का शृंगार है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने अपना अधिकांश साहित्य लोक भाषा और जन-भाषा में लिखा इसीलिए उनमें लोकोक्तियों की भरमार है और भारतेंदु युगीन काव्य में लोक भाषा तत्व का अध्ययन करते समय लोकोक्तियों तथा मुहावरों का भी अध्ययन करना आवश्यक है ।

लोकोक्तियाँ तथा मुहावरों का लोकवार्ता की दृष्टि से विशेष महत्व है । इनके द्वारा सामाजिक जीवन पुराने रीति रिवाज तथा नृशास्त्र विद्या पर प्रकाश पड़ता है[1] । लोकोक्तियों तथा मुहावरों के आधार पर लोक मानस, उसकी प्रवृत्ति तथा लोक संस्कृति पर विचार हो सकता है । लोकोक्तियाँ मानव स्वभाव का दर्पण है, लोक वर्ग की सांसारिक व्यवहार पटुता और सामान्य बुद्धि का दुर्लभ निदर्शन है और ये ही लोकोक्तियाँ एक ग्रामीण के लिए पथप्रदर्शक, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए उद्बोधक है और चेतावनी के रूप में चिरकाल से विद्यमान है । वासुदेव शरण अग्रवाल ने इनके विषय में ठीक ही कहा है- "लोकोक्तियां मानवीय ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं । वे मानवीय ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से सदा फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती रहती है"। यही लोकोक्तियां और मुहावरे डिसरायली के अनुसार सभ्यता के आदिम चरणों में नैतिकता के अलिखित नियम भी थे ।

लोकोक्तियों तथा मुहावरों की उत्पत्ति पर अनेक विद्वानों ने विचार किया है किंतु इस संबंध में विद्वानों ने उत्पत्ति पर सीधे विचार न करते हुए यही कहा है कि किसी दृश्य को देखकर या स्वतः व्यक्ति मस्तिष्क में यह बात आई कि यह सर्वघटित होती है और जब इसी विचार को परम्परा में मान लिया और जनवर्ग में उसका व्यवहार होने लगा तो वह लोकोक्ति बन गई । इसमें"अनेकों की विज्ञता और ज्ञान का योग है । किन्तु यह एक की चतुरता का परिणाम है[2] ।

जहांतक लोकोक्तियों में प्राप्त आदिम मानस की स्थिति का प्रश्न है निष्कर्ष रूप में डा० सत्येन्द्र का मत प्रस्तुत किया जाता है- "फिर इसमें सन्देह नहीं कि कहावतें शुद्ध आदिम मानव के मानस से उद्भूत नहीं माने जा सकती जैसी कि लोक गीत अथवा लोक कहानियां नाम की चीजें मानी जा सकती हैं, क्योंकि लोक मानस चित्रों की छाप को सहज

---

1. R.J.Long: Eastern Proverbs and Emblems p.VI.
2. Dictionary of Folk lore Mythology and Legend p.902.

को ग्रहण कर लेता है और इन्हें वह गीत और कहानियों में प्रगट करता है मानस चित्रों से ऊपर उठकर बौद्धिक भाव तत्वों के संयोजन के लिए जिस स्थिति की आवश्यकता है, वह स्थिति आदिम मानव की अंतिम विकास कोटि की सीमा पर पहुंचती है। वहां से जन्म लेकर ये कहावतें निरंतर ऐतिहासिक विकास के साथ विकसित होती गई हैं और बढ़ती गई हैं। कहावतों का क्षेत्र गीतों और कहानियों से भिन्न व्यवहार और व्यवसाय का क्षेत्र है[१]।

भारतेंदु युगीन कवियों ने अपने काव्य में लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग स्थान स्थान पर कर अपनी भाषा को शक्तिवान तथा प्रभावशाली बनाया है। कहीं तो कवियों ने लोकोक्ति को आधार बनाकर ही कविता लिखी है। प्रतापनारायण मिश्र कृत लोकोक्तिशतक तथा परसान्कृत "लोकोक्ति और उनके प्रत्युदाहरण" ऐसी ही कविताएं हैं जिनमें लोकोक्ति को आधार मान कर कविता लिखी गई है। लोकोक्ति को आधार मानकर लिखी गई कविताएं भारतेंदुयुगीन कवियों की दृष्टि में बढ़ते हुए लोक भाषा तथा लोकोक्ति के महत्व की ही परिचायिका है। लोकोक्ति को आधार बनाकर लिखी गई कविताओं के उदहारण दृष्टव्य हैं-

जिन आरम्भ शूरता कीन्हीं, विघ्न परे हिम्मत तजि दीन्हीं।
बिरथा श्रम कर अपजस लहिये, "बुआ नोन चाटि के रहिये"[२]।

इष्ट सिद्धि में परे जु विघ्न तबहू चित न करो उद्विगुन।
होइहि अवसि अटुट श्रम करौ" सेतुआ बाँधि के पीछे परौ"[३]।।

१- सत्येन्द्रः लोक साहित्य विज्ञान पृ० ४६१-४६२।

२- लोकोक्तिशतकः प्रतापलहरी पृ० ६५।

३- प्रतापलहरी पृ० ६५।

प्रीति परस्पर राखहु मीत, जइहै सब दुख सहजहिं बीत ।
नहिं एकता सरिस बल कोय, "एक एक मिलि ग्यारह होय"[1] ।।

- - -

स्तुति निंदा संसार में को अस जाकी होत नहिं ।
पै मूरख की बात पर सुपुरूष छीजत कबहुं नहिं ।
आंखि मूंदि यह जानि जिय नहिं सुपंथ ते टरत हैं ।
"हाथी चले ही जात हैं कूकुर भूकै करत हैं[2]" ।।

इसी प्रकार "लोकोक्तियां और उनके प्रत्युदाहरणा" शीर्षक कविता से उद्धृत छंद देखिए जो लोकोक्ति शतक के समान ही लोकोक्ति को आधार बनाकर लिखे गए हैं-

"टेढ़ जानि शंका सब काहू--बीस लाख मांगत तुरकाहू ।
"जबरा मारत रोय न देय" -कासमीर निज हाथन लेय ।
"चले न पावै कूदन नाम"-मिडिल पास कर भए गुलाम ।
"जौन डाल पर बैठो गावत- तौने लिहे कुल्हाड़ी काटत"[3]

इन लोकोक्तियों को आधार मानकर लिखी जाने वाली कविता के अतिरिक्त कवियों ने अपने काव्य में कई स्थानों पर लोकोक्तियों का संग्रथन बड़े सुचारू रूप में करके भाषा का माधुर्य बढ़ाया है । भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने देखिए किस प्रकार कितनी सुंदरता से लोकोक्तियों का प्रयोग किया है-
"जानि सुजान मैं प्रीति करी सहिकै जग की बहु भांति हंसाई ।
त्यों "हरिचंद" जू जो जो कह्यौं सो कर्यौ चुपह्वै करि कोटि उपाई ।
सोऊ नहीं निबही उन सौं उन तोरत बार कछू न लगाई ।
सांची भई कहावति वा अरी ऊंची दुकान की फीकी मिठाई"[4] ।।

१- प्रताप लहरी पृ० ६३ ।
२- प्रताप लहरी पृ० ६९ ।
३- हिंदी प्रदीप जि० १२, सं० ९ पृ० ५ ।
४- भारतेंदु ग्रंथावली द्वितीय खण्ड पृ० १०१ ।

प्रान पियारे तिहारे लिए सखि बैठे हैं देर सौं मालती के तर ।
तू रही बातैं बनाय बनाय मिलै न बृथा गहिकै कर सौंकर ।
तोहि घरी छिन बीतत है हरिचंद उतै जुग सौ पलहू भर ।
तोरी तो हांसी उतै नहिं धीरज नौ घरी भद्रा घरी मैं जरै घर[1] ।

इसी प्रकार से भारतेंदु युगीन काव्य में लोकोक्तियों तथा मुहावरों के प्रयोग अत्यधिक मिलते हैं और इन लोकोक्तियों के प्रयोग देखने से ऐसा भी नहीं प्रतीत होता है कि काव्य में इनका बलात प्रयोग किया गया है वरन् वह साधारण बोल चाल की भाषा में प्रयुक्त होने वाली लोकोक्तियों तथा मुहावरों के समान काव्य में प्रयुक्त हुई हैं । भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त प्रमुख लोकोक्तियों तथा मुहावरों की एक विस्तृत सूची अवलोकनार्थ प्रस्तुत है, जिनको देखने से यह स्पष्ट हो सकता है कि इनमें प्रयुक्त अनेक लोकोक्तियां तथा मुहावरे ऐसे है जिनका प्रयोग केवल ग्रामीण वर्ग में ही होता है + , शिष्ट वर्ग में नहीं । ग्राम जीवन में इन लोकोक्तियों तथा मुहावरों का बहुत महत्व है । अतएव ऐसी प्रचलित लोकोक्तियों का काव्य में प्रयोग वस्तुतः भारतेंदु युगीन कवियों का लोक भाषा के प्रति सहज अनुराग तथा उनकी सामर्थ्य का द्योतन करने वाला है ।

लोकोक्तियां-

१- अपने घर के राजा सब है ।

२- अरण्डन के बन मां बिलारन्ड बाघ होतत है ।

३- अष्ट कपारी दारिदी जहं जाए तहं सिद्धि ।

४- अपनी अपनी डफली अपना अपना राग ।

५- अंधी पीसे कुत्ते खाय ।

६- अपन पेट गदहो भरि लेत ।

७- अधजल गगरी छलकत जाय ।

८- अपना बका सुनै सब कोय ।

१- भारतेंदु ग्रंथावली द्वितीय खण्ड पृ० १५४ ।

९- अन्त बहुत अच्छी नहिं होती ।

१०- अपना उल्लू कहीं न जाए ।

११- आन का चूमैं मुंह भर जार ।

१२- आंधर बैल भंगाय के जोता सात है ।

१३- आंखिन देखे चेतना मुंह देखे व्यवहार ।

१४- आपै मियां चूल्ह दुआर ।

१५- अब लौ हाथुवै दूध के छाछ छुवत सकुचाय ।

१६- एके साधे सब सधै सब साधै सब जाय ।

१७- एक एक मिलि ग्यारह होय ।

१८- उस दाता से सूम भला जो जल्दी देय जवाब ।

१९- उतरा सहना मरन्दक नांव ।

२०- ऊंठ के मुंह का जीरा ।

२१- ऊंठ चढ़े पर कूकुर काटैं ।

२२- ऊंचे दुकान की फीकी मिठाई ।

२३- कनिया लड़का गांव गुहार ।

२४- कहुं टेटकन गाजैं करती हैं ।

२५- कुआं खोदि के पानी पियै ।

२६- काल्हि के जोगी भाई भाई ।

२७- किस बिते पर सता पानी ।

२८- कालहि करते आज कर आज करेते अब ।

२९- कबलौ फिरैंगौं अंध अंधरी मैं धाय धाय ।।

३०- कूप ही मैं यहां भांग परी है ।

३१- खेत परे पर जानिम हैं उलटी सीधी बीज ।

३२- खरी मजूरी चोखा काम ।

३३- खरी कहैया दाढ़ी जार ।

३४- गगरी दाना सूत उताना ।

३५- गंगा मदार का कौन साथ ।

३६- गेंहू संग घुन पिसै बुरे संग दुखित भले जग ।

३७- घर का भेदिया लंका ढावै ।

३८- घर की खांड खुरखुरी लागै चोरी का गुड़ मीठा ।

३९- घर घर मिट्टी के चूल्हे हैं ।

४०- घर के धान पियार मिलाए ।

४१- घसे घसे घन कुलहरा होय ।

४२- चलै न पावै कूदन नाम ।

४३- चारि दिना की चांदनी फेरि अंधेरा पाख ।

४४- चोतरा आपही कोतवाली सिखा देता है ।

४५- छोटे मुंह बड़ी बात ।

४६- छूछ पछोरे उड़ि उड़ि जाय ।

४७- जैसे कंता घर रहे तैसे रहे विदेस ।

४८- जैसा करे सो तैसा पावै ।

४९- जोगी काके मीत कलंदर केहि के भाई ।

५०- जब लग स्वांसा तब लग आसा ।

५१- जेहि के लाठी तेहि के भैंसी ।

५२- जो गुड़ खाय सो कान छिदावै ।

५३- जूठ खाय मीठे के लालच ।

५४- ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों गरुई (भरी) होय ।

५५- जियत हंसी जो जगत में मरे मुक्ति केहि काज ।

५६- जो धन देखिए जात आधा लीजै बांट ।

५७- जिसका ब्याह उसी के गीत ।

५८- जिन ढूंढा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ ।

५९- जैसी जाकी भावना तैसी ताकी सिद्ध ।

६०- जबरा मारे रोय न देय ।

६१- जौन डाल पर बैठी गाजत- तौने लिहे कुल्हाड़ी काटत ।

६२- टेढ़ जानि शंका सब काहू ।

६३- ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय ।

६४- तेली जोरे घरी घरी मेहमान लुटावै कुप्पा ।

६५- तले दिया के अंधकार ।

६६- दही के धोखे खाय कपास ।

६७- दमड़ी की बुलबुल टका हुलाल ।

६८- धोबी का कूकर घाट न घर को ।

६९- नीम न मीठी होय जु सींची घीव तें ।

७०- नंगा परा बजार में चोर बलैया लेइ ।

७१- निबर की जुरुआ सबकी सरहज ।

७२- निहुरा नौन चाटि के रहिगे ।

७३- नांच न आवै आंगन टेढ़ ।

७४- नौ घरी भद्रा में जरै घर ।

७५- निमरै मारै शाहमदार ।

७६- न ऊधो का लेना न माधो का देना ।

७७- नौ नेग हरी, कुम्हड़ा आठै ।

७८- परधन बांधै मूरख बैद ।

७९- पहिले आत्मा फिर परमात्मा ।

८०- पंच कहै बिल्ली तो बिल्ली ।

८१- फिरि पछताए क्या होत है जब चिड़िया चुग गई खेत ।

८२- फेर वही मोची के मोची ।

८३- बहती हुई गंगा में हाथ धो लीजै ।

८४- बांझ के पूत बिना दुगवारे ।

८५- बाहमन साठ बरस लग पोंग ।

८६- बनि आप की बनि आई है ।

८७- बात गए कछु हाथ नहीं है ।

८८- बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेइ ।

८९- बहुतै जोगिन मठी उजार ।

९०- बकुला मारे पखना हाथ ।

९१- कुकुरा के महतारी कब लग कुसल मनाई ।

९३- बहुत भये फिर बिघ्न निसरत है ।

९४- बांधि मरे कि टका बिकाय ।

९४- बड़े कढ़ाही में गड़ो है ।

९५- बैल न कूदा कूदी गौन ।

९६- बाँह गहे की लाज ।

९७- भागे भूत की लंगोटी ही बहुत होती है ।

९८- भीति देखि कै चित्र हरे है ।

९९- भूपति नाम भई निरखी नारी ।

१००- मन के हारे हार है मन के जीते जीत ।

१०१- मीठा मीठा गप्प कड़ुवा कड़ुवा थू ।

१०२- मेरी बिल्ली मुझी से म्याऊं ।

१०३- मीठी मरन भर कठौती ।

१०४- मरता का नहिं करता की सब करत कहावत ।

१०५- राजा करै सो न्याय है पाँसा परै सो दाँव ।

१०६- लरिकान को खेल चिरीन को मौत ।

१०७- लेना एक न देना दोय ।

१०८- लै लोटा अब को भग गैहै ।

१०९- ब्यौहरे की राम राम यम का संदेशा ।

११०- सात पांच की लाकरी एक जने का बोझ ।

१११- सौ चंडाल न एक कंगाल ।

११२- सेतुआ बाँधि के पीछे परौ ।

११३- सरग ते गिरे खजूर मा अटके ।

११४- सब फल खाय धतूरन लागे ।

११५- सूधे का मुंह कुत्ता चाटै ।

११६- सिंह पराए देश में जहं मारे तंह खाहिं ।

११७- सोना धूल में भी चमकै है ।

११८- स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ।

११९- हारिल की लकड़ी गहे हमें न छोड़े कोय ।

१२०- होत बिरौना चीकन पात ।

१२१- हाथ सुमिरनी बगल कतरनी ।

१२ – हिंजड़ी के कब लड़का हुआ ।

१२३– हंसौही घर जतो है ।

१ ४– हाथी चले डी जात हैं कूकुर भूंके करत है ।

१२५– हुवैहै वाके भागते भाग कहै का आप ।

<u>मुहावरों की सूची</u> ।

लोक प्रचलित रूप	काव्य गृहीत रूप
१– आंखि लड़ना –	उरभै जब नैन लगे नैन ।
२– आंखि पथराना –	आंखि पथराई ।
३– अंग अंग फूलना –	अंग अंग फूले ।
४– आग लगना –	आग लगे ऐसी फाग के ऊपर ।
५– आखों में खून उतरना–	हमरी अंखियान लहू भर आवत हैं ।
६– आंख लगाना –	आंख लगाना यहां बड़ा एक भोग है ।
७– आखों में बसना –	नैन में निवास करै ।
८– आंख मिलाना –	हम से भी तो आंख मिलाओ ।
९– आंख लगना–	लग बैठे नैन काहू सों ।
१०– आशा का मुरभाना –	मुरभी आशालता हरित करित पुनि लहराओ ।
११– आंख उठा कर देखना–	आवति तिन्हे न देखत कोउ आंख उठाय निज ।
१२– आसमान के तारे तोड़ना–	कहा भयो जो सकत तु नभ के तारे तोड़
१३– अपना अंग स्वयं काटना–	अपुने देही क्रोध बावरे अपनो काटै अंग ।
१४– उन्नीस पड़ना–	जहं पूरन प्रागट्य तहं उन्निस परत लखाय ।
१५– ऊंचा नीचा सोचना–	सबै ऊंच अरु नीच नर नारी सोचन लगे ।
१६– कपोत वृत धारण करना–	जगमोहन बोलै न कहूं कछु व्रत धार कपोत को टेढ़ी कही ।

१६- कपोत व्रत धारण करना -	जगमोहन बोलै न कहुं कछू व्रत धार कपोत को टेढ़ो कही ।
१७- कुत्ते की पूंछ का सीधा न-होना	पूछ जैसे श्वान की न सीधी होत ।
१८- कलई खुलना -	कलई खोलिहैं ।
१९- कमर कसना -	कटि कसि हाथ उबारत हैं ।
२०- नोन तेल लकड़ी होना -	नोन तेल लकरिहु के हित नित रहति प्रजा तरसी है ।
२१- कोढ़ की खाज -	तुमतें बिगरी तौ प्रभो । भई कोढ़ की खाज ।
२२- कुंए में गिरना -	चहत राज हठ आपनो हिंद पैर चहुं कूप।
२३- कान में तेल देना -	जानत भए अजान कहौ क्यों रहे तेल दै कान ।
२४- कान देना -	कोउ देत न कान ।
२५- कोरी कोरी बातें करना-	काम करो नहिं काम न ऐहैं बातें कोरी कोरी ।
२६- गले पड़ना -	यामे न और को दोष कछू सखि चूक हमारे भरे परी ।
२७- गेहूं संग घुन पिसना -	गेहूं संग घुनपिसै बुरे संग दुखित भले जन ।
२८- गूंगे का गुड़ होना -	गूंगे का गुड़ कहैं जिसे वह मनसूर देखा भाला है ।
२९- गांठे पोली होना -	बिन रुजगार बनिकजन रोवैं गांठ सबन की पोली है ।
३०- गले पड़ना -	यामै न और को दोष कहू सखि चूक हमारी गरे परी ।
३१- घर घर के भौंरा -	हरीचंद घर घर के भौंरा तुम मतलब के मीत ।
३२- घर में भूंजी भांग न होना-	घर में भूंजी भांग नहीं है तो भी न हिम्मत पस्त होती होय रही ।

३३- घर घर मट्टी के चूल्हे होना - है माटी के चूल्ह यहाँ घर में सब करै ।

३४- चार बातें कहना - तू रूस गई काहे चार बातन में ।

३५- चिड़िया फंसाना - हम तो खोजि खोजि वौकाली चिड़िया रोज फंसावता ।

३६- छाती पर पत्थर रखना - दुख भूल्यौं हो ज्यौं करि छाती धरि पाथर ।

३७- छाती फटना - जाके इक इक सुगुन सुमिरि फाटतिहै छाती ।

३८- छाती पर सांप लोटना - तब अलकावलि की सुधि पावत उर अन्दर लोटत हाय हमारे ।

३९- जले पर नमक छिड़कना - जरे पर लौन लगावै ।

४०- जड़ काट गिराना - रह्यो सबै अवलम्ब अंकुरहु काटि गिरायो

४१- जादू डालना - जादू डाल दियो तुम हम पर ।

४२- जीभ गिरना - जीभ गिरी कस बाति ।

४३- जूठी पत्तल चाटना - जूठी पातर चाटत घूमत घर घर पूंछ डुलाई ।

४४- जंगल में मोर का नाचना - जंगल में भल नाच्यो मयूर जस ।

४५- ~~खल~~ ताख पर रखना - गुरुन लोग सबै सिख ताख धरै ।

४६- दिल जलना - यह विल भई सौति हमारी जरावति छाती ।

४७- दो दिन की - दो दिन की दुनिया जगमोहन ।

४८- दोनों कान ऊँचे करना - ऊँचे कर दोउ कान ।

४९- दूध की मक्खी होना - दूध की माखी भई तुम भामिनी ।

५०- दांत लगाना - निरबल बूढ़े रोग ग्रसित पर दांत लगाओ ।

५१- दूध का दूध पानी का पानी करना - होत सदा हरि जू के प्रताप से, दूध को दूध और पानी को पानी ।

५२- दिल पर पत्थर रखना - ताप तपित परताप कहां लगि उर पर धरै परखान ।

५३- दिल चुराना या चित्त चुराना - चित चितवत ले तौ चोरि चोरि ।

५४- नानी मरना - बच्चा बाट पिता धन बैठे जैसे महगी नानी है ।

५५- (हिन्दुस्तान की) नाक होना- बकि जो हिन्दुस्तान की नाक हो ।

५६- नमक हरामी करना - प्रभु मैं सेवक नमक हराम ।

५७- नाक कटवाना - तुम्हैं विधातामहु ना चाहिए हमारी नाक दई कटवाय ।

५८- नोनातेल लकड़ी होना - नोन तेल लकरिहु के हित नित रहति प्रजा तरसी है ।

५९- पछाड़ खाना - रहि पछरा खाय ।

६०- पुतली बनाकर रखना - पुतरी बनाय रहिहौं ।

६१- पत्थर का पसीजना - हृदय पखान पसीजै ।

६२- पीठ देना - अब पीठ न देहौं बहै सो करो उर नैन के बान लगै सो लगै ।

६३- पत्थर का होना - चितपाथर को नाहिं ।

६४- पलकों पर पैर रखना - पलकन पै धरि पांय ।

६५- पहाड़ सा लगना - लागत पहार सम ।

६६- पार पाना - तोसों पार पाय कोउ ।

६७- प्राण सूखना - सूखल मोर परनवा रे हरी ।

६८- बाजार ठहरना - - ठहर गई बाजार ।

६९- बहती हुई गंगा में हाथ धोना - बहती हुई गंगा में हाथ धो लीजै ।

७०- बढ़ बढ़ कर बोलना - बढ़ बढ़ बोलै बोल ।

७१- बड़े बाप की बेटी होना - बड़े बाप की है बेटी ।

७२- बात में गांठ लगाना - लगी गांठ लगावन बातन में ।

७३- बाप बनाना - निज काम परे पै सबको बाप बनावै ।

७४- बीसो बिसवा	-	अबर दस्त की बीसों बिसवा कोउ सकत न बोली है ।
७५- बंटाधार होना	-	धन बल धरम करम हिन्दुन के बंटाधार भए एक साथ ।
७६- भूंजी भांग न होना	-	घर में भूंजी भांग नहीं तौ भी न हिम्मत पस्त ।
७७- भौं ऐंठना	-	लागी कहिबे भ्रू ऐंठि ऐंठि ।
७८- मुंह पर हवाई उड़ना	-	मुंह पर उड़ी हवाई ।
७९- मक्खियां मारना	-	कलम की जगह मारते मक्खियां ।
८०- मन मैला करना	-	तदपि न मैलो मन कीनो ।
८१- मुंह पीला पड़ना	-	सौतिन के मुंह पियरान लगे ।
८२- मूंछ टेना	-	टेवत मूंछ हंसत हरषाय ।
८३- महाभारत होना	-	होत महाभारत रहो ।
८४- मुंह बाना	-	स्वान सरिस मुंह बाओ ।
८५- मुंह मुरझाना	-	मुरझानो लागत मुख पंकज ।
८६- मन लद्दू होना	-	होत हाय मन लद्दू रामा ।
८७- मूठ मारना	-	मारि मूठ जनु रैन सम ।
८८- रोम रोम से आशीष देना	-	असीसन लगे प्रति रोमन तैं ।
८९- लेना का देना पड़ना	-	मर्‍यो लैन का दैन ।
९०- वैशाख नंदन होना	-	वैशाख नंदन हम भए ।
९१- व्रज की छाती होना	-	विधि बिरची है उनही की छाती बज्रन की ।
९२- शेर बकरी का एक साथ पानी पीना	-	सिंह अजा संग पियत जहां एकहि थल पानी । सिंह अजा दोउ सुख सों जल, एकहि घाट पियाओ ।
९३- सौत होना	-	यह बिल भई सौति हमारी जरावत छाती ।

९४- सिर धुनना - हम सिर धुननो हाय ।

९५- सिर फोड़ना - औसर चूके फिरि पछतैहो हाथ मीजि सिर फोरी ।

९६- सियार का रोना - रोवै शृंगाल तहं ।

९७- सवेरे उठ जाना - सबको सबेर उठ जाना है ।

९८- सूखा काठ होना - काम कछू इनसो नहीं यह सब सूखे काठ।

९९- सियार का रहना - हाय दिनन के फेर आज रोवत शृंगाल तहं ।

१००- हरी हरी बातें करना - हरी हरी बातन में ।

१०१- होश उड़ना - तन के सब होश उड़ान लगे ।

१०२- हाथ मींजना - औसर चूके फिरि पछतैहो हाथ मीजि सिर फोरी ।

१०३- हाथ बिक जाना - सुख की सेज नहीं सेवत जो याके हाथ बिकाय ।

१०४- हाथ गरम होना - हाथ भले गरमाय हाय ।

१०५- हाथ जोड़ना - बद्रीनाथ हाथ जोड़त हूं काजर दै अब कारे ।

निष्कर्ष:-

१- भारतेन्दु लोक भाषा के प्रयोग की दृष्टि से भी क्रान्तियुग था। भारतेन्दु युगीन कवियों ने शताब्दियों बाद लोक भाषा तथा ग्रामीणभाषा में काव्य लिखने के प्रयत्न किए । अब तक शिष्टकवियों के मध्य लोक भाषा के प्रयोग हास्यास्पद तथा फूहड़पने के प्रतीक समझे जाते थे, कविगण लोक भाषा में काव्य रचना अपना अपमान समझते थे । रीतिकाल में लोक भाषा के प्रति यह उपेक्षा की भावना और अधिक दृढ़ हो गई थी । भारतेन्दु युगीन कवि कविता में लोक भाषा तथा ग्रामीण भाषा के प्रयोग करने की, दृष्टि से क्रान्ति कारी कवि थे । उन्होंने केवल ग्रामीण भाषा में रचना ही नहीं की वरन् सहयोगी कवियों को भी लोक भाषा में लिखने के लिए

प्रोत्साहित किया ।

२- फलस्वरूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र तथा बालकृष्ण भट्ट प्रमुख कवियों के प्रोत्साहन तथा जबर्दस्त समर्थन के कारण अनेक नए लोक कवियों का प्रादुर्भाव हुआ जो केवल ग्रामीण भाषा में ही रचना किया करते थे और संपादक गण जिन्हें प्रशंसात्मक शब्दों के साथ अपनी उच्चकोटि की पत्रिकाओं में छापा करते थे ।

३- भारतेन्दु युगीन कवियों ने मुख्य रूप से ब्रजभाषा के लोक प्रचलित रूप को अपने काव्य का माध्यम बनाया । अवधेय है कि भारतेन्दु युगीन कवियों के पहले भी साहित्य में ब्रजभाषा का ही प्रयोग होता था किन्तु वह ब्रज-भाषा का स्वरूप लोक भाषा का स्वरूप नहीं था । कविगण जिस ब्रज-भाषा को अपनाते चले आ रहे थे उसके बहुतेरे शब्दों को बोलचाल से उठे हुये शताब्दियाँ व्यतीत हो चुके थे किन्तु वे शब्द भी कवियों द्वारा व्यवहृत हो रहे थे । अपभ्रंश काल के अनेक शब्द जिनका प्रयोग बोलचाल में नहीं होता उनका भी प्रयोग रहा था । भारतेन्दु ने ऐसे शब्दों को निकाल कर ब्रजभाषा को बोलचाल का रूप दिया । भारतेन्दु ने उस ब्रजभाषा का प्रयोग किया जिसका व्यवहार जन-सामान्य के मध्य होता है । संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया तथा परसर्ग सम्बन्धी विवेचन से भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा के इसी स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है ।

४- ब्रजभाषा के अतिरिक्त जनसाधारण के मध्य बोली जाने वाली खड़ी बोली में भी कवियों ने रचना की । इस प्रकार भाषा के क्षेत्र में नवीन प्रयोग हुआ । भारतेन्दु से पहले काव्य की भाषा एक मात्र ब्रजभाषा ही थी और वही काव्योपयुक्त भाषा समझी जाती थी । ऐसी स्थिति में भारतेंदु युगीन कवियों ने खड़ी बोली जिसका केवल लोक में व्यवहार होता था, में काव्य रचना कर खड़ी बोली को भी काव्य भाषा का स्थान देने का प्रयत्न किया ।

५- ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली के अतिरिक्त खड़ी बोली और ब्रज भाषा, खड़ी बोली, ब्रज और अवधी, खड़ी बोली और फारसी, तथा अवधी

भोजपुरी, संस्कृत, बंगला, पंजाबी और गुजराती में भी काव्य रचना के प्रयोग किए है । इनके प्रयोग के मूल में यही कारण प्रतीत होता है कि लोक वर्ग में प्रायः अनेक भाषाओं के शब्द प्रयोग हुआ करते है इस लिए लोक की भाषा का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत करने के लिए कवियों ने इन सभी भाषाओं के लोक प्रचलित रूपों के ही प्रयोग किए हैं । अवधेय है कि विभिन्न भाषाओं के प्रयोग लोक शैली में ही किए गए हैं । संस्कृत का प्रयोग लावनी में बंगला का पूरबी में तथा पंजाबी का भी पूरबी और होली में ही है । उसी प्रकार गुजराती में भाषा का वही रूप है जो वहां के प्रचलित लोक नृत्य गरबा में प्रयुक्त होता है । इस प्रकार भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा अन्य भाषाओं का प्रयोग भी लोक वर्ग सम्मत है ।

६- भारतेन्दु युगीन काव्य में चाहे वह लोक गीतों की शैली में लिखा गया हो या लोक गीतों से इतर शैली में,उनमें लोक शब्दावली का बहुलता से प्रयोग हुआ है । यह लोक शब्दावली या तो नामवाची शब्दावली है या ध्वन्यात्मक, मनोभावाभिव्यक्ति मूलक, अनुकरणात्मक और प्रतिध्वनि मूलक शब्दावली है । अवधेय है कि भारतेन्दुयुगीन काव्य में ऐसी भी अनन्त शब्दावली का प्रयोग है जिसका प्रयोग केवल ग्रामीणसमाज में ही होता है । वह ग्राम के अनुष्ठान, लोकानुरंजन या संस्कारों से संबंधित है ।

७- तद्भव शब्दावली भी लोक शब्दावली के अन्तर्गत परिगणित होगी क्यों कि इन शब्दों का तद्भव रूप लोक मानस की भाषागत प्रवृत्तियों से ही संबंधित है । भारतेन्दुयुगीन काव्य में संस्कृत,अंग्रेजी तथा उर्दू तीनों से ही बने हुए तद्भव शब्द प्रयुक्त हुए हैं ।

८- लोक भाषा में लोकोक्तियां तथा मुहावरों का बहुत महत्व है । लोक भाषा में मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग पग पग पर होता है । भारतेन्दु युगीन काव्य में भी अनेक लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग हुआ है ।

९- इस प्रकार भाषा की दृष्टि से भी भारतेन्दु युगीन काव्य लोकोन्मुख काव्य है । इसमें लोक भाषा के उसी रूप का प्रयोग हुआ है जो बोल चाल का तथा जनसामान्य के मध्य व्यवहृत होने वाला रूप है ।

- - -

अध्याय ३

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक छंद
तथा लोक उपमान- योजना

भारतेन्दुयुगीन काव्य में प्रयुक्त लोक छंद

छंद यदि काव्य की आत्मा नहीं तो उसके शोभाकारक धर्म अवश्य मेव हैं, छंद ही काव्य को गति एवं आकर्षण प्रदान करने के प्रथम कारण है यही कारण है कि छंद का संबंध आदि काव्य तक से है । जिस क्षण आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने "मा निषाद प्रतिष्ठां" त्वमगमः शाश्वती समाः" से काव्य का सूत्रपात किया, उस क्षण विशेष में ही काव्य का जन्म भी हुआ । आदि कवि की वाणी भी छंद मुक्त होकर अभिव्यक्ति नहीं पा सकी । प्रथम अभिव्यक्ति ने भी काव्यात्मकता छंद परिधान में ही ग्रहण की । सिद्ध है छंद काव्य का अनिवार्य तत्व तो है ही, साथ ही साथ मानव की मूल प्रवृत्ति से भी संबंधित है, अन्यथा यदि छंद का मानव मूल प्रवृत्ति से सम्बन्ध न होता तो निश्चय ही प्रथम काव्य पंक्ति छंद मुक्त होकर ही प्राकट्य पाती । मानव प्रकृति सदा से नियमन में रहने की है । नियमन ही उसे रुचिकर है क्योंकि अनियमितता उच्छृंखलता को और उच्छृंखलता अस्पष्टता को जन्म देती है । यही कारण है आदि मानव ने भी नियमन को स्वीकार किया, किन्तु मानव प्रवृत्ति नियमबद्धता में रह कर भी उन्मुक्तता चाहती है, और यही प्रवृत्ति छंद विकास का कारण बनी । छंदों की प्राग्वैदिक तथा प्रागैतिहासिक स्थिति इससे भी सिद्ध होती है कि छंदों का जन्म कब हुआ यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है । मानव जाति का प्राचीनतम लिखित रूप ऋग्वेद में मिलता है और ऋग्वेद के छंदों को देखने से यह कहा जा सकता है, कि छंदों का जन्म वेदकाल से बहुत पहले हुआ होगा क्योंकि ऋग्वेद के छंद, छंद-रचना की अति विकसित अवस्था का रूप प्रस्तुत करते हैं जबकि छंदों में पाद, वर्ण का क्रम निश्चित कर दिया गया था । वेद ही नहीं लौकिक शास्त्र भी छंद बद्ध हैं । ज्योतिष, व्याकरण, वैद्यक सभी विषयों के ग्रंथ छंद बद्ध रूप में लिखित हैं जिससे उपर्युक्त कथन की और पुष्टि होती है और ऐसा प्रतीत होता है कि छंदों का जन्म तभी हुआ होगा जब प्रागैतिहासिक युग में आदिम मानव ने बोलना सीखा होगा ।

वैदिक छंद और लौकिक छंदः-

प्रारम्भ में छंदों के दो ही रूप थे वैदिक और लौकिक । वैदिक छंद वे थे जो वेद में प्रयुक्त हुए थे तथा शेष वेदेतर साहित्य मेंप्रयुक्त छंद लौकिक थे । इस प्रकार लौकिक छंदों का परिवेश तत्कालीन समय में बहुत व्यापक था । वैदिक साहित्य में प्रयुक्त समस्त छंद वर्णिक थे, उनमें गणों का नियमन था, मात्राओं का नहीं । अतः समस्त मात्रिक छंद लौकिक छंद कहलाए । लोक के बीच उद्‌भूत होने के कारण ही संभवतः मात्रिक छंद जाति कहे गए है । वैदिक परम्परा से प्राप्त वर्णिक छंद वृत्त कहे गए । छंद शास्त्र के प्राचीनतम लक्षण ग्रंथ पिंगलाचार्यकृत छंदः शास्त्रम में भी मात्रिक छंदों को लौकिक कहा गया है - अत्र लौकिकम्[1] । जिससे यह सिद्ध होता है कि इन छंदों का मूल उत्स लोक ही है और यह छंद जनसाधारण के बीच ही प्रयुक्त होते थे । "वर्णिक वृत्तों में भी यद्यपि १-२६ वर्ण तक के सभी वृत्त वैदिक बताए जाते हैं, परन्तु पाद व्यवस्था वैदिक नियमों के अनुसार न होने पर वे भी लौकिक मान लिये जाते हैं[2]।" मात्रिक छंद एक प्रकार से शुद्ध लौकिक छंद कहे जा सकते हैं, क्योंकि प्राकृत काल में ही शैलूष तथा मागधों ने जनसाधारण के मनोविनोदार्थ उपवती पर गाए जाने योग्य मात्रिक छंदों को जन्म दिया था । इन मात्रिक छंदों में कुछ काल कवलित हो गए, कुछ संगीत में पहुंच गए और कुछ ज्यों के त्यों या अभी चले आ रहे हैं । इन मात्रिक छंदों ने परवर्ती काल में साहित्यिकों को आकर्षित किया और कवियों ने इन छंदों में रचना करनी आरम्भ कर दी, किन्तु लोक वर्ग में इनका प्रयोग परिनिष्ठित साहित्य में प्रयोग होने के बाद भी ज्यों का त्यों बना रहा । अतः वे साहित्यिक छंद होकर भी लोक छंद बने रहे ।

१- पिंगलाचार्य कृत छंदः शास्त्रम् ४।८ ।

२- हिन्दी साहित्य कोश - प्रथम भाग पृ० ६९५ ।

इस प्रकार समस्त मात्रिक छंद अपने लोक उत्स के कारण लौकिक छंद ही हैं, किन्तु यहां लोक छंद का प्रयोग इस व्यापक अर्थ में नहीं किया जा रहा है। लोक छंदों से हमारा अभिप्राय उन छंद विशेषों तक ही सीमित है जो या तो शुद्ध लोक छंद हैं, जिनका लोक गीतों में साधारण जनता आज भी प्रयोग करती है और परिनिष्ठित साहित्य में जिनकी स्थिति आज तक नगण्य है, या वे छंद जो लोक स्रोत से उद्भूत हैं और साहित्य में जिनका आज प्रवेश हो गया है, किन्तु आज भी उनका लोक वर्ग में प्रयोग होता है और उनकी लौकिकता के विषय में स्पष्ट प्रमाण खोजे जा सकते हैं। लोक छंदों का जन्म लोक तालों से हुआ है अतएव प्रस्तुत प्रसंग में छंद और ताल का संबंध विवेचन भी आवश्यक है।

लोक छंद और लोक ताल:-

लोक छंदों में ताल का महत्व विशेष है। वैदिक छंदों में छंद का संबंध स्वरों से विशेष था इसीलिए वैदिक छंदों में स्वरित, उदात्त और अनुदात्त का इतना महत्व है। लोक गीतों, लोक नृत्यों या लोक छंदों में स्वरों का इतना अधिक महत्व नहीं है जितना ताल का। छंद रचयिताओं ने संभवतः ताल का महत्व लोक गीतों तथा लोक नृत्य से ही समझा था और इन्हीं से प्रभावित होकर छंदों को तालबद्ध भी किया था। संगीत के प्रमुख तत्व स्वर और ताल हैं। शिक्षित समाज ने संगीत में स्वर को महत्व दिया तथा लोक वर्ग ने लोक संगीत में ताल को। कारण स्पष्ट है - स्वर सूक्ष्मता की अपेक्षा करता है तथा ताल स्थूलता की। इस दृष्टि से लोक वर्ग के लिए ताल का स्वर की अपेक्षा अधिक महत्व रहा। इसीलिए लोक जीवन में ताल संगीत ही अधिक लोक प्रिय है, क्योंकि वह सहज है। आदिम जातियों के संगीत में भी सहजता के कारण ही ताल संगीत का अधिक प्रचलन है। ताल संगीत अति प्राचीन है और इसीलिए आदिम जातियों के संगीत में भी नृत्यगीतादि में ताल संगीत की ही प्रधानता है। डा० शिवनंद प्रसाद इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि -"अति अतीत में ही लोक छंदों की सांगीतिक शक्ति से आकृष्ट होकर तथा वर्णवृत्त की अपेक्षा इनमें शब्दचयन की अधिक

स्वच्छंदता देखकर प्राकृत अपभ्रंश के शिक्षित छंदो रचयिताओं ने, जिन पर वर्ण वृत्तों के विशिष्ट संगीत के संस्कार वर्तमान थे लोक छंदों की रचना का प्रयास बहुत पुराने ज़माने में किया होगा[१]। ताल संगीत अति प्राचीन है, इसी कारण से आदिम जातियों के नृत्यगीतादि में ताल संगीत की ही प्रधानता है[२]।" ताल संगीत का उद्भव किस प्रकार हुआ इसके विषय में आगे विचार करते हुए वे लिखते हैं - "ताल संगीत का उद्भव लोक के बीच नृत्य के अन्तर्गत नियमित अंग संचालन की प्रक्रिया में या उसकी आवश्यकता के फल-स्वरूप हुआ होगा । नृत्य के अतिरिक्त साधारण लोक गीतों में भी ताल युक्त अंग संचालन सामान्य जनमन के लिए अत्यन्त आकर्षक होता है । लोक कवि इस आकर्षण के समावेश के लिए अंग संचालन में निहित तालात्मकता के स्थान पर स्वाभाविक रूप से ध्वनियां मौखिक उच्चारण की तालबद्धता को स्थान देने लगे होंगे । इस प्रकार तालवृत्त का सूत्रपात हुआ होगा[३]। "

लोक छंदों की सामान्य विशेषताएं:-

लोक छंदों में शास्त्रीय छंदों की भांति भाषा-व्याकरण और मात्रा की जटिलता नहीं पाई जाती । लोक छंदों में भाषा तथा व्याकरण के नियमों का उतना ~~अ~~ आग्रह नहीं रहता जितना कि बोलचाल की भाषा के प्रयोग का । लोक छंद व्याकरण की दृष्टि से दोषपूर्ण तथा छंद नियमन की दृष्टि से तरल हो सकते हैं क्योंकि स्वरों में ही उनका नियमन पूरा किया जाता है और उनमें मात्राओं से अधिक संगीत की प्रधानता होती है । इन लौकिक छंदों की गेयता की अपनी स्वतंत्र परम्परा रही है, इसी कारण लिखित रूप में इनमें मात्राओं की अनियमितता बहुत दिखती है । लोक छंद मात्रिक हैं और इनकी मात्राओं का लघु गुरु होना गायक की स्वेच्छा पर निर्भर करता है । इस स्वेच्छा के कारण इनमें शब्द चयन की स्वच्छंदता है ।

१- शिवनंदन प्रसाद: मात्रिक छंदों का विकास : पृ० १४३ ।

२- वही।

३- वही, पृ० १४४ ।

इन लोक छंदों में यति गति के समय का बोध आवश्यक है और समय ज्ञान मात्राओं के आधार पर होता है, क्योंकि मात्रा की कालावधि निश्चित है वह या तो एक मात्रा के बराबर होगी या दो मात्रा के जबकि वर्णों में यह नियतता नहीं है। एक वर्ण दो मात्राओं के भी समान हो सकता है और एक वर्ण की स्थिति एक मात्रा की भी हो सकती है। यही कारण है कि प्राकृत काल में जनजीवन के मध्य प्रचलित मात्रिक छंद जो मात्रा मूलक ही थे, प्रचलित रहे। अशिक्षित ग्रामीण तथा लोक जीवन के मध्य प्रचलित छंदों की यह सर्व प्रथम विशेषता है कि वे गेय एवं गीतोपयोगी हैं। इन छंदों की गेयता संबंधी विशेषता को ध्यान में रखते हुए, शास्त्रीय छंद तथा लोक छंद का अंतर बताते हुए किसी विद्वान ने इसीलिए कहा था कि "शास्त्रीय छंदों की रचना मुख्य रूप से आंखों के लिए तथा लोक छंदों की रचना कानों के लिए हुई है[१]।" क्योंकि शास्त्रीय छंदों की शुद्धता का अनुमान मात्राएं गिनकर तथा लोक छंदों की शुद्धता का अनुमान कानों से सुनकर ही लगाया जा सकता है। गेयता सम्बन्धी विशेषता के अतिरिक्त लोक छंदों की यह भी विशेषता है कि इनका उद्गम लोक तालों से हुआ है। परंपरागत लोक छंद ताल प्रधान थे। मात्राओं का प्रयोग इनमें ताल रक्षा के ही निमित्त होता था। लोक छंदों की मधुरता एवं कर्ण सुखदता का प्रभाव शिक्षित वर्ग पर भी पड़ा और इनसे मात्रा मूलक छंदों की मात्रा वृत्त तथा तालवृत्त दो प्रणालियां बन गईं, जिन्हें हम मात्रा वृत्त या तालवृत्त कहते हैं। तालवृत्त और मात्रावृत्त के सम्बन्ध में डा० प्रसाद के विचार दृष्टव्य हैं - "तालवृत्त आरंभिक प्राकृत युग में लोक जीवन के बीच व्यवहृत प्राचीन, परंपरागत छंदः

१- Side by side with the classical forms, there has been a steady growth of the popular or folk forms also. The classical forms are strict in point of grammar and language, while the folk forms abound in colloquiallism, and though gramatically loose, are metrically more fluid and pliable. The classical forms are composed mainly for the eye, while the folk forms are composed for the ear in particular- Sangit Kala Vihar, Varsha 11. September 1958.p.443-448.

प्रणाली है । मात्रा वृत्त उसके प्रभाव से उद्‌भूत वर्णवृत्त के संस्कारों से अभिषिक्त शिक्षित या अभिजात वर्ग द्वारा प्रयुक्त, परिनिष्ठित, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य के बीच विकसित छंदः प्रणाली है । ये दोनों प्रणालियाँ प्राकृत छंदः परंपरा के अंतर्गत समझी जा सकती हैं, क्योंकि दोनों के बीच एक समानतत्व है मात्रा मूलकता । मात्रा वृत्त का उद्‌भव शिक्षितों की वर्ण मूलक छंदः परंपरा के ऊपर ताल मूलक लोक छंदों के प्रभाव या प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप है[१]।"

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक छंदः-

भारतेन्दु युगीन कवियों ने जहाँ अनेक लोक गीत लिखे हैं, अनेक लोक शैलियों में कविताएँ की हैं वहीं, अपने काव्य में अनेक लोक छंदों का प्रयोग भी किया है । यों तो भारतेन्दु युगीन काव्य में वर्णिक तथा मात्रिक दोनों ही छंदों का प्रयोग हुआ है किन्तु अधिकता मात्रिक छंदों की है और मात्रिक छंद लोक जीवन के छंद है, जन सामान्य के मध्य प्रचलित छंद हैं । यह छंद मुख्यतः लोक के ही हैं । इनका ग्राम जीवन या साधारण जीवन में आज भी प्रचलन है किन्तु परिनिष्ठित साहित्य में भी इनकी श्रुति मधुरता के कारण इनका प्रयोग बहुतायत से होने लगा है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक छंद निम्नलिखित हैं -

(१) बरवै
(२) रोला
(३) सोरठा
(४) दोहा
(५) वीर
(६) पद्धरि

१- शिवनंदन प्रसादः मात्रिक छंदों का विकास, पृ० १५१-१५२ ।

(७) उल्लाला

(८) कुण्डलिया

(९) छप्पय

(१०) सवैया

(११) दुवई(सार)

(१२) अष्टपदी

उपर्युक्त लोक छंदों के भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयोग सम्बन्धी तथा इनकी लौकिकता के विषय में विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जाता है ।

दोहा:-

परिमाण की दृष्टि से भारतेन्दु युगीन काव्य में दोहा छंद का सबसे अधिक प्रयोग हुआ है । भारतेन्दु, प्रेमघन आदि के पूरे पूरे संग्रह दोहा छंद में लिखे गए हैं[१]। दोहा एक लोक छंद है जो अपभ्रंश काल से जनता का प्रिय छंद रहा है । प्रसिद्ध लोक काव्य "ढोला मारू रा दूहा" में दोहों का प्रयोह दूहा नाम से हुआ है । यही दूहा बाद में दूहा कहलाया । इस दूहे का प्रयोग आगे के हिन्दी कवियों ने भी किया । तुलसी और जायसी के नाम इस संबंध में स्मरणीय हैं, जिन्होंने क्रमशः अपने महाकाव्य रामचरित मानस और पद्मावत में दोहा छंद का बहुत प्रयोग किया है । दोहा अपभ्रंश साहित्य की छान्दसिक परंपरा का द्योतक है, और जिस प्रकार श्लोक कहने से संस्कृत का बोध होता है, उसी प्रकार दोहा कहने से पहले अपभ्रंश का ही बोध होता था । कालिदास के नाटक विक्रमोर्वशीय में कई स्थानों पर अपभ्रंश दूहों का प्रयोग हुआ है । कुछ विद्वानों ने तो इन छंदों को अप्रमाणिक तथा बाद में प्रक्षिप्त हुआ माना है - किन्तु डा० ए०एन० उपाध्याय, हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा एल०बी० वैद्य आदि का विचार है कि ये प्रयुक्त दूहा छंद "कालिदास रचित न होकर तत्कालीन लोक प्रचलित भाषा का कोई गीत मान लें जिसका कालिदास ने उपयुक्त अवसर पाकर प्रयोग कर दिया तो कोई कठिनाई

१- प्रे०सर्व० पृ० १-४९, भा०ग्रं० पृ० ५-१०।

नहीं होती[1]।" डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का विचार है कि आभीरों के विरहागान का मूल दोहा छंद ही है[2]। सिद्ध है कि ४ दोहा छंदमूलतः लोक छंद ही है और अपभ्रंश में भी इसका प्रयोग लोक छंदों के रूपमें किया गया है। श्री नरोत्तमदास स्वामी[3] ने भी दोहा को लोक छंद ही माना है और कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि इस छंद का सम्बन्ध प्रारम्भ में लोक कविता से था क्योंकि पुरानी अपभ्रंश में इसका प्रयोग नहीं हुआ है। हिन्दी और गुजराती भाषा भाषी प्रांतों की ग्रामीण जनता में आज भी इस छंद का पर्याप्त प्रचार है। जनता में प्रचार पाने के बाद साहित्य में इसका प्रवेश हुआ। लिखित साहित्य में दोहा छंद का प्रथम प्रयोग वज्रयानी बौद्ध सिद्ध सरहपा की रचनाओं में पाया जाता है। नरोत्तम स्वामी का अनुमान है कि दोहा की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द द्विधा से हुई है। दोहा में दो पंक्तियां होती है अतः संभवतः दो पंक्तियों वाले छंद को ही दोहा कहा जाने लगा। कुछ आदिवासियों में नृत्य के मध्य दोहा छंद का गान आज भी होता है। सौराष्ट्र में दूहा एक प्रकार का गीत प्रचलित है। इनमें दो दो पंक्तियां मिलती हैं। सौराष्ट्र में यह लोक गीत रूप में प्रसिद्ध है और यह गीत नाना प्रकार के नृत्यों के साथ गाया जाता है। इसमें प्रेम, धर्म, दर्शन, राजनीति सभी कुछ वर्णित है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि दोहा मूलतः लोक छंद है और लोक से ही इसकी मधुरता देखकर शिष्ट साहित्य में भी इसका प्रयोग हुआ।

सोरठा:-

सोरठा भी दोहा वर्ग का ही छंद है और जहां दोहे में सम-चरणों में ११ तथा विषम चरणों में १३ मात्राएं होती हैं वहीं सोरठा के

१- हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिन्दी साहित्य का आदिकाल।

२- वही, पृ० ९२।

३- हिन्दुस्तानी : अक्टूबर १९३३, पृ० ३६०- ३६४।

विषम चरणों में ११ तथा समचरणों में १३ मात्राएं होती हैं । डा० शिवनंदन प्रसाद[1] का इसके मूल उद्गम के संबंध में विचार है कि दोहे के ही समान इसका सम्बन्ध संस्कृत की वर्ण वृत्त परंपरा से नहीं वरन् अपभ्रंश छंदों की ही तरह लोक प्रचलित ताल संगीत से है । प्राकृत पैंगलम में सोरठा का उल्लेख है[2] और उसकी प्रायः सभी टीकाओं में इसके लिए संस्कृत सौराष्ट्र शब्द का प्रयोग हुआ है[3]। प्रदेशों के आधार पर नामकरण की प्रवृत्ति भारत में अति व्यापक है । मालकोश , सोरठ, सिंधु, गांधार आदि अनेक राग रागनियों का नामकरण भी प्रदेश के आधार पर हुआ है । अतः सौराष्ट्र प्रदेश के आधार पर सोरठा नाम पड़ा हो तो असम्भव नहीं है । सोरठ राग का नाम तो सौराष्ट्र प्रदेश के आधार पर ही पड़ा बताया जाता है[4]। भारतेन्दु युगीन काव्य में दोहे के समान ही सोरठा का बहुत प्रयोग हुआ है ।

बरवै:-

बरवै मात्रिक अर्ध सम छंद है । इसके विषम चरणों में १२ तथा समचरणों में ७ मात्राएं होती हैं । बरवै छंद का उल्लेख संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश किसी के ग्रंथ में भी नहीं मिलता । हिन्दी के प्राचीन ग्रंथ छंदोर्णव में भी इसका उल्लेख नहीं है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह मूलतः लोक गीतों में ही प्रयुक्त होने वाला छंद था जो बाद साहित्य में स्वीकृत हुआ । इस छंद का नाम बिरवा तथा बरवै दोनों ही है । यह बिरवा या बरवै इसका नाम क्यों पड़ा इसके सम्बन्ध में एक कथा है - कथा है कि अब्दुलरहीम खानखाना के एक कर्मचारी ने अपने विवाह के लिए खानखाना से कुछ दिन की छुट्टी ली । कामपर वापस लौटने में उसे देर हुई । इसकारण

१- शिवनंदन प्रसादः मात्रिक छंदों का विकास पृ० २९६ ।

२- प्राकृत पैंगलम् १।७० ।

३- विश्व नाथ पंचानन तथा वंशीधर(पिंगल प्रकाश)की टीकाएं, प्राकृत पैंगलम बिब्लियोथिका इंडिका संस्करण, पृ० १०८-१०९ ।

४- हिन्दुस्तानीसंगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका : भातखण्डे ।

से वह चिंतित था । अपने पति को चिंतित देखकर उसकी स्त्री ने एक कागज पर एक छंद लिखकर अपने पति को दिया ~~है~~ कि यदि रहीम इससे कुछ कहें तो वह उन्हें यह छंद दे दे । वह छंद था -

> प्रीति रीति को बिरवा चलेउ लगाय ।
> सींचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय[1]।।

खानखाना इस छंद को पढ़कर बहुत खुश हुए और उन्हें यह छंद मधुर लगा जिसके कारण उन्होंने अनेक बरवै लिखे । इस प्रकार बिरवा से बरवै की उत्पत्ति भी मानी जाती है । इस बरवै नामकरण का कारण चाहे कुछ भी हो, किन्तु इतना निश्चित है कि यह लोक छंद ही है यही कारण है कि जब रहीम ने बरवै में काव्य लिखना प्रारम्भ किया तो उन्हें यही सन्देह था कि कहीं छंद मात्र की लौकिकता के कारण पंडित गुण ग्रंथ को महत्व न दे क्योंकि उस समय लोक छंद, लोक भाषा आदि का काव्य में प्रयोग काव्य दोष माना जाता था । इसी कारण से रहीम ने प्रारम्भ में ही बरवै छंद में वाणी की अधिष्ठात्री सरस्वती की वंदना की-

> बंदउ देवि सरदवा दुइ कर जोरि ।
> बरनत काव्य बरबवा लगे न खोरि ।।

सिद्ध है कि बरवै लोक छंद ही था । लोक गीतों में ही इसका प्रयोग होता था और बाद में रहीम की सफलता देखकर अन्य कवियों ने भी इस लोक छंद में साहित्य सर्जना प्रारम्भ कर दी थी । भारतेन्दु युगीन कवियों ने भी दोहा छंद के समान ही बरवै छंद का बहुत अधिक प्रयोग किया है ।

रोला:-

भारतेन्दु युगीन कवियों का रोला भी अति प्रिय छंद रहा है जिसका उन्होंने अपने काव्य में बहुत प्रयोग किया है । रोला २४ मात्राओं का मात्रिक सम छंद है । भिखारीदास ने भी २४ मात्रा वाले छंद का उल्लेख

१- रहिमन विलास: सं० ब्रजरत्नदास, पृ० ५५ ।

किया है पर यति अनियमित बतलाई है । प्रवचन के अनुसार इसमें ११,१३ का विधान है । हिन्दी के अनेक कवि चंद, नंददास, केशव, सूदन आदि ने इसका अपने काव्य में व्यवहार किया है पर किसी ने भी नियम का पूर्णतः ध्यान न रखते हुए अनेक स्थानों पर नियमोल्लंघन किया है । अन्य कवियों ने भी नियमों का पालन नहीं किया है । स्पष्ट है कि इसकी यति और गति के संबंध में निश्चित नियम ही नहीं रहा होगा और निश्चित नियम न होने का कारण भी यही रहा होगा कि यह लोक प्रचलित छंद है और लोक में मात्राओं पर अधिक ध्यान न देकर लय के आधार पर ही इसका स्वरूप निर्धारित होता रहा होगा । रोला का उल्लेख हेमचंद्र के सिवा अन्य किसी भी संस्कृत के लक्षणकार ने नहीं किया । इससे प्रतीत होता है कि इनका संबंध संस्कृत वर्णवृत्तों से नहीं है और यह लोक छंद है ।

दुवई (सार) छंद-

दुवई एक लोक छंद है और संस्कृत वर्णवृत्त से इसका कोई संबंध नहीं है । नवीं तथा दसवी शती के पूर्व छंद शास्त्र के लक्षण ग्रंथो में इसका उल्लेख नहीं मिलता । इससे प्रतीत होता है कि यह लोक छंद ही था जिसका शास्त्रीयकरण बहुत बाद में हुआ और प्राकृत काल में इस छंद को महत्ता मिली और तभी बाद में स्वयंभूछन्दस्, गाथा लक्षण, छंद कोश आदि प्राकृत काल के छंद ग्रंथों में इनका उल्लेख सर्वप्रथम हुआ । संभवतः प्राकृत काल के छंद ग्रंथों में इसका उल्लेख हुआ । संभवतः प्राकृत काल के पूर्व इसका प्रयोग केवल लोक गीतों आदि में होता रहा होगा । यह ताल बद्ध छंद है और इसकी ताल संबंधी माधुर्यता से ही आकृष्ट होकर शायद बाद के कवियों ने परिनिष्ठत साहित्य में इसे महत्व दिया । भारतेंदु युगीन काव्य में दुवई छंद का पदशैली में प्रचुर प्रयोग हुआ है । दो उदाहरण दुवई छंद के देखे जा सकते हैं-

साधो मनुवां अजब दिवाना ।

माया मोह जनम के ठगिया, तिनके रूप भुलाना ।।

छल परपंच करत जग धूनत, दुख को सुख करि माना ।
फिकिर तहां की तनिक नहीं है अंत समय जई जाना[1] ।।

- - -

मन की कासों पीर सुनाऊं
बकनो वृथा और पति खोनो सबै चबाई गाऊं ।
कठिन दरद कोउ नहिं धरिहै धरि है उलटो नाउं ।
यह तो जानै सोइ जानै क्यों करि प्रकट जनाऊं[2] ।।

पद्धरि-

पद्धरि छंद मात्रिक सम छंद का एक भेद है । यह एक लोक छंद है । प्राकृत पैंगलम में, प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं तथा अंत में जगण वाले पज्झटिका छंद का उल्लेख हुआ है[3] । हिंदी में यही पज्झटिका पद्धरि कहलाया । डा० शिवनंदन प्रसाद ने भी पद्धरि में लोक छंदों की प्रमुख विशेषता तालबद्धता के कारण पद्धरि कोभी लोक छंद माना है क्योंकि यह अष्टमात्रिक तालगणों के अनुशासन में बद्ध है और उसमें प्रत्येक गण की तृतीय मात्रा पर स्वराघात होता है[4] । भारतेंदु युगीन कवियों ने मुख्य रूप से प्रेमघन ने पद्धरि छंद में पर्याप्त काव्य रचना की है । अवलोकनार्थ एक दो उदाहरण प्रेमघन काव्य से प्रस्तुत हैं-

द्वै घटिका रजनी रही जानि । तजि सेज संग आलस्य ग्लानि ।
अक्रूर उठे अतिसय सकार । करि नित्य कृत्य निज सब प्रकार ।।
निज सार-थीहिं आदेश कीन । तैयार करहु रथ है प्रवीन ।।
आए जब देखे नंद द्वार । जिमि रही भीर तहं अति अपार[5]।।

१- प्रतापलहरी पृ० १९ ।
२- भा० ग्र० पृ० ८४३ ।
३- प्राकृत पैंगलम् १।२६ ।
४- शिवनंदन प्रसादः मात्रिक छंद का विकास पृ० १४८ ।
५- प्रे० सर्व० पृ० ७८ ।

उल्लाला- भक्र

भारतेंदु युगीन काव्य में उल्लाला छंद का प्रयोग छप्पय में हुआ है । उल्लाला छंद भी लोक छंद है और इसकी उत्पत्ति लोक प्रचलित ताल छंद से हुई है । डा० शिवनंदन प्रसाद ने उल्लाला की लौकिक व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए लिखा है - " उल्लाला छंद का व्युत्पत्ति की दृष्टि से दोहा सोरठा से बहुत अधिक साम्य है । हमारा मंतव्य है कि इन तीनों छंदों की उत्पत्ति किसी एक लोक प्रचलित ताल छंद से हुई है, जिसमें कुल मिलाकर अष्टमात्रि तालगण में अथवा ६४ मात्राओं का ब उपयोग होता था"[१] । डा० प्रसाद ने आगे उल्लाला की लौकिक उत्पत्ति के निम्नलिखित कारण दिए हैं ।

(१) उल्लाला का प्रयोग प्राकृत काव्य में उतना नहीं जितना अपभ्रंश काव्य में हुआ है । इससे यह ध्वनित होता है कि उल्लाला प्राकृत का छंद नहीं, अपभ्रंश का छंद है और इस भाषा के अधिकांश छंदों की तरह यह लोक प्रचलित ताल संगीत की देन है ।

(२) उल्लाला के लक्षण में वर्णिकगणों अथवा वर्णों के लघु गुरु संबंधी विधि निषेध न होने से यह बात सिद्ध है कि इस छंद का संबंध वर्ण संगीत से और इसी कारण वर्ण वृत्त परंपरा से नहीं है ।

(३) उल्लाला का त्रयोदश मात्रिक समपाद, दोहा के विषम पाद, सोरठा के समपाद तथा घत्ता के उत्तर पाद खंड के, मात्रा संख्या, गण विधान कर तथा लय की दृष्टि से सर्वथा समान है । अतएव इन सभी छंदों का मूल एक है । कोई ऐसा वर्णवृत्त नहीं जिससे इन विविध मात्रिक छंदों की व्युत्पत्ति की संगति ठीक बैठ सके । इसलिए उल्लाला अष्टमात्रिक तालगणों के सहारे गेय लोक छंद से विकसित कई मात्रिक छंदों में से एक है ।

१- शिवनंदन प्रसाद- मात्रि छंदों का विकास पृ० ३०९ ।

भारतेंदु युगीन काव्य से उदाहरणार्थ उल्लाला छंद प्रस्तुत हैं जिनमें से कुछ तो १६ तथा १२ मात्राओं की यति वाले हैं तथा कुछ १५ तथा १३ मात्राओं की यति वाले हैं-

श्री बदरी नारायण जयति जै सुसीस सोभित मुकुर ।
जै जै जसुदा के लाड़िले जो चारत लैकर लकुट[1] ।।

\- - -

हा हिन्दुन उत्साहित करन हा हिन्दू उन्नति करन ।
हा हिन्दुन के सुभ सदन मैं सुख सोभा सांचहु करन[2] ।।

\- - -

हा तेरो धन सांचहु सुफल जो लाग्यौ परकाज मैं ।
हम उपकारी तुव तन सुफल, जीवन भारत राज मैं[3] ।

\- - -

श्री वल्लभ को सिद्धांत सब थित जिनके चित नित विमल ।
श्री द्वारकेश ब्रजपति ब्रजाधीश भए निज कुल कमल[4] ।।

वीर-

वीर छंद का दूसरा नाम आल्हा है । यह लोक छंद है । वीर काव्य के अधिकारी विद्वान डा॰ टीकम सिंह तोमर भी इसे लोक छंद ही मानते हैं । उनका अनुमान है कि मूलतः यह लोक छंद ही रहा होगा और बाद में साहित्य में इसका प्रवेश हुआ होगा क्योंकि -"इस छंद की लय का विकास लोकवीर गीतियों से सम्बद्ध होना चाहिए । यही कारण है कि जगनिक के आल्हाखण्ड का लोक में इतना प्रचार हो सका"[5] । इसमें

१- प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ १२० ।
२- वही, पृ॰ १७७ ।
३- वही, पृ॰ १७६ ।
४- भा॰ प्र॰ पृ॰ २३१ ।
५- हिंदी साहित्य कोश पृ॰ ७२९ ।

१६, १५ की यति से ३१ मात्राएं होती हैं और वीर रस का यह प्रमुख छंद है। वीर छंद की यह विशेषता है कि आल्ह खण्ड के अतिरिक्त अन्य वीर रस के काव्य में इस छंद का अभाव है। इस छंद में प्रारम्भ में आरोह होता है और अंत तक पहुंचते-पहुंचते अवरोह हो जाता है। यही कारण है कि लम्बे भावों की व्यंजना इसमें सरलता पूर्वक हो सकती है। वीर छंद लोक वर्ग का अति प्रचलित छंद है और वर्षा ऋतु में किसी भी ग्राम में मृदंग पर गाए जाते हुए आल्हा या वीर को सुनकर यह पता लगाया जा सकता है कि लोक वर्ग में इस छंद का प्रचलन कितना अधिक है। भारतेन्दु युगीन काव्य में वीर छंद का कवियों ने बहुत प्रयोग किया है। और इस छंद की रोचकता से वे बहुत प्रभावित भी थे। प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट तथा परसन आदि का नाम इस सम्बन्ध में विशेष महत्वपूर्ण है। इन कवियों ने आल्हा शैली में अनेक कविताएं लिखी हैं। प्रताप नारायण मिश्र ने तो कानपुर माहात्म्य ही आल्हा में लिखा है। उदाहरण के लिए आल्हा का एक अंश प्रस्तुत है -

> देवी गैये आदि अविद्या जिनकी लीला अपरम्पार।
> हिन्द बासिनी बोतल धारिन हुई पद गदहा पर असवार।
> बड़े बड़े पंडित, बड़े बड़े भूपति तुम्हरे बिना मोल के दास।
> बालक बुढ़वा नर नारिन के हिरदे बैठी करो बिलास[१]।।

अष्टपदी :-

यह आठ पदों वाला लोक छंद है। अष्ट पदी शब्द से प्रतीत होता है कि यह संस्कृत का छंद है, किन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है।

१- प्रताप लहरी : पृ० २०५।

अष्टपदा अर्थात आठ पदों वाली रचना संस्कृत में भी है किंतु लोक में भी है । लोक गायक कभी कभी आठ आठ पंक्तियों में अपनी लोक भाषा में, लोक गीतात्मक विशेषताओं के साथ अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है । लोक प्रचलित अष्टपदी में प्रायः टेक या ध्रुवक का प्रयोग बार बार होता है जैसे"हहा हरि होरी मैं " "सखि साज साज आयो बसंत" आदि । लोक में कभी कभी दो अष्टपदियों को मिलाकर गाने की भी प्रथा है । भारतेंदु युगीन कवियों में प्रेमघन, भारतेंदु आदि ने अष्टपदी में रचनाएं की है । प्रेमघन की अष्टपदी लोक प्रचलित अष्टपदी के अधिक निकट है[1] ।

कुण्डलिया-

यह दोहे और रोले के संयुक्त रूप से बना हुआ लोक छंद है । इसमें प्रथम दो दल दोहे के तथा अंतिम चार रोले के होते हैं । यति दोहा और रोला के अनुसार मिलती है । प्राकृत पैंगलम तथा अपभ्रंश छंद ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है, किंतु इस छंद की प्रवृत्ति लोक छंदों के ही समान हैं । दो विभिन्न छंदों को संयुक्त कर गाने की प्रथा लोक में अति प्रचलित है । फिर यह छंद दोहे और रोले जो कि लोक छंद है के संयुक्त रूप से बना है अतः लोक छंद ही है । भारतेंदु युगीन कवियों ने इस छंद का भी प्रयोग किया है ।

छप्पय-

छप्पय रोला और उल्लाला के क्रमशः चार और दो पादों से बनी हुआ संयुक्त छंद है । रोला और उल्लाला दोनो ही छंद जैसा कि ऊपर किए गए विवेचन से सिद्ध है, लोक छंद है । इस प्रकार दो लोक छंदों के संयोग से बना हुआ यह छप्पय भी दोहा और रोला के संयोग से बने हुए कुण्डलियां छंद के समान ही लोक छंद है । छप्पय के प्रारंभ में रोला में गति का चढ़ाव है और अंत में उल्लाला में उतार है । भारतेंदु युगीन काव्य में छप्पय छंद के अनेक प्रयोग हैं और यह प्रयोग मुख्य रूप से

१- प्रेमघन सर्वस्व पृ० ६०६, ६१२ ।

भक्ति संबंधी प्रसंगों में है ।

सवैया-

सवैया छंद का भारतेंदु युगीन कवियों ने अत्यधिक प्रयोग किया है । भारतेंदु युग समस्या पूर्तियों का युग था और यह समस्या पूर्तियां मुख्य रूप से सवैया छंद में होती थीं । इस प्रकार सवैया छंद में इस युग में काव्य रचना बहुत हुई । सवैया छंद हिंदी काल की ही उपज है । यह मात्रिक और वर्णिक दोनों ही प्रकार के होते हैं । कुछ सवैयों में मात्राओं का तथा कुछ में गणों का विधान है किन्तु अवधेय है कि सवैया की एक विशेष लय रहती है और इसमें लय का विधान अधिक है, मात्राओं का कम । यही कारण है कि अनेक सवैये जिनमें मात्राएं कम होती हैं लयात्मक ढंग से पढ़े जाने पर पूर्णमात्रा वाले हो जाते हैं । इसके लयात्मक आधार से सिद्ध है कि पहले यह लोक छंद ही रहा होगा, क्योंकि लौकिक छंदों में ही मात्राओं पर उतनी दृष्टि नहीं रखी जाती जितनी लय पर । सवैये की लय क्षिप्र और मंद दोनों होती है । सवैयों का मुख्य विषय शृंगार या भक्ति भाव होता है । भारतेंदु युगीन कवियों ने भी सवैये मुख्य रूप से भक्ति भाव तथा शृंगार संबंधी ही लिखे हैं ।

उपर्युक्त छंदों के अतिरिक्त भारतेंदु युगीन काव्य में तोटक, भुजंग-प्रयात, मालिनी, हरिगीतिका आदि कुछ और छंदों का भी प्रयोग हुआ है । ये लौकिक नहीं हैं । संस्कृत परम्परा से आए हुए छंद हैं । इस प्रकार भारतेंदु युगीन काव्य में लोक छंदों के अतिरिक्त भी छंदों में काव्य रचना हुई है पर इन छंदों की अधिकता नहीं है, इनके प्रयोग बहुत ही अल्प हैं । अधिकता लोक छंदों की ही है ।

निष्कर्ष-

लोक छंदों की दृष्टि से भारतेंदु युगीन काव्य का मूल्यांकन करते हुए कहा जा सकता है कि भारतेंदु युगीन कवियों ने अपने काव्य

में लोक छंदों का प्रयोग ही अधिक किया है । संस्कृत परंपरा के छंदों के प्रयोग अत्यल्प हैं । साथ ही जिन लोक छंदों का प्रयोग कवियों ने किया है उनके प्रयोग लोक जीवन में आज भी देखे जा सकते हैं । इस प्रकार छंदों की दृष्टि से भी भारतेंदु युगीन काव्य लोकोन्मुख है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य मेंलोक उपमान योजना:-

१- उपमानों का मनोवैज्ञानिक आधार :-

भाषा के आरम्भ के साथ ही साथ अति प्राचीन काल से ही मानव ने अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए उपमानों का सहारा लिया होगा, क्योंकि उपमानों का भी सम्बन्ध भाषा के ही समान भावों की अभिव्यक्ति से है और जहां भाषा भावों की अभिव्यक्ति का साधन है वहीं उपमान भी अभिव्यक्ति के साथ ही साथ भावों को अधिक स्पष्टतर बनाने का भी साधन है[१]। इस प्रकार उपमानों का प्रयोग मानव ने तब से ही प्रारम्भ कर दिया होगा जबकि उसने अपने भावों को दूसरों तक पहुंचाना शुरू किया होगा। दिवेकर आदि कुछ विद्वानों का विचार है कि उपमानों का प्रयोग एक विकसित मस्तिष्क की उपज है और सभ्यता तथा ज्ञान के अति विकसित स्तर पर ही मानव उपमानों का प्रयोग कर सकता है, उपमान के प्रयोग के पीछे एक कलात्मक बुद्धि है, किन्तु यदि आदिम मानस या लोक-मानस और शिशु मानस का अध्ययन किया जाए तो दिवेकर के सिद्धांत सत्य से बहुत दूर प्रतीत होते हैं और ऐसा लगता है कि दिवेकर महोदय ने उन्हीं साहित्यिक कलात्मक उपमानों को अपने अध्ययन का विषय बनाकर तत्संबंधी निष्कर्ष दिए हैं जिनके पीछे भावों की अभिव्यक्ति की भावना उतनी प्रधान नहीं, जितनी उनकी पृष्ठभूमि में कलात्मकता है। दिवेकर महोदय ने उ[न] उपमानों का अध्ययन नहीं किया, जिसका एक अपढ़ गंवार, असभ्य तथा लोक वर्ग प्रयोग करता है, जो अपने भावों की अभिव्यक्ति को कलात्मक ढंग से प्रकट करने की बात ही नहीं सोचता है वरन् उसका उद्देश्य अपने भावों को स्पष्ट [व] स्पष्टतर बनाने और श्रोता तक पहुंचाने का है। आदिम मानव या लोक वर्ग

१- Similes are used for introducing simplicity and clarity of Expression-Paradkar, M.D.Similies in Manu Kalidas P.1.

जब किसी अमूर्तन रूप की अभिव्यक्ति नहीं करा पाता तभी वह उपमानों का सहारा लेता है। यही कारण है कि जब उसे नीले रंग का स्वरूप बताना होता है तो वह कहता है - आकाश के समान नीला अर्थात् नीले रंग के समान वह आकाश को जिससे सब परिचित हैं, बताता है। इसी प्रकार जब उसे लालरंग की अभिव्यक्ति करनी होती है तो वह कहता है - खून जैसा-लाल रंग है। यहां हम देखते हैं कि उपमानों के रूप में वह उन वस्तुओं को रखता है, जिसे सब समझ सकते हैं और सब जिससे परिचित रहते हैं। इस प्रकार वह अपरिचित वस्तु का बोध श्रोता को परिचित वस्तु से तुलना कर बताता है। इसीलिए गोंड आदि विद्वानों ने कहा कि उपमान एक विकसित मस्तिष्क की उपज नहीं वरन् आदिम मानस या लोक मानस की उपज है[१] और जितना भी आदिम या असभ्य वर्ग होगा और उसको जितनी ही अमूर्तन वस्तुओं या विषयों का बोध कराना होगा, उतना ही वह उपमानों का प्रयोग करेगा[२]। असभ्य तथा ग्रामीणों और शिशु वर्ग में जो बहुत कुछ ग्रामीणों तथा अविकसित मस्तिष्क वाले आदिम मानस के स्तर पर सोचते हैं, के मध्य इस प्रकार के उपमानों के प्रयोग बहुत ही अधिक देखे जा सकते हैं[३]। बिना

१- Remarks on the similes in Sanskrit Literature- Gond.J.p.12.

२- The more concretely people think, the more they make use of gegenstandliche Abstraction, the more they have occasion for similes etc. in trivial communication Remarks on the Similes in Sanskrit Literature p.12.

३- उपमा एक ऐसा अलंकार है जिसकी उपयोगिता न केवल पढ़े लिखे लोगों को होती है वरन् हमारी नित्य की साधारण बातचीत में भी बिना उपमा के काम नहीं चलता। उच्च श्रेणी के लोग जिन्हें हम विदग्ध नागरिक या तरबियत याफ्ता कहते हैं उनके बीच तो इस उपमा की बड़ी२ बारीकियां निकाली गई हैं किन्तु ग्रामीण और घरेलू बोलचाल में भी इसका अक्षुण्ण प्रयोग किया जाता है जैसे तोर बेटौना सांड, लम्बा जैसे खजूर, पतला जैसे बाल इत्यादि अंग्रेजी में इस प्रकार के कथनकों सिमिली कहते हैं और यह साहित्य की पहिली सीढ़ी है - हिन्दी प्रदीप:सं०११-१२, पृ० १३-१४।

उपमानों के वे भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति ही नहीं कर पाते । उदाहरणार्थ यदि समय का बोधकराना हुआ तो वे स्पष्टतः घंटे और मिनट का समय न बता सकने के कारण यही कहेंगे किजितना समय एक विशेष स्थान से दूसरे स्थान में जाने पर लगता है उतना ही समय इस कार्य में लगेगा । इसी प्रकार जब बच्चों को किसी विशाल स्वरूप की व्यंजना करानी होती है तो वह यही कहता है कि वह इतना बड़ा है जैसे आसमान । इसी प्रकार जब संख्यात्मक अधिकता की उसे व्यंजना करानी होती है तो वह असमान के तारों को उपमान रूप में प्रयुक्त कर अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है । लंबाई नापने के लिए आज तक हाथ की लम्बाई बताई जाती है - जैसे यह कपड़ा दो हाथ लम्बा है । इसी प्रकार चौड़ाई के लिए आज भी जनवर्ग में प्रायः गज फिट इंच या मीटर आदि का प्रयोग न करके अंगुल की चौड़ाई यथा चार अंगुल चौड़ा दो अंगुल ऊँचा आदि ही कहा जाता है । यही प्रक्रिया रंग ध्वनिगंध आदि के सम्बन्ध में क भी है । रंग ध्वनि गंध आदि के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं -

रंगः- आकाश के समान नीला ।
खून के समान लाल ।

गंधः- इसमें धान की सी गंध आ रही है ।
इसमें गुलाब की सुगंध आ रही है ।

ध्वनिः- उसकी आवाज तो कोयल सी है ।
यह तो ऐसे बोलता है जैसे शेर दहाड़ रहा हो ।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं । यहां स्पष्ट है कि वक्ता रंग गंध ध्वनि आदि की स्पष्ट व्यंजना करने में अपने को असमर्थ पाकरउपमानों का सहारा लेता है । भाषा वैज्ञानिक जेस्पर्सन[1] भी इस विषय

---

1. Primitive man and the common people think correctly and entirely on analogical lines. The speech of modern savages, is often spoken of as abounding in similes and all kinds of figurative ~~phases~~ phrases (Jesperson-Language p.432).

में स्पष्ट रूप से लिखता है कि आदिमानव तथा जन वर्ग पूर्णतया सादृश्यता के आधार पर ही सोचता है । जंगली जातियों की भाषा में उपमानों की तथा तुलना करने की विशेषता बहुत देखी जाती है । जंगली तथा असभ्य या ग्रामीण मानव के लिए इन प्रयोगों में कलात्मकता की दृष्टि नहीं है, वरन् उसके पास भावों की अभिव्यक्ति का यह मात्र एक साधन है जिसके आधार पर ही उसे अपने विचारों को श्रोता तक पहुँचाना है । आदिम असभ्य मानव ही नहीं विकसित से विकसित मस्तिष्क वाला व्यक्ति भी प्रायः भावों की अभिव्यक्ति करते समय यह सोचता है कि उसे अपने भावों को स्पष्टतर बनाने के लिए उपमानों का सहारा लेना आवश्यक ही है। लोक भाषा में और बोलचाल की भाषा में जो छोटे छोटे उपमानों तथा सामान्य जीवन से गृहीत वस्तुओं का [illegible] रूप में प्रयोग बहुत बहुत देखा जा सकता है । इन उपमानों के प्रयोग के संदर्भ में इस बात की ओर संकेत करना अति आवश्यक है कि वक्ता उपमानों का प्रयोग उसी समय करता है जबकि वह स्थिति या वस्तुओं का तथावत् प्रयोग करने में अपने को असमर्थ पाता है, तब उसी से मिलती जुलती घटना या वस्तु का वर्णन कर अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है । लोक भाषा तथा लोक गीत और लोक कथाओं में उपमानों का प्रयोग बहुत है । शिष्ट साहित्य में भी उपमानों का प्रयोग होता है किन्तु शिष्ट भाषा तथा लोक भाषा में उपमानों में अंतर है ।

(२) <u>शिष्ट साहित्य तथा लोक साहित्य में प्रयुक्त उपमानों में अन्तर</u>:-

शिष्ट साहित्य तथा लोक साहित्य दोनों में ही उपमानों का प्रयोग होता है, किन्तु दोनों में प्रयुक्त उपमानों में बहुत अंतर है । शिष्ट साहित्य में प्रयुक्त उपमानों के मूल में मुनि मानस का योग है । जबकि लोक साहित्य के उपमानों के मूल में लोक मानस का । मुनि मानस के द्वारा प्रयुक्त उपमान बौद्धिक है, उनके मूल में कवि की कलात्मकता की दृष्टि प्रधान है जबकि लोक गायक या लोक कवि उपमानों का प्रयोग केवल अपने भावों की स्पष्टता के लिए करता है । इसीलिए उसके उपमान सहज अधिक हैं । जीवन की सामान्य वस्तुओं से उसने उपमान चुने हैं, उनमें बनावटी पन नहीं है, कृत्रिमता

नहीं है, वे अधिक प्रभावशाली हैं । शिष्ट साहित्य में प्रयुक्त उपमान भावों की स्पष्टता के लिए भावों को अलंकृत रूप में प्रस्तुत करने के लिए होते हैं और सामान्य जीवन से ग्रहण नहीं किए जाते हैं, इसीलिए वे रूढ़ हो जाते हैं, उनमें बनावटी पन आ जाता है और वे सबको समान रूप से आकर्षक नहीं लगते हैं इन शिष्ट साहित्य के उपमानों के लिए विकसित मस्तिष्क वाले की आवश्यकता है । केशों की उपमा देते हुए उसे प्रेम की सांकल और यमुना की तरंग उपमान रूप में मिलते हैं, माथे के लिए द्वितीया का चांद और सूर्य इसी प्रकार आंखों के लिए खंजन और कमल । इस प्रकार उसके काव्य भंडार में बने बनाए उपमान हैं जिसका सहारा वह लेता है, किन्तु लोक गायक को अपने उद्‌गारों को प्रगट करते समय शास्त्र लेकर उपमान खोजने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वह तो अपने निकट समाज में जिसको अपने भावों की अभिव्यक्ति में समर्थ पाता है, उन्हीं को उपमान रूप में ग्रहण कर लेता है, चाहे उसके ये उपमान उसके दैनिक जीवन में प्रयोग में आने वाली वस्तुएं हों, चाहें प्रकृति गृहीत वस्तुएं । इसकी उसे चिंता नहीं है । यही कारण है कि ये उपमान भावों की अभिव्यक्ति में अधिक समर्थ पाए जाते हैं क्योंकि इनका सम्बन्ध हमारे दैनिक जीवन से है - एक उदाहरण देखिए- एक प्रेमी अपनी प्रेमिका की रूप प्रशंसा कर रहा है । उसके रूप पर वह मुग्ध है । गोरी का प्रत्येक अंग उसे अति प्रिय है, उसकी प्रशंसा के लिए वह उपमानों का सहारा लेता है किन्तु दृष्टव्य है कि ग्रामीण प्रेमी गोरी के लिए सुने सुनाए शास्त्रीय उपमानों को लेकर केशों के लिए सर्पिणी, मुख के लिए चंद्र, नेत्र के लिए खंजन भौंह के लिए कामदेव की सेना आदि उपमानों की झड़ी नहीं लगाता । वह अपने नित्य प्रति जीवन की वस्तुओं को ही उपमान रूप में प्रयुक्त करते हुए कहता है -

> दुरवा निअर तोर जुरवा ए गोरिया,
>
> फुलवा निअर तोर गाल ।
>
> पनवा निअर तू त पातर बाड़ गोरिया,
>
> लोटवा निअर तोर भाल ।

यहाँ केशों के जूड़े के लिए लाठी के हूरे, गाल के लिए मालपुआ पतलेपन के लिए पान तथा मस्तक के लिए लोटा आदि उपमान प्रयुक्त हुए हैं । ये चारों ही वस्तुएँ एक ग्रामीण के दैनिक जीवन के अविभाज्य अंग हैं, इसलिए उसको अति प्रिय हैं । चूंकि गोरी भी उसको अति प्रिय है, अतः वह उसकी उपमा इन्हीं आवश्यक उपकरणों से देता है । एक ग्रामीण का काम लाठी, मालपुआ पान और लोटे से ही चल जाता है । लाठी और लोटा तो उसके प्रत्येक समय के साथी हैं । (लाठी और लोटे के बिना एक सच्चे ग्रामीण की कल्पना ही नहीं की जा सकती), पान और मालपुआ उसके प्रिय खाद्य हैं । इसलिए वह गोरी की उपमा इन्हीं वस्तुओं से देता है । यहाँ जूड़े की सघनता लाठी के हूरे से, कपोल की कोमलता और ललाई की (जो रूप सौंदर्य के लिए आवश्यक है) मालपुए से, पतले पन की पान से तथा उन्नत भाल की उपमा लोटे से जितनी स्पष्ट और सटीक लगती है, अन्य उपमानों से शायद नहीं लग सकती थी । इन्हीं उपमानों की सहजता के संबंध में एक लोक गीत और उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है जिसके विषय राम और सीता हैं-

लोक गीतों के विषय राम और सीता भी बने हैं, तथा राम और सीता के दाम्पत्य प्रेम की व्याख्या और उनकी अभिन्नता का वर्णन जितने सुंदर और युक्तियुक्त ढंग से लोक गीतों में मिलता है, उतना परिनिष्ठित साहित्य में नहीं मिलता । लोक कवि को पान सुपारी तथा टोकरी और पान में अभिन्नता दिखती है । सुपारी के बिना पान और पान के बिना टोकरी की कल्पना लोक कवि के लिए कष्ट कल्पना है, इसीलिए राम और सीता की अभिन्नता दिखाने के लिए वह इन्हीं का सहारा लेता है और कह उठता है -

सीतामा भेयूं धीरे सुपांगुड़ी, राम सेई धीरे पान ।

सीतामा भेयूं धीरे टोकर कुर्यई राम सेइ धीरे पान ।

(जहाँ राम सुपारी हैं, वहा सीता पान हैं, जहाँ सीता टोकरी हैं, राम पान हैं) ।

आगे भी कवि राम और सीता की अभिन्नता दिखाने के लिए अन्य उपमान जुटाता है-

राम हैला जल सीता हैला लहुड़ी ।
राम हैला मेघ सीता हैला घड़घड़ी ।
राम हैला दही सीता हैला लहुड़ी ।
राम हैला घर सीता हैला घरणी ।

(राम जल हो गए और सीता जल तरंग, राम बादल बन गए सीता बिजली की गरज, राम दही बन गए सीता मक्खन, राम घर बन गए सीता घर वाली)।

जिस प्रकार तरंग की कल्पना बिना जल के, बिजली की बिना बादल के मक्खन की बिना दही के और घरवाली की कल्पना बिना घर के नहीं की जा सकती, उसी प्रकार राम की कल्पना बिना सीता के और सीता के बिना राम के नहीं की जा सकती । दोनों का अभिन्न संबंध है । काव्य शास्त्रियों को यहां पुनरुक्ति दोष लगेगा, मक्खन, दही, घर और घरवाली की उपमा में अनौचित्य दोष दिखेगा, किन्तु लोकगायक को इसकी चिन्ता नहीं, उसको यदि चिंता है तो केवल इसी की कि उसके भाव स्पष्ट हो पा रहे हैं या नहीं । और यही लोक उपमानों की विशेषता है कि वे सहज हैं । इस प्रकार शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य में प्रयुक्त उपमानों में पर्याप्त अंतर है । लोक गीतों और शिष्ट साहित्य के उपमानों की विशेषता के संदर्भ में एक मुख्य विशेषता यह भी कि लोक गीतों में प्रयुक्त उपमान स्थूल हैं, अमूर्तन की उपमा भी स्थूल वस्तुओं से ही दी जाती है, जबकि शिष्ट साहित्य में अमूर्तन की उपमा भी अमूर्तन से भी दी जाती है और भाव सहज होने की जगह और भी जटिल हो जाता है । कामायनी का एक छंद देखिए जिसमें अमूर्तन की उपमा अमूर्तन से देने के कारण भाव स्पष्ट होने के अपेक्षा जटिल हो गया है-

कुसुम कानन अंचल में, मन्द पवन प्रेरित सौरभ साकार ।

और पड़ती हो उस पर शुभ्र नवल मधुराका मन की साध ।

हंसी का मद विह्वल प्रतिबिम्ब मधुरिमा खेला सदृश अबाध ।।

—"कामायनी श्रद्धा सर्ग

लोक साहित्य में इस प्रकार के उपमान नहीं मिलेंगे । यहां तक की अतिशयता के प्रसंग में भी यह उपमान स्थूल ही है और उपमानों की यह स्थूलता लोक गीतों में लोक मानस के तत्व के रूप में है ।

भारतेंदु युगीन काव्य में प्रयुक्त उपमानों का वर्गीकरण—

उपमानों का वर्गीकरण मुख्य रूप से दो प्रकार से किया जा सकता है— (१) प्रस्तुत का आधार मानकर— अर्थात एक प्रस्तुत के लिए कौन कौन उपमान प्रयुक्त हुए आदि की सूची बनाकर (२) अप्रस्तुत को आधार बनाकर अर्थात् एक उपमान के लिए कौन कौन प्रस्तुत हैं । किंतु चूंकि विवेचन और वर्गीकरण अप्रस्तुतों का ही रहा है अतः अप्रस्तुत के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत प्रसंग में अधिक समीचीन है ।

अप्रस्तुत मुख्य रूप से तीन वर्गों से लिए गए हैं—

(१) प्राकृतिक (Nature World)

(२) पशु वर्ग (Animal World)

(३) मानव जीवन से संबंधित (Human World)

१— प्राकृतिक जीवन से संबंधित उपमान—

ब्यूकेल[1] और म्यूलन[2] नामक विद्वानों ने लोक मनोविज्ञान के संदर्भ में विचार करते हुए लिखा है कि आदिम मानव या लोक मानस को मानव जीवन तथा प्राकृतिक जगत की वस्तुओं में कोई विशेष अंतर नहीं प्रतीत होता था, उसे प्रकृति में भी जीवन दिखता था। उसे वह अपनी सहचरी

1- Böckel-Psychologie der Volksdichtung.

2- Meulen R.V.P.- Man exerting influence upon nature.

समझता था और उसे भी अपने समान हंसते हुए, रोते हुए, व्यंग्य करते हुए तथा भयंकर वेश में भी देखता था। इसीलिए वह अपने को तथा प्रकृति को बहुत कुछ एक सा समझता था। इसीलिए वह अपनी समानता, या किसी सजीव वस्तु की तुलना भी प्रकृति से करने में हिचकिचाता नहीं था। प्रकृति को अपने ही समान समझना तथा दोनों में किसी प्रकार का अंतर न समझना लोक मानस की विशेषता है। यह लोक मानस का तत्व आज के विकसित मनुष्य में भी उस समय देखने को मिलता है, जब प्रकृति उसे अपने सुख में हंसती हुई दिखाई पड़ती है और अपने दुख के समय ऐसा प्रतीत होता है कि उसके आंखों के आंसू के साथ ही प्रकृति भी आंसू बहा रही है। कभी उसे लगता है कि प्रकृति उसको क्रूर दृष्टि से देख रही है और कभी प्रतीत होता है कि प्रकृति उसकी दशा देखकर कभी कभी उस पर व्यंग कर रही है। प्रकृति का अपनी मनोस्थिति के साथ तादात्म्य कर लेना मानव की सहज प्रवृत्ति है। यही प्रवृत्ति आदिम मानस में थी। मुनिमानस ने इसकी उपेक्षा भी की किन्तु लोक मानस इस वृत्ति की अपनी सहज मानस वृत्ति से संबंधित होने के कारण उपेक्षा नहीं कर सका। इसीलिए उसने प्रकृति की ध्वनियों से (जैसा हम पूर्ववर्ती अध्याय में विवेचन कर चुके हैं) शब्द ग्रहण कर अपनी भावाभिव्यक्ति करनी चाही वहीं उसने अनेक प्राकृतिक वस्तुओं का उपमान बनाकर अपने भावों को श्रोता तक पहुंचाने में सरलता अनुभव की और उसने इस प्रकार प्राकृतिक वस्तुओं को उपमान बनाया। प्रकृति का संबंध लोक गायक ने अपने हृदय की भावनाओं से जोड़ा और अनेक प्रकार के प्राकृतिक उपमानों का अपनी भाषा में प्रयोग किया।

भारतेंदु युगीन काव्य में भी प्राकृतिक वस्तुओं से अनेक उपमान लिए गए हैं। उपमान रूप से गृहीत प्राकृतिक वस्तुएं निम्नलिखित हैं।

चंद्र-

मुख की उपमा कवियों ने चांद से बहुत दी है और चांद को उपमान रूप में रख कर अनेक कल्पनाएं की हैं, जो अधिकतर मुनि मानस

मूर्ति ही प्रतीत होती है । भारतेंदु युगीन कवियों ने भी नख शिख प्रसंग में मुख की तुलना अनेकों बार चंद्र को उपमान बनाकर की है, जो लोक उपमान प्रायः नहीं माने जा सकते । किंतु सामान्य रूप से मुख की तुलना चंद्र से उपमान रूप में की गई लोक साहित्य में भी मिलती है । जहाँ चाँद से मुख की तुलना में मुखमंडल की गोलाई, दीप्ति तथा गौर-वर्णिता लक्षित है । पूर्णिमा की चाँदनी का विस्तार के अर्थ में उपमान रूप में प्रयोग करते हुए कहा गया है कि विक्टोरिया की उज्ज्वल कीर्ति उसी प्रकार अधिकाधिक बढ़े जिस प्रकार पूर्ण चंद्र का प्रकाश संपूर्ण धरती पर बिखर जाता है । (प्र० सर्व० पृ० २६५) । चंद्र का उपमान रूप में प्रयोग एक अन्य स्थान पर और हुआ है जिसमें नायिका के मुख पीले पड़ने की उपमा दिन में निकले हुए चंद्र से दी गई है । इस उपमान में दिन में निकले हुए चंद्र की कान्ति हीनता तथा अधिक पीतवर्णिता की व्यंजना कराई गई है । (भा० ग्रं० पृ० ३६६) ।

जल-

जल का उपमान रूप में प्रयोग सौन्दर्य के ही अर्थ में किया गया है । (भा० ग्रं० पृ० ११६) ।

तरइन-

तरइन अर्थात् तारों का उपमान रूप में प्रयोग संख्यावाची अति-शयिता प्रदर्शित करने के लिए ही हुआ है । अनन्त तारों को देखकर तथा उनकी गणना करने में मानव शक्ति को असमर्थ पाकर किसी की संख्यागत अतिशयिता प्रदर्शित करने के लिए तारों की उपमा देना लोक मानस की प्रवृत्ति के अनुकूल ही है ।

दावानल की ज्वाल -

दावानल की ज्वाल की उपमा नगर में शत्रुओं द्वारा लगाई गई भयंकर अग्नि के लिए दी गई है । दावानल की ज्वाल की उपमा में अग्नि की विकरालता की व्यंजना है । (प्र० सर्व० पृ० १५१) ।

पर्वत-

पर्वत पर रात्रि में जुगुनू चमकने की उपमा कवियों ने काले पहाड़ पर चिनगारी के चमकने से दी है । (प्रे० सर्व० पृ० ६२) । चलने में कठिनाई होना तथा अधिक समय लगने की उपमा पहाड़ पर चढ़ने से दी गई है । यहां पहाड़ पर चढ़ने की कठिनता के कारण अधिक समय लगने की विशेषता पर्वत का उपमान देकर स्पष्ट की गई है (प्रे० सर्व पृ० ८) । पर्वत श्रेणियों से उपमा दांतों की पंक्ति की दी गई है । इस उपमा में पर्वत की श्रेणियों की विशेषता कि वे एक में जुटी हुई हैं, लक्षित है, जो दांतों की पंक्ति की भी विशेषता बतलाती है कि वे बड़े सघन रूप से एक एक कर जुड़े हुए हैं । (प्रे० सर्व० पृ० ६२) ।

बादल-

कृष्ण की उपमा रंग साम्य के कारण श्यामघन से दी गई है (प्रे० सर्व० १९७) । बादल की उपमा काले केशों के लिए भी रंगसाम्य की ही दृष्टि से प्रयुक्त की है (प्रे० सर्व० पृ० ५२२) ।

नदी-

नदी का उपमान रूप में प्रयोग भारतेंदु युगीन कवियों ने कई स्थानों पर किया है । कहीं यह नदी उपमान रूप वर्णन के प्रसंग में है (भा० ग्र० ११६) तो कहीं हृदय के बढ़ते हुए आनंद की उपमा बढ़ी हुई नदी से दी गई है (भा० ग्र० पृ० ११६), कहीं आंखों से बहने वाले आंसू के लिए नदी बहने का उपमान रूप में प्रयोग कर अतिविरह की व्यंजना कराई गई है (भा० ग्र० पृ० ११६) ।

वायु-

वायु का उपमान रूप में प्रयोग उसकी गति संबंधी विशेषता के कारण हुआ है । जहां भी भारतेंदु युगीन कवियों ने वायु का उपमान रूप में प्रयोग किया है, वहां भी वायु उपमान अति तीव्र गति का बोधक है । (प्रे० सर्व० पृ० १५१) ।

वर्षा-

वर्षा की झड़ी का उपमान रूप में प्रयोग कवियों ने अविरल अनुगति के रूप में किया है । भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने वियोगिनी के नयनों से गिरने वाली अविरल अश्रुधारा के उपमान रूप में वर्षा की झड़ी का उल्लेख किया है (भा० ग्रं० १५३) ।

समुद्र-

समुद्र की उपमा कवियों ने उसकी मर्यादा के संबंध में कि उसमें चाहे जितनी ही नदियों का विलय हो उसमें कभी बाढ़ नहीं आती, यह कह कर अतिविपत्ति काल में भी धैर्य न खोने वाले व्यक्ति से दी है । (प्रे० सर्व पृ० १७०) इसके अतिरिक्त समुद्र की भी यह विशेषता है कि प्रत्येक नदियों का विलय उसी में होता है, अतः यदि नदी में कुछ भी डाला जाय तो समुद्र तक अवश्य पहुँचेगा । समुद्र की इस विशेषता को लक्ष्य कर कृष्ण चरण की उपमा समुद्र से देते हुए कहा है कि चाहे भी जिस देवता का भजन पूजन किया जाए वह सारा भजन पूजन कृष्ण के चरणों में ही जाता है (भा० ग्रं० २०) । इसके अतिरिक्त हरिश्चन्द्र की उपमा भी पूर्ण विद्या सिंधु से दी गई है । (प्रे० सर्व० पृ० १६९) । यहां भी समुद्र के उपमान में उसकी पूर्णता की व्यंजना है ।

फूलों से सौंदर्य की उपमा देना, फूलों से शृंगार करना लोक मानस की है शैली तथा लोक सज्जा प्रसाधन ही है । यद्यपि बाद में शिष्ट साहित्य के कवियों ने भी फूलों से अनेक उपमाएं दी हैं जिनमें से अनेक रूढ़ हो गई हैं, किंतु फिर भी जहां तक लोक मानस का प्रश्न है यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि फूलों तथा वनस्पतियों की उपमा देना लोक शैली ही है और यह अति प्राचीन है तथा पुष्पों या वनस्पतियों से उपमा देने की प्रथा केवल भारत या किसी एक विशेष देश से ही संबंधित नहीं है वरन् अनेक देशों में पुष्पों तथा वनस्पतियों से उपमा देने की प्रथा है । लोक गीत आदि में भी इस प्रकार की अनेक उपमाएं दी गई हैं , जो फूलों

तथा वनस्पतियों से संबंधित हैं । भारतेंदु युगीन कवियों के फूलों तथा वनस्पतियों को उपमान रूप में प्रयुक्त किया है । जिनमें से प्रधान का विवेचन प्रस्तुत है ।

पुष्प-

पुष्पों में सबसे अधिक उपमान रूप में प्रयोग कमल का हुआ है और यदि समस्त कमल उपमान संबंधी प्रसंगों को देखा जाए तो प्रतीत होगा कि करीब करीब सभी अंगों के लिए कमल का उपमान रूप में प्रयोग कर दिया गया है । उपमान रूप में प्रयुक्त कमल भी विभिन्न स्थितियों में विविध विषय वस्तु की व्यंजना कराता है । कहीं सामान्य रूप से कमल उपमान रूप में प्रयुक्त हुआ है । (प्रे० सर्व० पृ० १५४, भा० ग्र० ११६ आदि) कहीं कमल की कली का (प्रे० सर्व०,) पृ० १९७) तो कहीं कमल की पंखुड़ी का (भा० ग्र० पृ० १५४) उपमान रूप में प्रयोग हुआ है । कमल की उपमा में मुख्य रूप से कमल की ललाई कोमलता तथा उसकी मसृणता की व्यंजना है । कमल के अतिरिक्त गुलअनार (प्र० सर्व० ११), पलाश के फूल (भा० ग्र० १५३) सरसों के फूल (भा० ग्र० १५३), आम्र पुष्प अर्थात् आम के बौर तथा कुंद के फूल का भी उपमान रूप में प्रयोग हुआ है । नैन की लालिमा की उपमा पलाश के फूल से तथा वियोग में पीले हुए शरीर की व्यंजना कराने के लिए फूली हुई सरसों को उपमान बनाया गया है । यह उपमाएं रंग साम्य के कारण ही दी गई हैं । कुंद की कली की उपमा भी श्वेतरंग को बताने के लिए ही दी गई है (भा० ग्र० पृ० ४१३) । इन फूलों के अतिरिक्त सुगंधहीन पुष्प कनेर का भी उपमान रूप में प्रयोग हुआ है । (भा० ग्र० पृ० ७८४) ।

फल-

भारतेंदु युगीन कवियों ने अनार, आम्र, श्रीफल, इनारुन आदि अनेक फलों का उपमान रूप में प्रयोग किया गया है । अवधेय है कि इन फलों का उपमान रूप में वर्णन अधिकांश रूप से नख शिख वर्णन के प्रसंग में ही है । इनमें से कुछ फलों का यद्यपि उपमान रूप में प्रयोग शिष्ट साहित्य में बहुत हुआ है, किन्तु अवधेय है कि इन उपमानों का प्रयोग लोक गीतों में

भी बहुत हुआ है और इनका संबंध मुख्य रूप से लोक मानस से ही है । भारतेंदु युगीन कवियों ने लालकरौंदे से उसकी लालिमा गत विशेषता के कारण गाल की उपमा दी है (प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ ५२२) ओठों की उपमा कुनरू (प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ ५२२) से ~~कुच~~ कुच की उपमा कठोरता के कारण अनार से (प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ ५२२) कड़ुएपन के लिए इनारू के फल की उपमा (भा॰ ग्र॰) इनको दी है । अवश्य है कि इनारू करौंदे, कुनरू आदि की उपमा लोक साहित्य में देखने को बहुत अधिक मिलेगी जबकि शिष्ट साहित्य में इनकी उपमा कम या नहीं के बराबर मिलेगी । आम के फल का प्रयोग कवि ने उसके पके होकर स्वतः आसानी से गिर जाने वाली विशेषता के कारण गोरी की ठोढ़ी की उपमा पके आम से दी है जिसको देखकर रसिक व्यक्ति मुग्ध हो जाते हैं । (प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ ५२२) । कंद खरबूजे और तरबूज की उपमा का भी नखशिख प्रसंग में प्रयोग हुआ है । तरबूज तथा खरबूजे की उपमा कुच से दी गई है । (भा॰ ५, कथा॰ २, र॰ वा॰) ।

<u>पत्ते, बेल तथा वृक्ष-</u>

पत्ते तथा बेल का उपमान रूप में प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है किन्तु जहां भी पत्ते तथा बेल का उपमान रूप में प्रयोग हुआ है, वहां वह स्त्री सौंदर्य गत है और कोमलता की अभिव्यंजना कराने वाला है । पत्ते का उपमान रूप में प्रयोग इसीलिए नव पल्लव रूप में हुआ है (भा॰ ग्र॰ १५४) । सूखे पत्ते का भी उपमान रूप में प्रयोग हुआ है (र॰ वा॰ भा॰ २, कथा॰ १) । वृक्षों में उपमान रूप में प्रयोग बट वृक्ष का, जो अपनी ~~सघ~~ सघनता शीतलता तथा विशालता के लिए प्रसिद्ध है, हुआ है और प्रयुक्त स्थलों पर बट वृक्ष इन्हीं विशेषताओं का वाचक है । इन्ही विशेषताओं के संबंध में पीपल का भी उपमान रूप में प्रयोग हुआ है । इन विशाल वृक्षों के अतिरिक्त कदली के तने का भी उपमान रूप में प्रयोग हुआ है । यह प्रायः स्त्रियों की जांघों की सुंदरता बताने के लिए उपमान रूप में प्रयुक्त होता है तथा मसृणता का बोधक (प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ २११)। इस प्रसंग में जवासा जो एक कंटीला वृक्ष होता है, जो बरसात में पत्रहीन हो जाता है और शरद ऋतु में फिर पनपता है

पनपता है तथा सेवार जो एक प्रकार की घास है और पानी में बेल के समान सघनरूप से फैलती है और जिसमें पैर पड़ने पर व्यक्ति फंस भी सकता है का भी, जिनका उपमान रूप में प्रयोग भारतेंदु युगीन कवियों ने किया है, उल्लेख आवश्यक है। भारतेंदु युगीन कवियों ने विषय विकार की उपमा जवास (प्रे० सर्व० २०१) से दी है जो ईश्वर कृपा रूपी वर्षा से जवास की भांति विनष्ट हो जाता है। इसी प्रकार खलों के लिए भी जवास का उपमान रूप में प्रयोग किया है, (प्रे० सर्व० पृ० १९८) जो शीघ्र ही विनष्ट हो जाती है। सेवाल उपमान का प्रयोग नख शिख प्रसंग में केशों की सघनाता के लिए (प्रे० सर्व० पृ० २१२, इस भा० ग्र० पृ० ११६) हुआ है। यहां सिवार की उपमा में उसकी सघनता लक्षित है।

पत्ती बेल वृक्ष आदि के अतिरिक्त तृण (तिनका) का भी उपमान रूप में प्रयोग कवियों ने कई बार किया है। यहां तृण का उपयोग उपमान रूप में केवल उपेक्षा भाव की दृष्टि से किया गया है (भा० ग्र० २३६,२४५)।

भारतेंदु युगीन कवियों ने कुछ मणियों का भी उपमान रूप में प्रयोग किया है। वर्षा की बूंदों की उपमा कवि ने मोती से दी है (भा० ग्र० ६३) यहां मोती उपमान में मोती का सफेद वर्ण तथा आकार लक्षित है। जिस प्रकार मोती देखने में अति सुंदर लगता है उसी प्रकार वर्षा की बूंदे भी सुंदर लगती हैं। मोती के अतिरिक्त हीरे की कनीका भी उपमान रूप में कवियों ने प्रयोग किया है। हीरे की कनी के लिए कहा जाता है कि यदि हीरे की कनी शरीर में घुस जाती है तो उसका निकालना दुसाध्य होता है और जितना ही उसे निकालने का प्रयास किया जाए वह धंसती जाती है। इसी विशेषता को लेकर कवियों ने हीरे की कनी का उपमान रूप में प्रयोग किया है।

कुछ स्थलों पर पाषाण का भी उपमान रूप में प्रयोग किया गया है। भारतेंदु ने एक स्थान पर मन के लिए पाहन उपमान का प्रयोग किया है (भा० ग्र० १५४)। यहां पाहन उपमान हृदय की पाहन के समान की कठोरता की व्यंजना कराता है।

प्रकृति के समान ही पशु पक्षी भी अति प्राचीन काल से मानव के सहयोगी रहे हैं, इसीलिए आदिम मानव ने जहाँ प्रकृति के पर्वत, समुद्र, नदी प्रपात, आकाश आदि क से प्रभावित होकर उनकी ध्वनि का अनुकरण कर उनकी सी ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए शब्द निर्माण किए, वहीं पशु पक्षी की ध्वनियों, उसके क्रिया कलापों का सूक्ष्मता से पर्यवेक्षण करते हुए उनका भी उपमान रूप में प्रयोग किया और अपने भावों की अभिव्यक्ति करनी चाही । अवधेय है कि शिष्ट साहित्य में भी पशु पक्षी का उपमान रूप में प्रयोग होता है और लोक साहित्य में भी किंतु दोनों में अंतर यह है कि शिष्ट साहित्य में इस प्रकार के प्रयोग प्रायः अतिरंजना के लिए होते हैं जबकि लोक साहित्य में ये प्रयुक्त उपमान भावों की स्पष्टता के लिए । यही कारण है कि जितनी स्वच्छंदता से लोक कवि उपमानों का प्रयोग करता है, शिष्ट साहित्य का कवि नहीं कर सकता । शिष्ट साहित्य का कवि सुंदरी की आंखों के लिए मीन खंजन आदि का प्रयोग करेगा, किंतु लोक कवि इस प्रकार के उपमानों का प्रयोग नहीं करता है क्योंकि उसका पर्यवेक्षण इतना सूक्ष्म ही नहीं है कि मीन के समान नेत्र कहने से मछली के नेत्रों की चंचलता का अभास पा सके, उसे यदि आंख की शोभा बतानी है तो वह कौड़ी या सीप का प्रयोग करेगा क्योंकि वह इनसे परिचित है और यह स्थूल वस्तुएं उसके भाव बोधन के लिए अधिक सहज हैं । इसी प्रकार यदि मछली का उसे प्रयोग करना है तो वह नेत्रों की तुलना में उसका प्रयोग न कर मीन की उस स्थिति तथा दशा का वर्णन कर सकता है कि मछली का बिना जल के जीवित रहना कठिन है । लोक कवि किसी वियोगिनी की तुलना करते हुए मछली का उपमान रूप में प्रयोग कर कह सकता है कि जिस प्रकार जल के बिना मछली का जीवित रहना कठिन है उसी प्रकार उस वियोगिनी का बिना पति के । पशु पक्षियों की क्रियाओं का सूक्ष्म रूप से पर्यवेक्षण कर सकने के कारण उसने मानव क्रियाओं के लिए पशु जीवन के अनेक उदाहरण लिए हैं । लोक कवि मानव की खान\खाकर अकड़ने की प्रवृत्ति की उपमा - भोजन कर अकरत चले बूढ़े बैल समान" कह कर देता है और खाने पर भुखमरे की तरह टूटने वाले

है । इसीलिए वह उपमान रूप में बिलाव का प्रयोग करते हुए कहता है"ताहि झपट खायो तुरत खल बिलाव सम काल" । इसी प्रकार मृग, हाथी, सर्प, कौवा, कोयल, मयूर, भंवरा, पतिंगा आदि अनेक पशु पक्षियों का प्रयोग हुआ है । पशुओं की क्रियाओं के उपमान रूप में प्रयोग के साथ ही साथ रूप साम्य के रूप में भी इस वर्ग से उपमान लिए गए हैं-कवि मूछों की उपमा बीछी से देता है- बीछी आर सरिस टेढ़ु मूछैं सबही की- यहां बीछी से मूछों की उपमा देने में कवि की दृष्टि बीछी तथा मूछों के रंग साम्य तथा बनावट से है । इस प्रकार के उपमान शिष्ट साहित्य में प्रायः नहीं मिलते ।

पशु पक्षी संबंधी उपमानों में भी उन्हीं क्रियाओं तथा उन्हीं पशु पक्षियों का उपमान रूप में प्रयोग किया जाता है, जिससे जनवर्ग अच्छी प्रकार परिचित होता है । यही कारण है कि इन परिचित क्रियाओं तथा परिचित पशु पक्षियों के रूपों से जनमानस सरलता से भाव बोध कर लेता है । यद्यपि ये क्रियाएं और रूप भाव बोधन अच्छी प्रकार करते हैं, किन्तु लोक मानस प्रवृत्ति के अनुकूल ही कहीं कहीं ये अशिष्ट से भी प्रतीत होने लगते हैं[1] । भारतेंदु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त "निज चेली सुरभीन के हित, तौ मानो सांड" तथा बकरी सा पागुर करता मैं तुझ को पाऊं, कुछ इसी प्रकार के हो गए हैं, जो यद्यपि भावों को अधिक स्पष्टता से सामने रखते हैं किंतु रुचि को परिष्कृत नहीं करते हैं । किन्तु यह स्वाभाविकता और परिष्कार न करने की प्रवृत्ति लोकमानस की ही है । परिष्कार तथा संस्कार करना तो मुनि मानस की प्रवृत्ति है । भारतेंदु युगीन कवियों ने पशुपक्षी वर्ग से अनेक उपमान लिए हैं और बीछी, सर्प, सर्पिणी, बाघ, टिड्डी, मृग, मूषक, मछली, बैल, सांड, बिलाव, बीर बहुटी, मृगी, कौवा, मराल, भंवरा, हाथी, बकवा, विहंग, कोयल, पतंगा, मयूर, खर कूकुर, सूकर, बगुला, तोता, बकरी, मेमना आदि का उपमान रूप में प्रयोग हुआ है । इन जीव जन्तुओं का किस प्रसंग में प्रयोग कवियों ने किया है और ये किस भाव की व्यंजना कराते हैं, इसका भी संक्षिप्त विवेचन आवश्यक है ।

---

1. Vigorous and expressive but at the same time more familiar and popular (some times even vulgar)- Remarks on the similes in Sanskrit Literature-Gond, J.

उल्लू:-

उल्लू की उपमा दिन में प्रकाश न देखने की प्रवृत्ति सम्बन्धी विशेषता के कारण दी गई है। (रा० बा० भाग २, कथा० ८)।

कुत्ता:-

कुत्ते की उपमान रूप में प्रयोग उसकी लोभ प्रकृति अर्थात् असंतोषणी प्रकृति तथा इस प्रकृति के कारण उसके घर घर दौड़ने और व्यर्थ ही समय गंवाने के प्रसंग में हुआ है।(प्रे०सर्व०पृ० १८३, भा०ग्रं०२८४) कुत्ते की पूंछ की विशेषता है कि वह यत्न करने पर भी सीधी नहीं होती। इस प्रकार कुत्ते की पूंछ का उन व्यक्तियों के लिए उपमान रूप में प्रयोग हुआ है जिनको कितना भी सिखाने पर उनकी जड़ता नहीं जाती (रा०बा०भाग २,कथा०३), कातिक के कुत्ते से उन व्यक्तियों की उपमा दी गई है जो सदा ही कामातुर रहते है - (र०वा०भाग३, कथा०२, र०वा०भाग४, कथा०४) इसके साथ ही कुत्ते का उपमा रूप में प्रयोग उन विषयी मूढ़ पुरुषों के लिए भी हुआ है जो इस विषयी संसार में लिपटे रहते हैं जिसको संतों ने छोड़ दिया और इस प्रकार जिस संसार की वासना का मानो वमन संतों ने कर दिया उसमें ही साधारण मनुष्य उसी प्रकार रस लेते हैं जैसे कुत्ता वमन को आनंद से खाता है।(रा०कृ०ग्रं०पृ० ५०)।

कोयल:-

कोयल का प्रयोग उसकी प्रिय तथा कर्ण सुखद ध्वनि के लिए ही हुआ है (भा०ग्रं० ५८, ६५, १५०, १५३)। शिष्ट साहित्य में भी कोयल का उपमान रूप में प्रयोग हुआ है किन्तु शिष्ट साहित्य के साथ ही साथ लोक साहित्य में भी कोयल का उपमान रूप में प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है।

कौवा:-

कौवा का उपमान रूप में प्रयोग उसकी "कांव कांव" वाली ध्वनि जो कर्कश है, एक स्थान पर स्थिर न रहने की प्रवृत्ति अर्थात् कभी घर में कहीं बैठने, कभी कहीं बैठने की प्रवृत्ति (भा०ग्रं०पृ० १६२) तथा हंस की तुलना में दूषित वृत्ति अर्थात् जहां हंस मोती चुगता है वहीं कौवे की विष्ठा या अन्य गंदे स्थानों

पर बैठने की प्रवृत्ति के संबंध में हुआ है । (प्रे०सर्ग०पृ० ३१०) ।

खर :-

खर का प्रयोग भी कुत्ते के समान ही घर घर दौड़ने तथा व्यर्थ समय गंवाने वाले व्यक्ति के रूप में हुआ है ।(भा०ग्रं०२८४) ।

घुनः-

घुन उन छोटे-छोटे कीड़ों को कहते हैं जो लकड़ी या अन्न आदि में लग जाते हैं और धीरे धीरे लकड़ी या गेहूं आदि अन्न जिसमें वह लग जाते है उसे खा डालते हैं । घुन की इसी विशेषता के कारण इसका उपमान रूप में प्रयोग किया है (र०बा० भाग१, सं०८११) इसी प्रकार एक और स्थान पर घुन का उपमान रूप में प्रयोग करते हुए कहा गया है कि देह-का बल वीर्य उसी प्रकार घटता जा रहा है जिस प्रकार काठ घुन लगने से हो जाता है । (र०बा० भाग४, वया०६) ।

चींटीं :-

चींटीं की कतार का उपमान रूप में प्रयोग रोमावलि के लिए हुआ है (र०बा०भाग १, सं०१२) ।

टिड्डी :-

टिड्डी का उपमान रूप में प्रयोग उसके छोटे आकार तथा [illegible] को दृष्टि में रखते हुए किया गया है । (प्रे०सर्ग०पृ०५७) प्रस्तुत प्रसंग में टिड्डी का प्रयोग उन व्यक्तियों के लिए किया गया जो अतिस्वल्प आय तथा खर्चीली प्रवृत्ति होने पर भी बड़ा घर अच्छी तरह चलाना चाहते हैं ।

तोता :-

तोते का उपमान रूप में प्रयोग उसकी नासिका की सुडौलता की तुलना में किया गया है ।(भा०ग्रं० ४१२) ।

पतंगा या पतिगा :-

यों ने पतिंगे की प्रेम की एकनिष्ठता तथा दीपक की निष्ठुरता का उदाहरण माना है क्योंकि पतिंगा तो दीपक के प्रेम में अपना जीवन तक अर्पण कर देता है किन्तु दीपक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता वह उसी भांति जलता रहता है। इस प्रकार पतिंगे और दीपक का उपमान रूप में प्रयोग प्रेम की एकनिष्ठता के संदर्भ में किया गया है (भा० ग्रं० पृ० १८३) यह उपमान लोक साहित्य तथा शिष्ट साहित्य दोनों में ही मिलता है।

बकरी :-

बकरी का शिष्ट साहित्य में उपमान रूप में प्रयोग नहीं मिलता है किन्तु लोक मानस ने बकरी के पागुर करने में विशेषता देखी और इसलिए उसने बकरी के पागुर करने की प्रवृत्ति का उपमान रूप में प्रयोग किया है। (प्रे० सर्व० पृ० १९२) इसके अतिरिक्त एक स्थान पर दाढ़ी की उपमा भी प्रेमघन ने बकरी की दाढ़ी से दी है। (प्रे० सर्व० पृ० २६१) अवधेय है कि यहां बकरी की दाढ़ी का उपमान रूप में प्रयोग बेढंगी बढ़ी हुई दाढ़ी के रूप में हुआ है और यहां व्यंग की दृष्टि प्रधान है। इसके अतिरिक्त सिंह के सामने बकरी बनना कह कर भी बकरी का उपमान रूप में प्रयोग किया गया है (र० वा० भाग ४, कथा० २)।

बगुला :-

बगुला का उपमान रूप में प्रयोग शिष्ट तथा लोक साहित्य दोनों में ही पर्याप्त और विविध प्रसंगों में हुआ है। सबसे अधिक कवियों की दृष्टि, बगुला के गंगाजल में मौन होकर बैठने तथा मछली मारने, पर गई है कि किस प्रकार वह योगी के समान बीगा जल में बैठता है और ऐसा प्रतीत होता है कि ध्यानावस्थित है किन्तु जैसे ही मछली दिखती है वह मार डालता है और खा लेता है। बगुले की इस प्रवृत्ति का प्रयोग जन मानस प्रायः उस व्यक्ति के लिए करता है जो ऊपरी रूप रंगढंग में तो सीधा सादा और साधारण सा लगता है किन्तु अवसर पड़ने पर नीच से नीच कर्म कर सकता है। भारतेन्दुयुगीन कवियों ने इस रूप में बगुले को उपमान रूप में प्रयुक्त किया है (भा० ग्रं० पृ० ३६३)।

इसके अतिरिक्त बगुलों की साथ उड़ती हुई पंक्ति भी जनमानस को बहुत सुंदर लगती है इसलिए बक पंक्ति के साथ साथ उड़ने का भी उपमान रूप में प्रयोग किया है।(प्रे॰सर्व॰पृ॰२०७) बगुले के शरीर में प्रायः पंख ही पंख अधिक रहते हैं मांस बहुत ही कम रहता है जिससे बगुले को लोग मार कर उनका मांस खा सके। अतः इसी को आधार बनाकर तथा बगुले को उपमान रूप में प्रयुक्त कर यह कहावत बना दी गई - बगुला मारे पंखना हाथ अर्थात् बगुला को मारने से केवल पंख ही हाथ लगते हैं अर्थात् परिश्रम व्यर्थ जाता है।

बाघः-

बाघ का उपमान रूप में प्रयोग, उसकी गर्जना अन्य पशुओं पर वीरता पूर्वक आक्रमण कर उनको परास्त करने (प्रे॰सर्व॰पृ॰ २५,५५) तथा दो वृद्ध बाघों के अपने आहार के सम्बन्ध में झगड़ने की प्रवृत्ति के आधार पर किया गया है। (प्रे॰सर्व॰पृ॰ २२)

बिलावः-

बिलाव का उपमान रूप में शिष्ट साहित्य में प्रयोग नहीं हुआ है। लोक साहित्य में बिलाव का उपमान रूप में अनेक प्रसंगों में उल्लेख आता है। भारतेन्दुयुगीन कवियों ने भी उपमान रूप में बिलाव का उल्लेख, किसी व्यक्ति का भुखमरे के समान खाने पर टूटने के प्रसंग में तुलना रूप में किया गया है।(प्रे॰ सर्व॰पृ॰ १७४)

बीछीः-

बीछी का प्रयोग उसके डंक की गंभीरता के संबंध में करते हुए कहागया है कि मोहन के हृदय में प्रेमिका की छवि बीछी के डंक के सदृश कसकती है।(भा॰ ग्रं॰पृ॰ ४५) इसके अतिरिक्त बीछी का रूपरंग साम्य की दृष्टि से भी मूछों के लिए उपमान रूप में प्रयोग किया गया है।(प्रे॰सर्व॰पृ॰ १३)

बैलः-

बैल का प्रयोग असभ्यता तथा मूर्खता दोनों ही प्रसंगों में होता है। भारतेन्दु युगीन काव्य में भी बैल का उपमान रूप में प्रयोग असभ्यता

के ही प्रसंग में हुआ है कि किस प्रकार लोग भोजन कर बूढ़े बैल के समान ध्वनि करते हुए डकारते हैं। (प्रे०सर्व०पृ० १५२), इसी प्रकार अत्यधिक परिश्रम करनेवाले व्यक्ति की उपमा भी बैल से दी गई है। (भा०३, कथा०५)

बीर बहूटी:-

बीर बहूटी उन छोटे छोटे लाल जीवों को कहते जो मखमल के समान लाल रंग वाली होती हैं, और बरसात के समय यह निकलती है और मदटी जाती है। यह बहुत सुन्दर देखने में लगती हैं, अतः शृंगार की हुई रूपवती स्त्री की तुलना बीर बहूटी की उपमा देकर की जाती है (प्रे०सर्व०पृ० २०७)। इसके अतिरिक्त बीर बहूटी की यह भी विशेषता है कि जब भी उसको स्पर्श किया जाता है तो वह सिकुड़ सी जाती है अतः बीर बहूटी की इस विशेषता का भी लोक कवियों ने उन स्त्रियों के लिए उपमानों के रूप में प्रयोग किया है जो लज्जा आदि के कारण सिकुड़ी हुई सी चलती हैं।(प्रे०सर्व०पृ० २२३)

भंवरा:-

भंवरा का रंग काला तथा अति चमकदार होता है। अतः कवियों ने भंवरा से केशों की कालिमा की उपमा बहुत दी है।(प्रे०सर्व०पृ० १९९) इसके अतिरिक्त भ्रमर की यह भी विशेषता है कि वह अनेक फूलों का रस लेता है सब पर मंडराता है किन्तु कभी एक ही फूल में वह नहीं रमता। कवियों ने भ्रमर की इस विशेषता के कारण भौंरा का उपमान रूप में उस व्यक्ति के लिए या प्रेमी के लिए भी प्रयोग किया है जो अनेक स्त्रियों के साथ रहता है किन्तुकिसी के साथ बंधना नहीं चाहता। इसी प्रकार मन की उपमा भी भ्रमर से दी गई है कि वह कभी किसी वस्तु में रस लेता है कभी किसी में। वह स्थिर चित्त नहीं होता। भारतेन्दु युगीन कवियों ने दोनों ही प्रसंगों में भंवरे का उपमान रूप में प्रयोग किया है।(भा०ग्रं०४८, २७८)

मृग-मृगी:-

मृग तथा मृगी के उपमान शिष्ट तथा लोक साहित्य दोनों में ही प्रयुक्त मिलते हैं। मृग तथा मृगी के नेत्रों से उनकी विशालता, तथा चंचलता आदि विशेषताओं के कारण सुन्दरियों की आंख की उपमा दी गई है। मृग

मृगी का इस विशेषता के कारण अनेक कवियों ने उपमान रूप में प्रयोग किया है । भारतेन्दु युगीन साहित्य भी अपवाद नहीं है । (भा० ग्रं० ४८) इसके अतिरिक्त मृग तथा मृगी में डरकर या संकट में पड़े होने पर अति तीव्र गति से भागने की भी प्रवृत्ति है ।(प्रे० सर्व० १४३) इस प्रवृत्ति को बताने के लिए कवियों ने डरकर भागने के प्रसंग में मृग मृगी का उपमान रूप में प्रयोग किया है (प्रे० सर्व० १४३) मृगी की चकित दृष्टि को भी कवियों ने उपमान रूप में प्रयुक्त किया है ।(प्रे० सर्व० पृ० २२४)

मीनः-

मछली के नेत्रों से उनकी सजलता, चंचलता की विशेषता के कारण सुंदरियों के नेत्रों की तुलना करने की प्रवृत्ति यद्यपि शिष्ट साहित्य के कवियों में बहुत मिलती है और ~~अनेकों~~ इस दृष्टि से अनेकों बार कवियों ने मछली की उपमा नेत्र का सौंदर्य बताने के लिए दी है, किन्तु जैसा कि ऊपर ही कहा जा चुका है । इस रूप में मछली का उपमान की तरह प्रयोग लोक मानस की विशेषता नहीं हो सकती क्योंकि लोक मानस इतना सूक्ष्म पर्यवेक्षण कर ही नहीं सकता यह तो मुनि मानस की विशेषता है । जिसके कारण उसने मछली के नेत्रों में भी सुन्दरता देखी है । लोक मानस प्रवृत्ति से संबंधित न होने के कारण ही लोक गीतों में नेत्रों के लिए मीन की उपमा दी गई नहीं मिलती । मछली की उपमा मछली की उस अवस्था को या विशेषता को लक्ष्य में रखकर दी गई है कि मछली बिना जल के जीवित रह नहीं सकती वह तड़पती ही रहती है । इस विशेषता को लक्ष्य में रखकर लोक कवियों ने मछली की उपमा उन वियोगिनी प्रेमिकाओं के लिए बहुत दी है जिन्हें प्रेमी बिना अपना जीवन जल के बिना मछली के जीवन सा कष्ट कर तथा प्राणांतक लग रहा है । प्रे० सर्व०, पृ० ९१, भा० ग्रं० -१० 1073, र० बा० भाग २, क्या० ३) ।

मरालः-

मराल या हंस की उपमा उसकी मोती चुगने की विशेषता तथा उसकी स्वच्छता के आधार पर दी गई है और इस प्रसंग में मराल के बिल्कुल विपरीत विशेषता वाले कौवे का उल्लेख किया गया है ।(प्रे० सर्व० पृ० ३१०)

मयूर :-

मयूर के लिए प्रसिद्ध है कि अच्छा नृत्य जानते हुए भी वह एकांत में ही जंगल में उन्मुक्त भाव से नृत्य करता है और जहां उसके सामने कोई व्यक्ति आया, उसकी वह स्वाभाविकता समाप्त हो जाती है। मोर की इस विशेषता को देख कर लोक मानस ने मोर के नाच को उपमा उस व्यक्ति से भी दी है जो व्यक्ति एकांत में कोई प्रशंसनीय कार्य करे किन्तु समाज या और व्यक्ति उसके इस कार्य को न जान सके। यह उपमा लोक में इतनी प्रचलित है कि इसके आधार पर "जंगल में मोर नाचा किसने देखा" लोकोक्ति भी बन गई है। भारतेन्दु युगीन कवियों ने इस प्रसंग में मोर का उपमान रूप में प्रयोग किया है। (भा० प्र० पृ० ६६)

मूषक :-

मूषक एक अति छोटा जीव है जो अपनी लघुता, निर्बलता तथा धृष्टता या दुष्टता के लिए लोक में प्रसिद्ध है। अपनी लघुता तथा निर्बलता के कारण इसका जीव वर्ग में विशेष महत्व नहीं है और इसे मारना अति सरल है। अतः इसका उपमान रूप में प्रयोग उस व्यक्ति के लिए हुआ है जिसे मारना या तंग करना अति सरल हो और वह कोई हानि न पहुंचा सके। (प्रे० सर्व० पृ० ६६)

मेमना :-

भेड़ के बच्चे को मेमना कहते हैं। अत्यन्त दुखित तथा कष्टावस्था में पड़कर तथा उबरने का कोई उपाय न देखकर रोने और चिल्लाने वाले व्यक्ति को उपमा मेमने के चिल्लाने से दी गई है। (प्रे० सर्व० पृ० १८८)

मच्छर :-

मच्छर अपने लघु आकार सम्बन्धी विशेषता के कारण भी उपमान रूप में प्रयुक्त हुआ है। कहा गया है कि जिस प्रकार आकाश की थाह मच्छर नहीं पा सकता, उसी प्रकार अमुक कथा का पार अल्प मति वाला कैसे पा सकता है। (सा० स० सं० १, सं० ९)

सर्प और सर्पिणी :-

सर्प और सर्पिणी की उपमा उनके काले रूप तथा टेढ़ी मेढ़ी गति की विशेषता के कारण केशों से ऐंठे और उठे हुए फन से ऐंठी और उठी हुई प्रभावशाली दाढ़ी से उपमा दी गई है (प्रे०सर्व० पृ० १३)।इसके अतिरिक्त तूमड़ी की ध्वनि सुनकर मुग्ध हुए सर्प से भी उस व्यक्ति की उपमा दी गई है जो विशेष परिस्थिति में पड़कर अपनी सुध बुध भुला देता है (प्रे० सर्व० पृ० ७२) । इसी प्रकार बिना प्रेमी के व्यतीत होने वाली रात्रि की उपमा सांपिन से दी गई है, जो सांपिन के समान ही काट कर कष्ट पहुंचाने वाली है । (भा०ग्रं० ५०५) नाग उपमान का प्रयोग वर्णसाम्य के कारण व्यक्ति के रूप के लिए भी हुआ है । (प्रे०सर्व०पृ० २६३)

सांड:-

सांड का प्रयोग कवि प्रेमघन ने उन गोस्वामियों के लिए किया है जो वैरागी तथा गोस्वामी बनते हुए भी अपने उपयोग के लिए अनेक सांड रक्खे हुए हैं ।(प्रे०सर्व०पृ० १५७) यहां सांड उपमान उन गोस्वामियों की कामुकता की तथा उनकी अपनी स्वार्थ भावना की व्यंजना कराता है ।

शूकर:-

शूकर की उपमा गदहे और कुत्ते के साथ ही उस व्यक्ति से दी गई है जो व्यक्ति लोभी और असंतोषी प्रकृति के कारण ज़रा ज़रा सी वस्तु पाने के लिए इधर उधर दौड़ता है और अपना समय व्यर्थ गंवाता है । (भा०ग्रं० पृ० २८४)

हाथी:-

हाथी अपनी मस्त चाल के लिए लोक में अति प्रिय है कि किस प्रकार वह अपने मद में मस्त हुआ झूमता हुआ धीरे धीरे चलता है । सुंदरियों के चाल की उपमा हाथी की चाल से दी गई है । (प्रे०सर्व०पृ० १९९,२००, भा०ग्रं० ५८)। मन की उपमा भी हाथी से दी गई है (भा०ग्रं०५०८) यहां हाथी का उपमान रूप में प्रयोग हाथी की स्वच्छंद वृत्ति तथा किसी के वश में न रहने की प्रवृत्ति को व्यंजित करता है कि जिस प्रकार मदमस्त हाथी वश में नहीं हो

पाता उसी प्रकार मन भी शीघ्रता से वश में नहीं किया जा सकता ।

मानव वर्ग तथा मानव जीवन से गृहीत उपमान Similes from the human world)-

इस वर्ग में उन उपमानों की गणना की गई है जो न प्रकृति वर्ग से संबंधित हैं न पशु वर्ग से वरन् मानव जीवन से लिए गए हैं । इस वर्ग के उपमानों का मुख्य रूप से दो वर्गों में वर्गीकरण किया जा सकता है - प्रथम वे उपमान जो व्यक्ति से संबंधित है जैसे कैदी, जुआरी, दुलहिन, नटुआ, पागल, आदि से, दूसरे वे उपमान हैं जो व्यक्ति का बोध न कराकर वस्तुओं का बोध कराने वाले हैं । ऐसे वस्तुओं से सम्बन्धित नाम अनन्त तथा विभिन्न प्रकार के हैं, कहीं उपमा गाड़ी से दी गई है, तो कहीं चिलम, शरबत, रुई, घी आदि जीवन की साधारण वस्तुओं से दी गई है । इस वर्ग के उपमानों का तथा उनके द्वारा अभिलक्षित लक्षित अर्थ का संक्षेप में नीचे विवरण प्रस्तुत है । सर्व प्रथम उन उपमानों का वर्णन किया जाता है जो व्यक्तियों से संबंधित हैं -

कैदी :-

कैदी की उपमा का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए किया गया है जो दूसरे व्यक्ति के आधीन रहता है । अपनी इच्छानुसार कोई कार्य नहीं कर सकता है ।(प्रे०सर्व०पृ० ५४)

कुलवधू:-

पितर पक्ष के प्रसंग में भक्ति सहित सारे अनुष्ठानों को विधिवत् सम्पन्न करने वाली नारी को ईश्वर द्वारा बनाई गई कुलवधू कहा गया है (प्रे०सर्व०पृ० १५६) । यहां ईश्वर द्वारा रची हुई कुलवधू उपमान कहने से उसे नारी की व्यंजना कराई गई है जो सभी स्त्री सब प्रकार के गुणों से युक्त है जिसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है । इस प्रकार ईश्वर निर्मित कुलवधू से गुणों की अतिशयिता की व्यंजना कराई गई है ।

जुआरी-

जुआरी की उपमा में कवियों का संकेत जुआरियों की ~~अपनी~~ अपनी दांव के समय शोर करने की प्रवृत्ति की ओर है। प्रेमघन ने नगर के चारों ओर भिरी हुई खाई में शोर करते हुए मेढ़कों की उपमा देते हुए कहा है कि ऐसा प्रतीत होता है मानों दांव के लिए जुआरी शोर कर रहे हों। (प्रे० सर्व० पृ० १०)।

दुलहिन-

दुलहिन की उपमा में दुलहिन की घूंघट काढ़ने की रीति तथा इतराने की प्रवृत्ति लक्ष्य है। (प्रे० सर्व० पृ० १०)।

दधीच-

दधीच की दानवीरता प्रसिद्ध है कि उन्होंने देवताओं की रक्षा के लिए अपना जीवन दान तक दे दिया था तब से दानी व्यक्ति के लिए लोक वर्ग दधीच की उपमा देता है। प्रेमघन ने भारतेंदु के लिए उनकी परोपकारिता बतलाते हुए उन्हें दधीच कहा है (प्रे० सर्व० पृ० १००)

नटुआ-

नटुआ उस व्यक्ति को कहते हैं जो नट के अधीन रहता है और नट के अनुसार अपनी कलाबाजियां दिखाता है। नट जिस प्रकार का काम उससे चाहता है करवाता है। नटुआ ही लोगों से पैसा मांगने जाता है, स्वयं परिश्रम करता है। नटुआ की इस विशेषता के कारण ही उन व्यक्तियों को नटुआ कहा गया है जो धर्म धन आदि खोकर द्वार द्वार भीख मांगते फिरते हैं। (प्रे० सर्व० पृ० ४९)। इसके अतिरिक्त एक और स्थान पर जीव की उपमा नट से देते हुए कहा गया है - कि जिस प्रकार नट विविध स्वांग करता है उसी प्रकार जीव भी संसार में आकर अनेक स्वांग रचाया करता है। (र० दा० भा० ४, क्मा० २)।

बावरी तथा दिवानी-

बावरी तथा दिवानी विक्षिप्त मस्तिष्क वाली स्त्री को कहते हैं जो साधारण मानव की तरह व्यवहार नहीं करती है । भारतेंदु युगीन कवियों ने बावरी तथा दिवानी की उपमा कई स्थानों पर दी है और उस उपमा में झुक झुक कर झूमना, ऊँट पटांग बोलना, और बौराते हुए चलना, विभिन्न प्रकार की आवाजें करना, कभी मौन रहना कभी किसी बात की रट लगाना, सिर धुनना, आभरन तोड़ना आदि अनेक विशेषताओं का उल्लेख किया है । (भा० ग्रं० ७४, ८६१-८६३) । "दिवानी" की उपमा देते हुए भारतेंदु ने अनेक समस्या पूर्तियाँ भी की थी (भा० ग्रं० ८६१-८६३) ।

भरतदास-

भरतदास से तात्पर्य राम के छोटे भाई भरत जो अपने बड़े भाई को स्वामी तथा अपने को उनका दास समझते है, से है । अपने बड़े भाई एवं स्वामी के प्रति उनके प्रेम की एकनिष्ठता प्रसिद्ध है और लोक वर्ग एक निष्ठता तथा भ्रातृ स्नेह के रूप में भरत को आदर्श मानता है और इसीलिए एकनिष्ठता के उदाहरण में भरतदास को रखता है । भारतेंदु युगीन कवियों ने भरत का इसी एकनिष्ठता के रूप में उपमान स्वरूप उल्लेख किया है । (प्रे० सर्व० पृ० २५९) ।

रामराज-

लोक मानस के लिए आदर्श राजा राम और आदर्श राज्य उनका राज्य राम राज्य है, जिसमें किसी व्यक्ति को किसी प्रकार का कष्ट नहीं है सब सुखी हैं या यों कहिए आदर्श राजा और आदर्श राज्य की जो भी विशेषताएं हो सकती हैं सभी रामराज्य में है । इसी भावना से जब भी लोक मानस किसी को अच्छा समझता है, तो वह उपमान रूप में राम राज का उल्लेख ही करता है । प्रेमघन आदि अनेक कवियों ने रामराज की उपमा दी है । (प्रे० सर्व० पृ० २९७)

लोमश-

लोमश ऋषि अपनी अमरता के लिए प्रसिद्ध हैं । इनके लिए कहा जाता है यह बड़े बड़े श्वेत केशों वाले ऋषि हैं । अमरता संबंधी विशेषता के रूप में ही इनका उपमान रूप में प्रयोग भारतेंदु युगीन काव्य में भी हुआ है (प्रे० सर्व० पृ० १७०) ।

मानव जीवन से गृहीत उपमानों में दूसरा वर्ग उन उपमानों का है, जो व्यक्ति से संबंधित न होकर, व्यक्ति का बोध न कराकर वस्तुओं का बोध कराते हैं । इस प्रकार के उपमान अनन्त तथा विविध प्रकार के हैं । भारतेंदु युगीन काव्य में इस प्रकार के प्रमुख उपमानों का विवेचन प्रस्तुत है ।

अलोना व्यंजन -

अलोना (बिना नमक का) व्यंजन का भी उपमान रूप में प्रयोग भारतेंदु युगीन काव्य में मिलता है । भारतेंदु हरिश्चन्द्र अलोना व्यंजन को उपमान रूप में प्रयोग करते हुए कहते हैं कि राज पाट, हय, गज, रथ इत्यादि धन धाम, हीरा मोती पन्ना मानिक, खाना पीना नाच तमाशा सब उसी प्रकार राम के बिना व्यर्थ है जिस प्रकार व्यंजन (भोजन) नमक के बिना होता है (भा० ग्रं० पृ० ८६४)

कुतुबनुमा-

कुतुबनुमा वह यंत्र है जिसके माध्यम से दिशा ज्ञान होता है । कुतुबनुमा का भी उपमान रूप में प्रयोग एक गीत में हुआ है । कुतुबनुमा का उपमान रूप में प्रयोग करते हुए कहा गया है कि यह चित्त कुतुबनुमा के समान जिधर प्रिय रहते हैं उधर ही चला जाता है । अर्थात जिस प्रकार कुतुबनुमा चाहे भी जिधर रक्खा जाय वह एक ही निश्चित दिशा की ओर संकेत करेगा उसी प्रकार यह चित्त भी सर्वदा जहाँ प्रिय रहते हैं वहीं रहता है (प्रे० सर्व० पृ० ४१४) ।

कूपः-

संसार की उपमा कूप से देने की परिपाटी पुरानी है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने भी संसार की उपमा कूप से दी है (भा० ग्रं० पृ० ५) संसार की उपमा कूप से देने में संसार की मोहमाया की जटिलता तथा उसमें से निकलने की कठिनता व्यंजित है । जिस प्रकार गहरे कुएं में गिर जाने से निकलना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार व्यक्ति भी संसार रूपी कूप में गिरकर कठिनता से निकल पाता है ।

खलिहानः-

खलिहान अनाज के गोदाम को कहते हैं जिसमें मनों अनाज भरा रहता है । युद्ध में हजारों व्यक्तियों को मारकर उनको वैसे ही छोड़ देने के प्रसंग में खलिहान का उपमान रूप में प्रयोग हुआ है । (प्रे० सर्व० पृ० १४६,१४८) यहां खलिहान उपमान में मृत व्यक्तियों की अधिकता तथा आक्रमणकारियों की निर्दयता की व्यंजना है ।

गठरी :-

झुकी कमर वाले सिमट कर बैठे हुए वृद्ध की उपमा गठरी से दी गई है । गठरी उपमा में वृद्ध व्यक्ति के शिथिल हुए अंगों तथा झुके हुए कमर की व्यंजना की गई है ।(प्रे० सर्व० पृ० १६)

गिंडुरी :-

बालों के घुंघराले पन की उपमा गिंडुरी से दी गई है । (भा० ग्रं० पृ० ३७१)

घृतः-

"वर्षा विरहाग्नि में घी के समान है" कहकर वर्षा की उपमा घृत से दी गई है, जिस प्रकार घी अग्नि को और अधिक प्रज्वलित करता है उसी प्रकार वर्षा विरहाग्नि को और अधिक प्रदीप्त करती है ।(भा० ग्रं० पृ० ११५)

चुम्बकः-

आंखों की आकर्षण शक्ति के विषय में बताते हुए आंखों के लिए चुम्बक का उपमान रूप में प्रयोग हुआ है कि जिस प्रकार चुम्बक से लोहा आकृष्ट होता है उसी प्रकार इन नेत्रों में भी आकर्षण शक्ति है । (प्रे॰सर्व॰ पृ॰ ४३३)

चिलमः-

चिलम लोक वर्ग के लिए अति प्रचलित वस्तु है, जिसमें गांव के लोग तमाखू रखकर पिया करते हैं । चिलम की उपमा मुंह खोलकर हंसने वाले व्यक्ति के मुंह से दी गई है । (प्रे॰सर्व॰पृ॰ १९२) इसमें मुंह के पूरे खुले होने तथा अभद्रता के साथ हंसने की व्यंजना की गई है ।

जालः-

जाल की उपमा भारतेन्दु युगीन कवियों ने अनेक स्थानों पर दी है उदाहरणार्थ रूप को जाल कहा गया है । यहां रूप में जाल की समस्त विशेषताएं आरोपित है कि जिस प्रकार जाल में फंसकर निकलना कठिन होता है, उसी प्रकार रूप के मोह में फंसकर उससे मुक्त होना कठिन है ।(भा॰ग्रं॰ पृ॰ ४८)

जहाज़ः-

हरिश्चन्द्र की उपमा जहाज़ से दी गई है और उन्हें कविता का जहाज़ कहा गया है और कहा गया है कि हरिश्चन्द्र के मरने से मानों कविता का जहाज़ ही डूब गया (प्रे॰सर्व॰पृ॰१६९) । यहां जहाज उपमान में हरिश्चन्द्र की कविता क्षेत्र में नेतृत्व शक्ति की व्यंजना कराई गई है कि जिस प्रकार जहाज़ के डूब जाने से उसमें बैठे हुए सभी व्यक्ति डूब जाते हैं उसी प्रकार हरिश्चन्द्र के मरने से कविता का अस्तित्व भी समाप्त सा हो गया ।

झब्बाः-

झब्बा तारों या सूतों आदि का गुच्छा या फुंदना जो कपड़ा या

आभूषण में शोभा के निमित्त लगाते हैं, कहा जाता है । प्रेम धन ने झब्बा से भी उपमा सुंदरता दिखाने के लिए दी है ।(प्रे०सर्व०पृ० ११)

ढाल:-

हरिश्चन्द्र के लिए ढाल उपमान का प्रयोग किया गया है । यहां ढाल उपमान में हरिश्चन्द्र का ढाल के समान दूसरों की आपत्ति तथा विपत्ति को अपने ऊपर लेकर दूसरों की रक्षा करने की विशेषता लक्षित है । (प्रे०सर्व०पृ० १७१ ।

तावा:-

तवा का ही तावा रूप है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने सूर्य से तपी हुई भूमि की उपमा उसकी गरम सम्बन्धी विशेषता के कारण तवे से दी है । (र०वा०भा०२, क्या०८) भूमि के तपने के अतिरिक्त शरीर के अतिरिक्त जलने की उपमा भी तवा से दी गई है । (र०वा०भाग १, क्या०२)

नाले:-

आंखों से आंसू गिरने की अधिकता की व्यंजना कराने के लिए नाले का उपमान रूप में प्रयोग करते हुए कहा गया है कि आंखों से पानी ऐसा बह रहा है, मानों नाले चल रहे हैं। (श्यामलता, पृ० १२)

पतंग और डोर:-

डोर और पतंग का उपमान रूप में प्रयोग नेत्रों के लिए प्रेमघन ने करते हुए लिखा है कि यह नेत्र उसी प्रकार दूसरों को आकर्षित करते हैं, अपनी ओर खींचते है जिस प्रकार पतंग को डोर से खींच लिया जाता है (प्रे० सर्व०पृ० ४३१) ।

फिरकी:-

फिरकी छोटे बालकों का लोकानुरंजन साधन है । फिरकी उपमान उन नारियों के लिए प्रयुक्त हुआ है जो प्रियतम की प्रतीक्षा में उत्सुकता वश कभी झरोखे जाती है तो कभी अटारी पर चढ़ती हैं । इस प्रकार एकक्षण

के लिए भी वे स्थिर नहीं बैठती हैं और इधर उधर घूमती रहती हैं । (र० वा०भाग २, कथा० १०), (र०वा०भाग १, कथा०२, र०वा०भाग ४, कथा०२)

मसान:-

मसान की उपमा द्वारा स्थान की निर्जनता तथा आस पास की मुर्दों द्वारा हुई भयंकर स्थान की व्यंजना कराई गई है ।(प्रे०सर्व०पृ० १४८)

मछुए की बंसी:-

मछुए की बंसी का भी भारतेन्दु युगीन कवियों ने उपमान रूप में प्रयोग किया है (प्रे०सर्व०पृ०२१३) । इस उपमानका प्रयोग करते हुए प्रेमघन गोपियों की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि गोपियां लमुन लाज की जंजीरों से उसी प्रकार जकड़ी हुई हैं, जिस प्रकार मछली धीमर की बंसी में फंस जाती है और वह न तो बंसी में लगे हुए खाद्य को लोभवश छोड़ पाती है और न ही मछुए की बंशी से इस प्रकार बच पाती है ।

मेटी:-

मेटी मटका या मट्टी के घड़े को कहते हैं । मेटी का उपमान रूप में प्रयोग उसकी ललाई के कारण गाल के लिए भी प्रयोग हुआ है । यहां मेटी उपमान से गाल की ललाई तथा गालों के उभरे हुए पन का बोध कराया गया है ।(प्रे०सर्व०पृ० २९७) अवश्य है कि मेटी, लौटा, पुअवा आदि उपमानों का प्रयोग सौन्दर्य बोध कराने के प्रसंग में करना लोक मानस की ही विशेषता है । लोक मानस को इस बात की चिन्ता नहीं, उसकी ये उपमाएं किसीको अच्छी लगें या न लगें उसकी उपमाओं को काव्यशास्त्री फूहड़ ही क्यों न कहें तो केवल यही चिन्ता है कि उसके भाव स्पष्ट हो पा रहे हैं या नहीं । भाव स्पष्टीकरण में लोक मानस की अधिक दृढ़ आस्था है अपेक्षा कृत सुरुचिपूर्ण उपमानों के प्रयोग में । यही कारण है कि वह लौटे मटके आदि का सौंदर्य प्रसंग में भी उपमान रूप में प्रयोग करता है । प्रस्तुत प्रसंग में मेटी का उपमान रूप में प्रयोग केवल गाल की ललाई दिखाने के लिए प्रयोग किया है । कुच की उपमा भी कवियों ने घड़े से दी है ।(भा०ग्रं०४५) यहां घड़ा कुच काठिन्य की व्यंजना करता है ।

रुई:-

रुई का शीघ्र ज्वलनशीलता के सम्बन्ध में प्रयोग करते हुए कहा गया है कि मधुसूदन का पूजन करने तथा दान सहित तप व्रत कर देने से अनेक जन्मों के पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार तूल अर्थात् रुई आग लगने से नष्ट हो जाती है ।(भा०ग्रं०,९१)

शरबत:-

शरबत सा पी जाने की उपमा बुरी से बुरी लगने वाली बात को सरलता से सुन लेने तथा बुरा न मानने के प्रसंग में दी गई है ।(प्रे०सर्व०पृ०१९३)

शतरंज की मोहर:-

शतरंज की मोहर उपमान उन व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त हुआ है जो दूसरों के आधीन हैं और दूसरों की इच्छानुसार ही जो कार्य करते हैं । शतरंज की मोहरे अपने स्थान से तब तक नहीं खिसक करतीं जब तक खिलाड़ी उनका स्थान न बदले, उसी प्रकार दूसरों के आधीन रहने वाले व्यक्ति भी स्वतः कुछ नहीं कर सकते । (प्रे० सर्व० पृ० ५६)

सिकड़ी:-

सिकड़ी "सिक्कड़" को कहते हैं । सिक्कड़ खेत नापने का एक नाप है । गांवों में खेत नापने के लिए सिक्कड़ का प्रयोग अब भी होता है । इसका उपमान रूप में प्रयोग भारतेन्दु युगीन कवियों ने किया है । सिकड़ी का उपमान रूप में कवि ने प्रयोग कभी दिखाने तथा हीनता दिखाने के अर्थ में किया है (प्रे०सर्व०पृ० १५६) ।

सोना:-

लोक जीवन में सोने की उपमा में सोने की पीतवर्ण सम्बन्धी विशेषता लक्षित है । कमजोर व्यक्ति का रंग भी चूंकि कमजोरी के कारण पीला सा पड़ जाता है, इसलिए रंग की यत्किंचित् समानता देखकर लोक मानस ने कमजोर व्यक्ति की उपमा सोने से दी है । इस प्रसंग में एक बात

विशेष महत्व की है यह उपमान प्रायः कामिनियों से ही संबंधित है, तथा उनकी ही दशा वर्णन के लिए सोने का उपमान रूप में प्रयोग होता है । भारतेन्दु युगीन काव्य भी इस दिशा में अपवाद नहीं है । (र०वा०भाग२, क्या०८, र०वा०भा०२,क्या०१०)

स्वप्न की कथा:-

स्वप्न की कथा असत्य होती है । वस्तुतः वह कभी घटित नहीं होती है । स्वप्न की कथा की असत्यता संबंधी विशेषता के कारण इसकालोक जीवन में अनेक स्थानों पर उपमान रूप में प्रयुक्त किया है । भारतेन्दु युगीन काव्य में भी स्वप्न की कथा का उपमान रूप में प्रयोग हुआ है ।(र०वा०भा०२,क्या०९), इसी प्रकार स्वप्न की सम्पत्ति का भी उपमान रूप में प्रयोग हुआ है (र०वा० भा०२, क्या०१) ।

होलिका:-

होलिका उस अग्नि को कहते हैं जो होली पर प्रत्येक चौराहों के मध्य लकड़ी जलाई जाती है । युद्ध के समय में शत्रुओं द्वारा घरों को फूंकने के लिए घरों में लगाई हुई आग की उपमा कवि ने होलिका से दी है ।(प्र० सर्व०पृ० १४७) अवधेय है कि होलिका उपमान अग्नि की भयंकरता तो लक्षित है ही, साथ ही जिस प्रकार होलिका में लोग दूसरों के घरों की वस्तुएं चुरा छिपाकर लाकर जबरदस्ती होली की अग्नि झोंककर आनंद मनाते हैं उसी प्रकार शत्रुओं की स्त्रियों, बालकों तथा कन्याओं को उन्हीं के घर में आग लगाकर तथा झोंककर आनंद मनाने में क्रूर हास की भावना भी विद्यमान है ।

उपर्युक्त भारतेन्दु युगीन उपमानों के वर्गीकरण तथा विवेचन से स्पष्ट है कि कवियों ने प्रकृति पशु जीवजन्तु तथा मानव जीवन से संबंधित सभी वर्गों से उपमान ग्रहण किये हैं । अब संक्षेप में इन लोक उपमानों की सामान्य विशेषताओं का विवेचन प्रस्तुत है जिससे यह स्पष्ट होता है कि ये उपमान लोक मानस प्रवृत्ति के पूर्णतया अनुकूल हैं ।

सर्वप्रथम उपर्युक्त उपमान साहित्य उपमान नहीं है और नहीं यह कलात्मकता सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति के परिचायक हैं और नहीं इनका प्रयोग विशेष काव्यात्मक सौंदर्य के लिए किया गया है। इन उपमानों का प्रयोग केवल भावों को स्पष्टतर बनाने के लिए किया गया है यही कारण है कुत्ता, कौवा, शूकर, मेमना, बकरी आदि का उपमानों के रूप में प्रयोग हुआ है। शिष्ट साहित्य के कवि को यह उपमान काव्य के योग्य नहीं लगेंगे, इनमें इसे अनौचित्य दोष दिखेगा और न ही ये उपमान परिष्कृत रुचि वाले लगेंगे, लेकिन लोक साहित्य और लोक भाषा के कवि को यह चिन्ता नहीं है कि ये उपमान कलात्मक है या नहीं उसे केवल यही चिन्ता है कि उसके भावों को स्पष्टतर बनाने में यह उपमान सफल है या नहीं। इसीलिए कहीं कवियों ने शृंगार सुसज्जित स्त्री की वीर बहूटी से तुलना की (प्रे॰सर्व॰पृ॰ २२३,२२७) कहीं प्रजा को मेमना सा चिल्लाने वाला कहा (प्रे॰सर्व॰२२१) कहीं दाढ़ी की उपमा बकरी की दाढ़ी से दी (प्रे॰सर्व॰पृ॰ २६१) तो कहीं असंतोषी तथा लोभी प्रकृति वाले व्यक्ति की उपमा कूकुर और शूकर से दी। पशु वर्ग में ही नहीं मानव वर्ग तथा मानव जीवन से संबंधित वस्तुओं के उपमान रूप में प्रयुक्त करने की पृष्ठभूमि में लोक कवि की उपर्युक्त दृष्टि ही प्रधान है। इसीलिए चिलम, शरबत, रूई, गठरी, मसान, सिकड़ी, मेटी आदि को उपमान रूप में प्रयुक्त किया गया है। यहां यह स्पष्ट है कि इन उपमानों के पीछे कलात्मकता की दृष्टि (जिसे शिष्ट साहित्य में कलात्मकता कहा जाता है) है ही नहीं, यहां केवल भावों को स्पष्टतर बनाने की प्रवृत्ति है। गोंड[1] नामक

---

1. ...We learn from the fact that we are accustomed to look upon abstract ideas as similar to things we perceived with our sense organs, and that ~~is~~ it is in first place people who have no trained way of thinking that are accustomed to do so: Naive and primitive men who are scarcely able to abstract are inclined to name new things after the familiar and to compare things unknown to the well known. By means of a simile they bring the unknown within the sphere to the known.... The more concretely people think, the more they make use of genestandliche Abstraction, the more they have occasions for 'similes' etc. in trival communication- Remarks on the similes in Sanskrit Literature-Gond,J. P.12.

विद्वान ने ऐसे उपमानों के संबंध में विवेचन करते हुए लिखा था कि यह उपमान आदिम मानव तथा आदिम मानस से संबंधित है क्योंकि उसके पास भावों को प्रकट करने का यही एक साधन है कि वह अपरिचित वस्तुओं का बोध परिचित वस्तुओं का उपमान रूप में प्रयोग कर कराता है । और अमूर्तन वस्तुओं के बोध कराने में तो उसकी यह उपमान योजना की प्रवृत्ति और भी बढ़ जाती है और वह पग पग पर उपमानों का सहारा लेकर अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है ।

लोक उपमानों की दूसरी विशेषता है कि वे साधारण जीवन से गृहीत हैं । वे ऐसे उपमान है जिनसे साधारण से साधारण व्यक्ति परिचित है । लोक साहित्य में इसीलिए प्रायः ऐसे उपमान नहीं मिलते और नहीं ऐसी प्राकृतिक, पशुवर्ग से संबंधित या मानव जीवन से संबंधित वस्तुओं का उपमान रूप में प्रयोग मिलता है, जिनसे साधारण कवि व्यक्ति परिचित न हो शिष्ट साहित्य में मानसरोवर, आकाशगंगा, आदि उपमान प्राकृतिक वर्ग से चातक चकवा, आदि पशु वर्ग के उपमान भले ही मिल जाएं किन्तु लोक साहित्य में ऐसे उपमान ढूंढने से भी नहीं मिलेंगे, क्योंकि इन वस्तुओं से साधारण जनमानस परिचित नहीं है, चातक की स्वाती के प्रति एकनिष्ठता तथा चकोर की अंगार खाने की प्रवृत्ति मुनिमानस की ही वस्तु है, जनमानस या लोकमानस की नहीं, उन्हें यह वस्तुएं समझ में ही नहीं आ सकतीं, इसीलिए वह इनका उपमान रूप में प्रयोग नहीं करता क्योंकि वह जानता है कि जहां उपमान भाव स्पष्टता के लिए प्रयुक्त होते हैं, वहीं ये उपमान भावों को और अधिक जटिल बना देंगे । वह तो इसीलिए उन वस्तुओं का उपमान रूप में प्रयुक्त करता है जो सामान्य स्तर की वस्तुएं हैं और जिन्हें सब आसानी से समझ जाएं । खलिहान, मसान, चिलम, सिकड़ी, जहाज, सिवार, चांद, बादल, फूल, पत्ती, समुद्र, पहाड़ आदि उपमानों का ही वह प्रयोग करता है क्योंकि इन वस्तुओं के से तथा इनकी सामान्य विशेषताओं से सभी परिचित होते हैं । भारतेन्दु युगीन कवियों ने इस प्रकार के अनेकों उपमान प्रयुक्त किए है, जिनका पहले विवेचन किया जा चुका है ।

लोक उपमान यद्यपि भावों को स्पष्ट करने में सफल हैं, वे जनमानस की बुद्धि के अनुकूल हैं किन्तु कहीं वे अशिष्ट तथा फूहड़ से भी लगने लगते हैं। भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त उपमान कुछ इस कोटि के भी हैं। उदाहरणार्थ प्रेमघन ने एक स्थान पर गोस्वामियों तथा मठाधीशों के लिए सांड की उपमा दी है (प्रे॰सर्व॰पृ॰ १५७) यहां सांड उपमान जिसका प्रयोग वैरागी गोस्वामियों के लिए हुआ है यद्यपि उनकी (अपने स्वार्थहित कामवासना पूर्ति के हेतु युवती स्त्रियों को रखने की) प्रवृत्ति को स्पष्ट करने में पर्याप्त सहायक है, किन्तु फिर भी अशिष्ट से हैं। इसी प्रकार कुछ उपमान और भी प्रयुक्त हुए जो अशिष्ट या अश्लील तो नहीं कहे जा सकते किंतु फूहड़ अवश्य कहे जा सकते। चिलम से मुंह की उपमा देना (प्रे॰सर्व॰१९२) तथा खाना खाकर डकारने की उपमा बैल के डकारने से दी गई है (प्रे॰सर्व॰पृ॰ १५२) प्रजा के आर्त स्वर में पुकारने की उपमा मेमना के चिल्लाने से देना ऐसी ही फूहड़ उपमा कहीं जायंगी। शिष्ट साहित्य का प्रेमी व्यक्ति यद्यपि ऐसी उपमाओं को फूहड़ कहेगा, किन्तु लोक साहित्य की यही विशेषता है कि वह केवल भाव स्पष्टता मात्र का ध्यान रखता है।

लोक उपमानों में हास्य का पुट भी मिलता है। कुछ उपमान ऐसे हैं जिनकी योजना हास्य के रूप में ही की गई है। भारतेन्दु युगीन कवियों ने भी कुछ हास्यात्मक उपमान प्रयुक्त किए हैं जिन्हें सुनकर ही हंसी आती है। इन उपमानों में रूप साम्य की दृष्टि प्रधान है उदाहरण के लिए कुछ उपमान प्रस्तुत है। प्रेमघन ने शिवबर्द नामक अपने मैनेजर के गालों की लालिमा की उपमा मेटी (मटका) से दी है (प्रे॰सर्व॰२६१) और इसी प्रकार बकरी की दाढ़ी का उपमान रूप में प्रयोग पुरुषों की दाढ़ी के लिए किया गया, जो यद्यपि रूप साम्य की दृष्टि से संगत तो हो सकती है किन्तु हास्यास्पदभी हैं (प्रे॰ सर्व॰पृ॰ २९१)। लोक भाषा में इस प्रकार के उपमानों का प्रयोग प्रायःहोता है[1]।

---

1. In colloquial speech we use often a similes when we pour out our hearts, when we reprehend, scorn or threaten a person or we make fun of him... Many a time colloquial speech has a special liking for similes because they have a comic character- Remarks on the similes in Sanskrit literature- Gond.J.p.38.

अतिशयितावाची या अतिशयोक्ति मूलक उपमानों का लोक में प्रयोग होता है । भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त उपमान कुछ इस वर्ग के भी है । जो अतिशयिता बोधक हैं । उदाहरण के लिए यदि किसी वस्तु के विकीर्ण रूप को अतिशयोक्ति मूलक वर्णन करना है तो तारों सा छितराना अर्थात् तारों का उपमान रूप में प्रयोग किया गया है (प्रेम॰सर्व॰पृ॰ ८१) । इसी प्रकार किसी काम को शीघ्रता पूर्वक सम्पन्न कराने की शक्ति की व्यंजना कराने के लिए तथा व्यक्ति की लघुता सिद्ध करने के लिए मूषक का उपमान रूप में प्रयोग हुआ है । अलौकिक लीला में मुष्टिक और चाणूर के कंस से वार्तालाप में इस उपमान का प्रयोग किया है । मुष्टिक और चाणूर कृष्णवध के लिए कंस से कहते है, कि तुम व्यर्थ ही उनको मारने के लिए इतना आयोजन कर रहे हो । मैं अभी उन्हें मूषक के समान मार कर आता हूं (प्रे॰सर्व॰पृ॰६६) यहां कृष्ण की लघुता दिखाने के लिए मूषक से कृष्ण की उपमा दी गई है । इसी प्रकार झपट कर खाने की व्यंजना की अतिशयिता दिखाने के लिए बिलाव का (प्रे॰सर्व॰पृ॰ १७४) तथा बालों की सघनता का बोध कराने के लिए सिवार का उपमान रूप में प्रयोग (प्रे॰सर्व॰पृ॰ २१२, भा॰ग्रं॰११६) कवियों ने किया है ।

निष्कर्ष:-

उपर्युक्त भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त लोक उपमान संबंधी विवेचन से स्पष्ट है कि यद्यपि भारतेन्दु युगीन कवियों ने नख-शिख तथा अन्य प्रसंगों में रूढ़ उपमानों का प्रयोग किया, किन्तु फिर भी ऐसे रूढ़ उपमानों से इन उपमानों की संख्या कहीं अधिक है जो लोक उपमान हैं, जो लोकमानस प्रवृत्ति के अनुरूप हैं, जिनको जनवर्ग बड़ी स्वाभाविकता से अपनी भाषा में भाव बोधन के लिए प्रयुक्त करता है ।

- - -

अध्याय ५

भारतेन्दु युगीन काव्य में लोक संगीतात्मक तत्व

भारतेन्दुयुगीन काव्य में लोक संगीतात्मक तत्व

भूमिका:

संगीतज्ञों ने अति प्राचीन काल से संगीत के दो प्रकार माने है- (क) गंधर्व (ख) गान । गंधर्व वह गीत है जो अनादि अनन्त तथा अपौरुषेय है । जो स्वर्ग लोक में गंधर्वों द्वारा गया जाता है तथा जिसका उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है । संगीतज्ञों द्वारा बुद्धि कौशल से उत्पन्न किया गया, देशी अथवा लोक प्रचलित रागों में निबद्ध जन मन रंजन के लिए प्रचलित किया गया पृथ्वी लोक पर गाया जाने वाला गीत गान है । अर्थात् गंधर्व स्वर्ग लोक का तथा गान साधारण जन वर्ग मन रंजन के लिए संगीतज्ञों द्वारा प्रचलित किया गया गीत है । यह गंधर्व और गान का भेद संगीत रत्नाकर में किया गया है[1]। संगीत रत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ ने कहा कि यदि गंधर्व संगीत को ही मार्गी संगीत, जो स्वर्ग का है अथवा मोक्ष मार्ग का निर्देश करने वाला संगीत है, माना जाए तो कोई हानि नहीं । इस प्रकार कल्लिनाथ के मतानुसार गंधर्व और मार्गी संगीत तथा देशी और गान दोनों एक ही है । मार्गी संगीत आज बिलकुल प्रचार में नहीं है । इसका प्रयोग महादेव के बाद भरत ने किया था[2]। यह अत्यन्त प्राचीनजटिल सांस्कृतिक नियमों से बद्ध था इसमें परिवर्तन असम्भव था अतः इसका उपयोग आगे नहीं हो सका । गंधर्व और गान तथा मार्गी और देशी संगीत पद्धतियों पर संगीत रत्नाकरकार तथा कल्लिनाथ द्वारा लिए गए विवेचन से स्पष्ट है आज गंधर्व संगीत की इह लोक में कोई स्थिति नहीं है । और इह लोक में जो कुछ आज गाया जाता है सभी देशी संगीत के अंतर्गत है । जिसे आधुनिक युग में हम शास्त्रीय संगीत, कहते है, जिसे लोक संगीत, सुगम संगीत कहते है, सभी देशी संगीत या गान संगीत के अंतर्गत है ।

१- रंजकः स्वर संदर्भो गीतमित्यभिधीयते । गान्धर्व गानमित्यस्य भेदद्वयमुदीरितम् । । -संगीत रत्नाकर ।

२- मार्गो देशीतिद्वेधा तत्रमार्गः स उच्यते ।
यो मार्गितो विरिंच्या वै प्रयुक्तों भरतादिभिः ।।

आधुनिक युग के प्रख्यात तथा मूर्धन्य संगीतज्ञ पं० विष्णुनारायण भातखण्डे ने भी अपना यही विचार प्रकट किया है । भातखण्डे जी का विचार भी यही है कि मार्गी संगीत अब लोक में नहीं है वह स्वर्ग लोक में चला गया है[1]।

देशी संगीत के विषय में संगीत रत्नाकर में बताया गया है - कि भिन्न भिन्न देश के अर्थात् स्थान के मनुष्य जो कुछ अपनी रुचि के अनुसार हृदय रंजन के लिए गायन वादन नृत्य आदि करते हैं वह देशी संगीत कहा जाता है[2]। संगीत दर्पण में संगीत रत्नाकर से कुछ भिन्न परिभाषा देशी संगीत की बताते हुए कहा गया है कि देश के विभिन्न भागों में वहां के रीति रिवाजों के अनुसार जो संगीत जनता का मनोरंजन करता है वह संगीत देशी संगीत कहलाता है[3]।

उपर्युक्त देशी संगीत की परिभाषा से वर्तमान समय का समस्त संगीत - नृत्य गायन वादन सभी इस वर्ग में परिगणित होगा । क्योंकि मार्गी संगीत की तो आज स्थिति है नहीं इसलिए समस्त सांगीतिक प्रकार देशी संगीत ही होंगे । शार्ङ्गदेव के समय भी सब जगह देशी संगीत ही प्रचलित

१------हम यह भी मानकर चल रहे हैं कि आजकल हम जो कुछ सुनते हैं वह सब देशी संगीत है । - हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका,भाग-१ भातखण्डे कृत, पृ० ३० ।

२- देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरंजकम् ।
गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते ।।
अबलाबाल गोपालैः क्षितिपालैर्निजेच्छया ।
गीयते तानुरागेण स्वदेशे देशि रुच्यते ।।- संगीत रत्नाकर ।

३- तत्तद्देशस्थया रीत्यायत्स्यात् लोकानुरंजनम् ।
देशे देशे तु संगीतं तद्देशीत्यभिधीयते ।।

-संगीत दर्पण ।

था, किन्तु आज के संगीत से वह भिन्न प्रकार का था । कारण यही है कि देशी संगीत का स्वरूप लोक रुचि के अनुसार परिवर्तित होता रहता है । देशी संगीत में नियमों का विशेष बंधान नहीं है । इसलिए वह सुलभ और सरल है ।

उपर्युक्त संगीत के भेदों को देखने से स्पष्ट है कि लोक संगीत नामक शीर्षक से किसी संगीत भेद का उल्लेख प्राचीन काल में नहीं हुआ । मार्गी अथवा देशी व गंधर्व अथवा गान दो ही पद्धतियों का उल्लेख हुआ । इन वर्गों के विवेचन में जिन विद्वानों ने यह मान लिया है कि मार्गी संगीत की इस भूलोक पर स्थिति नहीं है उनके अनुसार लोक संगीत, शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत और फिल्मी संगीत जो कुछ भी भू लोक पर गाया जाता है, सभी देशी संगीत के अन्तर्गत ही परिगणित होगा । कुछ संगीत विद्वानों ने, जिनका विचार है कि मार्गी संगीत ही आज का प्रचलित शास्त्रीय संगीत है, तथा इस संगीत में तन्मय करने तथा तन्मयता स्थिर रखने की अधिक शक्ति है और यह शास्त्रीय संगीत तन्मयता की चरमावस्था में योग और समाधि की स्थिति तक पहुंचाता है और वह योग और समाधि ईश्वर तक पहुंचने का साधन है अर्थात् साधक शास्त्रीय संगीत से योग और योग से ईश्वर तक पहुंचता है । इस प्रकार शास्त्रीय संगीत ईश्वर तक पहुंचाने वाला मार्ग है । इसीलिए इसे मार्गी संगीत कहते हैं, प्रचलित ग्राम संगीत, लोक संगीत, सुगम संगीत आदि को, विशिष्ट जटिल नियमों से आबद्ध न होने के कारण तथा स्वर माधुर्य का ही अधिक ध्यान रखने के कारण तथा विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न रुचि वाले स्त्री पुरुषों द्वारा विभिन्न रूप में गाये जाने के कारण, देशी संगीत के अन्तर्गत इनकी स्थिति मानी है । संगीतज्ञों का विचार है कि मार्गी संगीत को गंधर्व संगीत इसलिए नहीं कहते कि इनके गायक गंधर्व (स्वर्ग लोक की एक गायक जाति) हैं वरन् गंधर्व इसे इसलिए कहते हैं कि जिस प्रकार गंधर्व अत्यन्त निपुण गायक होते हैं उन्हें संगीत के समस्त नियमों, उपनियमों, अंग और उपांग का ज्ञान होता है, उसी प्रकार शास्त्रीय संगीतज्ञ को भी संगीत शास्त्र के समस्त नियमों और उपनियमों आदि से परिचित होना चाहिए ।

इस विचारधारा से देशी संगीत और लोक संगीत में विशेष अंतर

नहीं रह जाता, किन्तु यदि इन दोनों प्रकारों की तुलना की जाय तो दोनों में पर्याप्त अंतर है। देशी संगीत को हम सुगम संगीत(Light Music) तथा लोक संगीत अथवा ग्राम संगीत (Folk Music) कहेंगे। भजन, फिल्मी संगीत आदि सभी सुगम संगीतके अन्तर्गत परिगणित होंगे जिनमें विशेष जटिल नियम नहीं है, जो सुगमता से गाए जा सकते हैं, जिनमें विशेष मस्तिष्कीय योग नहीं होता। किन्तु लोक संगीत में वही संगीत परिगणित होगा जिसमें परंपरा का तत्व प्रभावशाली है जो अति प्राचीन काल से अशिक्षित शिक्षित वर्ग में तद्वत चला आ रहा है। जो कि हमारे संस्कारों से या हमारे लोक जीवन से सम्बन्धित है।

प्रसिद्ध संगीत विद्वान् गोस्वामी का विचार है कि पहले केवल देशी राग ही की स्थिति थी और संगीत के विशिष्ट बंधनों पर आधारित न होकर साहित्य की स्थिति पर आश्रित था। उदाहरण के लिए यदि वैदिक साहित्य देशी राग में गाया जाएगा तो वह मार्गी संगीत कहलायेगा तथा यदि उसी देशी राग में, जिसमें वैदिक साहित्य का पाठ हुआ था में, लौकिक साहित्य गाया जाएगा, तो वह देशी संगीत कहा जाएगा[1]।

---

1. "With the passage of time a class of people called Ghandarvas (professional minstrels) who specialized in the Marga Music, came to the fore and popularized it. Hence it came to be equated with the music of these people and acquired the label Ghandarva. Kallinath affirms this when he says 'Ghandarva is marga that is classical and sacred' and Gana is desi that is regional or folk music. Again according to him, compared to the classical or ritual music, Gana or the regional music depended for its creation or composer (Vakgeykara) and therefore was considered human in origin. This leads us to believe that the Vedic text sung in the regional tunes were Marga in the beginning and secular composition sung in the same tune were Desi, p.24. The story of Indian Music. O.Goswami.

भरत का कथन है कि मार्गी संगीत का आधार वीणा तथा देशी संगीत का आधार वंशी है ।

प्रो० गोस्वामी का विचार है, कि मार्गी संगीत का अर्थ है,वह संगीत जिसका अन्वेषण किया गया और पहले पहल मार्गी शब्द "अन्वेषित" के अर्थ में ही प्रयुक्त होता रहा होगा जिसका अर्थ बाद में शास्त्रीय संगीत के रूप में किया जाने लगा । गोस्वामी जी का विचार है कि आर्य जब विजय कर भारत में आए जो आदिम जातीय संगीत गाया करते थे किंतु यहां कुछ समय रहने पर उन्होंने भारतवर्षीय लोक संगीत की धुनों स्वरों और गीतों को तथा अपने जातीय संगीत को मिलाकर संगीत को उन्होंने एक नया रूप दिया । इस नए संगीत रूप में आर्यों के जातीय संगीत की विशेषताएं तथा भारतवर्षीय लोक संगीत दोनों ही की विशेषताओं का समावेश था । इस संगीत का नाम आर्यों ने मार्गी अर्थात् जिसका अन्वेषण किया ऐसा नाम दिया । बाद में इसे ही शास्त्रीय संगीत की संज्ञा दी गई । यही गंधर्व संगीत कहा जाने लगा[1] ।

प्राचीन संगीत शास्त्रियों ने भी मार्गी संगीत की उत्पत्ति के विषय में बताते हुए कहा है कि ब्रह्मा ने वेदों से सामग्री लेकर इसका निर्माण किया, जो बाद में भरत मुनि तथा उनके सहयोगियों द्वारा परिवर्धित और उचित रूप में जनता में प्रचलित किया गया, एवं प्रसिद्धि पाया । कल्लिनाथ का विचार है कि इसे मार्गी इसलिए कहा गया कि ब्रह्मा और अन्य ऋषियों द्वारा इसका अन्वेषण किया गया ।

---

1. Thus we find that before borrowing melodies from the rich store house of folk music of the land of their conquest, the early Aryans dependent entirely on their primitive recitals. This incorporation of the folk melodies from the various pre-Aryan tribes of India led to a widening of the musical imagination of the Aryans and to the formation of a new type of music which was known in the beginning as Marga, or the sought. Later this name was equated with Ghandarva and came to mean the same type of Music. Marga too came to mean 'Chaste' or 'Classical' after sometime, but in the beginning it only meant the music which has been sought, p.17-18.The Story of Music:

जहां एक ओर आर्यों द्वारा अपने जातीय संगीत तथा भारतीय लोक संगीत के मिश्रण से मार्गी संगीत की उद्भावना हो रही थी वहीं दूसरी ओर एक ऐसा संगीतरूप भी साधारण जनवर्ग के मध्य पनप रहा था, जो मानव हृदय के स्वाभाविक उद्गार प्रकट करता था, लयात्मक होता था, विशेष जटिल नियमों से बद्ध न होकर अकृत्रिम रूप से जन सामान्य को आकर्षित करता था और यही देशी संगीत था । विभिन्न प्रांतों में यह स्थान भेद से भिन्न प्रकार का था ।

स्पष्ट है कि लोक संगीत शास्त्रीय संगीत का आदि रूप रहा होगा लोक संगीत को ही थोड़ा परिनिष्ठित और परिवर्धित कर शास्त्रीय संगीत का रूप दिया गया होगा । शास्त्रीय संगीत जब जटिल नियमों से आबद्ध होकर अपनी लोकप्रियता और सरसता खोने लगता है तो लोक संगीत ही उसे जीवन दान देता है । लोक संगीत की ही धुनो और गीतों को वह थोड़ा परिवर्तित कर अपना लेता है । यही कारण है कि वर्तमान युग के प्रसिद्ध संगीतज्ञ कुमार गंधर्व आज लोकगीतों की ही धुनों को लेकर नए नए राग रागिनियां बनाकर शास्त्रीय संगीत की परिधि विस्तार करने में एक रत हैं । उन्होने अनेक नए नए लोक धुनो को लेकर नए नए रागों की सृष्टि की है जो कालान्तर में शास्त्री राग ही कहे जाने लगेंगे । शोध के अभाव में यह ज्ञात नहीं हो सकेगा कि यह किन लोक रागों से उद्भूत किए गए हैं । उनकी लौकिकता चाहे अनन्वेक्षित की जाए किन्तु वे धुनें लोक में उसी प्रकार चलती रहेगीं क्योंकि परम्परा का तत्व अति प्रभाव शाली है उसमें परिवर्तन शीघ्र नहीं होता । लोक संगीत में विस्तार अत्यधिक होता है इसलिए वह शास्त्रीय संगीत के लिए रागों को जन्म देता है ।

इस प्रकार शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत का परस्पर बड़ा घनिष्ठ संबंध रहा है । अन्य कलाओं अथवा विधाओं की भांति संगीत के क्षेत्र में भी क्रिया ही पहले आई है और शास्त्र बाद में । क्योंकि साधना के पश्चात ही शास्त्र चिंतन और नियमबद्धता का अवसर आता है । संगीत के

वर्तमान सभी रूपों का उद्भव किसी न किसी रूप में लोक संगीत से ही हुआ है । शास्त्रीय संगीत के तीन प्रधान तत्व हैं- (क) राग तत्व (ख) ताल तत्व (ग) विस्तारतत्व । जिन्हें संक्षेप में स्वर-समय-संचार अथवा तीन "स" कह सकते हैं । इन तीनों रूपों का विकास लोक संगीत से हुआ है । राग का प्रारंभिक रूप लोक धुन, ताल का प्रारंभिक रूप लोकताल और विस्तारतत्व का प्रारंभिक रूप लोकगीत के प्रकार ही हैं । इस विकास क्रम में कहीं बहुत अल्प अंतर आया है और कहीं इतना अधिक, कि आज उनका साम्य खोजना भी कठिन हो गया है । फिर भी जिस प्रकार संस्कृत तत्सम शब्द "उपाध्याय" से बदलता-बदलता पूर्ण तद्भव शब्द "झा" बन गया है उसी प्रकार अनेक वर्तमान शास्त्रीय राग, उनकी निर्माता लोक धुनों के स्वरूप से बहुत भिन्न हो गए हैं । निर्माण और विकास की दृष्टि से शास्त्रीय रागों को हम निम्नलिखित श्रेणियों में रख सकते हैं-

(क) <u>लोक सापेक्ष्य राग</u> -

१- लोक तत्सम राग- वे राग जिनका स्वर स्वरूप उन लोकधुनों से पूर्णतः मिलता है, जिनसे उनका उद्भव हुआ है । जैसे-राग मेवाडा[1] (राजपूताने के एक ग्राम गीत के आधार पर निर्मित गुजरात के रास गीतों में भी प्रयुक्त), आसा राग (पंजाबी लोक गीतों[2] में एक लोकगीत का राग)

१- यह मांड का ही एक भेद है । इसके नाम से यह ज्ञात होता है कि यह राग राजपूताने के ग्राम गीतों में से एक है । इसका विस्तार तार सप्तक में विशेष नहीं होता । गुजरात प्रान्त के रास (गरबा) आदि गीत अधिक तादात में इसी राग में सुनने को मिलते हैं । यह राग बिलावल थाट का है ।- हिंदुस्तानी संगीत पद्धति- क्रमिक पुस्तक मालिका- भातखण्डे कृत, पांचवा भाग बिलावल थाट के अन्तर्गत पृ०२५१।

२- राजस्थान का लोक संगीत देवीलाल सामर पृ० २० ।

२- लोक अर्द्ध तत्सम राग- ये वे राग हैं जो संबंधित लोक धुनों से बहुत विलग नहीं हुए हैं- जैसे मांड[1], पहाड़ी[2] (इनमें भजन आदि गाए जाते हैं किन्तु इनका विशेष विकास नहीं हुआ)।

३- लोक तद्भव राग- वे राग जिनका स्वरूप संबंधित लोकधुनों से बहुत भिन्न हो गया है- कलिंगड़ा, कान्हरा, काफ़ी, सोरठ, झिंझौटी, गुर्जरी, दुर्गा, भूपाली, मल्हार, सोहनी, पीलू आदि राग ।

(ख) लोक निरपेक्ष राग-

वे राग जो किसी लोक धुन से विकसित न होकर स्वतंत्र रूप से संगीतज्ञों द्वारा बनाए गए हैं- जैसे-पूरिया, श्री, पूरिया-धनाश्री आदि राग ।

(ग) विदेशी राग-

जिनका निर्माण भारतीय लोक धुनों से न होकर फारस के संगीत अथवा अन्य देशों के संगीत से हुआ है । जैसे सरपरदा (फारस की राग, जिसका प्रचलन अमीर खुसरो द्वारा किया गया), ज़िलफ (ज़िला), साज़गिरी, तुरुष्क तोड़ी ।

(घ) नवनिर्मित राग-

ये वे राग हैं जिन्हें संगीतज्ञ अपनी कल्पना से बनाते हैं जैसे मांझ

१- "कहा जाता है, इस राग की उत्पत्ति मालवा और राजपूताना प्रांत से हुई है । आज भी इन प्रांतों में यह राग सर्वसाधारण में प्रचलित है । यह क्षुद्र प्रकृति के रागों में से है । इसका स्वरूप वक्र है यह प्रत्येक समय में गाया जाता है" । हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति -भातखण्डे कृत पांचवा भाग पृ० २४७ । मूल राजपूताना के मरुस्थल निवासी है और शुद्ध रूप में आज भी वहां गाया जाता है । The story of Indian Music.p.72

२- भारतीय संगीत का इतिहास- उमेश जोशी पृ० ५१३ । यह राग क्षुद्र-प्रकृति के रागों में से एक माना जाता है"- हिंदुस्तानी संगीत पद्धति भातखण्डे पांचवा भाग पृ० २४३ । मूल कुल्लु और कांगड़ा की घाटियां हैं और आज भी वहां प्रचलित हैं । The Story of Indian Music.p.72

समाज, रविकोश[१], दीपशिखा, माधुरी[२] । नए रागों के निर्माण की संभावना सदा बनी रहेगी । यह निर्माण लोकधुनों के आधार पर अथवा स्वतंत्र शास्त्रीय रूप से अथवा विदेशी स्वरलिपियों के आधार पर होते रहेंगे ।

इसी प्रकार शास्त्रीय तालों का विकास भी लोक तालों से हुआ है[३]।

१- संगीत (राग समाज विशेषांक) १९५६, हाथरस पृ० १५६ ।

२- वही, पृ० १५९ ।

३- (क) ताल का जो प्रारंभिक स्वरूप था उसका सबसे अधिक लोक गीतों में ही प्रयोग होता था । ताल शब्द का मूलार्थ भी लोक प्रवृत्ति मूलक ही प्रतीत होता है, क्योंकि प्रारंभ में ताल का अर्थ होता था- अंगुष्ठ और बीचवाली अंगुली के फैलाव की लम्बाई (अमर कोश २।६।८३) बाद में इसका प्रयोग सामान्यतः हथेली के रूप में होने लगा ।"हथेलियों के परस्पर आघात से उत्पन्न ध्वनि को ताली कहा भी जाता है । ताल का प्रयोग मंजीरा के अर्थ में भी होता है । लोक गीत आदि में ताली के साथ ही मंजीरे का भी ताल के रूप में प्रयोग होता है । संगीत में निश्चित काल अवधि बताने के लिए ही दोनों हथेलियों के नियमित आघात की प्रवृत्ति के विकसित होने पर ताल शब्द इस निश्चित काल परिमाण या इकाई के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा होगा"-(देखिए मात्रिक छंदों का विकास- शिवनंदन प्रसाद) ।

(ख) "जिस समय किसी के कंठ से किसी धुन की सृष्टि हुई होगी वह सर्वप्रथम ताल पर ही रची गई होगी । बैलगाड़ी में, ऊँट पर तथा किसी भी वाहन पर चलते समय जो धुने उद्भासित हुई वे पहियों की चाल, ऊँट के कदम तथा स्वयं के कदम की ताल पर ही रची गई होंगी । अतः यह तो स्वाभाविक है कि लोक गीतों की तालें स्पष्ट और सरल होती हैं । चूंकि यह धुने भावोद्गार पूर्ण होती हैं अतः ताल में सच्ची होती हैं और जो शब्द उन्हें दिए जाते हैं वे छंद की दृष्टि से सच्चे होते हैं । लोक गीतों में ताल का अंश अत्यंत परिपक्व होता है । लोक गीतों में जो तालें प्रयुक्त

और इनको भी हम उपर्युक्त चार वर्गों में रख सकते हैं ।

(क) लोक सापेक्ष ताल-

१- लोक तत्सम- कहरवा, दादरा, चांचर, खेमटा, कव्वाली, धुमाली ।

२- लोक अर्द्ध तत्सम- त्रिताल, झपताल, रूपक, धमार, अद्धा, पंजाबी ।

३- लोक तद्भव- एक ताल, लावनी, जत, टप्पा, ठुमरी, तिलवाड़ा ।

(ख) लोक निरपेक्ष ताल- चारताल, तीव्रा, कुंभ, ब्रह्म, सरस्वती, सवारी आदि ।

(ग) विदेशी- झुमरा, आड़ा चारताल, फिरोदस्त, सूलफाक

(घ) नवनिर्मित ताल- चतुर, कलावती, नारायणी ।

शास्त्रीय संगीत का विस्तारतत्व इतना अधिक विकसित हो गया है कि उसी के कारण शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत आज इतने पृथक प्रतीत होते हैं । फिर भी विचार करने पर दोनों का संबंध स्पष्ट हो जाता है । शास्त्रीय संगीत के विस्तारतत्व के अंतर्गत एक तो गीत के विभिन्न प्रकार आते हैं (ध्रुपद, ख्याल आदि) और दूसरे प्रत्येक गीत प्रकार

४- हुई हैं उनके पीछे कोई शास्त्र नहीं है जिस तरह लोक धुनों से ही शास्त्रीय रागों की सृष्टि हुई है उसी तरह लोक गीतों की तालों से शास्त्रीय तालें विकसित हुई हैं । लोक गीतकार की धुनें जो कंठ से निकल गईं, वे श्वास की गति के साथ ही ताल में उद्भासित हुईं । स्वभाव से जो सर्व प्रथम तालें प्रकट हुईं, उनमें कहरवा और दादरा ही सर्वाधिक प्रचलित हुई होंगी । ये दोनों ही तालें रोजमर्रा की किसी भी क्रिया में प्रयुक्त होती हैं । इनमें कुछ कठिन तालें दीपचंदी, झूमरा और रूपक । ये तीनों तालें यद्यपि सरल हैं परंतु स्वभावतः किसी विशेष परिस्थिति में ही इन तालों में धुनें उद्भासित होती हैं"। राजस्थान का लोक संगीत- देवीलाल सामर पृ० १५-१६ ।

तान आलाप आदि के द्वारा किए जाने वाले विस्तार आते हैं । उनमें से पहली श्रेणी के विस्तार का विकास तो लोक गीतों के प्रकारों से हुआ ही है । कुछ गीत के प्रकार अवश्य विदेशी संगीत के आधार पर निर्मित हुए हैं । जहां तक तान आलाप आदि दूसरी श्रेणी के विस्तार का संबंध है, यह उल्लेखनीय है कि अनेक भारतीय लोक धुनों में स्वरों का यथेष्ट चढ़ाव उतार आलाप के रूप में मिलता है- जैसे बिरहा में, कबीर में आदि ।

शास्त्रीय और लोक संगीत के अलगाव से संबंधित एक रोचक तथ्य यह है कि किसी एक स्थान का लोक संगीत रूप किसी दूसरे स्थान में शास्त्री संगीत के रूप में स्वीकृत हो जाता है । जैसे ध्रुपद और धमार ब्रजप्रान्त में इतने दिनों से और इतने अधिक प्रचलित हैं कि उन्हें वहां के लोकसंगीत के अंतर्गत मान्यता दी जाती है किंतु अन्य स्थानों में हम उन्हें वास्तविक शुद्ध और कठिन शास्त्रीय संगीत के रूप में पाते हैं । तबला का निर्माण तो पखावज (पखावाज) को काट कर किया गया, ऐसा प्रसिद्ध है, किंतु पखावज अथवा मृदंग जिन्हें हम पूर्ण शास्त्रीय वाद्य कहते हैं, वे भारत में तबले से पूर्व भी प्रचलित थे और उनका रूप साम्य ढोलक से स्पष्ट है । टप्पा, ठुमरी आदि भी लोक गीतों के ही प्रकार थे, जो विकसित होकर आज शास्त्रीय अथवा सरल शास्त्रीय संज्ञा पा रहे हैं । आज के शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों में अधिकांश संगीतज्ञ ध्रुपद के बाद धमार और ख्याल के बाद ठुमरी अथवा भजन भाव-गीत आदि गाते हैं । यह सब यही संकेत देते हैं, कि हमें भजन गीत ठुमरी आदि को शास्त्रीय संगीत के प्रतिकूल नहीं समझना चाहिए । संगीत एक व्यापक कला है, उसमें विस्तार और विविधता की अनन्त क्षमता है और उसके शास्त्रीय अथवा अशास्त्रीय जितने भी रूप हम चाहें बना लें, किंतु यदि संगीतज्ञ को जीना है तो लोक रुचि की उपेक्षा असम्भव है । उदाहरणार्थ- गीतों के प्रकारों का विभाजन निम्नलिखित हो सकता है-

(१) लोक सापेक्ष-

(क) सुगम शास्त्रीय- वे गीत शैलियां जो लोक धुनों पर बल देते हुए गाई जाती हैं । -भजन, भावगीत, लावनी, चैती, पूरबी, सावनी, कजरी, होली आदि ।

(ख) शुद्ध शास्त्रीय- जो लोक धुनों से विकसित तो हुई थीं किंतु आज स्वतंत्र रूप से पूर्ण शास्त्रीय शैलियां बन गई हैं । -प्रबंध, ध्रुपद, धमार, टप्पा आदि ।

(२) लोक निरपेक्ष- स्वरमालिका, लक्षण गीत, तराना, त्रिवट, चतुरंग ।

(३) विदेशी- विलम्बित ख्याल, द्रुत ख्याल, ग़ज़ल, कव्वाली ।

(४) नवनिर्मित- अभी तो कोई गीत के नए प्रकार नहीं बने हैं, किंतु संभावना अवश्य है । वरन् आवश्यक भी प्रतीत हो रही है । आधुनिक युग की प्रवृत्तियों पर ध्यान देते हुए हमें ऐसी गायन शैलियों का निर्माण करना है जो श्रोताओं को ही रसपान न कराए, वरन् जनसाधारण और विद्यार्थी वर्ग को भी आनंदित कर सके । आज का युग व्यस्त और तीव्रगामी है । अतः आज छोटे कार्यक्रमों की विशेष आवश्यकता है । इसके लिए शास्त्रीय रागों के बहुत आकर्षक अंगों को ही चुनकर कार्यक्रम की तैयारी होनी चाहिए । साथ ही साथ विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित लोक धुनों का भी समन्वय शास्त्रीय रागों में अधिकाधिक होना चाहिए । इस दृष्टि से आवश्यकतानुसार नए रागों का निर्माण भी किया जा सकता है । कंठोच्चारण और भाववृद्धि आदि का विशेष ध्यान रखकर आज के अनुकूल रागों और तालों में जनप्रिय गीत की शैलियां बनाई जानी चाहिए । इस दिशा में फिल्म जगत में कुछ प्रयास किया है किंतु व्यावसायिक दृष्टि की अधिकता के कारण फिल्मी निर्माता उतने सफल नहीं हो सकते जितने कि संगीत कला के स्वतंत्र साधक हो सकते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं-

(१) शास्त्रीय संगीत का विकास लोक संगीत से हुआ है ।

(२) वर्तमान शास्त्रीय संगीत लोक संगीत का विरोधी नहीं है वरन् दोनों एक दूसरे के पूरक अथवा प्रेरक हैं ।

(३) कोई भी सहृदय अथवा रसिक संगीतज्ञ लोक संगीत में अरुचि नहीं रख सकता ।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र[1] तथा सभी प्रमुख भारतेंदु युगीन कवियों ने[2] जातीय संगीत अथवा लोक संगीत पर बहुत बल दिया था और अपने सहयोगी तथा समकालीन कवियों से आग्रह किया था कि वे लोक संगीत में भी काव्य रचना करें तथा इस प्रकार के संगीत का प्रचार करें । परिणाम स्वरूप भारतेंदु के साथ साथ अन्य समकालीन कवियों ने लोक संगीत में रचना की । इस क्षेत्र में भारतेंदु, प्रेमघन और प्रताप नारायण मिश्र अग्रणी गिने जाएंगे । अब हम लोक गीत, लोक राग, लोकताल, आदि के द्वारा भारतेंदु युगीनकाव्य में लोक संगीतात्मक तत्वों का निरूपण करेंगे ।

१- भारतेंदु ग्रन्थावली- भाग ३,जातीय संगीत

२-"अब ग्राम्य कविता पर ध्यान दीजिए मल्लाहों के गीत, कहारों का कहरवा बिरहा अथवा आल्हा आदि सब महाभद्दी और केवल गंवारों की रोचक कविताएं है इनकी प्रशंसा में यदि हम कुछ कहैं तो नागरिक जन जो भाषा की उत्तम कविता के रसपान के घमंड में फूले नहीं समाते अवश्य हम पर आक्षेप करेंगे और हमें निपट गंवार समझेंगे । निस्सदेह वे ग्राम्य कविता है और मलार ठुमरी का स्वाद लेने वालों की दृष्टि में महाभद्दी और घृणित हैं पर इससे यह तो सिद्ध नहीं होता किकविता के बंधे कायदे पर न होने से उनमें कोई गुण हई नहीं और सर्वथा दूषित ही हैं । अब हमारे पाठक जन पूछ सकते हैं आपने उसमें ऐसा कौन सा गुण पाया जो उस पर इतना लट्टू हो रहे हैं । माना वे सर्वथा दूषित और कविता के गुणों से वंचित हैं पर उसमें सच्ची कविता का लक्षण पाया जाता है अर्थात् उसमें चित्त की एक सच्ची और वास्तविक भावना की तसवीर खिंची हुई पाई जाती है और आपकी classic उत्तम श्रेणी की भाषा कविता का जहर इसमें कहीं नहीं पाया जाता जो यहां तक कृत्रिमता पूर्ण रहती है कि उसके जोड़ की एक निराली दुनिया केवल कवि जी के मस्तिष्क हीमात्र में स्थान पाए हुए हैं ।

सर्वप्रथम लोक संगीतात्मक तत्वों के अन्तर्गत भारतेंदु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक गीतों में लोक संगीतात्मक तत्व पर विचार किया जाएगा-

भारतेंदु युगीन काव्य में प्रयुक्त विभिन्न लोक गीतों की लोक सांगीतिक विशेषताएं-

कजली-

वर्षा ऋतु में कजली तीज के पर्व पर स्त्रियों द्वारा गाया जाने वाला कजली एक प्रकार का लोक गीत है। यह उत्सव चार महीने की ब अखण्ड गरमी से तप्त मानव, जब पानी के लिए लालायित हो उठता है, और पानी में ही उसे जीवन प्रतीत होता है, उस समय कज्जलवत कालिमा वाली घनघोर घटा तथा सावन में वर्षा की झड़ी देखकर स्त्रियों का

जिन लोगों की हुई ये कविताएं हैं वे अवश्य ग्रामीण हैं तब उच्च श्रेणी की उक्ति युक्ति की आशा ही उनमें नहीं हो सकती पर बिना कुछ बनावट के अपने चित्त की भावना निष्कपट हो स्वच्छन्दता के साथ उनमें दरसाई गई है- काव्य के नियम और कायदों से वे कोसों दूर हैं उनके ख्याल अभी उस दरजे को पहुंचे ही नहीं कि नियम क्या वस्तु है इसका ध्यान स्वप्न में भी उन्हें आया हो तब खरी और सच्ची होना उनकी कविता के लिए स्वयं सिद्ध है- आपकी नागरिक कविता को पहले पहल जो लोग काम में लाए जैसा चांद कवि पद्मावत सूर और त तुलसी दी एक और भी उनके वास्ते या उनके समय में चाहे भले ही वे कविताएं सजीव और ओजपूर्ण रही हों और यही कारण है कि अब भी उनको पढ़िए तो उनमें वैसा ही टटका और ताजा रस मिलता है पर उस प्रकार की कविता का एक ढर्रा चल जाने से अब वह आपकी नागरिक कविता फीकी और घिनौनी मालूम होती है और दूर तक डूबकर सोचिए तो कविता पहले ग्रामीण हुए बिना प्रचलित नहीं हो सकती और उसी ग्राम्य कविता को मांजते मांजते वही नागरिक वा उच्च श्रेणी की कविता बन जाती है"।

- हिन्दी प्रदीप जि० १०, संख्या १, पृ० १५-१६।

मन-मयूर नाच उठता है और वे कजली गाना प्रारम्भ कर देती है ।

भारतेन्दु युगीन प्रमुख कवियों में सभी ने ही कजलियां लिखी है । प्रेमघन ने भी हिन्दी और उर्दू दोनों में ही कजलियां लिखकर अपनी क्षमता दिखाई है । प्रेमघन ने सामान्य प्रकार की, झूले की, जन्माष्टमी/बधाई की, गोवर्धन धारण आदि की, अनेक प्रकार की कजलियां लिखी हैं । भारतेन्दु ने भी तरजीह बंद आदि अनेक प्रकार की शैलियों में कजलियों की रचना की है

कजलियों का राग रागनियों से कोई दृढ़ संबंध नहीं है क्योंकि यह लोक गीत है । लय प्रायः ग्रामनारियों की ही मानी जा सकती है । मुख्य रूप से कजलियों का बहुधा मलार से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है । यद्यपि इनमें गौड़, मलार, देस, सिंध, बरवा, पीलू, झिंझोटी, तिलक, कामोद, बिहारी और पहाड़ी आदि के भी स्वर लगते हैं । निश्चित राग नहोने से ठीक ठीक स्वर निरूपण भी संभव नहीं है । ताल भी कोई विशेष नियत नहीं है । अधिकांशतः तीन ताल बजता है, किन्तु कुछ में कहीं-कहीं केवल खेमटा आदि ताल भी बजते हैं । इनकी भाषा मुख्य रूप से विंध्याचल या मिर्जापुरीय ग्राम स्त्रियों की बोलचाल की भाषा है । इसमें प्रगट भाव भी मुख्य रूप से ग्राम ही होते हैं । विषय केवल स्त्रीजनोचित, सुगम और प्रायः इन्हीं से सम्बन्ध रखता हुआ होता है । अलंकार इसमें सामान्य ही आते हैं प्रधान रस शृंगार है । यदा कदा हास्य, वीर, शान्त और भक्ति रस का भी प्रयोग होता है ।

भारतेन्दु युगीन साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और प्रेमघन ने ही सर्वाधिक कजलियां लिखी है । चौधरी बदरीनारायण उपाध्याय "प्रेमघन" ने कजलियों के साथ उनकी लय का भी निर्देश किया है जिससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रेमघन को लोक संगीत ने कितना अधिक आकृष्ट किया था । "प्रेमघन" काव्य में कजली के लिए निर्देशित निम्न लय मिलती हैं -

(क) सामान्य लय- वह लय जिसमें सामान्य जनता गाती है ।

(ख) गुण्डानी लय

(ग) गृहस्थिनियों की लय

(घ) बनारसी लय

(ङ०) साखी बद्ध लय

(च) संवरी वालों की लय

अधिकांश कजरियों में है हरि, रामा, हे रामा, हो रामा, रामा रे हरी आदि की टेके मिलती हैं ।

लावनी :-

लावनी भी लोक गीतों का एक प्रकार है, जिसका भारतेन्दु युगीन काव्य में बहुलता से प्रयोग हुआ है । मराठी में लावनी को लावणी कहा गया है वहाँ भी लावणी शृंगार रस प्रधान एक प्रकार का लोक काव्य रूप भी है । यह तमाशों में तथा अशिक्षित गायकों के मध्य आज भी गाया जाता है[1]। लावनियों का मुख्य रस शृंगार ही है पर कई लावनियों में किसानं के दुखदर्द, तीर्थ वर्णन, शहरों में नए सुधार, नए फैशनों पर फबतियां आदि भी मिलती है । "मराठी लावणियों में जन सम्मत प्रेषणीयता है जो शिष्ट तर्क सम्मत चाहे न भी हो------लावणी के विषय आध्यात्मिक नहीं लौकिक हैं । कृत्रिम साज सज्जा का अभाव है । इनमें लोक भाषा का अनुप्रास युक्त तथा लोक सम्मत प्रयोग हुआ है ------कविताएं आठ मात्रा के धुमाली ताल में होती हैं । यह ताल भी बाद में लावणी तालकहलाने लगा[2]।" लावनी शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में पर्याप्त मतभेद है । किसी का मन्तव्य है मराठी में लावणी का अर्थ "लगाना" होता है । खेत में बुवाई या पौधों की रोपनी को भी लावणी कहते हैं । अतः रोपनी के समय जो गीत गाए गए, वे गीत लावनी कहलाए । किसी विद्वान का विचार है लावनी शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की लू धातु से हुई, जिसका अर्थ है काटना । अतः लावनी खेत काटने के समय गाया जाने वालागीत है, रोपनी के समय वाला नहीं । प्रभाकर माचवे जी का विचार है सुभग रचना के अर्थ में लावणी का प्रयोग होता रहा होगा । इस प्रकार लावनी के अर्थ के विषय में बहुत मतभेद

१- देखिए- प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ४०९ ।

२- प्रभाकर माचवे: भारतेन्दु की लावनियां, सम्मेलन पत्रिका, भारतेन्दु अंक, सं० २००८ पृ० २९ ।

है किन्तु फिर भी सर्वसम्मत से यह स्वीकृत है कि लावनी लोकगीत का वह एक प्रकार है जिसका सम्बन्ध कृषक वर्ग से है ।

छंदशास्त्रकार जगन्नाथ प्रसाद "भानु" का मत है कि लावनी १६, १४ की यति वाले ताटंक छंद की धज पर गाई जाती है और लावनी के अंत में गुरु लघु का कोई विशेष नियम नहीं है[१]। छंदशास्त्री पं० राम बहोरी शुक्ल का विचार है, १३, ९ मात्राओं की यति वाले राधिका छंद का ही दूसरा नाम लावनी है[२]। इस प्रकार दोनों छंदशास्त्रियों में ही मतभेद है । अवधेय है कि उपर्युक्त छंदों का लावनी लोकगीत से विशेष सम्बन्ध नहीं है । लावणी राजस्थान का एक पसिद्ध लोक संगीत प्रकार भी है । राजस्थान में लावणी का अर्थ बुलाने से है और नायक द्वारा नायिका के बुलाने के अर्थ में लावणी का प्रयोग है । कुछ लेखकों का अनुमान है कि लावणी में शृंगारिक गीत लिखने का कारण भी यही है और उसका व्युत्पत्ति सम्बन्धी अर्थ ही यह संकेत करता है कि यह मुख्यरूप से शृंगारिक गीत है । किन्तु अवधेय है कि शृंगारके अतिरिक्त भक्ति भावना से सम्बन्धित भी लावणियां लिखी गई हैं । राजस्थान में लावणी के अनेक भेद भी है[३]। "संगीत राग कल्पद्रुम" के अनुसार लावणी एक उपराग है जो देशी राग के अन्तर्गत है ।

इसका विकास लोक गीतों से हुआ है । और इसका संस्कृत रूप लावणी है । इसका सम्बन्ध लावनी देश(लावाणक) से था, जो मगध के समीप था । इस देश में यह प्रचलित होने के कारण लावनी कहलाया । लोक रागिनी लावनी का शास्त्रीयकरण मियां तानसेन ने किया ! लोक रागिनी होने के कारण कवियों ने इसे अपनाया ।

प्रभाकर माचवे की दृष्टि से " भारतेन्दु की लावनियों और मराठी लावणी का छंद रूप निश्चित नहीं है, परन्तु भारतेन्दु की लावनियां

१- भानुः छंदः सारावली, पृ० २८ ।

२- राम बहोरी शुक्लः काव्य प्रदीप ।

३- राजस्थानी लोक संगीतः देवीलाल सामर, पृ० २१-२२ ।

मराठी शैली से भिन्न हैं, कुछ मराठी के भूपति वैभव केशककरिणी आदि छंदों से मिलती हैं जो कुछ ग़ज़लों की बहारों पर रची जान पड़ती है[1]।"

भारतेन्दु युगीन काव्य में सर्वाधिक लावनियां प्रताप नारायण मिश्र[क], बदरी नारायण उपाध्याय चौधरी, "प्रेमघन"[ख] तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र[ग] की ही मिलती हैं। ये तीनों अपने युग के लावनी बाज़ों में भी गिने जाते थे जो लावनी के दंगलों में भी प्रायः भाग लिया करते थे। प्रेमघन ने भारतेन्दु तथा प्रताप नारायण मिश्र की तुलना में लावनियां कम लिखी है। प्रेमघन की समस्त लावनियां शृंगार रस पूर्ण है जो ब्रज का पुट लिए हुए खड़ी बोली में लिखी गई हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने शृंगार, भक्ति रस दोनों में ही लावनियां लिखी हैं, भाषा कुछ में ब्रज का पुट लिए खड़ी बोली है किसी में उर्दू तो किसी में संस्कृत। संस्कृत में भारतेन्दु तथा प्रताप नारायण मिश्र दोनों की एक एक लावनी मिलती है। भारतेन्दु ने लावनी होली पर भी लिखी है। भारतेन्दु की लावनियां, फूलों का गुच्छा, प्रेम तरंग, प्रेम प्रलाप आदि में संगृहीत हैं। भारतेन्दु ने रेख्ता के ढंग की भी लावनियां लिखी हैं जैसे - तुझे कोई काबे में हाजिर कोई दैर में बतलाता, भूले हैं सब मकज में बेतुाक उनके फर्क पड़ा।" आदि

होली और फागः-

यह ऋतु संगीत है जो बसंत पंचमी से शुरू होकर फागुन की पूर्णिमा तक गाया जाता है। होली पर यह विशेष रूप से गाया जाता है। इसका प्रचार मथुरा वृंदावन में होली के अवसर पर डफ पर गाए जाने वाले फाग से हुआ है। आज होली विभिन्न ढंगों से गायी जाने लगी है इसलिए डफ पर गाए जाने वाली पद्धति को हम "डफ की होली" के नाम

1- प्रभाकर माचवेःभारतेन्दु की लावनियां,सम्मेलन पत्रिकाःभारतेन्दु अंक सं० २००८, पृ० २९।

क- प्र०ल०पृ० २७, ७५, ८४, ८७, ८८, ८९, ९०।

ख- प्रे०सर्व०पृ० ४७६, ४७७।

ग- भा०ग्रं: फूलों का गुच्छा सम्पूर्ण।

से ही पुकारने लगे हैं । इनका विषय कृष्ण की फगुआ लीला ही मुख्यतः रहता है । होली धमार की होली ही की सी है किन्तु कई ध्वनियों में आज गाई जाती है । लय में धमार की कैदनहीं है । यह प्रायः चाचर, तिताला, सितारखानी, कहरवा ताल में होती है और इसमें ठाह, दून, ठुमरियों ऐसा ही होता है । होली का मुख्य रस शृंगार है, विषय मुख्य रूप से तो कृष्ण की फाग लीला ही है किन्तु इसके अतिरिक्त होली पूजन, सम्बोधन से हास परिहास आदि भी इसके विषय बने हैं । भारतेन्दु ने होली विषयक पदों में बिहाग, सिंदूरा, धनाश्री, काफी, होली, डफ, की, देस, आसावरी, पूर्वी, गौरी, अहीरी, यमन कल्याण आदि रागों का तथा धमार, इकताल आदि तालों का तथा "प्रेमघन" ने राग कलंकरा, ललित, मुलतानी, सिंदूरा, सोहनी कान्हरा, भैरवी, धनाश्री आदि रागों में तथा छंद अष्टपदी, ठुमरी, खेमटा, फाग चाल बिलगाई आदि शैलियों में लिखी हैं ।

कबीर:-

कबीर होली के दिन केवल पुरुषों द्वारा गाया जाने वाला एक विशेष प्रकार का पूर्णतः लोक संगीत काव्य रूप है । इसमें पुरुष प्रायः अत्यन्त अशिष्ट यौन सम्बन्धी शब्दों का प्रयोग कर अपनी यौन वासना की प्रायः एक प्रकार से तृप्ति करते हैं । भारतेन्दु युगीन काव्य में "कबीर" संख्या में बहुत है पर वे शुद्ध कबीर नहीं हैं, जो होली में गाए जाते हैं, केवल तर्ज ही हमें उनमें देखने को मिलती है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने कबीर की शैली में अनेक रचनाएँ की हैं । प्रेमघन ने तीन कबीर लिखे हैं । जिनमें प्रयुक्त "कबीर भर र र र र र र हां" टेके मात्र शुद्ध कबीर के अंश हैं । भोजपुर प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों में भी कहीं "कबीर भर र र र र र र हां" तथा कहीं "कबीर बम म म म म हां" आदि टेके प्रयुक्त होती हैं । प्रेमघन के कबीर की तर्ज शुद्ध लौकिक है किन्तु विषय पूर्णतः कबीर के नहीं हैं । प्रेमघन ने अपने एक कबीर में कांग्रेस को भी खरे खोटे

शब्द सुनाए हैं[1]।

बालकृष्ण भट्ट[क] तथा प्रतापनारायण मिश्र[ख] आदि के कबीर विषय और तर्ज दोनों ही दृष्टियों से लोक वर्ग में प्रचलित कबीरों का प्रतिनिधित्व करते हैं। "कबीर" एक प्रकार का छंद भी है, जो २७ मात्राओं का है, जिसमें १६, ११ की यति है और अंत में गुरु लघु का विधान है[२], पर होली के कबीरों का इस छंद से कोई संबंध नहीं है।

चैती या घांटोः-

चैत माह में गाया जाने वाला, बिहार प्रान्त का मुख्य रूप से लोक गीतों का एक प्रकार है। वसन्त ऋतु की प्रौढ़ावस्था का यह गीत है। फाग और झूमर वसन्त के आरम्भ अर्थात् किशोरावस्था के गीत हैं। इसमें उल्लास का प्रारम्भिक रूप देखने को मिलता है पर चैती में आनंद और उल्लास अपनी पूर्णता में अभिव्यक्त होता है। इसका प्रचार मुख्य रूप से मिथिला या भोजपुर प्रदेश में ही है। फगुआ की ध्वनि में यह गाया जाता है। लय अधिकतर सितार रवानी और चांचर की होती है। इसका वर्ण्य विषय संभोग तथा विप्रलम्भ श्रृंगार से परिपूर्ण है। चैती दो प्रकार की होती है -

(क) झालकुटिया- सामूहिक रूप से झाल कूटकर (बजाकर) गायी जाने वाली।

(ख) साधारण- जिसे व्यक्ति विशेष बिना वाद्य की सहायता से गाता है।

चैती की प्रत्येक पंक्ति में प्रायः "रामा" अन्त में "हो रामा" उपलब्ध होता है। इस गीत के गाने में प्रथम क्रमिक आरोह होता

१- प्रेमघन सर्वस्व(द्वितीय खण्ड), पृ० ६२६।

क- हि०प्र०जि०११,सं०५,६,७,पृ० ५२-५६, हि०प्र०जि०२,सं०७,पृ० ११-१२।

ख- प्र०ल०पृ० ११८।

२- भानुः छंदः सारावली, पृ० २५।

है । और अन्त में अवरोह होता है । चैती प्रेम के गीत हैं अतः इनमें शृंगार के दोनों पक्षों की कहानी रागों में लिखी गई है । मैथिली में चैती को चैतावर कहा जाता है ।

प्रेमघन ने तीन चैती या घांटों लिखे हैं[1] जो शृंगार रस परिपूर्ण है । रामा, हो रामा, इनकी टेकें हैं - जालिम जोर जुबनवा रामा, कैसी लागी लगनिया हो रामा ।

बनरा :-

इसे बना, बन्ना या बनरा भी कहते हैं । यह विवाह गीत है, जिसे बारात की निकासी के पहले वरपक्ष की स्त्रियां गाती हैं । इसमें प्रायः बन्ने(वर) का रूप वर्णन आदि होता है । यह गीत मुसलमानों के यहां भी बरात की निकासी के समय गाया जाता है । प्रेमघन ने बनरा लिखा है इन्होंने बनरे के दो भेद किए हैं - (क) बनरा बराती (ख) बनरा घराती । बनरा बराती में माथे पर मौर, गले में बेले का सेहरा, भूषणों से सुसज्जित केसरिया वस्त्र पहने हुए बनरा का वास्तविक लोक रूप सामने रखता है । बनरा घराती में भी जामा, पाग, सेहरा पहने हुए बन्ने का चित्र अंकित किया गया है । भारतेन्दु ने भी बन्ना लिखा है[2] ।

गाली :-

गाली भी एक प्रकार का विवाह गीत है जो वधूपक्ष के यहां, वरपक्ष के लोगों के भात खाने के समय वधू पक्ष की महिलाओं द्वारा गाया जाता है । वरपक्ष के लोग इस गीत में विशेष रुचि रखते हैं । प्रेमघन ने "गाली" लिखीं हैं[3]। गाली के प्रेमघन ने तीन प्रकार बताएं हैं - सुहाती गाली, रुलाती गाली, हंसाती गाली + ज्योनार । सुहाती गाली

१- प्रेमघन सर्वस्व:पृ० ६२३ ।

२- भारतेन्दु ग्रंथावली :काव्य खण्ड: पृ० २९०-२९१ ।

३- प्रेमघन सर्वस्व: काव्य खण्ड, पृ० ४५०-४६२ ।

में वर पक्ष के लोगों तथा वर के गुणों का वर्णन होता है । रूलाती गाली में वर के परिवार वालों को दोष लगाया जाता है, उन्हें व्यभिचारी आदि कहा जाता है । वर की मा, चाची, फूफी, मामी, बहन, भाभी, आदि को विभिन्न प्रकार की गालियां दी जाती हैं । प्रेमघन ने ऐसी गाली का बहुत सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है । तीसरा भेद "हंसाती गाली ज्योनार" का प्रेमघन ने किया है । इसमें विविध प्रकार के हास परिहास आदि का वर्णन रहता है ।आज "भात खाने" के अवसर पर जो गालियां गाई जाती हैं उनमें सबसे अधिक संख्या "रूलाती गाली" के प्रकारों की हैं । हंसाती गाली भी गायी जाती है । "सुहाती गाली" विवाह में गाली के रूप में बहुत कम गाई जाती है ।

समधिन:-

"समधिन" भी विवाह संस्कार के अवसर पर गाया जाने वाला एक गीत प्रकार है । जिसमें समधी समधिन सम्बन्धी हास परिहास रहता है । प्रेमघन तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस प्रकार का गीत लिखा है[1]

घोड़ी:-

भारतेन्दुने घोड़ी लिखी है[2]। लोक में इस गीत को घुड़चढ़ी के गीत कहा जाता है । घोड़ी के गीत मुसलमानों के यहां विशेष रूप से गाये जाते हैं । इसमें घोड़ी की सज्जा, चाल उसके हाव भाव और उस पर चढ़ने वाले वर के सौन्दर्य आदि का वर्णन रहता है । यह गीत वधूपक्ष के यहां गाया जाता है । राजस्थान में घोड़ी गीत प्रकार हैं । राजस्थान में "मुख्यत: तो विवाह गीत है किन्तु घोड़ी का उल्लेख स्वतंत्र रूप से भी राजस्थानी गीतों में मिलता है । घोड़ी पर चढ़ कर ही विवाह में तोरण मारा

१- प्रेमघन सर्वस्व, काव्यखण्ड, पृ० ४६२, भारतेन्दु ग्रंथावली, काव्यखण्ड, पृ० ३७९-३८० ।

२- भारतेन्दु ग्रंथावली, काव्यखण्ड, पृ० ४९० ।

है । घोड़ी का शृंगार वर्णन तथा उसकी चाल हिनहिनाहट आदि का चित्रण गीतों में हुआ है । घोड़ियां सौराष्ट्र और सिंध की प्रसिद्ध हैं[*]। भारतेन्दु लिखित घोड़ी "राधा कृष्ण" विवाह अवसर से संबंध रखने वाली है, जिसमें सखि दूसरी सखि से निवेदन करती है, चलो । नीली घोड़ी पर चढ़ा, माधुरी मूरत, भोले मुख वाला, जामा, बीरा, जरकसी पहने, हाथों में मेंहदी लगाए, मोरमुकुट पहने, फूलों की बेनी बनाए, घुंघराली अलकें वाले बन्ने वर को देखने चलें । इसी प्रकार नकबेसर, जरी आदि द्वारा सुसज्जित राधा का भी वर्णन है ।

सेहरा:-

वर के शीश पर, ब्याह के लिए बरात की निकासी के पहले, सेहरा बांधते समय गाया जाने वाला यह भी एक प्रकार का विवाह गीत है । भारतेन्दु लिखित सेहरा[१] कृष्ण विवाह से सम्बन्धित है जिसमें दूल्हा कृष्ण का फूलों का सेहरा तथा आभरण पहने हुए कुंज में बैठना तथा सखियों द्वारा गीत गाना वर्णित है ।

ब्याहुला:-

यह भी विवाह गीत का एक प्रकार है । इसमें राधा कृष्ण का गांठ जोड़ कर बैठना तथा एक दूसरे को देखकर परस्पर आनन्द लाभ करना, और ब्रज बालाओं का गाली देना वर्णित है[२]।

नकटा:-

बरात की निकासी के उपरान्त वरपक्ष के समस्त पुरुष वर्ग के बरात में चले जाने पर वर के यहां केवल स्त्री समुदाय के रह जाने पर, जिस दिन विवाह होता है उस रात को वरपक्ष के यहां की स्त्रियां वर के

---

*- राजस्थानी लोक संगीत: देवीलाल सामर, पृ० ६० ।

१- भारतेन्दु ग्रंथावली, काव्यखण्ड, पृ० ४५३,४६१-४६२ ।

२- वही, वही, पृ० ४५५ ।

घर पर अनेक प्रकार के शृंगारात्मक अभिनय करती है उन्हें नकटा कहा जाता है । कुछ लेखकों का कहना है कि संभवतः नाटक का ही विकृत रूप नकटा बन गया है । यह गीत प्रकार भी विवाह गीत के अंतरगत परिगणित होंगे। प्रेमधन ने दो नकटे लिखे हैं[1]। यह शृंगारात्मक हैं । प्रेमधन के यह नकटे "विवाह के नकटे" के अच्छे उदाहरण स्वरूप हैं । इन नकटों में पहले में स्त्री कहती है - हे पिया, सुन्दर, साफ सेज लगा कर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूं, तुम्हारे बिना सेज अच्छी नहीं लगती, तुम आते नहीं, तुम पाती भी नहीं भेजते, बज्र के समान तुम हो गए है । दूसरी ओर से दूसरी स्त्री पुरुष का अभिनय करती हुई कहती है स्त्री से - तुम ओढ़नी ओढ़ कर, हे गोरी किसका मन हरने जा रही हो, भौंहे तान कर किसे मारने जा रही हो, आदि ।

भूलनः-

एक प्रकार के भजन है जो श्रावण के महीने में कृष्ण और राधिका तथा राम और जानकी के भूला भूलने के अवसर पर गाए जाते हैं । भूलन को हिंडोला भी कहते हैं । इनका प्रचार मथुरा वृन्दावन गोकुल से ही हुआ, किन्तु पीछे आकर अयोध्या प्रांत में भी चला और इस समय से भजन इन स्थानों के अतिरिक्त सब स्थानों के मंदिरों में भी भूलन के उपलक्ष्य में गाए जाते हैं । पहले भूलन भक्ति भावना से ओत प्रोत था किंतु बाद में यह साधारण प्रेमी-प्रेमिका के भूलने के अवसर का गीत बन गया और इसमें भूलने के अवसर पर नायक नायिकाओं की विविध आंगिक चेष्टा-ओं का वर्णन किया जाने लगा । भूलन को ही हिंडोर और भूला शब्द से भी प्रायः सम्बोधन किया जाता है । "प्रेमधन" ने श्यामा-श्याम, राम-जानकी तथा साधारण नायक नायिकाओं तीनों के भूलने के संबंध के पद लिखे हैं[2]। इनमें नायक नायिका दोनों की विविध आंगिक चेष्टाओं का तथा

१- प्रेमधन सर्वस्वः काव्यखण्ड, पृ० ५९३ ।

२- वही, पृ० ४९९,५९३, ५६५ ।

झूले, पटले आदि का सुन्दर वर्णन है । प्रेमघन के अतिरिक्त भी अन्य सभी भक्त कवियों ने राधा-कृष्ण और राम-जानकी की इस रुचि पर पर्याप्त लिखा है[1]।

बुंदेलवा :-

बुंदेलवा भी लोक गीतों का एक प्रकार है और यह भी बुन्देलखण्ड की सामान्य जनता में उतना ही प्रचलित है, जितना उत्तरप्रदेश में कजली, झूलन आदि । बुन्देलखण्ड में बुंदेलवा का अर्थ प्रवासी सम्बन्ध में रूढ़ हो गया है । क्योंकि ये बुंदेले, जिन्हें बनजारे भी कहा जाता है, अपनी ऋतु में (अर्थात् व्यापार के लिए उपयुक्त समय में) बुंदेल खण्ड को छोड़कर व्यवसाय के लिए चले जाते थे और बुन्देली स्त्रियों को घर पर ही छोड़ देते थे । प्रायः ऐसा भी होता था कि बुंदेले अधिक समय तक प्रदेश के बाहर रहने के कारण दूसरे प्रदेश की स्त्रियों से प्रेमव्यवहार करने लगते थे और इन्हें विवाहिता बनाकर, स्वयं विवाहिता होने पर भी बुंदेल खण्ड ले आया करते थे । इसलिए बाद में बुंदेलवा उस व्यक्ति के लिए भी सम्बोधन शब्द बन गया जो अपनी पत्नी या प्रेमिका को छोड़कर दूसरी जगह चला गया । अतः इस प्रकार के बुंदेलवा पदों में स्त्रियों के वे उपालम्भ सम्बन्धी उद्गार हैं जो बुंदेले को सम्बोधित कर अपने सौन्दर्य के प्रति उस बुंदेले को मनाने के लिए कहे गए हैं । बुंदेले को निरमोही, बेइमान आदि कहा गया है और यह भी कहा गया है कि वह औरों के संग(अर्थात् और स्त्रियों की प्रीति में फंस गया है । प्रेमघन ने दो बुंदेलवा लिखे हैं[2]। जो बुन्देलखण्ड के शुद्ध बुंदेलवा लोक गीत से लगभग पूर्णतया साम्य रखते हैं । भारतेन्दु युगीन अन्य कवियों ने बुंदेलवा नहीं लिखे हैं ।

गरबो :-

गरबो गुजराती लोक गीतों का एक प्रचलित लोक गीत प्रकार

१- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० १२६, १२७, १८५ ।

२- प्रेमघन सर्वस्वः काव्य खण्ड, पृ० ५२१ ।

है, गुजरात में गरबा नामक एक लोकनृत्य प्रचलित है। इस लोक नृत्य में गाए जाने वाले गीत गरबो या गर्बा कहे जाते हैं। इन गीतों में कृष्ण की प्रेमलीलाओं तथा अम्बा देवी की स्तुति होती है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने दो गर्बा गीत लिखे हैं[1]। जिनकी भाषा गुजराती है तथा ये गुजरात के गर्बा लोक गीत से पूर्णतया मेल खाते हैं। इन दो गरबों में कृष्ण रूप वर्णन किया गया है। कृष्ण की तारण शक्ति की अपार महिमा का गुणगान किया गया है। अम्बा स्तुति विषयक गरबो भारतेंदु ने नहीं लिखे हैं।

सावनी-

सावनी स्त्रियों द्वारा सावन मास में गाया जाने वाला, ऋतु संबंधी एक प्रकार का लोक गीत है। यह मुख्य रूप से शृंगार रस का गीत है। कहीं विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन है तो कहीं संयोग का। भारतेंदु ने एक सावनी लिखी है[2] जो विप्रलम्भ शृंगार की है। प्रेमिका का पति विदेश चला गया है और उसके विरह में उसे निद्रा नहीं आती, रात सांपिन सी प्रतीत होती है और कामदेव उसे बार बार तंग करता है जिससे उसका सावन मास नहीं कटता और आंख से अश्रु की अविरल धारा बहती रहती है। भारतेंदुकृत सावनी, सावनी लोक गीत का एक अच्छा नमूना है।

पूरबी-

पूरबी मुख्य रूप से छपरा शहर (सारन जिला, बिहार प्रान्त) का खास गीत है। इसे छपरा की तवायफें बहुत अच्छी तरह गाती हैं। विरह वर्णन इसका मुख्य विषय है। शृंगार रस के पूरबी गीत हैं। इसकी ध्वनि फगुआ, कजरी, चैती की मिश्रित ध्वनि है। पूर्वी, सितारखानी लय और चांचर तथा कहरवा में गाई जाती है। भारतेंदु युगीन

१- भारतेंदुग्रंथावली, पृ० २९४।

२- वही, काव्यखण्ड, पृ० ५०५।

कवियों ने अनेक पूरबी गीत लिखे हैं[1] जो अधिकतर विप्रलम्भ शृंगार से सम्बन्धित है[2] । हे रामा, हो रामा आदि भी कजरी के समान इनकी टेकें होती हैं ।

बारहमासा-

बारहमासा लोक गीतों का वह प्रकार है जिसमें विरहिणी की प्रत्येक मास में अनुभूत मनोवेदनाओं तथा संवेदनाओं की अभिव्यक्ति होती है । चूँकि बारह मासों में विरहिणी की मनोव्यथाओं का वर्णन होता है इसलिए उसे बारहमासा कहा जाने लगा । बारहमासा मुख्य रूप से आषाढ़ मास से प्रारम्भ होता है किंतु चैत्र मास से भी कुछ बारहमासों का प्रारंभ मिलता है । बंगला साहित्य में भी यह गीत उपलब्ध हैं और इन्हें बारहमासी की संज्ञा प्राप्त है । ब्रज, अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली सभी में यह गीत पाए जाते हैं । भारतेंदु युगीन कवियों ने भी कई सुन्दर बारहमासे लिखे हैं विशेष रूप से भारतेंदु हरिश्चंद्र ने[3] । हरिश्चन्द्र के बारहमासों में कुछ पंक्तियों के बाद क्रम से एक टेक आती है जो भारतेंदुकी इस विषय में विशेषता कही जा सकती है उदाहरण के लिए एक बारहमासे में प्रत्येक चौथे चरण में, "बिनु श्याम सुन्दर सेज सूनी देख के व्याकुल भई" तथा दूसरे बारहमासे के प्रत्येक छठे चरण में "कैसे रैन कटे बिनु पिय के नींद नहीं आती- चरण की अंत तक पुनरावृत्ति हुई है । ये दोनों ही बारहमासे आसाढ़ मास से प्रारंभ हुए हैं । और तत्पश्चात् क्रमशः अन्य मासों का वर्णन हुआ है, जिसमें विरहिणी प्रिय के वियोग में हुई अपनी दारुण अवस्था तथा अपने ऊपर ऋतु के पड़े हुए संकटों को बताती है कि किस प्रकार उसे रात्रि रात्रि भर नींद नहीं आती जाग जाग कर ही रात व्यतीत कर देनी पड़ती है और किस प्रकार

१- भारतेंदु ग्रंथावली, पृ० ४२०, १८९, १९० ।
२- हा० स्र० सं० १, सं० ११ ।
३- भारतेंदु ग्रंथावली, पृ० ५०७-५१०, ५२६-५२९ ।

कामदेव उसे विविध प्रकार से पीड़ा पहुंचा रहा है । भावाभिव्यंजना तथा रसात्मकता की दृष्टि से यह बारहमासे उच्चकोटि के हैं ।

चौबढ़ा-

चौबढ़ा भी लोक गीतों का एक प्रकार है । इसका संबंध न तो किसी विशेष विषय से है, जैसे हिंडोला, भूलन आदि, न किसी विशेष ऋतु जैसे कजली आदि से न किसी विशेष पर्व से जैसे होली । इसका संबंध पंक्ति गत है । जिसे लोक भाषा में कड़ी कहते हैं । जिस गीत में भी चार कड़ी होंगी वे गीत चौबढ़ा वर्ग के अन्तर्गत आयेंगे । भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने एक चौबढ़ा शीर्षक से एक गीत लिखा है[1] । इस गीत में प्रत्येक छः पंक्तियों के बाद एक चौबढ़ा (चार पंक्तियों का छंद) रखा है । इन चौबढ़ों में मात्राएं भी समान नहीं है, केवल चार पंक्तियां सबमें है यही समानता है । किसी भी विषय पर चौबढ़ा लिखा जा सकता है ।

रसिया-

रसिया होली का एक प्रमुख लोक गीत प्रकार है । रसिया की एक विशेष ढाल या ताल होती है और जो होली संबंधी गीत उस ढाल या तर्ज में गाए जाते हैं वे रसिया कहे जाते हैं, जिस प्रकार होली का ही एक प्रमुख भेद कबीर है उसी प्रकार रसिया भी होली का एक गीत प्रकार है । शृंगार प्रधान विषय में रसिया अधिक लिखे गए हैं । प्रेमघन आदि भारतेंदु युगीन कवियों ने रसिए लिखे हैं[2] । ब्रज की होली का वर्णन इनमें मुख्य रूप से हुआ है । जो शृंगार रस पूर्ण है । रसिया गाते समय डफ वाद्य का प्रयोग होता है। मृदंग, चंग, ढोलक, झांझ मंजीरा आदि वाद्य भी रसिया में प्रयुक्त होते हैं[3] ।

१- भारतेंदु ग्रंथावली, पृ० १२३-१२५ ।

२- प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ६२४ ।

३- बजत मृदंग चंग डफ ढोलक झांझ मंजीरन की जोरी ।
प्रे० सर्व० पृ० ६२४ ।

अद्धा:-

अद्धा लोकगीत का वह प्रकार है जिसे दो वर्ग मिलकर गाते हैं। एक वर्ग आधा चरण कहता है दूसरा वर्ग उस चरण की पूर्ति करते हुए दूसरे आधे भाग का निर्माण कर उस क्रम को पूरा रखता है। इसप्रकार के लोग गीत में प्रायः प्रत्येक वर्ग द्वारा कही गई पंक्ति के अंतिम शब्द एक से रहते हैं, और इस प्रकार लोक गायकों में यह अंतिम शब्द टेक का रूप धारण कर एक प्रकार का समा बांधते हैं। इन अंतिम शब्दों पर दोनों ही वर्ग जवर बल भी देते है, और यह अंतिम शब्द ही इस बात के प्रमाण रहते है कि एक वर्ग अपना कथन पूरा कर चुका अब दूसरे वर्ग वालाफिर उस क्रम को बढ़ाएगा। भारतेन्दु युगीन कवियों के काव्य में "अद्धा" के अच्छे उदाहरणमिलते हैं और यह एक शुद्ध ~~अद्धा~~अद्धा लोक गीत का उदाहरण प्रस्तुत करते है। प्रेमघन ने दो "अद्धा" लिखे हैं[1]। एक "अद्धा" में "रे करबंदा"[2] तथा दूसरे में "जसुदा के लाल"[3] की प्रत्येक चरण में पुनरावृत्ति हुई है और टेक रूप में इनका प्रयोग हुआ है।

ढाढ़ी:-

ढोलिया के समान ढाढ़ी भी राजस्थानी गवैयों का एक प्रमुख वर्ग है जो चिकारा बजाते हैं। यह हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही धर्मों के लोग हैं। यह ढाढ़ी लोग अपने उत्पत्ति राजपूतों से ही मानते हैं। राजस्थान की जातियों पर अनुसंधान करते हुए एक लेखक ने ढाढ़ी गवैयों का परिचय प्रस्तुत किया है जिसका उल्लेख प्रस्तुत प्रसंग में असंगत न होगा। ढाढ़ी के विषय में वह लिखते हैं - "हिन्दू ढाढ़ी राजपूतों के अतिरिक्त जाट विश्नोई, सुनार और खत्रियों से भिक्षा लेते हैं। वे मीरासियों तथा मुसलमान ढोलियों के साथ हुक्का भी पी लेते हैं किन्तु ~~मलक~~ मुसलमान ढाढ़ियों

१- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० ५११, ५१६।

२- वही, पृ० ५११।

३- वही, पृ० ५१६।

जाति के राजपूत थे। उन्होंने रामचन्द्र जी के विवाह के पश्चात् जनकपुर से अयोध्या जाते समय बारात में बाजा बजाया था और ये लोग इस विषय पर एक गीत अब भी गाते हैं। मारवाड़ के मरुस्थल जिसका नाम थली है वहां यह लोग अब भी काफी संख्या में बसे हुए हैं, वहां इनका नाम मांगनियार है। ये लोग राजपूतों तथा सिंधी मुसलमानों की वंशावली भी रखते हैं। यह पूरी तरह राजपूती प्रथाएं मानते हैं। अपनी ही जाति के भीतर यह विवाह करते हैं और नाता इनमें प्रचलित नहीं है[१]। इन ढाढ़ी जाति के गवैयों द्वारा गाए जाने वाले गीत ढाढ़ी कहे जाते हैं और ये गीत जन्म सम्बन्धी अवसरों पर ढाढ़ी लोगों द्वारा के घर जाकर आज भी गाये जाते हैं। इन गीतों की शैली में भी गीत भारतेन्दु युगीन कवियों ने लिखे हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र[२] ने ढाढ़ी गीत लिखा है - जिसमें नंद के यहां पैदा होने वाले श्रीकृष्ण का वर्णन है। इस गीत में नंद भवन पर बंधी हुई तोरण पताका तथा द्वार पर बधाई देने हेतु खड़ी हुई भीड़ का वर्णन है। इस गीत में ढाढ़िन का भी उल्लेख हुआ है। प्रेमघन ने भी एक सोहर लिखा है जिसमें ढाढ़िनियां को बुलाने का उल्लेख है और उसका आंगन में नाच करवाने को कहा गया है - बेगि बुलाओ न ढाढ़ीनियां रे। नचाओ ना अगनवां रे[३]।।

बिरहा:-

बिरहा भी एक लोक संगीत रूप है जिसका कजली तथा होली के ही समान लोक वर्ग में अति प्रचलन है। बिरहा को कुछ लोग धोबियों का जाति गीत मानते हैं, तो कुछ अहीरों का। इसका कारण यही है कि दोनों ही जाति में बिरहा अति प्रचलित है। बिरहों के विषय

१- बजरंग लाल लोहिया: राजस्थान की जातियां, पृ० १४१।

२- भा०ग्रं०, पृ० ५२२।

३- प्रे०सर्व०, पृ० २६१।

चाल से दो चरण होते थे किन्तु अब बिरहे बड़े बड़े भी हो गये हैं । भारतेन्दु युगीन कवियों ने बिरहा अधिक नहीं लिखे हैं । जहां कजलियां भारतेन्दु युगीन कवियों ने सैकड़ों लिखी है वहां बिरहा गिनती के एक दो। परसन का एक बिरहा[1] हिन्दी प्रदीप में छपा था जिसमें उसने तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों का वर्णन किया है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक आधारित शास्त्रीय संगीत प्रकार:-

इन शुद्ध लोक गीत प्रकारों के अतिरिक्त भारतेन्दु युगीन कवियों ने अनेक ऐसी लोक गीत शैलियों में भी कविताएं लिखी हैं जो पहले तो कभी अपने समय के शुद्ध लोक गीत ही रहे होंगे, किन्तु बाद में उनकी शैलियों से, उनकी भावभूमि से, उनकी गति से, आकर्षित होकर संगीतज्ञों ने उन्हें अपना लिया और उसमें स्वर विस्तार कर, नए नए तालों का प्रयोग कर उनकी मधुरता और बढ़ाई । मधुरता बढ़ने पर, मार्मिक होने पर शास्त्रीय संगीतज्ञों ने उन शैलियों से अपनी संगीत साधना प्रारम्भ की उनमें विभिन्न रागों का प्रयोग कर देखा कि कौन सी राग उनमें सबसे अधिक रंजक है और बाद में उनके लिए रागों का निर्देश भी किया । संगीतज्ञों के इस प्रयोग का परिणाम यह हुआ कि जो लोकगीत पहले केवल लोक संगीत की ही संपत्ति थे बाद में शास्त्रीय संगीत की भी संपत्ति बने, और उनमें बाद में इतना परिवर्तन कर दिया गया कि लोक गीतों से उनकी शैली भिन्न भिन्न प्रतीत होने लगी, यद्यपि लोक में उनका प्रचार बना ही रहा । ऐसे गीतों को हमने लोक आधारित शास्त्रीय गीत प्रकार वर्ग के अन्तर्गत रक्खा है । क्योंकि इनका आधार पूर्णतः लोक है यद्यपि बाद में यह शास्त्रीय गीत प्रकार स्वीकृत हुए, यद्यपि इन गीत शैलियों का प्रचार साधारण जनवर्ग में कोई कम नहीं है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्राप्त लोक आधारित शास्त्रीय

१- हि०प्र०जिल्द १३, सं० ५,६,७, पृ० ५२-५३ ।

गीत प्रकार निम्न हैं-

ठुमरी :-

ठुमरी लोक आधारित शास्त्रीय गीत प्रकार है। अर्थात् इसका उद्गम लोक गीतों से हुआ और बाद में संगीतज्ञों ने इसमें स्वर विस्तार कर इसे शास्त्रीयरूप दे दिया। इसके विशेष नियम बना दिए। किन्तु नियम बनाने के उपरान्त भी ठुमरी लोक में प्रचलित रही। ठुमरी संगीतज्ञों के अतिरिक्त अशिक्षित वर्ग में आज भी गाई जाती है[1]। ठुमरी पहले भी निम्न जाति की स्त्रियां या वेश्याएं ही गाती थीं, इसलिए संगीतशास्त्र में भी इसे निम्न कोटि का गाना समझा जाता है। लोक संगीत को किस प्रकार शास्त्रीय संगीत का रूप दिया गया, इसका सबसे अच्छा प्रमाणदादरा ही है।

ठुमरी के उद्भव के सम्बन्ध में सभी बड़े बड़े संगीतज्ञ मानते हैं कि लोक गीतों से ही ठुमरी का जन्म हुआ[2]। ओ० गोस्वामी[3] का भी यही मत है कि ठुमरी का निश्चित निर्माता तो नहीं बताया जा सकता किन्तु श्रुति है कि पहले यह साधारण जनता में प्रचलित थी और सादिक अली खान ने इसमें सुधार किया था। आजकल जो ठुमरी प्रचलित है वह पंजाबी प्रकार की है, टप्पे की तरह की तानों का इसमें प्रयोग होता है, पहाड़ी और अन्य प्रकार के पंजाबीय लोक संगतीसंगीत ने इसे

१- देखिए: प्रेमघन सर्वस्व:पृ० ४०९, पंक्ति - छोटा धौरा मृदंग नाचता बांकी ठुमरी गाता था।

२- "हमारे यहां की ठुमरी और दादरा ये प्रकार लोक गीतों से ही उत्पन्न हुए हैं।" - संगीत कला विहार, जन० १९६१, पृ० २३।

3. It is diffioult to state who was the originator of Thumri. The story goes that it was prevalent among the common people and one ~~x~~ Sadik Ali Khan, a musician in the court of Oudh, improved it." The story of Music. O.Goswami p.135.

प्रभावित किया है । संगीत के प्रसिद्ध विद्वान जी०एच०रानाडे[1] का विचार है कि स्वरावलियों की दृष्टि से भी ठुमरी लोक संगीत की ही वस्तु प्रतीत होती है । ठुमरी की लय और गति लोक गीतों की लय और गति के समान ही होती है । लोक गीतों से ली गई खमाज, काफ़ी, मांड, पीलू और अन्य रागों के प्रयोग से भी यही सिद्ध होता है कि यह लोक की ही वस्तु है, और प्रारम्भ में यह घर घर में प्रचलित रही होगी । ग्राम जनता इसे गाती होगी ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने अनेकों ठुमरियां लिखी हैं[2]। इन समस्त ठुमरियों का प्रधान रस शृंगार है । कुछ स्थानों पर तो इन ठुमरियों का विषय कृष्ण और राधा की प्रेम लीलाएं बनी हैं लेकिन अधिकांश ठुमरियां ऐसी हैं जिनके विषय साधारण नायक नायिकाओं की शृंगार सम्बन्धी क्रीड़ाएं, हास परिहास, उपालम्भ आदि हैं । ठुमरियों में भारतेन्दु युगीन कवियों ने अनेक राग रागिनियों का निर्देश किया है । मुख्य निर्देशित राग गौरी, काफी, खम्माच, इमन, कान्हरा, देस, परज, कलंगरा, बहार, शहाना, सिंदूरा, झिंझौटी, पीलू, सोरठ हैं । इन निर्देशित रागों में से अधिकांश राग लोक राग हैं, जो लोक धुनों से निकली है और जिन्हें संगीत शास्त्र में क्षुद्र प्रकृति के राग कहा गया है । इन रागों के अतिरिक्त "लखनऊ के चाल की" तथा "होली की ठुमरी" आदि शीर्षक भी मिलते हैं जिनसे ठुमरी

---

1. "Thumri is another interesting form of musical composition. A majority of such songs employ scales which are usually met within the folk songs and employ as a rule notes from the very nine consonances which principally figure in folk music. The Thumri therefore employes such ragas as Kamaj, Kafi, Mand, Pilu and others as are derived from them- Hindustani Music: Ranadey , G.H.

२- भा०ग्रं० पृ० १८२, १८३, प्रे०सर्व० पृ० ५६२-५७१ ।

की लौकिकता तो सिद्ध होती ही है तथा कवियों का लोक संगीत रूपों के प्रति अनुराग भी प्रदर्शित होता है । ठुमरी के साथ ही साथ भारतेन्दु युगीन कवियों ने ध्रुपद भी लिखे हैं जो लोक आधारित शास्त्रीय गीत प्रकार हैं ।

ध्रुपद :-

ठुमरी के समान ध्रुपद भी लोक आधारित शास्त्रीय गीत प्रकार है । श्री श्याम परमार ध्रुपद के विषय में लिखते हैं - "ध्रुपद की शैली को संभवतः लोक प्रचलित रसिया का शास्त्रीय संस्कार कहा जा सकता है--- आइने अकबरी में दो प्रकार के गीतों का उल्लेख है - मार्ग और देशी । देशी शैली में ध्रुपद विशेषतः उल्लेखनीय है, जो चार चरणों के द्वारा बिना छंद और मात्रा की बंदिशों के शृंगार प्रधान विषय को व्यक्त करने की सामर्थ्य रखता है । आइने अकबरी में जिस ध्रुपद का उल्लेख है वह कदाचित् रसिया से सम्बन्धित है[1]। ध्रुपद ऐसा संगीत लोक काव्य रूप है जिनमें और शास्त्रीय रूपों में काफी साम्य है किन्तु वह लोक शैली पर आधारित है । श्री दिलीप चन्द्र वेदी[2] का विचार है कि अनेक पंजाबी संगीत रूप ऐसे हैं जिनमें लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत का मिश्रण है । अनेक पंजाबी लोक गीतों के स्वर साम्य शास्त्रीय संगीत की स्वरावलियों से बहुत निकट से संबंधित है । उदाहरण के रूप में वेदी जी ने एक ध्रुपद का उदाहरण दिया है जो लोकगीत हैं, किन्तु

१- हि०सा०को०, पृ० ६३५ ।

2. It is a characteristic of Punjabi Music in particular and of Hindustani Music in general, that they reveal an intimate interconnection between folk and classical singing. There are many Punjabi Folk songs the suare sequences of which resemble classical songs very closely. Here is a Dhrupad. 'Lambodar Giriraj Namaskar Kar Jor. And composed exactly on this pattern, here is a folk song. 'Punjabi Music- Its Nature and Growth: Bedi D.C.

वह शास्त्रीय प्रकार में भी स्वीकृत है । ध्रुपद के सम्बन्ध में कैप्टन विलर्ड[1] के विचार देखने से भी यह स्पष्ट है कि ध्रुपद लोक संगीत का ही पहले प्रकार था जो बाद में शास्त्रीय रूप को प्राप्त हुआ । विलर्ड साहब का विचार है कि ध्रुपद पहले भारत का वीरात्मक गीत कहा जाता था जिसका विषय मुख्य रूप से वीर आत्माओं का गुणगान होता था । ऐडम्स ने तो ध्रुपद को आदिम तक माना है[2]। "प्रेम" आदि भी इसके विषय होते थे । इसकी शैली पुरुषात्मक होती थी । इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि ध्रुपद का सम्बन्ध पहले लोक संगीत से ही रहा होगा ।

भारतेन्दु युगीन कवि अच्छे संगीतज्ञ थे । उन्होंने ठुमरी के समान अनेक ध्रुपद भी लिखे हैं । कहीं कहीं तो इन कवियों ने ध्रुपद के शीर्षक भी दिए हैं[3]। कहीं - कहीं शीर्षक नहीं दिया है, किन्तु उनकी शैली से स्पष्ट है कि वे ध्रुपद हैं[4]। जैसा कि विलर्ड ने कहा था "ध्रुपद मुख्य रूप से वीरगाथात्मक पहले होते थे" किन्तु आज के तथा भारतेन्दु युगीन काव्य में

---

1. This may properly be considered as the Heroic song of Hindustan. The subject is requently the recital of some of the memorable actions of their heeroes or other didictic theme. It also engrosses love matters, as well as trifling and frivolous subjects. The style is very masculine and almost entirely devoid of studied ornamental flourishes.- Capt. Willard.

2. We can call Dhrupad Music 'primitive' since its massive form and austere outline and immediately determined by the grandeur of the thesis and the suppressed emotion of its realization, without any intrusion of individuality or parade of skill. It has a high degree of vitality without showing the conscious elegance and suavity (Adams.L.- Primitive Art) Goswami, O.- The Story of Indian Music p.265.

३- प्रेम० सर्व० पृ० ५८८ ।

४- प्रे० सर्व० पृ० ४१७ -"पंक्ति" जय जय जयति जय"

पृ० ४१८ - पंक्ति "भावत रंग डार डार" ।

प्राप्त ध्रुपद शैली में लिखे हुए जो पद हैं वे अधिकतर शुद्ध भक्ति भावना के ही हैं और उनमें शृंगार भावना के भी जो ध्रुपद है उनके आलम्बन भी कृष्ण या राधा ही हैं । कुछ ध्रुपद राधा कृष्ण की होली लीला से सम्बन्धित हैं ।

पद और भजनः-

पद और भजन लोक संगीत काव्य के ही रूप हैं, इनका उद्भव भी लोक से ही हुआ है किसी संगीतज्ञ की रागरागिनी बद्ध प्रतिभा से नहीं, किन्तु संगीतज्ञों ने इसमें स्वर विस्तार कर, विविध ताल लय बद्ध कर इसे शास्त्रीय संगीत में समाविष्ट कर लिया है और आज यह पद और भजन विभिन्न शास्त्रीय रागों और तालों में गाए जाते हैं । इस कारण से पद और भजन को लोक आधारित शास्त्रीय गीतप्रकार के अन्तर्गत रखना ही युक्ति युक्त है । डा० रघुवंश[1] का पदशैली की लौकिकता के विषय में विचार है कि पद की दो शैलियां प्रचलित हैं- एक संतों की सबद की शैली, जिसकी परम्परा सिद्धों के चर्यापदों से तथा दूसरी परंपरा कृष्ण भक्तों की है । यह दोनों परंपराएं किसी स्तर पर समान रही होंगी और इन दोनों की मूल स्थिति लोक गीतों में ही है । समस्त भारतीय भाषाओं में पद शैली का भक्ति भावना के लिए प्रयोग उपर्युक्त धारणा की ही पुष्टि करता है इस शैली का मूल लोक गीतों में ही है । इस प्रकार से यह सिद्ध है कि पद शैली का साहित्य में आगमन लोक गीतों से ही हुआ है और बाद में यह शैली साहित्य में इतनी प्रचलित हुई कि इसकी लौकिकता की ओर भी लोगों का ध्यान ही नहीं गया ।

भारतेन्दु, प्रेमघन आदि भारतेन्दु युगीन कवियों ने अनेक पद और भजन लिखे हैं जो भक्ति भावना से सम्बन्धित हैं[2] । हास्य रस

१- हिन्दी साहित्य कोश- टिप्पणी- पद शैली ।

२- प्रेमघन सर्व: पृ० ४५३, ४५४, ४५७ ।

भारतेन्दु ग्रंथावली: पृ० ~~४~~७९, ४७९, ४८०, ४८१, ४३० ।

के भी एक दो पद उदाहरण स्वरूप मिल जाते हैं[1]।

राग:-

भारतेन्दु युगीन काव्य में हमें अनेक रागों के नाम पदों के शीर्षक रूप में दिए मिलते हैं। रागों की स्वरावली न होने के कारण यह तो विचार नहीं किया जा सकता है कि इन रागों में यह पद सर्वाधिक सुन्दर गाए जा सकते हैं या नहीं, और इनकी स्वरावली, लोकगीतों की स्वरावली से कितनी मिलती है, किन्तु फिर भी इतना तो निश्चित रूपेण विचार किया ही जा सकता है कि जिन रागों के शीर्षक दिए गए हैं उनमें से कितने राग शुद्ध शास्त्रीय राग न होकर लोक गीतों से लिए गए प्रतीत होते हैं, कितने राग किसी प्रदेश विशेष में प्रचलित गीतों की धुन के आधार पर उस प्रदेश के नाम विशेष से ही बना लिए गए हैं। क्योंकि अनेक राग-रागिनियाँ लोक संगीत के माध्यम से ही बनी हैं। अनेक शास्त्रीय रागों में लोक संगीत के स्वर मिलते हैं। अनेक रागों का शास्त्रीय करण भी लोक संगीत की स्वरावली को लेकर ही हुआ है। प्रसिद्ध संगीतज्ञ कुमार गंधर्व[2] का विचार है कि मांड, मालवराग, सिंध, काफी, सिंध भैरवी, सोरठ, केदारा आदि सभी रागों का शास्त्रीय करण लोक संगीत के स्वरों से ही हुआ है। इनके अतिरिक्त भैरवी, तोड़ी, खम्माच, भीमपलासी, झिंझोटी आदि रागों में भी लोक संगीत के स्वर मिलते हैं। समस्त रागों के ऐतिहासिक अनुसंधान सम्बन्धी सामग्री के अभाव में यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि किस प्रकार लोक धुन मिश्रण से इन रागों का निर्माण हुआ होगा किन्तु यह बताया जा सकता है कि किन रागों को शास्त्रीय संगीत में क्षुद्र प्रकृति के राग कहा गया है और लोक गीतों में किन किन रागों के स्वर प्रयोग मिलते हैं। अवश्य है कि शास्त्रीय संगीत में "क्षुद्र प्रकृति के राग" शब्द का प्रयोग लोक रागों के लिए ही किया गया है।

१- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० २५९, २६०।

२- कल्पना : जून-५४, कुमार गंधर्व का लेख।

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त राग अधिकांश लोक तद्भव राग वर्ग के अन्तर्गत ही आती है । लोक तत्सम और लोक अर्ध तत्सम रागों की संख्या नगण्य ही है । इन लोक तद्भव रागों को हम लोक आधारित शास्त्रीय राग भी कह सकते हैं, क्योंकि मूलतः है तो यह लोक वर्ग की ही किन्तु संगीतज्ञों ने इसमें अपनी प्रतिभा से विविध स्वर विस्तार कर इन रागों का माधुर्य बढ़ाया है ।भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक आधारित शास्त्रीय राग मुख्य निम्नलिखित हैं ।

भैरव[१] (प्रे०सर्व०पृ० ४०७, ४१९)

सिंधु भैरवी[२] (प्रे०सर्व०पृ० ४०९, ४१०, ४५९)

१- ओ०गोस्वामी का मत है कि भैरव मुख्य रूप से ग्रीष्म ऋतु में गाया जाने वाला ऋतुराग है और यह अति प्राचीन है । इसका संबंध आदिम मानव से था इस प्रकार आदिम मानस से संबंधित होने के कारण यह लोक राग ही है -

2x Bhat The earliest Ragas which we come across are Bhairava, Megha, Panchama, Nata Narayana, Sri and Vasanta and they were ment to be sung in the summer, rainy, autumn, early winter and spring seasons respectively. "The aseasons are indeed only of value to the primitive man, because they are related, as he swiftly necessarily finds out, to his food supply. It is these period that become the central points, the focid his interest and the dates of his religious festivals." The story of Indian Music. O.Goswami p.82.

२- यह एक क्षुद्र गीत प्रकार मान्य है । इसमें ठुमरी, दादरे, गज़ल, तथा कभी कभी टप्पे आदि इस प्रकार के गीत गाए जाते हैं । सिन्धु भैरवी का नाम संस्कृत के संगीत ग्रंथों में कहीं भी उल्लिखित नहीं मिलता - भात खण्डे - हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति ।

भैरवी[1] (प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ ४०९)

पीलू[2] (प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ ४१३)

पूर्वी[3] (प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ ४१५)

१- यह राग लोक प्रिय राग है बहुत से गायकों को आता है । इसमें ख्याल कम गाये जाते हैं - ग़ज़ल, ठुमरी, टप्पा आदि ही इसमें गाए जाते हैं । -देखिए कल्पना जून ५४, कुमार गंधर्व का लेख ।

It is usually believed that Bhairavi Ragni is a derivative of Bhairon, one of our primary Ragas. But if we study the text carefully we would be amazed to find that Bhairon is a later interpolation in the Raga Ragini Scheme. Bhairvi is a far earlier tune, seems to have been borrowed from the women folk of the Virav tribe who were mainly snake charmers, and is very similar to the tune played on the gourd pipe by the snake charmer of North India even today. When the Shaiva cult became very popular and prominent the Vairavi Ragini was installed as a consort of Bhairon Raga created to be sung during the worship of Shiva (Bhairava)- The story of Indian Music. O.Goswami p.82. और दे॰ देवीलाल सामर:राजस्थानी लोक संगीत-पृ॰ ८ ।

२- देखिए भारतीय संगीत का इतिहास पृ॰ ३५५ पर रानाडे जी का उद्धरण: प्रसिद्ध संगीत कलावंत इसे राग नहीं मानते वे इसे धुन कहते हैं । रामपुर के लोग विशेष रूप से इसमें होरी और ध्रुपद गाते हैं । भातखण्डे ने इसे लोक प्रिय राग मानते हुए कहा है कि यह जन रंजन करता है इसीलिए राग है । दे॰ हि॰स॰पं॰ भाग ४, पृ॰९१, क्षुद्र गीतार्हता पीलू रागस्य संमता जने- लक्ष्य संगीते ।

३- दे॰ भारतीय संगीत का इतिहास पृ॰ ३५५ पर रानाडे जी का उद्धरण। पूर्विका का संक्षिप्त रूप । प्रचलित राग, पूर्वी प्रान्तों का प्रतीत होता है । पूर्विका का अर्थ भी पूर्वी ही होता है - द स्टोरी आफ इण्डियन म्यूजिक, पृ॰ ७४ ।

काफी[1] (प्रे० सर्व० पृ० ४१६)

सारंग[2] (भा० गं० पृ० ४६)

खम्माच[3] (प्रे० सर्व० पृ० ४२४)

कान्हरा[4] (प्रे० सर्व० पृ० ४२४, ४३९)

देस[5] (प्रे० सर्व० पृ० ४२५, ४२६)

१- भातखण्डे के अनुसार सर्वसाधारण में यह लोक प्रिय राग है-हि० सं० प०, भातखण्डे भाग २, पृ० ३१८, -विद्वान् इसे क्षुद्रराग मानते हैं और यह उत्तर की ओर का साधारण व लोक प्रिय राग है । ओ० गोस्वामी भी इसका मूल बताते हुए कहते हैं कि काफी एक प्रकार का गीत है जिसको सुनकर सिंध के सूफी कवि गाते है । संभवतः उनके गाने की पद्धति ही से काफी राग का जन्म हुआ है । द स्टोरी आफ इंडियन म्यूजिक : ओ० गोस्वामी, पृ० ७९ ।

२- देखिए- कल्पना, जून ५४, कुमार गंधर्व का लेख ।-

"We can therefore assume that Sharangdeva purposely invaded the word Saranga which signified only one type of Desi Raga- The Story of Indian Music, p.77.

राजस्थानी का लोक संगीत - देवी लाल सामर, पृ० २० ।

३- देखिए भारतीय संगीत का इतिहास- उमेश जोशी लिखित पृ० ३५५ में उद्धृत रानाडे जी का उद्धरण । इसमें लोक संगीत के स्वर मिलते हैं ।

"साधारण रागों में से है । इस राग में गायक लोग ग़ज़ल, टप्पे, ठमुरी, आदि लोक प्रिय गीत गाते हैं । कहीं-कहीं ध्रुपद भी दिखलाई पड़ जाते है- इसका पूर्वनाम कांभोजी था-"कांभोजी मेलको ग्रन्थे खंमाजी नामको पुना"- -हि० सं० प०-भातखण्डे कृत।

४- कान्हरा एक प्रकार का लोक नृत्य है जिसमें कृष्ण और राधा की लीलाओं का प्रदर्शन होता है । इस नृत्य के साथ जिस राग में गायन होता है वह राग कान्हरा कहलाती है ।

५- इस राग का नाम "देस" ही यह सूचित करता है कि यह देशी राग है और साधारण जनवर्ग में इसका प्रयोग होता रहा होगा, देवीलाल सामर भी इसे लोक गीतों को ही राग मानते हैं - राजस्थानी लोक संगीत -देवीलालसामर पृ० २० ।

सोरठ[1] (प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ ४२६, ४२८), (भा॰ ग्रं॰ पृ॰ ५१)

सोहनी[2] (प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ ४२८)

कलिंगड़ा[3] (प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ ४४१, ४४२, ६१४)

मेघ मल्हार[4] (प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ ४५१, ४४६)

१- "सौराष्ट्र का अपभ्रंश रूप है । संभवतः सौराष्ट्र प्रान्त में प्राचीन समय में यह राग अति लोक प्रिय रहा होगा अतः प्रान्त के आधार पर ही इसका नाम करण किया गया होगा । प्रान्त के आधार पर रागों के नामकरण की पद्धति भारत में अति प्राचीन है -" -हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका, भातखण्डे कृत और देखिए राजस्थानी लोक संगीत -देवीलाल सामर, पृ॰ ८ ।

२- सोहनी नाम लोक गीत की लोक राग से सोहनी राग का विकास हुआ होगा ऐसा संगीतज्ञों का विचार है । प्रो॰ गोस्वामी का विचार है कि सोनी शब्द से सोहनी शब्द निकला है जिसका अर्थ सुन्दर होता है और जिसका सम्बन्ध पंजाब के लोक प्रिय प्रेमी सोनी महिवाल के खेल से था - द स्टोरी आफ इण्डियन म्यूजिक - ओ॰ गोस्वामी, पृ॰ ८० ।

३- कलिंग देश में जो अति प्रचलित राग है वही कलिंगड़ा कहलाई । क्षुद्र प्रकृति की राग है । भातखण्डे ने इसे क्षुद्र प्रकृति का राग कहा है-हि॰ सं॰ प॰ भा॰ ३, पृ॰ ३३५ ।

4. Kalinga another of our popular minor melodies, had its origin among the Kalinga tribe who also played an important role in the history of India. The story of Indian Music page 73.
राजस्थानी लोक संगीत देवीलाल सामर, पृ॰ ८ ।

४- कुछ विद्वानों का कहना है मलार या मलहार अथवा मल्हार का विकृत अथवा विकसित रूप है । जिसका अर्थ है मल का हरण करने वाला । यह राग प्रायः वर्षा ऋतु में गाया जाता है और उस समय वर्षा से सारी गंदगी बह जाती है । इससे भी ही शायद यह नाम इस राग को दिया गया । इन मल्हार रागों में वर्षा की बहार का अच्छा चित्रण मिलता है।-कैप्टन विलर्ड-

Numerous songs in these Mallar Ragas describe the clouds, the thunder, the rain and the winds, the birds of the rainy season like papiha, chatak and peacock in particular. Several songs describe the condition of ladies at home who are separated from their lovers and hubands- Capt. Willard.

The melody Megha, which means a cloud, the harbinger of rain is sung in the rainy month of Ashada and Sravan (June-July). The rainy season is of paramount importance in the lives of agriculture people and festivals to welcome rain are very old and

हिंडोर[१] (प्रे० सर्व० पृ० ५४९)

सोरठ मलार[२] (प्रे० सर्व० पृ० ५४९)

झिंझौटी[३] (प्रे० सर्व० पृ० ५६६), (भा० ग्रं० पृ० १८१)

मुलतानी[४] (प्रे० सर्व० पृ० ६३५)

अहीरी[५] (भा० ग्रं० पृ० ५७)

---

* common is several rural parts of North India. Particular type of folksongs are sung even now by their women at the beginning of the rains. The sowing of the crops which accompanies the first showers were celebrated with great pomp and solemnity and references to it are found in Ramayan of Valmiki. Most of the compositions of this melody are descriptions of various phases of rain. The Story of Indian Music p.84.

१- वर्षा काल में हिंडोले पर बैठ कर स्त्रियों द्वारा गाई जाने वाली राग से इस राग का उद्भव हुआ है । देखिए- लोक कला निबन्धावली-भाग १, पृ० १२७ ।

२- सौराष्ट्र देश में प्रचलित मलार राग संभवतः सोरठ मलार का मूल है और उसी से इस राग का विकास हुआ है । मलार राग की लोक तत्व परकता पर ऊपर विचार किया जा चुका है ।

३- देखिए - कल्पना जून ५४, कुमार गंधर्व का लेख ।

४- मुलतान प्रदेश की विशिष्ट जनवर्ग की राग को मुलतानी कहते हैं । मुलतान के अधिकांश जन जिस राग में गाते होंगे वह मुलतानी कहलाई होगी । प्रान्त के आधार पर अनेक रागों के नाम मिलते हैं ।

५- अहीरों का गान जिस राग में होता है, उसी से मिलती जुलती राग अहीरी कहलाई -

Abhiras formed another tribe which has played some important part in the history of Delhi and the regions around it. The people of this tribe still exist as a sub caste of the Hindu Population in some parts of Delhi and Mathura districts. They also have left their mark in the musical heritage of the country as a whole. The melody known as Ahiri still points towards its original source. The Ahiri which is a contribution of Abhiras, is still current in the North, though it is not very popular but it is popular in the South by its old name- The story of Indian Music p.72.

टोड़ी[१] (भा० ग्रं० पृ० ७१, ४४३)

मारू[२] (भा० ग्रं० पृ० ४७०)

बरवा[३] (भा० ग्रं० पृ० २०७)

जोगिया काफी[४] (भा० ग्रं० पृ० ३९९)

सांझी[५] (भा० ग्रं० पृ० १८०)

केदारा[६] (भा० ग्रं० पृ० ४७)

१- टोड़ी जैसा नाम से ही स्पष्ट है यह टोड़ जाति के लोगों से संबंधित है, जोकि अनार्य जाति के हैं और छोटा नागपुर तथा मद्रास प्रान्त में थोड़ी संख्या में अब भी विद्यमान है । यह असभ्य जाति है और इस राग का जन्म असभ्य जाति से ही हुआ है ।

२- पिछले वर्षों में राजस्थान की प्रसिद्ध राग थी । रुक्मिणी मंगल में इसके प्रचुर प्रयोग हैं किन्तु अब यह विशेष लोक प्रिय नहीं । राजस्थान का लोक संगीत -देवीलाल सामर पृ० २१ ।

३- यह काफी थाट का क्षुद्र गीतिक राग है । लोक धुन प्रधानता के कारण इसमें गाने के लिए विशेष स्वर प्रयोग करने में कोई हानि नहीं होती । हिन्दुस्तानी ~~क्रमिक~~ संगीत पद्धति - भातखण्डे कृत भाग ६ । बर्वेत्यपि च रागो स्ति क्षुद्र गीत समाश्रयः - राग चन्द्रिका सार ।

४- सिंध के सूफी कवियों द्वारा गाए जाने वाले विशेष गीत प्रकार को काफी कहते हैं और उन्हीं से काफी राग का जन्म हुआ है और जो कवि योगी हो जाते थे उनकी विशेष वर्ग में रहते रहते ध्वनि भी बदल जाती है और संभवतः उस ध्वनि के लिए ही जोगिया शब्द जोड़ा गया अर्थात् जोगियों द्वारा गाए जाने वाले काफी गीत की राग है । द स्टोरी आफ इण्डियन म्यूजिक-ओ०गोस्वामी, पृ० ७९ ।

५- सांझी सायंकालीन कोई भी राग हो सकता है । संभवतः प्राचीन काल में जो गीत और धुनें सायंकाल में गायी जाती रही होंगी उसे सांझी राग कहा जाता रहा होगा ।

६- कल्पना जून ५४ ।

आसावरी[१] (भा॰ ग्रं॰ पृ॰ ५५)

हमीर[२] (भा॰ ग्रं॰ पृ॰ ५९)

बसंत[३] (प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ ६०३), (भा॰ ग्रं॰ पृ॰ ३९३)

१- भातखण्डे ने इसे लोक प्रिय राग बताया है-हि॰ सं॰ प॰ भातखण्डे भाग २, पृ॰ ३५५ ।

२- एक संगीत विद्वान का कथन है कि हमीर भी लोक राग है और जब लोक रागों का स्वर विस्तार कर शास्त्रीय करण किया जा रहा था, उस समय अनेक लोक रागों का नाम भी परिवर्तित किया गया। हमीर भी ऐसी ही राग है जो पहले हमबीर राग कहलाती थी बाद में हमीर कहलाने लगी ।

३- बसंत राग का संबंध बसंत ऋतु से है । बसन्तोत्सव का लोक जीवन में महत्व पूर्ण स्थान है और वह दो रूपों में मनाया जाता है । प्रथम तो बसन्तोत्सव के रूप में जबकि संपूर्ण उत्तर भारत में इस अवसर पर नर-नारियां बालक पीले कपड़े पहन कर बसन्त का स्वागत करते हैं । दूसरे होलिकोत्सव पर जब पुरुष स्त्रियों पर रंग डालते हैं और स्त्रियां शृंगारिक गाने गाती हैं । सी॰ हैरीसन ने एन्शेन्ट आर्ट एण्ड रिच्यूवल में लिखा है कि मूलतः बसन्त राग का सम्बन्ध बसन्त ऋतु में गाये जाने वाले राग से था। आदिम मानव के लिए इन ऋतुओं का बहुत महत्व था और इन्हीं दिनों वह विशेष रुचि से उत्सव मनाता था और नाचता था ।

The seasons are indeed only of value to the primitive xx man, because they are related, as he swiftly and necessarily finds out to his food supply. It is these periods that become the central points the foci of his interest and the dates of his religious festival.(Harrison) t e earliest Ragas which we come across are Bhairava, Megha, Pancham, Nat, Narayan Sri and Vasanta and they were meant to be sung in the summer, rainy, autumn, early winter, winter and spring seasons respectively. The story of Indian Music. p.82.

मालकोस[१] (भा० ग्रं० पृ० ३१०, ३११)

कल्याण[२] (भा० ग्रं०)

भीमपलासी[३] (भा० ग्रं० पृ० ४०४)

बिलावल[४] (भा० ग्रं० पृ० ४३६)

१- इसे मालकौंस तथा मल्लकौशिक भी कहते हैं । कृष्णधन बनर्जी का विचार है मालकौंस मल्लकौशिक शब्द का अपभ्रंश रूप है । उनका मत है कौशिक शब्द का अर्थ सतपुड़ा पर्वत होता है । सतपुड़ा पर्वत को माल कहते हैं । प्राचीन काल में माल प्रान्त के लोग उच्च कोट के गायक थे । माल प्रान्त में जो राग विशेष लोक प्रिय थे वे मालकोश कहे जाते थे । हेमन्त ऋतु में सारा पहाड़ी प्रदेश सूखकर मैदान हो जाता था, इस कारण माल देश के लोग अपना प्रान्त छोड़कर बाहर चले जाते थे । दूसरे प्रदेश में जाकर वह अपना संगीत गाते थे जो उन्हें अपने प्रान्त की मधुर स्मृतियों को फिर लाते थे । उसी प्रदेश से यह राग आया । स्पष्ट है कि मालकोस माल प्रान्त का देसी राग रहा होगा । भातखण्डे जी का भी विचार है कि मालकोस राग मालवा प्रान्त से आई ।दे० संगीत सूत्रसार: कृष्णधन बनर्जी- तथा हि० सं० प० भातखण्डे कृत भाग ४ पृ० ६६० ।द० स्टौरी आफ इण्डियन म्यूजिक: ओ० गोस्वामी, पृ० ७१ ।

2. Kalyan Raga must have originated in the city of Kalyani where the Western Chalukyas dynasty ruled. Someshwara, the son of Vikramaditya who was a ruler of this region, was an authority on the art of music and Kalyan raga may have been composed during his region- The story of Indian Music. p.75.

३- भातखण्डे जी का विचार है कि भीम पलासी राग का नाम किसी प्रान्त के आधार पर पड़ा होगा । भातखंडे ने बताया है कि कोश में मगध और बराड़ प्रान्तों के लिए पलाश शब्द का व्यवहार मिलता है इसलिए मगध और बराड़ प्रान्त के लिए पलाश शब्द का व्यवहार हुआ होगा तथा भीम उसका विशेषण है जो शूर तथा पराक्रमी का पर्यायवाची है ।किंतु भातखण्डे का यह मत अनुमान मात्र ही है निश्चित प्रमाणों से इसकी पुष्टि नहीं मिलती । किसी शास्त्रीय ग्रंथ में इस प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता है, संभव है आगे की ऐतिहासिक खोजों से सिद्ध हो कि भातखंडे का मत कितनासही है ।दे० हि० सं० प०-भा० भ्रव० ४, पृ० १०१ ।

४- डा० सत्या गुप्ता का कथन है कि खड़ी बोली प्रदेश के लोक गीतों में बिलावल राग के स्वर बहुत प्रयुक्त होते हैं - खड़ी बोली का लोक साहित्य - सत्यागुप्ता पृ० ११७ ।

देवगांधार[1] (भा० ग्र० पृ० ५४)

बिहाग[2] (भा० ग्र० पृ० ५५)

मालव[3] (भा० ग्र० पृ० ३०७)

सिंधु[4] (भा० ग्र०)

१- गांधार एक प्राचीन प्रदेश है संभवतः अन्य स्थानों के आधार पर रक्खी गई रागों के समान ही इसका नाम देवगांधार रक्खा गया होगा ।

२- कुछ रागों का नाम विभिन्न पक्षियों की ध्वनि साम्य के आधार पर भी रक्खा गया है । जैसे नाग ध्वनि राग । बिहाग एक पक्षी का नाम है जिसकी ध्वनि साम्य के आधार पर शायद इस राग का नामकरण हुआ होगा । The story of Indian music Page 78

३-४-मालवराग और सिंधु राग भी प्रांतीय राग हैं । मालव प्रदेश विशेष में जो अति प्रचलित राग रहा होगा जिसे साधारण जन वर्ग गाता रहा होगा, मालव राग तथा सिंधु प्रदेश में जो राग विशेष साधारण वर्ग में गाया जाता रहा होगा या कहिए जो वहां का लोक राग रहा होगा सिंधु राग कहलाया । प्रांतों के आधार पर रागों के नामकरण बहुत हुए हैं । इन प्रांतों के आधार पर हुए रागों में स्थानिकता का विशेष पुट है और ऐसे ही राग लोक राग कहलाते भी हैं- देशे देशे जनानां यद रुच्या हृदयरंजकम् । गानं च वादनं नृत्यं तद्देशी-त्यभिधीयते । अबला बाल गोपालैः क्षिति पालैर्निजेच्छया । गीयते सानुरागेण स्वदेशे देशि रुच्यते ।। -संगीतरत्नाकर । सिंधु कोई अलगराग आज नहीं है । पृथक रूप में यह राग कब प्रचलित था पता नहीं । अधिकतर सिंधु भैरवी, सिंधु काफी आदि राग प्रचलित हैं । किंतु भारतेंदु ने केवल अलग से सिंधु नाम ही एक पद के ऊपर प्रयुक्त किया है इसलिए इसका उल्लेख आवश्यक है ।

So was the Sindhu contributed by Sindhu Desh, the modern Sindh p.74. The story of Indian Music. O. Goswami.

मालव के लोग प्राचीन काल में अति शक्तिशाली थे । सिकन्दर से इनका युद्ध भी हुआ था । पतंजलि ने इनका उल्लेख युद्ध प्रिय जाति के रूप में

मधुमात[१] (भा० ग्र० पृ० ४०७)

इन उपर्युक्त मुख्य रागों के अतिरिक्त ललित (प्रे० सर्व० पृ० ६०५) ललित भैरव (प्रे० सर्व० पृ० ४०८), गौरी (प्रे० सर्व० ४१३), गौरी बरसाती (प्रे० सर्व० पृ० ४२४), परज (प्रे० सर्व० पृ० ४३२,४३८), शहाना (प्रे० सर्व० पृ० ४५६), बहार (प्रे० सर्व० ५६३), सिंदूरा (प्रे० सर्व० ५६५) धनाश्री (प्रे० सर्व० ६०५, भा० ग्र० पृ० ३६२), अड़ानो (भा० ग्र० ४२५) इमन (भा० ग्र० ३७४ आदि रागों का भी भारतेंदुयुगीन काव्य में प्रयोग हुआ है । यह राग लोक राग है और इन रागों के स्वरों का लोक गीतों में प्रयोग भी होता है पर ये राग मूल उत्स से इतना परिवर्तित हो गए हैं कि आज इनका स्वरूप ढूढ़ना कठिन है और यह बताना असम्भव है कि इनका जन्म कैसे और कहां से हुआ ।

लोक ताल-

भारतेंदु युगीन काव्य में लोक रागों के साथ लोक तालों की भी स्थिति मिलती है । अनेक भारतेंदु युगीन कवियों ने लोक तालों का प्रयोग करके लोक गीतों को सजीवता प्रदान की है । निम्नलिखित लोक तालों का प्रयोग विवेच्य काव्य में हुआ है-

---

Even as we owe to them the name of a part of our country viz. Malva so do we owe them the Malva Raga which is still current by the name of Malvi assimilated in our Raga heirarchy, Malva-Kaisiha now vulgarised Malkos is also one of its derivatives and is very popular even today. We know that Kaisika was Jati of Bhartas time and the original Malava Raga should either have been crossed with it or re-constructed on that old base. Matanga mentions also malva Panchama Raga a synthesis of Malva and Panchama- Thestory of Indian Music O. Goswami p.71.

१- मधुमात राग के नाम से ही प्रतीत होता है कि यह मधु मास अर्थात होली के समय गायी जाने वाली राग मूलतः रही होगी और क्यूंकी इस राग में श्रोताओं को मस्त तथा मुग्ध करने की शक्ति रही होगी इसी लिए इसे मधुमात राग कहा गया होगा ।

खेमटा (भा० ग्रं० पृ० ४०२) (ग्रे० सर्व० पृ० ४२३, ४८५ ४३३)

चांचर (ग्रे० सर्व० पृ० ४२८, ६९५)

रूपक (ग्रे० सर्व० पृ० ४१५,४३६) ।

कहरवा (ग्रे० सर्व० ४४९,४५१,४५८,५०५)

दादरा (ग्रे० सर्व० ४९७,५४४), (भा० ग्रं० १९८१)

अद्धा (ग्रे० सर्व० ५२२,५३५)

धमार (भा० ग्रं० ३९५)

चर्चरी (भा० ग्रं० पृ० ५८)

झपताल (भा० ग्रं० पृ० ६१)

त्रिताल (भा० ग्रं० पृ० ३१२) (ग्रे० सर्व० पृ० ४३१)

एकताल (भा० ग्रं० पृ० ४०३)

खेमटा-

खेमटा एक लोक ताल है और इस ताल में गाए जाने वाले लोक गीत का नाम भी । खेमटा ताल में तीन तीन मात्रा के विभाग होते हैं और कुल मात्रों की संख्या कुछ प्रकारों में १२ तथा कुछ में ६ होती है । खेमटा के अनेक भेद हैं जैसे भरतंगा, कश्मीरी खेमटा, दादरा आड़ खेमटा । कश्मीरी खेमटा और भरतंगा अधिकतर ६ मात्राओं का मिलता है । आड़ खेमटा १२ मात्राओं का होता है । कृष्णधन बनर्जी गीत सूत्रसार में लिखते हैं "यह बंगाल में भद्र समाज में प्रचलित है । साधारण खेमटा की अपेक्षा दादरा की लय अधिक द्रुत होती है और भरतंगा तथा कश्मीरी खेमटा की लय कम द्रुत"[1]। बिहार के छोटा नागपुर प्रान्त में जो भूमर नामक लोक गीत पाए जाते हैं उनके अनेक भेदों में खेमटा ताल प्रयुक्त होता है और खेमटा के चारों भेद मिलते हैं । कश्मीरी खेमटा, दादरा, आड़

१- कृष्णधन बनर्जी, गीत सूत्रसार,(बंगाली संस्करण)। पृ० १०७ ।

साधारण खेमटा[1]। भारतेंदु युगीन काव्य में इस ताल का अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है[2]।

अवश्य है कि भारतेंदु युगीन काव्य में खेमटा के कई भेद किए गए मिलते हैं । यह भेद कभी तो विषय गत हैं कभी प्रान्तगत । खेमटा के निम्न भेद प्रयुक्त हुए हैं- नकटा खेमटा, विचित्र खेमटा, दक्षिणी गुलेलखण्डी खेमटा, पूर्वी खेमटा, होली का खेमटा आदि । नकटा खेमटा और होली का खेमटा तो विषय गत या उत्सव गत कहे जा सकते हैं । पूर्वी खेमटा, दक्षिणी गुलेलखण्डी खेमटा प्रान्तगत कहे जा सकते हैं ।

<u>चांचर-</u>

यह भी एक शुद्ध लोक ताल है जिसका प्रयोग लोक गायक लोक गीतों में प्रायः किया करते हैं । विवेच्य साहित्य में इस ताल का प्रयोग हुआ है । किंतु अवश्य है प्रायः जहां अन्य ताल के शीर्षक दिए हैं, इस ताल का शीर्षक दिया हुआ नहीं मिलता किंतु पद पढ़ने से प्रतीत होता है कि चांचर ताल ही इसमें प्रयुक्त हुआ है[3]।

चांचर ताल का प्रयोग लोक में अधिकांशतः होली के गीतों में होता है ।

<u>रूपक-</u>

रूपक ताल का प्रयोग भी लोक गीतों में ही अधिक तथा शास्त्रीय संगीत में अपेक्षाकृत कम होने के कारण लोक ताल ही कहा जाएगा । प्रेमघन ने अपने संगीत काव्य में इस ताल का भी प्रयोग किया है[4]।

१- विशेष विवरण के लिए देखिए- आदि भ्रूमर संगीत सं० राजा बहादुर श्री उपेन्द्र नाथ सिंह देव ।

२- प्रे० सर्व० पृ० ४२१,४३१ । भा० ग्र० पृ० ११६,१७९,१८१,२०८ ।

३- प्रे० सर्व० पृ० ४२८ पं० "प्यारी छवि प्यारी प्यारी है"। वही पृ० ६१५ पंक्ति "आए री होली के दिन नीके" ।

४- प्रे० सर्व० पृ० ४३५, पंक्ति -"मांगत चंद श्री बृजराज" । वही पृ० ४३६ , पंक्ति, "दोउ मिलि केलि कुंज करत ।

कहरवा-

कहरवा ताल का प्रयोग भारतेंदु युगीन काव्य में सर्वाधिक हुआ है । लोक में भी रूपक, खेमटा आदि तालों से यह ताल अधिक प्रचलित है । इस ताल में आठ मात्राओं के दो विभाग मिलते है । गति सरल होने के कारण लोक गायक बिना उत्कट भ अभ्यास के सरलतया इसका प्रयोग कर लेते हैं । यही कारण है इस ताल का प्रयोग लोक गीतों में बहुत मिलता है । कहरवा नामकरण संबंध में विद्वानों का अनुमान है कि मुख्यतः यह कहारों के गीत में प्रयुक्त होता रहा होगा । इसलिए इसका नाम कहरवा ताल पड़ा । भारतेंदु युगीन काव्य में इसका प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है[१]।

होली के गीतों तथा कजरी के गीतों में प्रायः इस ताल का प्रयोग होता है । कहरों के ताल में ही संगीतज्ञों ने थोड़ा स्वर विस्तार कर तथा माधुर्य लाकर इसे संगीत में स्थान दिया होगा ।

दादरा-

दादरा ताल को कृष्णधन बनर्जी आदि विद्वानों ने खेमटा का ही भेद माना है । कुछ ने इसे अलग स्वतंत्र ताल माना है । इनमें ६ मात्राएं तथा दो भाग होते हैं । कुछ का विचार है दादरा ताल से ही ठुमरी ताल का विकास हुआ है क्योंकि दादरा ताल ठुमरी ताल से प्राचीन है । किंतु दोनो ही अपने मूल रूप में केवल लोक गीत ही हैं[२]।

१- प्रे० सर्व० पृ० ४४९ "पंक्ति यह जग किसने पहचाना है "
वही, पृ० ४५१ " जोगिनिया बन आई रे"।
वही, पृ० ४५८ पंक्ति "धाओ आओ बनरा की"।
वही, पृ० ५०५, पंक्ति "समस्त पंक्तियां"

2. But both are in origin simple, but of folk songs woven with a traditional touch into a garland of exotic frgrance p.136. The story of Music. O.Goswami.

दादरा की लोक उत्पत्ति के विषय में देवी लाल सामर भी यही कहते हैं कि " हमारे यहां की ठुमरी और दादरा ये प्रकार लोक गीतों से ही उत्पन्न हुए हैं"। दादरा के नाम करण के संबंध में भी अनुसंधान करते हुए एक विद्वान ने लिखा है कि"यह नाम संस्कृत के दादुर मेंढक शब्द पर आधारित है । वह सरोवर के निकट तट पर अपनी टरटर करता है, उसी प्रकार जिसमें ताल दी जावे उसे दादरा नाम से प्रख्यात कर दिया गया"[1]। भारतेंदु युगीन अनेक कवियों ने इस ताल का प्रयोग किया है[2] ।

अद्धा-

यह आठ मात्राओं के चार भाग वाला एक अति प्रचलित लोक ताल है । लोक गीतों में इस ताल का पर्याप्त प्रयोग होता है यद्यपि आज शास्त्रीय संगीत में भी इसका प्रयोग होने लगा है । भारतेंदु युगीन काव्य में इस ताल का प्रयोग हुआ यद्यपि इस ताल में गीत कहरवा, धमार आदि तालों की अपेक्षा कम मात्रा में लिखे गए हैं । "प्रेमघन" ने इस ताल का प्रयोग किया है तथा इसका शीर्षक भी दिया हैं । जिससे स्पष्ट है कि प्रेमघन इन गीतों को अद्धा में ही गाते रहे होंगे । "प्रेमघन" द्वारा अद्धा ताल में लिखे गए गीतों को देखने से स्पष्ट है कि इसमें चरण प्रायः छोटे होते हैं तथा अंतिम शब्द या चरण की प्रायः पूरे गीत में पुनरावृत्ति हुआ करती है जिससे गीत में विशेष रोचकता आ जाती है । प्रेम घन ने दो अद्धे लिखे हैं एक में'रे करवंदा'की तथा दूसरे में"जसुदा के लाल"चरण की पूरे गीत में पुनरावृत्ति हुई है[3] ।

धमार-

अद्धा के समान धमार भी लोक ताल है और इस ताल में विशेष

१- लोक कला निबंधावली भाग १ पृ० १२७ ।
२- प्रे० सर्व० पृ० ४९७ भूलै नवल लता संग ।
   वही, पृ० ५४४ भौरा बकई बहाय ।
   क० भा० ग्र० पृ० १८१- सैयां बेदरदी दरद नहिं जानै ।
३- प्रे० सर्व० पृ० ५२२,५२५ ।

रूप से होली गायी जाती है । इसका उद्भव वृंदावन और मथुरा में गाए जाने वाले कृष्ण लीला संबंधी गीतों से हुआ है । यह ताल भी यद्यपि लोक गीतों में ही मुख्य रूप से प्रयुक्त होता है किंतु शास्त्रीय संगीतज्ञ भी इस ताल में आज गाते हैं । धमार ताल का प्रयोग भारतेंदु युगीन काव्य में बहुत मिलता है । प्रेमघन भारतेंदु हरिश्चन्द्र आदि प्रायः सभी कवियों ने इस ताल में गीत लिखे हैं । मुख्यतया इस ताल में गाये जाने वाले गीत होली के तथा शृंगार रस के होते हैं । इसमें चौदह मात्राएं तथा चार भाग होते हैं । भारतेंदु युगीन कवियों ने इस ताल में विशेष रूप से गीत लिखे हैं जिनके विषय प्रायः कृष्ण गोपियों आदि की होली लीला है[1]-

चर्चरी-

चर्चरी एक प्रकार का अति प्रचलित तथा प्राचीन लोक नृत्य है । इस नृत्य में शृंगार प्रधान गीत गाए जाते हैं जो चर्चरी गीत कहलाते हैं । यह गीत जैन कवियों के लिए भी आकर्षण का कारण बना था । कबीर ने भी चांचर का उल्लेख किया है जो चर्चरी से ही संबंधित है । इस चर्चरी नृत्य के समय में गाए जाने वाले गीतों मे प्रयुक्त ताल का नाम चर्चरी पड़ा । यह शुद्ध लोक ताल है और इसका शास्त्रीय संगीत में स्थान बहुत महत्वपूर्ण नहीं है । लोक संगीत में ही इसका स्थान प्रमुख है । भारतेंदु युगीन कवि लोक कवि थे अतः उन्होंने इस ताल में भी कविताएं लिखी हैं[2]।

झपताल, त्रिताल, एकताल-

ये तीनों ताल भी लोकताल हैं और लोक गीतों में इनका प्रयोग भी होता है, किन्तु लोक ताल के अतिरिक्त आज इनका शास्त्रीय महत्व भी

१- भा० ग्रं० पृ० ३८१ पंक्ति "कहत हौं बार करोरन होउ चिरंजी ।
वही, पृ० ३७८- पंक्ति "हमैं लखि आवत क्यों कतराए" ।
२- भारतेंदु ग्रंथावली पृ० ५८, पंक्ति " आज नंद निकुंज ठाढ़े भये" ।
वही, पृ० ५८ पंक्ति- "बाबु ब्रजचन्द तनु लेप चंदन किए ।

पर्याप्त बढ़ गया है क्योंकि बड़े बड़े संगीतज्ञ आज इन तालों का प्रयोग करते हैं। झपताल और त्रिताल लोक अर्द्धतत्सम तथा एकताल लोक तद्भव ताल कहा जा सकता है क्योंकि झपताल और त्रिताल का प्रयोग लोक के अधिक निकट है। एक ताल का प्रयोग भी लोक गीतों में होता है और इसका मूल लोक ही है, किंतु आज यह ताल काफी परिवर्तित प्रतीत होता है। इन तीनों तालों का शास्त्रीय संगीत में भी प्रयोग होता है इसलिए इन्हें लोक आधारित शास्त्रीय ताल भी कहा जा सकता है। भारतेंदु युगीन संत काव्य में इन तीनों तालों का भी पर्याप्त प्रयोग हुआ है[१]।

उपर्युक्त भारतेंदु युगीन काव्य में प्रयुक्त लोक तालों के विवेचन से स्पष्ट है कि प्रयुक्त तालों में से कुछ ताल तो शुद्ध लोक ताल ही हैं और उनका प्रयोग प्रायः लोक गीतों में ही होता है जैसे-खेमटा, अद्धा, चर्चरी, दादरा, रूपक आदि, किन्तु कुछ ताल ऐसे भी है जो लोक गीतों में प्रयुक्त होते हुए भी शास्त्रीय संगीत में भी स्थान पा गए हैं जैसे-धमार, त्रिताल, एकताल, झपताल आदि। किंतु शास्त्रीय संगीत मे स्थान पाकर भी लोक गीतों में बहुलता से प्रयुक्त होने के कारण यह लोक ताल वर्ग में ही गिने जाएँगे। यदि स्पष्टता के लिए इन्हें शुद्ध लोक तालों से अलग कर रखा जाए तो ये "लोक आधारित शास्त्रीय संगीत के ताल" वर्ग के अंतर्गत परिगणित होंगे। लोक निरपेक्ष ताल के अंतर्गत इनकी गणना नहीं की जा सकती। इन प्रयुक्त लोक तालों के विषय में यह कहना भी आवश्यक है, कि इनमें से कई तालों के शीर्षक नहीं मिलते, किन्तु पद रचना से सिद्ध है कि इनमें कौन लोक ताल प्रयुक्त हुए हैं- जैसे

१- झपताल- भारतेंदु ग्रंथावली, पृ० ३६१ छं० १।
एकताल- भा० ग्र० पृ० ३६३, छं० ७।
वही, पृ० २१२, छं० १५।
त्रिताल- भा० ग्रं० पृ० २१२, छं० १६।
प्रे० सर्व० पृ० ४३१।

चांचर, रूपक, कहरवा, दादरा आदि । "प्रेमघन" ने अनेक लोक तालों का प्रयोग किया है किन्तु शीर्षक नहीं दिए है । पदों के पढ़ने से और संगीत का ज्ञान होने से ही पता लगाया जा सकता है कि इनमें किन लोकतालों के प्रयोग हुए हैं ।

लोक लय:-

लोक संगीत में लय का महत्व राग से भी अधिक है । लोक गीतों का राग-रागनियों से कोई दृढ़ संबंध नहीं होता । राग केवल ग्राम स्त्रियों या पुरुषों की ही मानी जा सकती है । चूंकि आज राग शब्द संगीत शास्त्र में विभिन्न स्वरावलियों के संयोग के लिए रूढ़ हो गया है इसलिए लोक गीतों के सम्बन्ध में राग का प्रयोग न कर लय का ही निर्देश उचित माना जा सकता है । यही कारण है लोक गीतों के लिए राग के निर्देशन मिलकर लय के ही निर्देश मिलते हैं । लय शब्द शुद्ध लौकिक है। लोक गीतों के लिए किसी राग विशेष का निर्देश बहुधा उचित भी नहीं होता,क्योंकि राग में स्वरावलियों का विशिष्ट नियमन होता है, उसमें विशेष आरोह अवरोह की स्थिति होती है, किन्तु लोक गायक इन नियमादि से परिचित नहीं होता, वह तो उन गीतों को उसी लय या तर्ज में गाता है जिस रूप में उसने उसे अपने पूर्वजों से सुना था और यदि वह (लोक गायक) चाहता है तो उस तर्ज में उसे थोड़ा बहुत घुमा फिरा कर श्रुति माधुर्य लाने का प्रयास करता है, वह विशिष्ट नियमों के आधार पर नहीं गाता वरन् उसके गीत के आधार पर उसकी शुद्ध स्वरावली जानने के लिए संगीतज्ञ नियम बनाता है, किन्तु लोक गायक फिर उन नियमों की चिन्ता नहीं करता । इसीलिए लोक लयों की संख्या अनन्त है । हर गायक की अलग लय है । हां यदि मोटा विभाजन करना चाहे तो स्त्री वर्ग की लय, पुरुष वर्ग की लय, बालकों की लय रूप में भी वर्गीकरण किया जा सकता है । प्रदेश विशेष जैसे विंध्याचली लय, बनारसी लय आदि वर्ग भी किए जा सकते हैं । कहीं कहीं गीतों के लिए राग निर्देश भी मिलता है - जैसे - कजली की राग, चैती की राग, फगुआ की राग । अवश्य है कि यहां राग शीर्षक भी तर्ज या धुन का ही बोध कराता है, शास्त्रीयराग का नहीं । यहां कजली की राग कोई

विशेष राग नहीं है इसका अर्थ केवल उस राग विशेष से ही है जिसमें कजली गाई जाती है । इसीलिए इस शीर्षक - कजली को राग के भी स्त्री, पुरुष, प्रदेश आदि के आधार अनेक भेद किए जा सकते हैं । सिद्ध है कि लोक गीतों में लय का अर्थ धुन से ही है ।

भारतेन्दु युगीन कवियों में प्रमुख रूप से प्रेमघन ने लोक गीतों पर लय शब्द का प्रयोग किया है । अवधेय है प्रेमघन ने लय शब्द का व्यवहार धुन के अर्थ में ही किया है । प्रताप नारायण मिश्र ने प्रेमघन के समान लयों का विस्तृत विश्लेषण न कर केवल पदों के ऊपर लोक गीत की एक पंक्ति लिखकर यही संकेत किया है कि प्रस्तुत पद उपरिलिखित लोकगीत की चाल पर ही गाया जाता है । उदाहरण के लिए कहीं प्रतापनारायण मिश्र ने "कैसे के दरसन पाऊं देवी तोरी संकरी दुवरिया मां", "देवी तोरा अच्छा बना चौमहला" की चाल कहकर गाने की लय का संकेत किया है, तो कहीं "सुधि श्याम बिसारी सोवै दरबजवा ठाढ़ी माय" की चाल और "कान्हा खेलत फाग जागु उठु देखु ननदिया" की चाल का संकेत किया है । वस्तुतः लोक में लय का संकेत गाने के लिए उपर्युक्त ढंग से ही किया जाता है । किन्तु लोक गीतों की स्वरावली न लिखी होने के कारण प्रत्येक वर्ग की लयात्मक विशेषताओं पर प्रकाश नहीं डाला जा सकता । केवल ऊपरी ढंग से विचार मात्र ही किया जा सकता है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयुक्त लयों को हम दो वर्गों में रख सकते हैं - (१) लोक लय (२) लोक आधारित शास्त्रीय लय ।

लोक लय :-

यहां हमारा तात्पर्य स्वर संबंधी लय से है । यह या तो किसी विशेष स्त्री वर्ग से संबंधित है, पुरुषवर्ग से, विशेष प्रान्त से या किसी अन्य प्रकार की विशेषता से । इस प्रकार इस वर्ग के चार भेद किये जा सकते हैं ।

(क) स्त्री वर्ग से सम्बन्धित:-

गृहस्थिनियों की लय- वह विशेष तर्ज या धुन जिससे गृहस्थिनियां सामान्य रूप से गाती हैं । यह लय सर्वाधिक प्रचलित लय होती है ।(प्रे० सर्व० पृ० ४८२, ४९३)

नटिनों की लय:- यह उस नट नामक विशेष जंगली जाति की स्त्रियों की, जो नाचती गाती है तथा वेश्या हैं उनकी विशेष तर्ज है, प्रेमघन ने नटिनों की लय के विषय मेंलिखा है -"नट नामक एक जंगली जाति की स्त्रियां जो नाचने गाने और वेश्यावृत्ति क उठाने से यहां एक प्रकार मध्यम श्रेणी की रण्डी वा नर्तकी वा वधूं बन गई है, जिनकी कजली गाने में कुछ विशेषता है[1]।"

गवनहारिनों की लय- गवनहारी का साधारण अर्थ उन स्त्रियों से होता है जो आस पड़ोस की गायन कुशल स्त्रियां होती है और जो अक्सर सामूहिक रूप से बैठकर बधावे, आदि गीत गाया करती है । किन्तु प्रेमघन ने गवनहारी शब्द का प्रयोग विशेष वर्ग की नारियों के संबंध में किया है । प्रेमघन ने उनके विषय में लिखाहै - "गवनहारिन यहां अधम श्रेणी की वेश्याओं को कहते हैं, जो प्रायः नफीरी और दुक्कड़, अर्थात् रोशन चौकी पर विशेषतः बधावे आदि के साथ सड़क पर गाते चलती हैं और उनके गायन की लय सबसे विलक्षण और अलग होती है[2]।" गवनहारिनों की प्रेमघन ने दो लयें बताई हैं किन्तु स्वरावली न होने के कारण दोनों लयों में क्या विशेष अंतर है । इसका स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता ।(प्रे० सर्व० पृ० ५०९)

रण्डियों की लय- रण्डियों का अर्थ "नर्तकी वेश्या या घुंघरूं बंद पतुरिया"[3] है । इनकी लयों के भी प्रेमघन दूसरी, तीसरी शीर्षक से तीन भेद

१- प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ४८२, ४९३, ५०१ ।

२- वही, पृ० ५१०, ४८३ ।

३- वही, पृ० ४८७ ।

किए हैं। (प्रे॰सर्व॰पृ॰ ४९४)

(ख) पुरुष वर्ग से संबंधित लय:-

गवैयों की लय: पेशेवर गाने वाले पुरुष वर्ग की एक विशेष तर्ज व धुन होती है इसी को प्रेमघन ने गवैयों की लय कहा है।(प्रे॰सर्व॰पृ॰५०४, ५१०)

गुण्डानी लय: गुण्डों के गाने की विशेष शब्दावली होती है, विशेष तर्ज होती है। उनके गाने की तर्ज को ही गुण्डानी लय कहा गया है (प्रे॰सर्व॰पृ॰ ४८४)

खंजरी वालों की लय: खंजरी एक विशेष प्रकार का वाद्य है और इस वाद्य को बजाकर ही गाने वालों की एक विशेष वर्ग है जिसकी गायन सम्बन्धी अलग विशेषताएं हैं। इसलिए इनकी लय को "खंजरी वालों की लय" ही कह दिया गया।(प्रेम॰सर्व॰पृ॰ ४९६, ५१२)

(ग) प्रान्त संबंधित:-

बनारसी लय: बनारस वाले जिस धुन में गाते हैं (प्रे॰ सर्व॰ पृ॰४८३, ४८४)

विंध्याचली लय: विंध्याचल प्रदेशवासी जिस धुन में गाते हैं।(प्रे॰ सर्व॰पृ॰ ५०४)

(घ) विविध:-

साखी बद्ध लय : साखी बद्ध लोक गीतों को जिस रूप में लोक गायक गाते हैं उस तर्ज विशेष को साखी बद्ध लय कहा जाता है। इस प्रकार की लय अर्ध शिक्षित समाज में गाई जाती है।(प्रे॰सर्व॰पृ॰ ४८५)

झूले की कजली:- यों तो कजली की ही विशिष्ट राग होती है किन्तु झूले की कजली की अपनी विशिष्टता होती है। किसी विद्वान् ने तो झूले की कजली के लिए ही कहा है कि झूले कीकजली में झूले के झोंके तक स्पष्ट प्रतिभासित होते रहते हैं। झूले की कजली के भी प्रेमघन ने लय की

दृष्टि से कई भेद किए हैं किन्तु स्वरावली न होने के कारण इनकी विशेषताओं की ओर संकेत नहीं किया जा सकता (प्रेम० सर्व० पृ० ४८६) ।

लोक आधारित शास्त्रीय लय: लोक आधारित शास्त्रीय लयों में उन लयों की गणना की जायगी जो ताल सम्बन्धी हैं (स्वर सम्बन्धी नहीं) जिनका प्रयोग आज शास्त्रीय संगीत में होता है किन्तु लोक गीतों में भी उनका प्रयोग होता है जैसे समान लय, ठाह की लय, दून की लय, विकृत लय आदि । यहां लय का अर्थ धुन से नहीं गति से है । इन गतियों का प्रयोग सभी गीतों में होता है, लोक गीतों में भी । इसलिए इन्हें लोक आधारित शास्त्रीय लय की संज्ञा दी गई ।

लय की दृष्टि से भारतेन्दु युगीन साहित्य के अध्ययन से निम्नलिखित विशेषताएं हैं ।

(क) प्रेमघन, भारतेन्दु युगीन आदि कवियों ने लयों के शीर्षक तो दिए हैं किन्तु उन लयों में क्या विभिन्नता है, स्वरावली के अभाव में यह निश्चित नहीं किया जा सकता ।

(ख) एक एक लय के अनेक भेद भी शीर्षक देकर किए हैं जैसे रण्डियों की पहली, दूसरी, तीसरी लय, गृहस्थिनियों की पहली, दूसरी लय, कजली की पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी लय, किन्तु लयों में पारस्परिक क्या विशेषता है, इसका विषय में भी स्वरावली के अभाव विशेष में नहीं कहा जा सकता ।

(ग) शीर्षक के आधार पर प्रेमघन आदि ने लोक लयों के वर्गीकरण किए हैं वे भी पूर्णतया वैज्ञानिक नहीं है । जैसे बनारसी लय, और गुण्डानी लय। अवश्य है कि बनारस के गुण्डों की भी अपनी लय होती होगी । इसलिए गुण्डानी लय, बनारसी है या मिर्जापुरी इसका निश्चित ज्ञान नहीं होता । जैसे गृहस्थिनियों की लय और विंध्यावली लय । यहां यह स्पष्ट है कि यह गृहस्थिनियों की लय विन्ध्यावली स्त्रियों की ... है कि नहीं । यदि नहीं है तो कहां की लय है । अवश्य है कि प्रेमघन ने गवनहारिनों की लय के भेद करते हुए तीसरी लय के सम्बन्ध में यह लिख दिया है कि यह

बनारसी लय है[1] जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यह बनारस की गवनहारिनों की ही लय विशेषता है किन्तु ऐसा ● उल्लेख अन्य स्थानों पर जैसे ऊपर लिखित है नहीं मिलता है । इससे मालूम पड़ता है कि प्रेमघन का लयात्मक वर्गीकरण त्रुटिपूर्ण है ।

लोक वाद्य:-

लोक संगीत में गायक लोक वाद्यों का प्रयोग भी करते हैं । यह वाद्य गायन में लय को ठीक करने के निमित्त प्रायः प्रयुक्त होते हैं । यह वाद्य अधिकांशतः साधारण, जटिलता रहित या क्रमवत् होते हैं । यद्यपि लोकवाद्य तत(तन्त्रीगत), शुषिर, आनद्ध(चर्मावनद्ध) तथा घन चारों ही प्रकार के मिलते हैं । लोक वाद्यों में न तो वीणा और वायलिन के समान कठिन तारों का संयोग है न वाद्यों को बजाने के लिए बैंजों या पियानों के समान अभ्यास की आवश्यकता ही पड़ती है । लोक गायक के लिए साधारण से साधारण वस्तु भी वाद्य का काम देती है । यदि गायक को कोई वाद्य नहीं मिला तो वह थाली बजाकर या दो डण्डों को एक दूसरे से बजाकर अपनी लय या गति को सुधारने में हीनता का अनुभव नहीं करता । यही कारण है कि लोक - वाद्यों की संख्या अनन्त है किन्तु फिर भी कुछ वाद्य ऐसे हैं जिनका लोक गायक प्रायः प्रयोग करते हैं । यह वाद्य - तत(तन्त्रीगत), शुषिर(फूंक कर बजाए जाने वाले) आनद्ध (चर्मावनद्ध) तथा घन चार प्रकार के वर्गों में रक्खे जा सकते हैं । शास्त्रीय वाद्यों की तुलना में यद्यपि ये निश्चित ही धनी नहीं कहे जाते, फिर भी इन वाद्यों के विषय में यह कहा जा सकता है कि इन्हीं को बजाकर लोक गायक अपनी मन पसन्द हर एक ध्वनि को निकाल लेता है । डा० रानाडे[2] का विचार है कि गायक इन्हीं साधारण वाद्यों को

१- प्रे०सर्व०काव्यखण्ड पृ० ५११ ।

2. Thus skillfull drumming can produce almost every shade of motion straight of Zigzog and of delicacy or power. The drum type of insteruments are therefore useful in music as much powerful,emotional, smooth or zigozog as i desired p.76, Hindustani Music: Ranadey G.H.

ज़ोर से बजाकर ऐसी ध्वनि निकालेगा जो वीर रसात्मक होगी तो कभी इन्हें अत्यन्त धीरे धीरे बजाकर शृंगारात्मक ध्वनि निकालेगा ।" एक अच्छा लोक वादक केवल डुम को ही बजाकर सब प्रकार की ध्वनि निकाल लेता है ।

लोक वाद्यों का प्रयोग गायन के साथ कम तथा नृत्य के साथ अधिक होता है । डुम, घंटी, सींग, नगाड़ा, शंख, बंशी, घुंघरू, ढफली, डफ, झांझ, करतार, तंबूरा, मृदंग, मंजीरा, ढोलक आदि सभी वाद्यों की गणना लोक वाद्य में ही होती है । अवश्य है कि जितना ही अशिक्षित, सभ्यता से दूर रहने वाला लोक वर्ग होगा, उतने ही उसके लोक वाद्य साधारण होंगे । घोर जंगलों में निवास करने वाले आदिवासियों के वाद्यों में इसीलिए घुंघरू, तंबूरा, करताल आदि वाद्य कम होंगे ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में अनेक लोक गीतों में तथा अनेक प्रसंगों में लोक वाद्यों का भी उल्लेख हुआ है जो यह सिद्ध करता है कि भारतेन्दु युगीन काव्य न केवल, गीत प्रकार, राग और ताल के कारण ही लोक संगीतात्मकता की ओर उन्मुख है, वरन् लोक वाद्यों की दृष्टि से भी भारतेन्दु युगीन काव्य में लोक संगीत के तत्व बहुत मात्रा में प्राप्त है । भारतेन्दु युगीन काव्य में जिन लोक वाद्यों का उल्लेख मिलता है वे निम्न हैं -

चंग	मुहचंग
मृदंग	सारंगी
सितार	करतार
घुंघरू	डफ
मंजीरा	ढोल
झांझ	बांसुरी
ढोलक	बीन
डौंरू (डमरू)	मुरज
दुन्दुभी	घंटा
शंख	घड़ियाल

कींगरी	डौंडी
मुरचंग	उपंग
नगारा	ढाक
दण्ड	

<u>मृदंग-</u>

यह अति प्राचीन तथा प्रमुख लोक वाद्य है । अनेक लोक गीतों में इस वाद्य का प्रयोग होता है । पुराण में इसके विषय में एक उल्लेख उल्लिखित है- महादेव ने त्रिपरासुर को मार कर आनंद विभोर हो जब तांडव नृत्य किया, उस समय त्रिपुरासुर के खून से रंजित भूमि कीचड़ में परिवर्तित हो गई । उस कीचड़ से ब्रह्मा ने मृदंग का मेखड़ा (बीच का हिस्सा जो मृदंग का आधार भाग है), चर्म से अच्छादिनी, शिरा से चर्म संयोजक रज्जु तथा अस्थि से गुल्म बनाकर गणेश को महादेव के नृत्य में ताल देने के लिए मृदंग को निर्मित किया ।गणेश ने मृदंग को बजाकर महादेव के नृत्य को तथा देवताओं के हर्ष दोनों को ही बढ़ाया था । इस वाद्य का प्रमुख भाग जो कि इसका आधार है वह मेखड़ा है । इस यंत्र के मुख पर दोनों ओर चर्म चढ़ा रहता है तथा उसी चर्म पर द्रव तथा पदार्थ विशेष का लेप रहता है । मृदंग के दोनों ओर के भाग आकार में समान नहीं होते । एक छोटा होता है तथा एक भाग बड़ा रहता है । बीच का भाग इन दोनो भागों से ऊँचा रहता है । भारतेंदु युगीन काव्य में कजरी तथा होली दोनों में ही कवियों ने इस वाद्य का उल्लेख किया है[१] । सिद्ध है

१- जुरी जमात गूजरी जमुना, कूल कदम कुंजन में रामा
हरि हरि मिलि खेलैं कजरी राधा रानी रे हरी
कोउ मृदंग मुहचंग चंग लै सारंगी सुर छेड़ै रामा- प्रे० सर्व० पृ० ५०५ ।

बाजत ढोल मृदंग झाँझ डफ मंजीरा करताल
भरे मदन मद सब ब्रजवासी गावत तान रसाल
जमुना तीर खड़े होली खेलत नंद के लाल- प्रे० सर्व० पृ० ६०९ ।

बाजत डफ मिरदंग झाँझ सब धूम धमार मचाए,-प्रे० सर्व० पृ० ६२३ ।

कि कजरी और होली में लोक वादक इस वाद्य का प्रयोग विशेष रूप से करते हैं ।

सारंगी-

सारंगी प्रमुख लोक वाद्यों में से एक है । किम्वदन्ती है कि रावण ने इस वाद्य का अविष्कार किया था। भारत में यह वाद्य अविकृत नाम तथा आकार से चला आ रहा है और अन्य देशों में थोड़ा आकारादि परिवर्तित होकर यह यंत्र विभिन्न नामों से विख्यात हो गया है । इस यंत्र के खोल और डँड एक ही लकड़ी के बने होते हैं इसका खोल चमड़े द्वारा और डंडा पतले काष्ठफलक द्वारा मढ़े रहते हैं । डँड के दोनों पार्श्व में चार खूंटियां होती हैं जिनमें एक एक तांत बंधी होती है । डँड के बगल में कई एक अप्रधान तार की खूंटियां रहती हैं । यह यंत्र अंगुली से नहीं बजाया जाता वरन घोड़े के पूंछ के बाल से बनी एक छोटी धनुही से बजाया जाता है । धनुही के साथ साथ तंतुओं में बाएं हाथ की कनिष्ठादि चार अंगुलियां के अग्रभाग से आघात करके अन्य स्वर निकाले जाते हैं । धनुही या धनुष का प्रयोग अनेक लोक वाद्यों में मिलता है । कुछ लोगों को धनुही के प्रयोग से यह शंका उठती है कि यह कभी शास्त्रीय वाद्य भी रहा होगा क्योंकि लोक गायक या वादक के लिए धनुही का प्रयोग सरल नहीं है, विशेष अभ्यास जन्य है किन्तु अवधेय है कि धनुष के द्वारा स्वरों का उत्पादन लोक गायकों में, वादकों में तथा आदिवासियों में आज भी देखा जाता है, फिर वाद्य संगीत का उद्भव ही सर्वप्रथम जंगली शिकारियों के धनुष की तांत से ही हुआ था । अति प्राची काल में स्वरों का आरोह अवरोह धनुष को दबाकर तथा तातों के तनाव को बदलकर ही किया जाता था । भी इस आज के संगीत धनुष का शिकारियों के धनुष से घनिष्ठ संबंध रहा है । एक विद्वान के वचन इस संबंध में पूर्णतः युक्ति युक्त हैं-"कि ढोल तथा संगीत धनुष संगीत के सम्पूर्ण वाद्य समुदाय से प्रायः वही संबंध रखते हैं जो कि पश्चिमी कथानक के अनुसार मानवता का आदम तथा हौवा से है"[1] । एक लेखक[2] के सारंगी संबंधी अनुसंधान से इस बात की

१- संगीत निबंध संग्रहः हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव ।
२- अष्टछाप के वाद्य यंत्रः श्री चुन्नी लाल शेष, पृ० १६ ।

और भी अधिक पुष्टि होती है कि यद्यपि सारंगी आज बड़े बड़े कुशल गायकों द्वारा बजाई जाती है किंतु यह अति प्राचीन तथा लोक वाद्य है जिसका परिष्कार कर ही वर्तमान सारंगी का रूप बना है । सारंगी के समान ही लंका में प्राचीन काल में घुमक्कड़ जातियों के मध्य एक वाद्य प्रचलित था और यह आज भी वहां की घुमक्कड़ जातियों के मध्य दिख जाता है । इसे वहां वीन वाद्य कहा जाता है । इसका दंड सारंगी की ही भांति बांस का होता है"। तूंबे के स्थान पर नारियल के खोपड़े का आधा हिस्सा लगा रहता है जो चीते की खाल से मढ़ा होता है । इसमें दो तंतु लगे रहते हैं- एक बटे हुए पटसन का तथा दूसरा घोड़े के बालों का । घोड़े की बालों के कमान से ही यह बजाई जाती है" और संभवतः वर्तमान सारंगी का मूल रूप यही रहा होगा ।

भारतेंदु युगीन काव्य में लोक गीतों के अन्तर्गत अनेक बार सारंगी का ~~उल्लेख-ि~~ उल्लेख मिलता है । सारंगी का सुर अत्यंत मधुर माना जाता है, जिसके विषय में बार बार उल्लेख हुए हैं । कजली गीतों में सारंगी का ~~उल्लेख~~ उपयोग प्रायः हुआ है ।

झांझ-

लोक वाद्यों में झांझ का स्थान प्रमुख है । इसे झांझर तथा कांसर भी कहते हैं । झांझर इसका इसलिए नाम पड़ा क्योंकि इसके बजाने से केवल झां झां ध्वनि निकलती है । कांसर इसे इसलिए कहा जाता है कि आजकल यह प्रायः कांसे का ही होता है । झांझर शब्द अति प्राचीन है और यह शब्द ही यह सिद्ध कर रहा है कि यह लोक वाद्य है । लोक वाद्य में ही ऐसा वाद्य हो सकता है जिससे केवल एक ही ध्वनि झां झां निकलती है । शास्त्रीय वाद्य ऐसे वाद्यों को स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि उसके एक वाद्य में तो अनेकों ध्वनियां निकालने की क्षमता होती है । इस वाद्य का आकार गहरी थाली से बहुत मिलता जुलता है ।

इसका किनारा ऊँचा तथा समतल होता है। इसके दो किनारों में दो छेद होते हैं जिनमें एक डोरी बांध दी जाती है। डोरी को बाएं हाथ से पकड़ कर इस यंत्र को झुलाते हुए दाहिने हाथ एक पतले डंडे द्वारा बजाते हैं। इस वाद्य का प्रयोग पहले किसी को दूर से बुलाने के निमित्त किया जाता था किन्तु आज इसका प्रयोग प्रायः लोक गीतों में होता है।

प्रेमघन, भारतेन्दु आदि सभी ने लोक गीतों में इसका उल्लेख किया है। होली के गीतों में इस वाद्य का प्रयोग हुआ है[१]।

ढोलः-

इसका आकार ढोलक की तरह किन्तु उससे कुछ बड़ा होता है। इसके बाएं मुख पर एक लेप लगा रहता है। इस डोरी में बांधकर गले में लटकाकर दाहिने हाथ से ताल देते और बाएं हाथ से एक लकड़ी से इसे बजाते हैं। यह ढोल विवाहादि अनेक उत्सवों में बजता है। लोक वाद्यों में ढोल का स्थान सर्वप्रमुख है क्योंकि विश्व का सबसे प्रारंभिक वाद्य ढोल ही था। इसका कार्य मानव एवं पशु के हृदय में भय का संचार तथा दूरस्थ व्यक्ति को पुकारना था और बाद में सभ्य समाज की प्रगति के साथ इसका भी विकास हुआ। विद्वानों का कहना है घंटा, झांझ, घड़ियाल आदि सभी घन वाद्य ढोल के ही विकसित प्रकार हैं जिनका निर्माण आर्यों द्वारा बाद में किया गया था। कुछ का कथन है कि ढोलक भी ढोल का ही परिवर्तित रूप है।

१- ढोल मृदंग झांझ डफ मंजीरा करताल,
भरे मदन मद सब ब्रजवासी गावत तान रसाल,
जमुना तीर खड़े होली खेलत नंद के लाल। -प्रे॰सर्व॰पृ॰ ५०९।
बाजत डफ मिर्दंग झांझ सब धूम धमार मचाएं - प्रे॰सर्व॰पृ॰ ६२३।
ब्रज में बढ़्यो और मची होली।
बजत मृदंग चंग डफ ढोलक झांझ मंजीरन की जोरी॥
-प्रे॰सर्व॰पृ॰ ६२४।

लोक गीतों के गायन में ढोल का भी प्रयोग होता है । प्रेमधन ने होली के सन्दर्भ में इसका उल्लेख किया है । ढोल प्रायः गीतों में अन्य वाद्यों के साथ ही प्रयुक्त होता है । अकेले इस वाद्य का प्रयोग लोक गीतों में कम मिलता है । अनेक वाद्यों की ध्वनियों के साथ मिलकर ढोल की ध्वनि विशेष अच्छी हो जाती है । प्रेमधन ने तथा अन्य ही अनेक भारतेन्दु युगीन कवियों ने इस वाद्य का बहुत बार उल्लेख किया है[1]।

ढोलक:-

इसका आकार बहुत कुछ मृदंग सा होता है पर अंतर यह है कि जहाँ मृदंग का मेखड़ा मिट्टी का होता है, इसका मेखड़ा लकड़ी का होता है और इसके दोनों ओर का आकार मृदंग के समान विषम न होकर समान होता है । यह वाद्य आनद्ध (चर्मावनद्ध) वर्ग के अंतर्गत आता है । इसके दोनों मुंह पर पतला चमड़ा चढ़ाया जाता है । चर्म चढ़ाते समय चमड़े को मिलाकर एक बांस की गोल कमांची में इस तरह लपेटते हैं कि वह कमाची चमड़े से आबद्ध होकर ढोलक के मेखड़े पर खूब अच्छी तरह चिपक जाती है । अवनद्ध चमड़े पर दोनों पर मृदंग या तबले के समान इस पर लेप नहीं रहता है । कमांची में डोरी लगाकर एक दूसरी कमांची को जोड़ देते हैं तथा डोरी के बीच में छल्ले डाल दिए जाते हैं । इससे ढोलक को खींचकर तथा छल्ले चढ़ाकर कसा जाता है । ढोलक के दोनों ओर का व्यास समान होता है किन्तु मध्य भाग मोटा तथा ऊँचा होता है ।

यह वाद्य अति प्रचलित लोक वाद्य है । भांझ, करतार, मृदंग आदि का प्रयोग तो कुछ ही व्यक्ति विशेषों में देखा जाता है किन्तु ढोलक का प्रयोग तो आज भी सभ्य समाज तक की प्रत्येक स्त्रियों के यहां देखा जा सकता है जिसे अपने घर में रखना वे सौभाग्य तथा मंगल का कारण मानती हैं

१- तब तो आठों पहर अधिकतर ढोलहिं बाजत - प्रे॰सर्व॰पृ॰ २७ ।
बजत ढोल घन गर्जन सम कीने रव भारी - प्रे॰सर्व॰पृ॰ २७ ।
चटकत ढोल सुनाय सहित करखा के सोरन- प्रे॰सर्व॰पृ॰ २८ ।

प्रत्येक पारिवारिक उत्सव में वे ढोलक वादन कर अपना मनोरंजन कर आत्मिक संतुष्टि का अनुभव करती हैं । ढोलक के साथ उनके अनेक विश्वास भी जुड़े हुए हैं जैसे ढोलक के फटने, गिरने से अमंगल की हानि । झांझ, करताल, तंबूरा, एकतारा आदि जहां पुरुष वर्ग के अनेक वाद्य हैं, स्त्रियों का मुख्य रूप से सर्वप्रिय वाद्य ढोलक ही है । चाहे विवाह का अवसर हो, तिलक का अवसर, पुत्र जन्म हो, यज्ञोपवीत हो, सभी अवसरों पर ढोलक का ही व्यवहार होगा । इस वाद्य की विशेषता यह है कि आज भी असभ्य, अपढ़, गंवार वर्ग की स्त्रियों में ही अकेले यह वाद्य नहीं मिलता । वरन् सभ्य घराने की स्त्रियां भी उसी का व्यवहार करती हैं । अवधेय है कि किसी भी संस्कार का अवसर हो और स्त्रियां चाहें अनेक वाद्य बजाना जानती हों लेकिन वे यदि इस अवसर पर किसी वाद्य का प्रयोग करेंगी तो वह वाद्य ढोलक ही होगा । यह प्रमाणित करता है कि लोक वाद्यों का प्रयोग आज भी होता है, और लोक संस्कृति को नागरिक संस्कृति ने पूरी तरह दबा नहीं लिया है ।

ढोलक जैसे सार्वकालिक और सार्वजनीन वाद्य का प्रयोग भारतेंदु युगीन काव्य में भी बहुत मिलता है । होली आदि के अवसर पर भी अन्य वाद्यों के साथ इसका उल्लेख मिलता है[1]।

करताल:-

यह भी प्रसिद्ध लोक वाद्य है । भारतेन्दु युगीन प्रेमघन आदि कवियों ने इस वाद्य का भी लोक गीतों में अन्य वाद्यों के साथ उल्लेख किया है[2]। एक स्थान पर ब्रज की होली के साथ इसका वर्णन हुआ है दूसरे स्थान

1- ब्रज में चहुं ओर मची होली ।

बजत मृदंग चंग डफ ढोलक झांझ मंजीरन की जोरी ।-प्रे०सर्व०पृ०६२४ ।

२- ढोल मृदंग झांझ डफ मंजीरा करताल ।

भरे मदन मद सब ब्रजवासी गावत तान रसाल ।

जमुना तीर बड़े होली खेलत नंद के लाल - प्रे०सर्व०पृ० ६०९ ।

गाय कबीर अहीरन के संग निज कुल नाम नसावत हो जू ।

पी पी भंग रंग सौं रंगि तन डफ करताल बजावत हो जू ।।

-प्रे०सर्व०पृ० ६२१ ।

पर गोपियों द्वारा करताल तथा डफ को हीन बताया गया है वे कहती है- कि डफ करताल बजाकर भंग आदि पीकर कबीर अहीरों के संग गाकर क्यों अपना वंश डुबो रहे हो ।

इस वाद्य को करताल तथा करताली दोनों कहा जाता है । यह पद्मसदृश गोलाकार कांसे का बना हुआ पतला समतल यंत्र करताली कहलाता है । यह एक तरह के दो करताल होते हैं । इनका मध्य भाग कुछ उठा रहता है । इसके बीच में छेद रहता है । इस छेद में रस्सी बंधी होती है । रस्सी को उंगली में लपेट कर करताल दोनों हाथ से बजाए जाते हैं ।

बांसुरी :-या वंशी :

वंशी भी अति प्राचीन लोक वाद्य है । श्रीकृष्ण जी को वंशी विशेष प्रिय थी इसलिए कुछ लोग श्रीकृष्ण को ही वंशी का आविष्कारक मानते हैं । सिद्ध है कि वंशी एक प्राचीन वाद्य है । श्रीकृष्ण जाति के गुवाले थे, उन्होंने संगीत की शिक्षा किसी संगीताचार्य से नहीं ली थी, और वे उसका अति निपुणता से वादन करते थे, यह सिद्ध करता है कि वंशी एक लोक वाद्य रहा होगा । भरत तो देशी संगीत का आधार ही वंशी मानते हैं । आज वंशी की गणना शास्त्रीय वाद्यों में होने लगी है । यह पहले गोलाकार सरल एवं गांठहीन बांस की ही बनाई जाती थी और यह आठ अंगुल से लेकर एक हाथ लंबी तक होती थी । इसका शिरोभाग प्रायः बंद तथा अधोभाग खुला रहता था । वंशी के ऊपरी भाग से तीन अंगुल नीचे एक गोल छिद्र रहता है जिसे फूंककर स्वर निकाले जाते हैं । वंशी के दोनों हाथों के अंगूठों से पकड़कर उंगलियों को नीचे के छेदों पर रखकर विभिन्न स्वर निकाले जाते है । प्राचीन समय में वंशी के साथ इसे मुरली भी कहा जाता था ।

वंशी का उल्लेख प्रेमघन ने तथा अन्य कवियों ने भी किया है । प्रेमघन ने ढुनमुनियां की कजली की प्रथम तथा दूसरी लय दोनों के ही गीतों की प्रत्येक पंक्ति में बांसुरी का बार बार उल्लेख किया है[1]।

१- प्रेमघन सर्वस्व: काव्यखण्ड, पृ० ५३४ ।

घुंघरू:-

घुंघरू भी लोक वाद्य है। आज बड़े - बड़े निपुण नर्तक नृत्य में इसका प्रयोग करते हैं, किन्तु वे आज भी इसे शास्त्रीय वाद्य की संज्ञा नहीं देते। प्राचीन समय इसे क्षुद्रघंटिका शब्द से अभिहित करते थे। क्योंकि इसमें छोटी छोटी घंटियाँ ही होती है जो हिलने से बजती है। यह घुंघरू अधिकांशतः पीतल के मिलते हैं किन्तु लोहे के घुंघरूओं का भी प्रयोग मिलता है प्रेमघन तथा अन्य भारतेन्दु युगीन कवियों ने अनेक वाद्यों के साथ इसका भी उल्लेख किया है[1]।

मंजीरा:-

यह भी लोक वाद्य है किन्तु इसका प्रयोग प्रायः ढोलक, ढोल, मृदंग आदि अन्य वाद्यों के साथ होता है। बहुत कम गीत ऐसे होते हैं जिनमें अकेले मंजीरे से काम चले। अवधेय है कि शुषिर वाद्यों के साथ इसका प्रयोग कम तथा चर्मावनद्ध वाद्यों के साथ इसका प्रयोग अधिक मिलता है। भारतेन्दु युगीन काव्य में इस वाद्य का भी उल्लेख हुआ है[2]।

डफ:-

डफ भी एक प्राचीन तथा प्रचलित लोक वाद्य है। डफली इसी का लघु रूप है जिसका प्रयोग आज भी प्रायः विभिन्न लोक नृत्यों, विभिन्न भिखारियों तथा कीर्तनादि में प्रायः देखने में आता है। यह आनद्ध वर्ग के अन्तर्गत आता है। लकड़ी की एक बड़ी गोल की हुई कमाची में एक तरफ एक हलका चमड़ा लगा रहता है। एक भाग खाली रहता है। चमड़ा जो एक प्रकार की झिल्ली सी होती है उसी पर बाएं हाथ से आघात कर तथा

१- कोउ जोड़ी टनकारैं, कोउ घुंघरू पग झनकारैं रामा।

हरि हरि नाचैं कितनी माती जोम जवानी रे हरी।।-प्रे०सर्व०पृ०५०५।

२- बाजत ढोल, मृदंग, झांझ, डफ, मंजीरा करताल।

-प्रेमघन सर्वस्व:पृ०६०९।

दाहिने हाथ से डफ पकड़ कर यह बजाया जाता है । होली, कजली आदि अनेक लोक गीतों को गाते समय प्रायः इसका प्रयोग देखने में आता है । भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रेमघन, भारतेन्दु आदि अनेक कवियों ने इसका उल्लेख प्रायः अनेक स्थानों में किया है[1]। होली या फाग के गीतों में इसका प्रयोग विशेष रूप से हुआ है । इसलिए अक्सर होली डफ की, या डफ की होली कहा जाने लगा । डफ की होली को रसिया भी कहा जाता है[2]।

किंगरी :-

किंगरी को कुछ संगीतज्ञों ने किन्नरी वीणा भी माना है पर किंगरी किन्नरी वीणा से पृथक् लोक वाद्य है । किन्नरी वीणा शास्त्रीय वाद्यों की कोटि में आता है और किंगरी एक पूर्ण लोक वाद्य है जिसका प्रयोग आज भी ब्रज आदि प्रदेशों में धमार गीतों के साथ होता है । ब्रज में किंगरी को कर्करी और किरकिरी नाम से संबोधित भी किया जाता है । किंगरी "पक्के लोहे की छड़ का त्रिकोणात्मक बनाया जाता है और फिर लोहे की एक छड़ से ही बजाया जाता है ।" श्री चुन्नीलाल शेष ने मैत्रायिणी संहिता तथा गौरी पूजा में गायों के लिए प्रयुक्त "कर्करी कर्ण्यः" के प्रयोग से भी, किंगरी वाद्य की लोक तात्त्विकता सिद्ध की है । उनका कहना है कि "कर्करी कर्ण्यः का प्रयोग "ऐसी गाएं जिनके कान पर कर्करी के चिह्न बने हों" किया गया है । कर्करी कर्ण्यः का सीधा अर्थ कर्करी के समान कान वाली गायों से है, जो ब्रज की कर्करी से ठीक उतरता है । कर्करी का रूप गाय के कान से सम्बन्ध रखता है इसलिए उपमान की दृष्टि से भी यही अर्थ संगत प्रतीत होता है[3]।" इस प्रकार कर्करी ब्रज का एक त्रिकोणात्मक जो

१- बाजत ढोल, मृदंग, झांझ, डफ, मंजीरा, करताल-प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ ६०९ ।

+ + +

पी पी भंग रंग सो रंगि तन डफ करताल बजावत हौ जू-प्रे॰ सर्व॰ पृ॰ ६२१। पृ॰ ६२४ । भारतेन्दु ग्रंथावली- पृ॰ ३६४, ३७२, ३७४ ।

२- प्रेमघन सर्वस्व: पृ॰ ६२४ । भारतेन्दु ग्रंथावली-पृ॰ ३८१, ३८६ ।

३- अष्टछाप के वाद्य यंत्र: चुन्नीलाल शेष, पृ॰ १४ ।

लोहे की छड़ का बनता है का एक नाम है । ब्रज में फाग होली गातेसमय उसका प्रयोग बहुत होता है । भारतेन्दु युगीन काव्य में किंगरी लोक वाद्य का उल्लेख हुआ है[1]।

उपंग:-

भारतेन्दु युगीन काव्य में बीन-चंग, मृदंग, बांसुरी आदि के साथ उपंग का भी उल्लेख हुआ है[2]। लोक जीवन में होली आदि अवसरो पर गाए जाने वाले गीतों के साथ प्रयुक्त होने वाले वाद्यों में उपंग का भी अभिन्न स्थान है । रूप की दृष्टि से उपंग दो प्रकार का होता है पहला डमरू के आकार का दूसरा ढोलक के आकार का । यह मिट्टी, धातु तथा लकड़ी तीनों प्रकार का होता है और एक ओर पतले चमड़े से मढ़ा होता है । तांत की एक डोरी उसके एक सिरे पर गांठ लगाकर उसे मढ़े हुए चमड़े के बीच से पो लेते हैं और तांत की डोरी को दूसरी ओर निकालकर प्रायः एक लकड़ी के टुकड़े पर लपेट लेते हैं और बजाते हैं । उपंग का एक और विकृत रूप है जिसका प्रचलन गांवों में छोटे बालकों के मध्य आज भीपाया जाता है।" यह छोटे बच्चे चिलम, सिगरेट का टीन का ~~व~~ डिब्बा लेकर उसके मध्य में छेद कर लेते हैं और उसके बीच में घोड़े के बालों की बटी हुई डोरी निकालते हैं और इस डोरी पर पिरोजा रगड़ लेते हैं फिर एक कपड़ा लेकर इस डोरी को सूतते हैं तो कुत्ते के भूंकने सा शब्द निकलता है । यह वाद्य बच्चों के मध्य लोगों को हंसाने तथा बेसुध व्यक्ति को चिढ़ाने के लिए प्रायः प्रयुक्त होता है[3] । यह वाद्य निर्माण की दृष्टि से अति सरल है तथा लोक प्रवृत्ति के पूर्ण तथा अनुरूप है कि उसके वाद्य कितने सरल तथा विचित्र ध्वनि करने वाले होते हैं ।

१- दादुर तंबूरा भिल्ली कींगरी बजावै------रसिक वाटिका-भा० ३,क्या० ६। र०वा०,भा०४,क्या०५ । र०वा०,भाग ४,क्या०७ ।

२- कोउ बजावत सारंग बीन बजावत कोउ प्रवीन मृदंग है।
बांसुरी चंग उपंग कोउ गति नावत है कोउ कलान के संग है ।।
र०वा०भाग ३, क्या० १२ ।

३- अष्टछाप के वाद्य यंत्र: चुन्नीलाल शेष, पृ० ४३ फुटनोट्स ।

डोरू:-

डमरू का ही दूसरा नाम डोरू है । दोनों ही नामों से इस वाद्य का उल्लेख भारतेन्दु युगीन कवियों ने किया है[1]। दोनोंही नाम लोक प्रवृत्ति अनुरूप रखे गए हैं क्योंकि दोनों ही नाम डमरू या डोरू इस वाद्य की ध्वनि के वाचक हैं । डमरू शब्द का अर्थ डम डम करने वाले तथा डोरू शब्द का अर्थ डों डों की ध्वनि करने वाले वाद्यों से है । यह अति प्राचीन लोक वाद्य है । डमरू को आदि देव शंकर का वाद्य भी कहा गया है । डमरू को आदि देव शंकर का कहने के पीछे भी यही भावना थी कि यह वाद्य इतना प्राचीन है कि इसका प्रचलन कब से हुआ यह नहीं बताया जा सकता । डमरू का प्रचलन लोक जीवन में तो देखने को मिलता ही है नगर में भी बंदर, भालू आदि का नाच दिखाने वाले मदारी भी इसका प्रयोग जनता को अपनी ओर आकर्षित करने लिए बजाते हुए देखे जाते हैं । डमरू ५-६ इंच लम्बा तथा बीच में एकदम पतला होता है दोनों ओर इसके मुख का व्यास लगभग ३" ४" का होता है जो एक पतले चमड़े से ढंका रहता है । दोनों ओर मुख के चमड़े दोनों ओर से एक पतली रस्सी से कसे रहते हैं तथा मध्य में जहां डमरू बिल्कुल पतला होता है, एक रस्सी लगी रहती है जिसके सिरे पर घुंडी लगी रहती है । सीधे हाथ से मध्य में डमरू को पकड़ कर जब घुमाया जाता है तो वह घुंडिया दोनों ओर के चमड़ों पर प्रहार करती हैं तो डम डम की तथा डों डों की सी आवाज होती है । वर्तमान समय में मदारी आदि इसका प्रयोग करते हैं ।

चंग:-

भारतेन्दु युगीन कवियों ने डोरू, किंगरी, झांझ आदि की अपेक्षा चंग का उल्लेख बहुत अधिक स्थानों पर किया है । प्रायः जहां भी कई वाद्यों का उल्लेख कवियों ने किया है वहां चंग को गिनाना कवि नहीं भूले हैं[2]। कारण स्पष्ट है कि लोक गीतों को गाते समय चंग का प्रयोग ही सर्वा-

---

१- रसिक वाटिका- भाग ३, क्यारी ११ । भाग ४-क्यारी० १।भा०४,क्यारी०२ ।

२- वही, भा०३,क्यारी०६ । भा०३,क्यारी० ९। भा०४, क्यारी०१ । भा०४ क्यारी०४।
भा०४, क्यारी०७ । भाग ३, क्यारी० १२ ।

धिक होता है । ख्यालों तथा ठार्गनियों का गायन तो प्रायः चंग के बिना होता ही नहीं है । चंग प्रसिद्ध लोक वाद्य है यह बर्त्ताकार रवत चमड़े से मढ़ा होता है । १६ से २० अंगुल तक का इसका व्यास है । संगीत पारिजात में लिखा है चंग का आकार त्रिशूलवत होता है, जिसके पांच भागों की लंबाई चार अंगुल तथा मध्य भाग (जो पार्श्व भाग में पतला होता है) की पांच अंगुल होती है ।छाती के सामने रखकर वादक इसको बजाते हैं । इसे ढफली भी कहते हैं ।

मुंहचंगः-

संगीतरत्न पं० उमादत्त मिश्र[1] जो मुहचंग के वादक हैं मुहचंग का परिचय देते हुए कहते हैं -"भारतीय वाद्यों में मुहचंग एक अति विचित्र तथा लघु स्वरूप (जिसे आगे की छोटी कमीज या कुर्ते की जेब में एक डिब्बी में बंद करके अपने साथ रख सकते है) लौह निर्मित और ताल को अति सुन्दर रूप से प्रदर्शित करने वाला (तालधर) सुषिरवाद्य है । श्री चुन्नीलाल शेष ने संगीत पारिजात में उल्लिखित चंग के वर्णन को मुख चंग का वर्णन मानकर चंग को ढफली मात्र माना है[2]। मुहचंग के विषय में श्री चुन्नीलाल शेष संगीत पारिजात में उल्लिखित चंग के समानान्तर मुहचंग का विवरण प्रस्तुत करते हुए कहते है - "मुहचंग बांसुरी की भांति लौह आदि धातुओं का बनाया जाने लगा है । यह वाद्य बहुत ही साधारण है । इसका स्वरूप जैसे त्रिशूल का कांटा होता है, वैसे ही दो पुष्ट शंकुओं के मध्य बिच्छुओं के डंक के समान ऊपर को पूंछ उठाए हुए ~~एक~~ ~~कलक~~ होता है जो मुंह के संयोग से बजाया जाता है ।"भारतेंदु युगीन काव्य में चंग के समान ही मुहचंग का उल्लेख भी कई स्थानों पर हुआ है जो लोक संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण है[3]।

१- संगीत वर्ष १७, अंक १, पृ० ९५-९६ ।

२- अष्टछाप के वाद्य यंत्रः श्री चुन्नीलाल शेष पृ० ४२ ।

३- रसिक वाटिकाः भा०३,क्या०९ ।भा०४,क्या०५ ।भा०५,क्या०७ ।
भा०३,क्या०१२(मुंह से बजाने का उल्लेख) ।

बीनः-

यों तो बीन वीणा का विकसित रूप प्रतीत होता है और बीन और वीणा का अर्थ भी शब्द विज्ञान की दृष्टि से एक ही होता है किन्तु जब लोक गीत या लोक संगीत के संदर्भ में बीन का प्रसंग आता है तो बीन का अर्थ वीणा से न होकर महुवरि या तुंबड़ी से होता है जिसका प्रयोग संपेरे प्रायः किया करते हैं । बीन एक तुंबे के पेंदे में छेद करके तथा दो बांसुरी के आकार के बांस के प्रवेश योग्य बांस की का लगाकर बनाई जाती है । इन बांसुरी के समान नलिकाओं में दो रीड लगे रहते हैं तथा दोनों मोम से भलीभांति चिपके रहते हैं । नीचे के पेंदे भी मोम से अच्छी प्रकार चिपका दिए जाते हैं जिससे वायु बाहर न निकल सके । फिर बांसों के में बांसुरी के समान छेद करके ये बजाए जाते हैं । भारतेन्दु युगीन कवियों ने बीन का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया है[1]। संगीतरत्नाकर में महुवरि का विवरण देते हुए कहा गया है कि यह सींग या लकड़ी की बनी होती थी[2]।

शंखः-

भारतेन्दु युगीन काव्य में कुछ स्थानों पर अन्य वाद्यों के साथ शंखों की ध्वनि का उल्लेख भी मिलता है[3]। यह वाद्य शंख नामक सामुद्रिक जीव का ढांचा है और यह समुद्र से ही निकाला जाता है । शंख बजाने से एक ही प्रकार की गर्जनात्मक ध्वनि निकलती है । शुभ कार्यों में प्रायः शंख की ध्वनि की जाती है । सींग या जीव के ढांचे आदि साधारण वस्तुओं को फूंककर बजाने की प्रथा अति प्राचीन तथा लोक मानस से सम्बन्धित है

१- रसिक वाटिकाः भाग १,क्या०२ । भा०१,क्या०५ ।भा०१,क्या०६।
भाग १,क्या०१०। भा०४,क्या०१ । भा०४,क्या०१२ ।

२- संगीत रत्नाकर ६।७८५-७९१ ।

३- घंटा शंख झालर मृदंग बीन झांझ,धुनि, गान ध्यान सुखमा महान् बसी दरदर । रसिक वाटिका भाग१,क्या० ६ ।

जब ही मृदंग संख धुनि पै उमंग भरी राम असि नटी गाई नाचति नई नई
- रसिक वाटिका भाग ४, क्या० २ ।

संभवतः सर्वप्रथम आदिम मानव ने, सिंगी (जो भैंसे के सींग का मूलतः होता है यद्यपि यह आज धातु का भी बनने लगा है) । शंख आदि को फूंककर ही ध्वनि निकाली होगी और संभवतः अति प्रारम्भिक काल में आदिम मानव के यही सुषिर वाद्य रहे होंगे ।

मुरज:-

मृदंग के रूप का ही एक वाद्य है । अंतर केवल इतना है कि मुरज का दाहिना मुख बारह अंगुल और बांया अठारह अंगुल तथा लम्बाई एक हाथ होती है । गले में लटकाकर बजाया जाता है । लोक वाद्यों में लोक गीतों को गाते समय मुरज का भी साथ ही प्रयोग होता है । अतः भारतेन्दु युगीन कवियों ने मृदंग के साथ मुरज का अनेक बार उल्लेख किया है[1]।

ढाख:-

ढाख आसाम तथा बंगाल के आदिवासियों के मध्य प्रचलित एक चर्म वाद्य है तथा ढोलक के समान ही इस पर ताल दी जाती है । यह लम्बाई में ढोलक का लगभग तीन गुना तथा व्यास में भी लगभग तीन गुना होता है, ढाख के दोनों ओर ढोलक के समान ही चमड़ा मढ़ा रहता है तथा यह बहुत ही पतली छड़ी द्वारा आदिवासी विचित्र वेशभूषा धारण कर नाच नाचकर इसे बजाते हैं । बुंदेलखण्ड और ब्रज के लाठी और कोली जाति के लोग सर्प का विष उतारने के लिए ढाख बजाया करते हैं[2]। उनका विश्वास है कि लल ताला गाने के साथ ढाखा बजाने से तक्षक नाग का ज़हर उतारा जा सकता है और इस प्रकार इस वाद्य का महत्व लोक चिकित्सा की दृष्टि से विशेष है । रसिक वाटिका में भी ढाख वाद्य का उल्लेख लोक चिकित्सा रूप

१- रुचिर उतंग धुनि चंग मुरचंगन की गति बहुरंग की मृदंगन की न्यारी है- र०वा०भा०३, क्या०९ ।
गावहिं उतंग स्वर गोपी गुवाल रंग रंगी चंग मुरचंग संग बजत सितार है- र०वा०भा०४, क्या०७ ।

२- लोकायनः चिन्तामणि उपाध्याय, पृ० १५-१६ ।

में ही हुआ है[१]।

दण्ड:-

दण्ड भी अति प्राचीन तथा प्रचलित लोक वाद्य है । अनेक लोक नृत्यों में तथा लोकगीतों के साथ यह बजाया जाता है । दो लगभग दो फुट के डंडों को लेकर आपस में बजाकर इससे ताल दी जाती है । प्रताप नारायण मिश्र ने होली के प्रसंग में अन्य लोक वाद्यों के साथ इसका भी उल्लेख किया है[२]।

शहनाई:-

शहनाई भी अति प्रचलित लोक वाद्य है और अनेक लोक गायक अन्य वाद्यों के साथ गीतों में इसे भी बजाते हैं । इस वाद्य का भी भारतेंदु युगीन काव्य में बहुत उल्लेख हुआ है । इस वाद्य में आठ छेद होते हैं । इसका पत्ता ताड़ के पत्ते का होता है । इसकी आवाज तीखी और मीठी होती है। शहनाई का प्रयोग विवाह आदि के अवसर पर होता है । लोक नाटकों में भी इस वाद्य का प्रायः प्रयोग होता है । शहनाई का दूसरा नाम नफीरी भी है[३]। और इस नाम से भारतेन्दु युगीन काव्य में इसका उल्लेख हुआ है[४]।

घंटा:-

घंटा चिर परिचित तथा अति प्रचलित लोक वाद्य है । लोकगीतों के गायन में शंख झालर मृदंग आदि के साथ ही यह भी बजाया जाता है । भारतेन्दुयुगीन काव्य में विभिन्न वाद्यों के साथ इस वाद्य का भी उल्लेख

१- पीरी परि आई काँपि गिरी है अचेत मंहि बोलै नहिं डोलै रोमावलि की छहर है ।
आंसुन बहावै सरसवौं स्वेद अंग अंग बीर नहिं जानै कौन पीर की कहर है।
ललित वृथा ही बंद बांधे साधे जंत्र मंत्र सोर न मचावै प्यार औरई लहर है।
हाब बिना बांसुरी के बजे मैं बताए देति बेतिहै न प्यार कान्ह कारे की लहरि है ।

—र०बा०भाग २, क्या० १० ।

२- प्र०ल०पृ० १३२ । ३-हिंदी शब्दार्थ पारिजात,पृ०४५५ ।

४- र०बा०भाग ४, क्या० ६। भा०१, क्या० ६ ।

मिलता है[1]।

घड़ियाल:-

घड़ियाल घंटा का बृहत रूप है और लोक वाद्यों में इसका भी स्थान महत्वपूर्ण है । भारतेन्दु युगीन काव्य में इसका भी उल्लेख हुआ है[2]।

डौंडी:-

डौंडी भी एक प्रचलित लोक वाद्य है इसको डुगडुगी या ढिंढ़ोरा भी कहते हैं । यह चर्मावनद्ध के अंतर्गत आता है । इसका भी भारतेन्दु युगीन काव्य में अनेकों स्थलों पर उल्लेख हुआ है[3]। जब किसी वस्तु का प्रचार करना होता है । तो इसको बजाकर ही सर्वप्रथम लोगों का ध्यान आकर्षित किया जाता है तब बात कही जाती है ।

दुंदभी:-

दुंदभी लोक वाद्य का प्रयोग भी भारतेन्दु युगीन कवियों ने कई स्थानों पर किया है[4]। इसका प्रयोग लोक वर्ग में उत्साह भरने तथा प्रायः युद्ध सम्बन्धी प्रसंगों में होता है ।

नगाड़ा:-

नगाड़ा अति प्रचलित चर्मावनद्ध लोक वाद्य है और इसका भी भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लेख हुआ है[5]। नगाड़ा आदि वाद्य संभवतः अति प्राचीन लोक वाद्य रहे होंगे । नगाड़ा के समान आनद्ध वाद्यों का प्रयोग केवल भारत में ही नहीं मिलता वरन् विश्व की अनेक आदिम जातियों में भी इसका

१- र०वा०भाग १, क्या०६ ।
२- वही, भाग ३, क्या०६ । वही, भाग ३, क्या० ८ ।
३- वही, भाग ३, क्या० ४ ।
४- वही, भाग ३,क्या० ६ ।
५- वही, भाग ४, क्या० ३ ।

प्रयोग होता है । इसमें यों तो प्रायः एक ही ध्वनि निकलती है किन्तु लोक गायक विभिन्न प्रकार से कभी हल्के हाथ से तो कभी तेज हाथ से बजा-कर इससे विभिन्न ध्वनियाँ निकाल लेते हैं ।

सितार:-

सितार यद्यपि आज शास्त्रीय वाद्य माना जाने लगा है किन्तु इसका प्रयोग लोक जीवन में लोक गीत गायन में आज भी बहुत है । यद्यपि यह सत्य है कि जो स्वर माधुर्य संगीतज्ञ सितार के माध्यम से प्रगट कर लेते हैं, लोक गायक नहीं कर पाता किन्तु फिर भी अन्य वाद्यों के साथ लोक गीत गायन में इसका प्रयोग होता ही है । भारतेन्दु युगीन काव्य में अन्य लोक वाद्यों के साथ इस वाद्य का भी अनेक बार उल्लेख किया गया है[1]।

निष्कर्ष:-

उपर्युक्त भारतेन्दु युगीन काव्य के लोक संगीत की दृष्टि से विवेचन करने पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं -

(१) भारतेन्दु युगीन कवि जातीय तथा लोक संगीत में रचना करने के पक्षपाती थे इसलिए उन्होंने जहां एक ओर लोक छंदों, लोक भाषा में काव्य रचना की, वहीं दूसरी ओर लोक गीतों में भी काव्य सर्जना की ।

(२) भारतेन्दु युगीन कवियों में से अनेक कवि चूंकि संगीत का अच्छा ज्ञान रखते थे इसलिए उन्होंने पदों के ऊपर विभिन्न रागों, तालों तथा गीत प्रकारों के शीर्षक भी दिए ।

(३) कवियों ने कजली, लावनी, होली, कबीर, चैती, पूरबी, बारह-

१- ठनके मृदंग ढठे भनके सितारन की - ठनकै बुरीन धुनि नूपुर की न्यारी है- र०वा० भाग ३, क्या० १० ।

बजत संरगी बहु इसराज सितार- प्रे० सर्व० पृ० ७८ ।

मारा, नकटा, गारी, सेहरा, घोड़ी आदि लोक गीतों की जो आज भी लोक वर्ग में बहुत गाए जाते हैं, रचना के साथ उन अनेक लोक गीत शैलियों में भी रचनाएं कीं, जो पहले तो कभी अपने समय के शुद्ध लोक गीत ही थे, किन्तु बाद में उनकी शैलियों, से, उनकी भावभूमि से, उनकी गति से आकर्षित होकर संगीतज्ञों ने उन्हें अपना लिया और उसमें स्वर विस्तार कर नए नए तालों का प्रयोग कर उनकी माधुर्यता और बढ़ायी थी । और बाद में वे शास्त्रीय संगीत प्रकार माने जाने लगे और लोगों को ध्यान उनकी लौकिकता तथा उनके मूल उत्सक की ओर से हट गया । भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त ठुमरी, ध्रुपद, पद और भजन ऐसी ही लोक संगीत गीत शैलियां है जो पहले शुद्ध लोक गीत थीं और वह लोक वर्ग में होली कजली के समान ही गाई जाती थीं, किन्तु बाद में इन्हें शास्त्रीय संगीत प्रकार मान लियागया। इनका संगीतज्ञ भी बहुत प्रयोग करने लगे ।

(४) भारतेन्दु युगीन कवियों ने पदों के शीर्षक रूप में जिन रागों को रक्खा है, वे राग लोक राग हैं और वे लोक तद्भव राग के अन्तर्गत है । अर्थात् मूलतःयहराग लोक वर्ग की हीहैं । इनका प्रयोग किसी न किसी प्रदेश के लोक गीत में होता है । और लोक गीतों से इनको ग्रहण कर संगीतज्ञों ने इनका शास्त्रीयकरण किया है । इन रागों में अपनी प्रतिभा से संगीतज्ञों ने विविध स्वर विस्तार कर इनका माधुर्य बढ़ाया है । इसप्रकार यह राग यद्यपि लोक वर्ग से शास्त्रीय संगीत में मान्यता प्राप्त कर चुके है किन्तु फिर भी विभिन्न प्रदेश-के लोक गीतों में इनका प्रयोग आज भी देखा जा सकता है । भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त रागों के सम्बन्ध में यह बात भी विशेष महत्व की है कि भारतेन्दु युगीन कवियों ने उन्हीं रागों का अधिक प्रयोग किया जो संगीत शास्त्र ग्रंथों में शुद्ध प्रकृति की कही जाती है । अवधेय है कि शुद्ध प्रकृति के राग शास्त्रीय संगीत में उन्हें ही कहा जाता है जिनका उत्स लोक में है और जो मूलतः लोक राग है ।

(५) रागों के ही समान तालों के भी शीर्षक भारतेन्दु युगीन कवियों ने दिये हैं और ये शीर्षक रूप में दिये गये ताल लोक रागों के ही समान कुछ तो शुद्ध लोक ताल ही हैं जिनका प्रयोग प्रायः लोक गीतों में ही

भी है जो लोक गीतों में प्रयुक्त होते हुये भी शास्त्रीय संगीत में स्थान पा गए हैं जैसे धमार, त्रिताल, एकताल, झपताल आदि । ऐसे ताल शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होने के बाद भी लोक ताल ही कहे जायेंगे । भारतेन्दु युगीन कवियों ने अधिकांशतः उन्हीं तालों का प्रयोग किया है जो लोक ताल है और जिनका प्रयोग लोक गायक गीत गायन में आज भी करता है ।

(६) लोक गीतों में रागों का उतना महत्व नहीं जितना लय और ताल का । यही कारण है कि भारतेन्दु युगीन कवियों ने कजली, होली आदि अनेक लोक गीतों के विभिन्न लयों में गाने का निर्देश भी किया है । प्रतापनारायण मिश्र आदि कवियों ने गीतों के ऊपर किसी लोक गीत की पंक्ति उदाहरणार्थ "कान्हा खेलत फाग जागु उठु देखि ननदिया", "देवी तोरा अच्छा बना चौमहला" आदि देकर पद गाने की विभिन्न लय का निर्देश किया है । प्रेमघन ने भी कजलियों के साथ गृहस्थिनियों, रंडियों, नटिनों, गवैयों, बनारसी, विंध्याचली आदि अनेक लयों का निर्देश किया है जिससे स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु युगीन कवियों की काव्य रचना मुख्यतः लोक सांगीतिक पक्ष को ही ध्यान में रख कर की गई है ।

(७) लोक संगीत में लोक वाद्यों का विशेष महत्व है । लोक गीतों के गायन के साथ अधिकतर लोक वाद्यों का भी प्रयोग होता है । वाद्यों का प्रयोग स्वर आदि को ठीक करने के निमित्त ही किया जाता है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने लोक गीतों में प्रायः सभी लोक जीवन में प्रयुक्त होने वाले लोक वाद्यों का उल्लेख किया है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने उन अनेक लोक वाद्यों जैसे - किंगरी, उपंग, चंग, ढाक का भी उल्लेख किया है जिनका शास्त्रीय संगीत से कोई सम्बन्ध नहीं । भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोक वाद्यों को देखने से यह भली भांति स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु युगीन कवियों को लोक जीवन का कितना व्यापक ज्ञान था ।

(८) इस प्रकार लोक गीत, लोक राग, लोक ताल, लोक लय, लोक वाद्य सभी लोक संगीत के पक्षों की दृष्टि से भारतेन्दु युगीन काव्य पूर्णतः [illegible] है ।

अध्याय ५

भारतेन्दु युगीन काव्य में वर्णित लोक जीवन के विविध पक्ष

(१) लोकोत्सव एवं लोकपर्व

(२) लोकाचार

(३) लोक बैठक

(४) लोक प्रथा

(५) लोक देवी तथा लोक देवता

(६) लोक सज्जा-प्रसाधन

(७) लोकानुरंजन

(८) लोक व्यसन

"भारतेन्दु युगीन काव्य में वर्णित लोक जीवन के विविध पक्ष"

"लोकोत्सव" तथा "लोकपर्व"

उत्सवों, अनुष्ठानों तथा प्रथाओं का लोक जीवन में अति महत्वपूर्ण स्थान है । ये ही लोक जीवन को गति एवं बल देने के कारण और उसके विशिष्ट और विभिन्न विश्वासों के प्रमाण है । उत्सवों अनुष्ठानों तथा प्रथाओं में से लोक जीवन में उत्सवों का महत्व सबसे अधिक है इसलिए लोकानुष्ठानों तथा लोक प्रथाओं पर विचार करने से पूर्व इस पर ही सर्वप्रथम विवेचन अपेक्षित है ।

सामूहिक अनुष्ठान उत्सव का मूल कारण है[1]। आदिम मानव प्रवृत्ति जादू टोने पर विश्वास करने की थी अतएव इन जादूटोने के लिए अति प्राचीन काल में जनता सामूहिक अनुष्ठान करती थी । सामूहिक इसलिए क्योंकि इनसे समस्त जनवर्ग संबंधित थे और इस जादू टोने के कारण हुई हानि या लाभ से समस्त जनवर्ग संबंधित रहता था । इस प्रकार अति प्राचीन काल में अनुष्ठान सामूहिक होते थे । यह सामूहिक अनुष्ठान ही उत्सवों का रूप धारण करते थे । इन जादू और टोनों टोटकों का सम्बन्ध बाद में धर्म से जुड़ा और धर्म की उत्पत्ति हुई और इसी कारण सामूहिक अनुष्ठानों के रूप में किए जाने वाले टोने टोटकों ने जब उत्सवों का रूप धारण किया तो इन उत्सवों का सम्बन्ध धर्म से भी जुड़ा और अधिकांश लोकोत्सवों पर धर्म का आवरण पड़ा और वे धार्मिक लोकोत्सव बन गए । उत्सवों में धर्म तत्व की प्रधानता होने पर उनमें आनुष्ठानिक पक्ष की जटिलता बढ़ी, और इन उत्सवों का समय तथा क्रम अधिक निश्चित हुआ । जहां प्रारम्भिक अवस्था में इन उत्सवों की तिथि और क्रम में अनिश्चितता रहती थी वहां इनमें स्थिरी-

---

1. Festivals derive for the most part from collective ritual-Encyclopaedia of Social Sciences, Vol.VI.p.198.

करण हुआ और लोकोत्सवों में होने वाले प्रधान मनोरंजन तत्व का स्थान गौण हुआ । यही कारण है कि आदिम जातियों के उत्सवों में आज भी धार्मिक उत्सवों की तुलना में समय और क्रम की अधिक अनिश्चित तथा मनोरंजक तथा आनुष्ठानिक तत्व अधिक प्रधान है । इन जंगली जातियों में उत्सवों की कोई तिथियां निश्चित नहीं होतीं, वे सुविधानुसार घटती तथा बढ़ती रहती हैं ।

प्रारंभिक काल में उत्सवों का संबंध कृषि[1] तथा ऋतु परिवर्तन[2] से था । आदिम मानव अपने जीवन के एक मात्र आधार अपने परिश्रम से की हुई कृषि को सफली भूत देखकर प्रसन्नता से थिरक उठता था और अपने आनंद को व्यक्त करने के लिए सामूहिक मनोरंजन के रूप में नृत्य गीतादि का आयोजन करता था । कभी - कभी वह कृषि को और अधिक उन्नत करने तथा आधि-व्याधि कीरक्षाकी लालसा से विविध प्रकार के अनुष्ठान भी किया करता था जो सामूहिक उत्सव का रूप लेते थे । इसी प्रकार ऋतु परिवर्तन से भी लोकोत्सवों का संबंध रहा है । प्रत्येक ऋतु परिवर्तन पर गत ऋतु की कटुता भुलाने तथा प्रत्येक नई सुहावनी ऋतु के आगमन पर प्रसन्न होना मानव की स्वाभाविक वृत्ति है । ऋतु परिवर्तन पर उल्लसित होकर भी मानव सामूहिक मनोरंजन का आयोजन सबकी सुविधा के अनुसार किसी दिन करता था जो उत्सव रूप में मनाया जाता था । इस प्रकार उत्सव ऋतु परिवर्तन का भी सूचक होता था । ऋतु परिवर्तन का संबंध चूंकि कृषि से भी है इसलिए उत्सवों का सम्बन्ध भी ऋतु परिवर्तन तथा कृषि दोनों से ही जुड़ गया और ऋतु परिवर्तन सम्बन्धी उत्सवों का समय फसल के आने के अनुसार निश्चित किया

---

1. "Agricultural operations are associated with a series of ritual festival"- Encyclopaedia of Social Sciences. Vol.VI. p.198.

2. "Most of the festivals celebrate seasonal changes or are held in connexion with pilgrimages to some holy place, the shrine or the river holy thirta"- Encyclopaedia of Religion and Ethics. Vol. V. p.868-869.

जाने लगा[1]। ऋतु परिवर्तन + कृषि संपूर्ण विश्व में यही कारण है कि आज भी अनेक उत्सव ऐसे ही हैं जिनका मूलतः कृषि तथा ऋतु परिवर्तन से ही संबंध था यद्यपि वे आज धार्मिक आवरण बढ़ जाने के कारण बहुत कुछ भिन्न प्रतीत होते हैं। होली, दशहरा, दिवाली आदि उत्सव जो आज हिन्दुओं के प्रमुख त्यौहार हैं उनका सम्बन्ध भी मूलतः कृषि तथा ऋतु परिवर्तन दोनों से ही है। होली के समय जाड़े की जड़ता समाप्त हो जाती है, मानव ठिठुरा देने वाली सर्दी से घबड़ा कर ऐसी ऋतु की कामना करता है जिसमें थोड़ी ऊष्णता हो। कृषि की दृष्टि से इस समय अन्न पककर तैयार हो जाता है और किसानों का एक मात्र धन और साल भर की मेहनत कृषि रूप में लहलहा उठती है। धान्य पक जाता है और किसान निश्चिंत हो जाते हैं जिससे निश्चिंत होकर वे मनोरंजनार्थ होली का त्यौहार मनाते हैं। विजयादशमी के समय सावन की फसल कट चुकी होती है, कृषक के पास धान्य खाने तथा व्यापार के हेतु जमा हो जाता है। दूसरी फसल के बुवाई में अभी देर रहती है। इसलिए सावन की फसल के लिए किसान ईश्वर को धन्यवाद देता है तथा एक फसल के कट जाने के बाद दूसरी फसल की बुवाई में जितनी देर रहती है, उसमें वह आनंद से उत्सव मनाता है। इसी प्रकार दीवाली का संबंध भी मूलतः कृषि तथा ऋतु परिवर्तन से ही था। श्री कण्ठ शास्त्री ने इस सम्बन्ध में अनुशीलन करते हुए निष्कर्ष रूप में ठीक ही कहा है कि -"ऐतिहासिक पर्यालोचन बताता है कि कृषि प्रधान भारत में आज से सहस्रों वर्ष पूर्व इस पर्व का प्रचलन ऋतु पर्व के रूप में हुआ होगा। चूंकि इस समय तक ~~अन्न~~ सारी फसल पककर तैयार हो जाती है, अन्न भंडार धन-धान्य से भर जाते हैं, रूई कपास के आ जाने से लोगों को वर्ष भर के लिए कपड़ों की चिन्ता से छुटकारा मिल जाता था, अतः जनता के हृदय का उल्लास दीपमालिका के रूप में फूट पड़ना स्वाभाविक था[2]।"

---

1. Sometime the incidence of periodic festivals is determined by the rotation of crops, necessarily in early stages of Agriculture as in the instance of the Greek triterica, or three yearly festival- Encyclopaedia of Social Sciences. Vol.VI p.198

२- हमारे पर्व और त्यौहार - श्री कण्ठ शास्त्री- पृ० १० ।

इस प्रकार होली दशहरा तथा दीवाली तीनों ही प्रमुख त्योहारों का संबंध मूलतः कृषि तथा ऋतु परिवर्तन से ही है । भारत में ही नहीं अपितु विश्व के अधिकांश उत्सव प्राचीन काल में ऋतु परिवर्तन तथा कृषि से ही संबंधित थे । यद्यपि आज उनका मूल रूप नष्ट सा हो चुका है और वे बहुत कुछ परिवर्तित रूप में हमारे समक्ष आते हैं ।

इसके अतिरिक्त कुछ उत्सव ऐसे भी हैं जो न तो कृषि से ही संबंधित हैं न ऋतु परिवर्तन से वरन् वे आधिदैविक शक्तियों को प्रभावित करने की दृष्टि से किए गए सामूहिक अनुष्ठानों से संबंधित हैं । नाग-पंचमी एक ऐसा ही पर्व है जिसका संबंध न तो कृषि से है न ऋतु परिवर्तन से है । प्राचीन काल में आदिम मानव नाग, नदियों, पहाड़ों वृक्षों आदि को आधिदैविक शक्तियां समझता था इनसे उसको अपने जीवन की हानि का भय था, कृषि आदि के नष्ट होने का डर था, अतः उसने इन को आधिदैविक शक्तियां मानकर इनकी उपासना प्रारंभ कर दी और पुनः इन शक्तियों को प्रसन्न करने के हेतु नाच गाने का भी आयोजन किया जो बाद में उत्सव का कारण बना ।

इस प्रत्येक लोकोत्सव के मूल में कोई न कोई कारण होता था, चाहे वह ऋतु परिवर्तन से संबंधित हो, चाहे कृषि से या आधिदैविक शक्तियों को वशीभूत करने की इच्छा से या अन्य किसी कारण से । किन्तु आज हम इन लोकोत्सवों के मूल कारणों का पूर्ण ऐतिहासिक विवरणों तथा मनोवैज्ञानिक और नृतात्त्विक शोधों के अभाव में अनुसंधान नहीं कर पाते हैं । इसी कारण आज भी जो उत्सव लोक वर्ग में मनाए जाते हैं उनकी भी ऐतिहासिक परंपरा तथा उनके पीछे जुड़े हुए आदिम मानव मनोविज्ञान का निश्चित तथा पूर्ण रूपेण न तो निर्देश ही कर पाते हैं और नहीं यह बता पाते हैं कि इन लोकोत्सवों के मूल रूप आज भी विश्व की आदिम संस्कृतियों में कहां कहां सुरक्षित है ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने अनेक लोकोत्सवों का तथा इन उत्सवों में किए जाने वाले अनुष्ठानों तथा लोकानुरंजन का वर्णन कर उत्सव का पूर्ण

उत्सवों के लोक तत्व पर विचार किया जाता है । भारतेन्दु युगीन काव्य में निम्नांकित लोकोत्सवों का वर्णन हुआ है ।

नागपंचमी :-

नागपंचमी एक अति प्राचीन सांस्कृतिक लोकोत्सव है । नाग पूजन सर्वप्रथम मानव ने नाग भय के कारण प्रारम्भ किया था । आदिम मानव ने उन सभी जड़ चेतन की उपासना प्रारम्भ की थी जिससे उसे किसी प्रकार की हानि की आशंका होती थी । सर्प से डर होना अत्यन्त स्वाभाविक था । सर्प दंश से क्षण भर में मनुष्य मृत हो सकता था इसलिए उसने सर्प पूजन प्रारम्भ कर दिया । सर्पों की प्रसन्नता के लिए उत्सवों का आयोजन किया । नाग पंचमी पर नाग पूजन अनुष्ठान होने का लोकानुष्ठान होना तथा उत्सव का लोकोत्सव होना इसी से सिद्ध है कि नागपूजन विश्व भर में किसी न किसी रूप में मनाया जाता है तथा इस पूजन के उपलक्ष में उत्सव का आयोजन भी होता है । आदिम संस्कृतियों में आज भी नागपूजन होता है तथा नागपूजन की प्रथा अति प्राचीन है । नाया- धम्म कहाओ में नागोत्सव के लिए प्रयुक्त नागयत्ता (नागयात्रा) स्कंद पुराण के नागर खण्ड में सर्प पूजन से कहे गए माहात्म्य, नारद पुराण में सर्पदंश से बचने के लिए नाग व्रत करने, भविष्य पुराण में उल्लिखित महोबा आदि प्रदेश में कुश्ती, नृत्यगीत आदि के द्वारा होने वाले उत्सव तथा सिंधुघाटी की सभ्यता में प्राप्त ठप्पों पर बनी हुई नागमूर्ति से यह स्पष्ट सिद्ध ही है कि यह नागपूजन प्रथा अति प्राचीन है तथा इस सर्प पूजन पर होने वाले उत्सवों की स्थिति अति प्राचीन ही है । भारत में ही नहीं संपूर्ण विश्व में यह सर्प पूजन तथा इस पूजन पर किए जाने वाले उत्सव आज भी आदिम असभ्य जंगली जातियों तथा शिक्षित जातियों में भी मनाए जाते हैं[1]। सिद्ध है कि नागपंचमी एक अति प्राचीन लोकोत्सव ही है जिसका मूल आदिम मानव की

१- फिल्ड: दी वर्शिप एण्ड आर्कियोलॅाजी ।

भय नामक मूल प्रवृत्ति ही है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में वर्णित इस उत्सव का दो पक्षों में वर्णन है -

(१) अनुष्ठान पक्ष

(२) उत्सव या मनोरंजन पक्ष

अनुष्ठान पक्ष : नागपंचमी के दिन अनुष्ठान के रूप में भारतेन्दु युगीन कवि "प्रेमघन"[१] ने प्रमुख रूप से केवल तीन ही अनुष्ठानों का वर्णन प्रमुख रूप से किया है । पहला नागों का चित्र बनाना[२], दूसरा कुंवारी कन्याओं का स्वनिर्मित गुड़ियाओं का तालाब में सिराना[३] तीसरा स्वयं झूला झूलना तथा भाइयों का झूलना[४]। प्रथम अनुष्ठान सर्प चित्र बनाकर पूजने का कारण तो स्पष्ट ही है । नाग चित्र बनाकर कल्पना की जाती थी कि जैसे स्वयं साक्षात नाग की पूजा हो रही है । यह एक प्रकार का Manifestation था । झूला झूलना तथा भाइयों को झूला झूलाना संभवतः पारस्परिक स्नेह तथा उल्लास का बोधक है किन्तु गुड़ियों के तालाब में सिराने के पीछे क्या आदिम मानव प्रवृत्ति है इसका निश्चित संकेत नहीं किया जा सकता है ।

उत्सव पक्ष: नागपंचमी पर होने वाले उत्सवों का वर्णन कवियों ने विस्तार से किया है । प्रेमघन ने तो नागपंचमी वर्णन में उत्सव पक्ष का ही अति विस्तार पूर्वक वर्णन किया है । प्रेमघन ने उत्सव का वर्णन करते हुए कहा है कि नाग पंचमी पर्व को निकट आया हुआ जानकर ही बहुत से उत्साही जन

१- प्रेमघन सर्वस्व:भाग १-पृ० २४-२५ ।

२- रचि रचि नागा चित्र ब्याहै बालकन बुलावत, पृ० २५ (प्रे०सर्व०)

३- नए बसन आभूषन सजि सुंदरी गुड़िया लै
गावत जिनके संग सुसज्जित सखी समुच्चय ।
चलीं मराल चाल सौं ताल बाय सेरवावैं ।।-पृ० २५ (प्रे०सर्व०)

४- झूलैं झूलन फेरि झुलावैं तिन भ्राता गन - पृ० २५ ।(प्रे०सर्व०)

नए नए दांव पेंच आदि सीखते हैं, दंगल जीतने के लिए वे विविध व्यायाम आदि करके शारीरिक बल बढ़ाने की चेष्टा करते हैं, इसी प्रकार चटकी हांड आदि के विविध दांव पेंच सीखते हैं, जिससे नागपंचमी के दिन होने वाले कलाओं के निर्णय में वे विशेष स्थान पा सकें। यह उत्सव बड़े बड़े उत्सवों के समान होता है। एक हफ्ते दो हफ्ते पहले ही घरों में झूले पड़ जाते हैं युवतियां और स्त्रियां झूलकर गाना प्रारम्भ कर देती है। लड़कियां गुड़ियां बनाती है और नागपंचमी के दिन शृंगार करके वे तालाब में सिराने जाती हैं। घर आकर घुघनी चनामिठाई आदि बांटती हैं तथा स्वयं खाती है। इस प्रकार नागपंचमी के उत्सव में भी होली के समान ही खेल,कूद ,कसरत मनोरंजन आदि होते हैं। प्रेमघन ने इस उत्सव पर पुरुषों द्वारा गाए जाने वाले सावन मलार तथा स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले कजरी सावन लोक गीतों[1] का भी उल्लेख कर नागपंचमी का एक पूर्ण लोक रूप प्रस्तुत किया है।

पितरपक्ष:-

पितरों अर्थात् मृत पुरुषों की स्मृति में मनाया जाने वाला पितरपक्ष भी एक लोक पर्व है। आज भी अधिकांश विश्व के देशों में मृतकों के प्रति कहीं वार्षिक रूप में कहीं मासिक या पाक्षिक रूप में श्रद्धा निवेदित की जाती है। आदिवासियों में तो यह प्रथा अति व्यापक रूप में प्रचलित है। ब्रह्मा की कारेन जाति के लोग मृतकों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हैं। मैक्सिको घाटी के आदिवासी प्रतिवर्ष नवम्बर माह में श्राद्ध करते हैं और अपने मृत पूर्वजों की समाधि पर पुष्प अर्पित करते हैं। नागा जाति के लोग मासिक श्राद्ध करते हैं। पेरू के निवासी प्रतिवर्ष नियततिथि पर शव को स्थापित कर उत्सव मनाते हैं। मिस्र में ऋतु परिवर्तन के अवसर पर तीन बार वर्ष में श्राद्ध किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि शायद इसपर्व का संबंध भी प्रारम्भ में ऋतु परिवर्तन से रहा हो। ऋतु परिवर्तन से श्राद्ध का संबंध होना अति स्वाभाविक ही है। ऋतु परिवर्तन का समय ऋतु की दृष्टि से सर्व

१- प्रेमघन सर्वस्व: भाग १: पृ० २५।

सुन्दर समय होता है । मानव एक ऋतु की जड़ता, उष्णता, या अतिवृष्टि से संतप्त होकर नई ऋतु का स्वागत करता है और उसके स्वागत में हर्ष और उल्लास मनाता है । ऐसे हर्षोल्लास के अवसर पर अपने पूर्वजों की स्मृति आना तथा उनके प्रति श्रद्धा निवेदन करना अति स्वाभाविक बात है । इस प्रकार पितरों के प्रति श्रद्धा निवेदन अति प्राचीन है और मानव की सहजात प्रवृत्ति से सम्बंधित है । यह मानव की सहजात प्रवृत्ति आज भी अति-विकसित नागरिक शिक्षित संस्कृति में भी अवशेष के रूप (Survivals) के रूप में पितर पक्ष के अवसर पर सुरक्षित मिलती है ।

भारत में आज भी पितरपक्ष का विशेष महत्व है और भारत-वासी क्वार माह के कृष्ण पक्ष में पन्द्रह दिन तक अपने मृतकों के प्रति श्रद्धा निवेदन करते हैं । प्रारम्भ में यह निश्चित ही लोक पर्व रहा होगा किन्तु बाद में इसका सम्बन्ध धर्म से भी जुड़ा और श्राद्ध तर्पण आदि के विशेष नियम आदि बना दिए गए । प्रारम्भ में इसका सम्बन्ध केवल विशिष्ट अवसर पर पितरों की स्मृति तथा उसके सम्बन्ध में उत्सव के आयोजन से ही था ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने विस्तार से पितरपक्ष का उल्लेख किया है । कहीं कवियों ने पितर देव के मनाए जाने का उल्लेख किया है[1] तो कहीं कवियों ने बताया है कि किस प्रकार आश्विन मास में पितरपक्ष को निकट आया जानकर ब्राह्मण गण आनंदित होते है और वे ब्राह्मण गण पितरपक्ष का उसी प्रकार ध्यान करते हैं जिस प्रकार चकोर चंद को देखा करता है[2]। चौधरी बदरी नारायण उपाध्याय "प्रेमघन" ने पितरपक्ष पर होने वाले कार्यों का उल्लेख करते हुए बताया है कि जहां पहले यह पर्व

१- प्रेमघन सर्वस्व: भाग १- पृ०९७(अलौकिक लीला, पंचमसर्ग-लागे जुहारन नंद कहं सब देव पितर मनाय कै" ।

२- "पितृपक्ष को जानि कै ब्राह्मन मन सानंद ।
निरखहिं आश्विन मास सब ज्यों चकोर गन चंद"-भारतेन्दु ग्रंथावली-पृ० ६९०, बकरी विलाप ।

पूर्वजों के प्रति श्रद्धा निवेदन मात्र करता था वहां आज ब्राह्मण लोगों ने किस प्रकार लोगों को ठग-ठग कर इसका महत्व घटाया है और वे किस प्रकार बिना ज्ञान के श्राद्ध तर्पण आदि कराके यजमानों से रुपया ठगते हैं और इस प्रकार प्रेमघन ने तत्कालीन पितरपक्ष पर किए जाने वाले कार्यों का वर्णन कर इसका लोक परक रूप प्रकट किया है । प्रेमघन ने "पितर प्रलाप" नामक पूरे स्फुट काव्य में वर्तमान स्थिति पर क्षोभ प्रकट किया है[1] । पितरपक्ष के दिन पितरों की पूजा करने से लोक विश्वास है कि पितृगण प्रसन्न होते हैं । घर में सुख शांति है और वे पितृगण भी प्रसन्न रहते हैं । प्रेमघन ने इस विश्वास को बड़े सुन्दर ढंग से निम्न रूप में कहा है- कि" पितृगण पितरपक्ष के अवसर पर यथोचित आदर सत्कार न पाकर विलाप कर रहे हैं और कह रहे हैं कि यहां रहना अब ठीक नहीं है इस स्थान को जल्दी ही छोड़ देना चाहिए । अब कलयुग आ गया है और हम इन अपने परिवार वालों को शाप क्या दें यह जैसा कर रहे हैं वैसा भोगेंगे । इनकी यह कुचाल देखकर इन्हें आशीष क्या दी जाए । ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह इन्हें अच्छी बुद्धि दे[2]। श्राद्ध, तर्पण का भी प्रेमघन ने अनेक बार उल्लेख किया है । इस प्रकार प्रेमघन ने पितरपक्ष पर किए जाने वाले श्राद्ध तर्पण आदि अनुष्ठानों का, तथा इस पर्व पर ब्राह्मणों की ठगविद्या का तथा इस पर्व मे निहित लोक विश्वास का वर्णन कर पितरपक्ष का एक पूर्ण लोक तत्व परक रूप हमारे सामने रखा है ।

होली-

होली ऋतु परिवर्तन रूप में मनाया जाने वाला अति प्राचीन तथा विश्वव्यापी लोकोत्सव है । इस उत्सव का संबंध ऋतु परिवर्तन के साथ

१- प्रेमघनसर्वस्व भाग १, पृ० १५१-१६३ पितर प्रलाप ।
२- प्रेमघन सर्वस्व, भाग १, पृ० १६३, पितरप्रलाप नवीन संस्करण ।

"चलहु चलहु भागहु तुरत, नहिं यां ठहरन जोग ।
भयो प्रबल भारत अटल, अब कलजुग को भोग ।
देहिं कहा निज बंश को, हाय और हम शाप ।
जस कछुये करिहैं अवसि, फलहु भोगिहैं आप ।।
देत बनै न कुचाल लखि, इनको कछु आसीस ।

साथ कृषि[1] ~~के~~ भी है । ऋतु की दृष्टि से होली के समय जाड़े की जड़ता समाप्त हो जाती है और व्यक्ति उष्णता की कामना से नई ऋतु का स्वागत करता है । और नई ऋतु आने पर उल्लास में उत्सव का आयोजन करता है । कृषि दृष्टि से भी उसका महत्व विशिष्ट है । इस समय खेतों का अन्न पककर तैयार हो जाता है और किसानों की साल भर की मेहनत सफल हो उठती है और पर्याप्त धान्य हो जाने से वह निश्चिंतता का अनुभव करता है ऐसी स्थिति में किसानों का उल्लसित होकर आयोजन में सम्मलित होना तथा उत्सव मनाना स्वाभाविक ही है । मूल रूप से होली किसानों का ही उत्सव है । होली के लिए इसीलिए कहा जाता है कि ऋतु उत्सव के साथ ही साथ कृषि उत्सव भी है । होली के लिए प्रयुक्त फाग शब्द भी यह सूचित करता है कि यह ऋतु उत्सव भी है । होली भारत में ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में किसी न किसी समय तथा किसी न किसी रूप में मनाई जाती है । और इस अवसर पर किए जाने वाले कार्यकलाप समस्त विश्व में एक से हैं । होली के अवसर पर गाली बकना, अपशब्द करना, ~~विभि~~ विभिन्न यौन चेष्टाएं केवल भारत में ही नहीं की जाती हैं वरन् विश्व भर में होली पर ऐसी ही क्रियाएं की जाती हैं । मनोवैज्ञानिकों ने संपूर्ण विश्व में इस अवसर पर की जाने वाली यौन चेष्टाओं से भी यह सिद्ध किया है कि यह मूलतः ऋतु परिवर्तन संबंधी लोकोत्सव है ।

अग्नुत्सव के रूप में मनाई जाने वाली होली का इतिहास भी बहुत प्राचीन है । कहीं होली का हौलिकोत्सव रूप में उल्लेख हुआ है तो कहीं बसंतोत्सव रूप में । कालिदास ने इसे बसंतोत्सव तथा ऋत्युत्सव दोनों नामों से उल्लेख किया है । यूरोप में ईसाई मत के प्रचार के पूर्व ही इस प्रकार का अग्नुत्सव होता था जिसमें निम्न श्रेणी के लोग भाग लेते थे । भारत में भी इसे शूद्रों का उत्सव ही कहा जाता है ।

1- लोक वार्ता

सिद्ध है कि यह लोकोत्सव था और इसे सामान्यवर्ग अति प्राचीनकाल से बड़े उल्लास के साथ मनाकर बसंत ऋतु का स्वागत करता था । दूसरी शताब्दी के लगभग इस उत्सवों को धार्मिक मान्यता मिली । श्री मन्मथराय का कथन है कि "दूसरी शताब्दी के लगभग संकलित जैमिनी के मीमांसा दर्शन में होलिकाधिकरण नाम का एक अध्याय जोड़कर इस विशुद्ध लौकिक त्योहार का हिंदूकरण हुआ । साथ ही यह विधान बना दिया गया कि ऐसी रीति नीतियां जिनको वेद में मान्यता नहीं मिली । उन्हें भी होलिकाधिकरण न्याय मूलक सिद्ध नियम द्वारा मान्यता दी गई । इस प्रकार इसके नियम के अनुसार बहुत से अवैदिक और आर्येतर रीति रिवाज़ और त्योहारों का हिंदूकरण हुआ"[1] ।

भारतेंदु युगीन कवियों ने अन्य लोकोत्सवों की तुलना में इस उत्सव पर ही सबसे विस्तार से लिखा है । अनेक कवियों ने तो इस उत्सव पर ही छोटे छोटे स्फुट काव्य तक लिख डाले हैं । भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने "होली"[2] तथा "मधुमुकुल"[3] तथा प्रताप नारायण मिश्र ने "होली"[4] आदि स्फुट काव्य ही स्वतंत्र रूप में इस उत्सव पर लिख डाले हैं । बदरी नारायण चौधरी उपाध्याय "प्रेमघन"[5] ने भी होली पर बहुत लिखा है । प्रेमघन तथा प्रताप नारायण मिश्र तथा भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने तो होली पर गाए जाने वाले लोक गीत तथा लोक शैलियों में कविताएं भी लिखी है । प्रेमघन और प्रताप नारायण मिश्र ने होली को मुख्य लोकगीत "कबीर" आदि भी लिखे हैं[6] । भारतेंदु युगीन कवियों का

१- हमारे प्राचीन लोकोत्सव: मन्मथराय ।
२- भारतेंदु ग्रंथावली: भाग २, भारतेंदु हरिश्चन्द्र- होली, पृ० ३६१-३८७ ।
३- वही वही वही मधुमुकुल-पृ० ३९३-४३२ ।
४- प्रतापलहरी: प्रताप नारायण मिश्र: होली पृ० १३१-१४५ ।
५- प्रेमघन सर्वस्व: प्रेमघन भाग १, पृ० ३४-३८,४५,४१८,४५९,६०७-६२६ ।
६- प्रेमघन सर्वस्व भाग १-पृ० ६४१ ।

होलिकोत्सव वर्णन पूर्णतया एक लोक रूप हमारे सामने उपस्थित करता है । प्रेमघन ने होलिकोत्सव का वर्णन करते हुए लिखा है कि फागुन के समीप आते ही रंग बदल जाता है, कहीं भंग घुटने लगती है तो कहीं रंग छनने लगता है कहीं पिचकारियां रंग बरसा बरसा कर एक दूसरे को भिगोने लगती हैं, तो कहीं अबीर और गुलाल का जोर रहता है । कहीं पुरुष ढोल भांझ, डफ, मंजिरा करताल आदि बजाकर धमार और चौताल गाते हैं तो कहीं स्त्रियां ढोल और मंजीरे के साथ फाग गा रही होती हैं । ज्यों ज्यों होली का दिन निकट आता जाता है लोगों में उत्साह बढ़ता जाता है । गांव के बाहर जहां भी युवतियां दिखाई पड़ती हैं वहां कबीर की अरराहट सुनाई पड़ती है । संध्या और रात्रि के समय होलिका जलाने के लिए बालकों का गुट्ट में हो हो कर जाना, बेरहून के कांटे, छप्पर, टाट आदि की चोरी तथा लूट पाट, लोगों का मनाकरना तथा होलिका की जलती हुई अग्नि में पड़ जाने पर किसी प्रकार का शोक प्रगट न करना आदि का प्रेमघन ने बड़े सुन्दर रूप में वर्णन किया है । होली पर लोगों के उत्साह का भी प्रेमघन ने विस्तार से उल्लेख किया है । होली की रात को होली का जलना, प्रापत समय सबका मिलकर धूल उड़ाना, बहु स्वांग भरना तथा अनेक प्रकार की यौन चेष्टाएं करना भी वर्णित है । केवल होली का वर्णन करके ही नहीं किन्तु जैसा हम कह चुके हैं भारतेंदु युगीन कवियों ने होली पर गाए जाने वाले लोक गीतों को भी लिखकर होली के प्रति तथा लोक शैली के प्रति अनुराग दिखाया है और होली का एक लोक रूप उपस्थित किया है । चूंकि होली शृंगार रस का त्योहार है और शृंगार रस के अधिष्ठाता कृष्ण और राधा हैं, इसलिए होली का संबंध कृष्ण और राधा तथा गोपियों के होली खेलने को लेकर अनेक पद रचे हैं । भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने तो कृष्ण के बड़े होने की उपमा भी होली के खंभ से ही दी है[1] । इस प्रकार होली पूर्णतया लोकोत्सव रूप में चित्रित है ।

१- "बा मारग कोउ जान न पावत होरी को खंभ सो हूवै को गढ़ोरी"
भा० ग्रं० पृ० ३६१ ।

दशहरा-

दशहरा या विजयादशमी आश्विन शुक्ल दशमी को मनाया जाने वाला भारत का एक अति प्राचीन सांस्कृतिक लोकोत्सव है । इस उत्सव का संबंध मुख्यतः कृषि से है । प्रारंभ में यह कृषि उत्सव ही था । कृषि की दृष्टि से इस समय सावन की फ़सल कट चुकी होती है तथा कृषकों के पास अन्न खाने तथा व्यापार के लिए जमा हो जाता है । दूसरी फ़सल की बुवाई में अभी देर रहती है । इसलिए एक फ़सल की कटाई के बाद दूसरी फ़सल की बुवाई में जितनी देर रहती है उसमें वह आनंद से उत्सव मनाता है । मूलतः वह शुद्ध लोकोत्सव था, बाद में इसका भी होली के समान ही धार्मिकीकरण हुआ और यह धार्मिक उत्सव भी बन गया । इस उत्सव के पीछे लोक विश्वास है कि आश्विन शुक्ल दशमी को राम ने रावण पर विजय पाई और राम की इस विजय के उपलक्ष में ही जनता विजयादशमी उत्सव मनाती है । ज्ञातव्य है कि यह लोक विश्वास इस पर्व के साथ तभी जुड़ा होगा जब इस लोकोत्सव का धार्मिकीकरण हुआ । पहले तो यह केवल ऋतु परिवर्तन तथा कृषि से ही संबंधित था । विजया-दशमी में अनुष्ठान पक्ष उत्सव पक्ष की अपेक्षा गौण है । अनुष्ठान के नाम पर प्रातः काल घरों में थोड़ी पूजा होती है । क्षत्रीय इस अवसर पर अपने शस्त्रों की पूजा करते हैं । यह पूजा केवल दशमी के दिन प्रातः काल ही होती है, शेष दस दिन केवल उत्सव का तथा खेल कूद का ही आयोजन का होता है । संध्या समय दशमी के कई दिन पूर्व से ही रामलीला प्रारंभ हो जाती है जिसमें राम का चरित्र जनसाधारण के सामने अभिनय रूप में प्रस्तुत किया जाता है । दशमी के दिन रावण का राम द्वारा वध दिखाकर रामलीला समाप्त हो जाती है ।

भारतेंदु युगीन कवियों ने दशहरे पर होने वाले अनुष्ठान पक्ष का वर्णन कर केवल उत्सव पक्ष का ही वर्णन विस्तार से किया है । प्रेमघन ने "जीर्ण जनपद"[1] में विजयादशमी के अवसर पर होने वाले उत्सव में झाँकी रूप में "दल" के साथ निकलने वाली चौकियों का, तथा किस प्रकार लोग

1- प्रेमघन सर्वस्व भाग 1, पृ० 12-13 ।

लोग विविध शृंगार कर हाथी घोड़ों पर चढ़कर पताका लिए हुए और उड़ाते हुए जाते हैं आतशबाज़ी की धूम कैसी रहती है तथा किस प्रकार इस उत्सव को देखने के लिए शहर भर की भीड़ उमड़ पड़ती है इसका स्वाभाविक चित्रण किया है । रावण बध तथा बध होने से जन वर्ग कितना उल्लसित हो उठता है आदि का लोक रूप प्रस्तुत किया है । विजयादशमी पर होने वाली रामलीला का तो प्रेमघन[१] भारतेंदु हरिश्चन्द्र आदि अनेक कवियों ने उल्लेख किया है । भारतेंदु हरिश्चन्द्र[२] ने तो राम-लीला का विस्तृत वर्णन करते हुए बालकांड तथा अयोध्याकांड की राम-लीला का वर्णन किया है जिसमें मुख्य रूप से रामजन्म, बाललीला, मुण्डन कर्णवेध, जनेऊ, शिकार खेलना लक्ष्मण सहित जनकपुर देखने जाना, फुलवारी लीला में युवतियों का मुग्ध होना, धनुष भंग, जानकी जयमाल तथा जानकी विवाह के प्रसंग उल्लिखित हैं । भरत मिलाप का वर्णन भी प्रेमघन ने किया है । विजयादशमी उत्सव का भारतेंदु युगीन कवियों ने प्रेमघन के अतिरिक्त विस्तार से चित्रण नहीं किया ।

दिवाली-

दीपावली या दिवाली कार्तिक अमावस्या को दीप जलाकर मनाया जाने वाला अतिप्राचीन लोकोत्सव है । मूलतः इसका संबंध ऋतु परिवर्तन तथा कृषि से है । बाद में इस लोकोत्सव का धार्मिकीकरण हुआ और यह हिंदुओं का धार्मिक उत्सव बन गया और धार्मिक उत्सव का रूप लेने के उपरांत इस उत्सव के पीछे राम के राज्यतिलक की कथा जोड़ी गई । वात्सायन के काम सूत्र में भी इस उत्सव का उल्लेख न मिलना यही सूचित करता है कि वात्सायन के समय तक इस उत्सव को शिष्ट जनों की मान्यता नहीं मिल सकी थी और यह पूर्ण लोकोत्सव था । वात्सायन के बाद ही इस उत्सव को धार्मिक मान्यता मिली थी और इस उत्सव के साथ अनेक ऐतिहासिक घटनाओं तथा पौराणिक आख्यानों का मिश्रण

१- प्रेमघन सर्वस्व, भाग १, पृ० २८ ।
२- भारतेंदु ग्रंथावली, पृ० ७७७-७८० ।

होता गया । श्री कष्ठ शास्त्री[1] ने भी निष्कर्ष देते हुए इस पर्व के संबंध में लिखा है कि कृषि प्रधान भारत में इस उत्सव का प्रचलन ऋतुपर्व के रूप में हुआ होगा । क्योंकि इस समय तक शारदी फ़सल पक कर तैयार हो जाती है और अन्न भंडार धान्य पूर्ण हो जाता है जिससे किसानों की चिंता समाप्त हो जाती है और वे निश्चिंत हो जाते हैं । ऐसी निश्चिंतता के समय दीवाली उत्सव मनना तथा आनंद प्रगट करने के लिए दीप जलाकर उल्लास मनाना स्वाभाविक ही है । श्री मन्मथ राय[2] ने भी दीवाली के मूल उद्गम पर निष्कर्ष देते हुए यही लिखा है कि दीपावली का आधार मूलतः पूर्णतः लौकिक था और यह ऋतुपरिवर्तन संबंधित था । उपरोक्त विवेचन से सिद्ध है कि दिवाली पूर्णतः लोकोत्सव ही है ।

भारतेंदु युगीन कवियों ने दीपावली लोकोत्सव का वर्णन किया है किंतु विवेच्य काल के कवियों ने दीपावली में किए जाने वाले पूजनादि अनुष्ठानों का वर्णन कर प्रायः जमुना तट पर,[3] पर्वतों पर[4] संध्या समय[5] अन्य स्थानों पर की गई दीपों की सजावट तथा शोभा मात्र का वर्णन किया है । भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने ब्रज की दीपावली का वर्णन विशेष रूप से किया है । दीवाली के अवसर पर पांसा खेलने की अति प्रचलित प्रथा है । भारतेंदु[6] प्रेमघन आदि सभी कवियों ने इसका वर्णन किया है । प्रेमघन ने कृष्ण तथा राधा के दीवाली पर जुआ खेलने का तथा शृंगारिक चेष्टाएं करने का विस्तृत विवरण किया है[7] । एक पद में प्रेमघन ने दीपावली के दिन नर और नारियों के घर सजाने, शृंगार करने, मित्रों के साथ मिलजुल कर जुएं के नशे में होने, तथा बाजार आदि में भीड़ होने

१- हमारे पर्व और त्योहार- श्री कण्ठशास्त्री पृ० ९०
२- हमारे प्राचीन लोकोत्सव, मन्मथ राय ।
३- भारतेंदु ग्रंथावली: पृ० ८२-८३ छंद १४,१५,१९ ।
४- वही, पृ० ८२, छं० १३ ।
५- पांसा खेलत हंसत हंसावत जानि बूझि पिय अपुनि हरावत-भा० ग्रं० पृ० ८६१ ।
६- प्रे० सर्व० पृ० ४५४-४५५ छं० १५३,१५४,१५५ ।
७- वही, पृ० ४५५, छं० १५६

तथा बालकों के खिलौने, लड्डू आदि मोल लेकर प्रसन्न होने तथा याचकों के त्योहारी मांगने का उल्लेख किया है । इस प्रकार दीपावली का भी वर्णन प्रेमघन भारतेंदु आदि कवियों ने लोक प्रचलित रूप में किया है ।

बसंतपंचमी -

बसंतपंचमी भी माघ शुक्ल पंचमी को मनाया जाने वाला ऋतु परिवर्तन संबंधी अति प्राचीन लोकोत्सव है । मुख्य रूप से यह उत्सव ऋतुराज बसंत के आगमन स्वरूप मनाया जाता है । ऋतुओं की दृष्टि से बसंत ऋतु सबसे सुन्दर तथा महत्वपूर्ण है, इसलिए साधारण जनवर्ग अति प्राचीन काल से हर्ष और उल्लास के साथ बसंत का स्वागत करता रहा है । ब्राह्मण वर्ग में इस पर्व का विशेष महत्व है । सरस्वती पूजन भी इस दिन होता है । इस दिन से ही लोग होली की प्रतीक्षा करने लगते हैं तथा धमार चौताल आदि गाना प्रारंभ कर देते हैं । होली जलाने के लिए इस दिन से ही लकड़ी इकट्ठा करना शुरू कर दी जाती है । यह प्राचीन लोकोत्सव है । श्री हर्षकृत रत्नावली में भी इस उत्सव का उल्लेख है । बसंत पंचमी को श्री पंचमी तथा मदनोत्सव और बसंतोत्सव तीनों ही नामों से अभिहित किया जाता है ।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने श्री पंचमी और बसंत पंचमी के नाम से इस उत्सव का वर्णन किया है । भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने राधा और गोपियों के कृष्ण के साथ क्रीड़ा रूप में श्री पंचमी का उल्लेख किया है । अबीर केसर रंग आदि फेंकने तथा गाली देने, ताली बजाकर हो हो करने आदि लोक कृत्यों का उल्लेख किया है । अवश्य है कि भारतेंदु युगीन कवियों ने इस उत्सव का विस्तृत वर्णन नहीं किया है और होली तथा बसंतपंचमी को बहुत कुछ मिला सा दिया है ।

१- भारतेंदु ग्रंथावली, श्रीपंचमी पृ० ७१२ ।

२- वही, पृ० ८१८ छं० १४,१५ ।

अक्षय तृतीया:-

यह भी एक एक लोक पर्व है । यह वैशाख शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है । लोक विश्वास है कि इस दिन किए गए दानादि, परोपकारादि पुण्य अक्षय रहते हैं, नष्ट नहीं होते हैं इसलिए इसे अक्षय तृतीया कहते है । दानादि का महत्व इस दिन विशेष है । मुख्य रूप से स्त्रियां इस दिन सत्तू दान दिया करती है । बुंदेलखण्ड में यह उत्सव अखती नाम से मनाया जाता है । बुंदेलखण्ड में इस दिन स्त्रियां वट वृक्ष की पूजा करती इस अवसर पर स्त्रियां अखती के गीत भी गाती है[1]। श्री कृष्णानंद जी गुप्त का मत है कि अक्षय तृतीया मुख्यतः कृषि एवं वृक्ष पूजा का त्यौहार है । बाद में अन्य कार्यों के लिए भी यह शुभ दिन बन गया । इस दिन लोक में पतंग उड़ाने की प्रथा भी अति व्यापक है । कृष्णानंद जी का मत है कि पतंग उड़ाना कोरिया, चीन, जापान, मलाया आदि सभी जगह प्रचलित है । चीन के वर्ष के नवें महीने में नवें दिन पतंग उड़ाने की प्रथा है न्यूजीलैण्ड में पतंग उड़ाना एक धार्मिक अनुष्ठान है अतः इस पतंग उड़ाने के अनुष्ठान का मूलतः आदिम जातियों के किसी धार्मिक विश्वास से सम्बन्ध है[2]। इस प्रकार अन्ततः यह तो निश्चित ही है कि यह मूलतः लोकोत्सव था जो आज भी शिक्षित वर्ग तथा ग्रामीण वर्गों में अवशिष्ट है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने वैशाख माहात्म्य में इस पर्व का विशेष रूप से उल्लेख किया है[3]। और साथ ही साथ इस पर्व के साथ लगे हुए लोक विश्वास का भी विस्तृत उल्लेख किया है । हरिश्चन्द्र लिखते हैं कि इस दिन गंगा स्नान से समस्त पाप छूटते हैं, जब दान, अन्न और जल दान, सत्तू, दही

१- देखिए लोक वार्ता पृ० ५०-५२ ।

२- वही, पृ० ५२ ।

३- भारतेन्दु ग्रंथावली : श्री पंचमी पृ० ९१-९४ ।

भात तथा ग्रीष्म ऋतु में खाए जाने वाले पदार्थों का ब्राह्मणों को दान देने से समस्त सांसारिक रोगों से छुटकारा हो जाता है । तिल फल और जल सहित आदि इस दिन पितरों को पिण्ड दान करने से वे सब इन दानों से तृप्त होते हैं । सत्तू के दान का इस दिन विशेष महत्व है[1]। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस लोक विश्वास को भी दुहराया है कि इस दिन किए गए दान अक्षय रहते हैं इसलिए इसे अक्षय तृतीया कहते हैं[2] । अवधेय है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस दिन के माहात्म्य तथा अनुष्ठानादि पर ही विशेष लिखा है । इसके उत्सव पक्ष पर कुछ भी नहीं कहा । अन्य भारतेन्दु युगीन कवियों ने भी इसके विषय में कुछ नहीं कहा ।

रथयात्रा महोत्सव:-

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को मनाया जाने वाला यह एक धार्मिक लोकोत्सव है । इस दिन सुभद्रा सहित कृष्ण की रथसवारी निकलती है । यों तो संपूर्ण भारत में यह उत्सव मनाया जाता है किन्तु मुख्य रूप से यह उत्सव जगन्नाथ पुरी का है । जगन्नाथपुरी उड़ीसा में यह उत्सव आज भी बड़े धूम धाम से मनाया जाता है । इस रथयात्रा महोत्सव के पीछे हिन्दुओं का विश्वास है कि कंस के अक्रूर द्वारा बुलावा भेजने पर जब कृष्ण और बलराम अक्रूर के साथ वृन्दावन को सूना छोड़कर मथुरापुरी चले गए तभी से उस घटना की स्मृति में रथयात्रा महोत्सव मनाने की रीति चल पड़ी । कालान्तर में और देवताओं को सेवा में भी रथयात्रा महोत्सव मनाया जाने लगा और शिव सूर्य आदि सभी का रथयात्रा महोत्सव मनाया जाने लगा । किन्तु आज भी जितनी धूमधाम से यह उत्सव जगन्नाथ जी उड़ीसा में मनाया जाता है और कहीं नहीं । यह सिद्ध करता है कि इस उत्सव का मूल सम्बन्ध जगन्नाथ जी की

१- भारतेन्दु ग्रंथावली: होहि मनोरथ पूर्ण सब या सतुआ के दान:पृ०९२,छं०३९।

२- सुकृत जौन यामे करै सो सब अक्षय होय ।
तासों अक्षय तीज यह नाम कहै सब कोय ।।
भारतेन्दु ग्रंथावली: पृ० ९३ ।

ही रथयात्रा से रहा होगा । इस महोत्सव की ऐतिहासिक भूमिका कितनी पुरानी है तथा यह प्रथा किस प्रकार चल पड़ी इसका आज तक अनुसंधान सिद्ध नहीं हो सका । फिर भी जनवर्ग में मनाये जाने के कारण यह तो सिद्ध ही है कि यह लोकोत्सव है यद्यपि पूर्ण नहीं । यह धार्मिक लोकोत्सव की कोटि में आएगा ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने रथयात्रा महोत्सव का वर्णन किया है[1] किन्तु यह रथयात्रा महोत्सव जगन्नाथ जी की रथयात्रा से सम्बन्धित न होकर कृष्ण की रथयात्रा से सम्बन्धित है[2]। श्रीकृष्ण के रथ में घोड़े जुते हैं, ध्वजा फहरा रही है । ध्वजा पर चक्र बना हुआ है उसमें हनुमान का चित्र है और अन्य प्रकार के विविध शृंगार किए गए है । इस रथयात्रा को देखने के लिए उत्सुक नारियाँ बारजे पर खड़ी हुई प्रतीक्षा कर रही है और सोचती है कि इस मार्ग से अभी रथ आएगा । कोई स्त्री खिड़की पर, कोई छज्जे पर तथा कोई दरवाजे पर रथ देखने की प्रतीक्षा में खड़ी है और सब स्त्रियां कह रही है यह रथ आया वह रथ आया । स्त्रियां सोने की थाली में भेंट लेकर आई है, आरती कर रही है[3]। इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने रथयात्रा का बिल्कुल एक रूप उपस्थित कर दिया है ।

गोबर्द्धन महोत्सव:-

यह उत्सव कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को मनाया जाता है । इस पर्व को गोवर्द्धन, गोबरधन तथा गोधन तीनों ही नाम दिए जाते हैं । किन्तु अन्ततः यह तो निश्चित ही है कि इसका सम्बन्ध मुख्यतः गौ से ही था चाहे यह गोबर रूपी धन की महत्ता सिद्ध करने के लिए होता या ~~कहते कि~~ या गायों

१- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ७२, ४४७, ४६८ ।

२- वही, पृ० ४४७ ।

३- वही, पृ० ७२ ।

को धन रूप में मानने के कारण । प्रतीत होता है कि यह उत्सव मुख्यतः आरम्भ में अहीर जाति का ही उत्सव रहा होगा[1] और बाद में इस पर्व को धार्मिक पृष्ठभूमि मिली होगी । प्राचीन काल में भारत में गौओं का महत्व विशेष था[2] और परिवार या वंश की समृद्धि भी गौओं की अधिकता से ही मानी जाती थी।इसलिए गायों के सम्बन्ध में उत्सव मनाना अति स्वाभाविक बात है । क्रुक[3] के विवेचन से भी यही विदित होता है कि यह अहीरों से संबंधित तथा पशु सम्बन्धी उत्सव था । गोवर्धन उत्सव का सम्बन्ध बाद में गोवर्धन पर्वत से भी जुड़ा । उसका कारण संभवतः यही रहा होगा कि एक विशिष्ट पर्वत के आस पास के प्रदेश में गौओं की सबसे अधिकता रही होगी, गोवर्धन उत्सव उस पर्वत के समीपस्थ स्थान में ही मनाया जाता रहा होगा और इसीलिए बाद में उस गोवर्धन उत्सव का सम्बन्ध उस पर्वत विशेष से जोड़ दिया गया और यह पर्वत गोवर्धन पर्वत नाम से संबोधित किया जाने लगा और इस पर्वत के विषय में कृष्ण का अंगुली से उठाकर वर्षा को रोक कर इन्द्रगर्व खंडन आदि जैसे आख्यान जुड़ गए[4]। गोवर्धन उत्सव अति प्राचीन उत्सव भी है । कृष्ण आदि के जुड़े हुए आख्यान इस उत्सव की अति प्राचीनता सिद्ध करते हैं । गोवर्धन महोत्सव एक शुद्ध लोकोत्सव है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने गोवर्धन महोत्सव का संक्षेप में उल्लेख करते हुए कहा है[5] कि गोवर्धन पूजन के दिन अहीर लोग बड़े उल्लसित होकर घूम रहे हैं । कोई हर्ष और उल्लास में गा रहा है, कोई ताल

१- भारतेन्दु ग्रंथावली: पृ० ४३६ छं० ३ ।

२- संसिचामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम् ।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावोमयि गोपतौ ।
आहरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यम रसम्,
आहृता अस्माकं वीरा आपत्नीरिदमस्तकम् ।।अथर्व०का०२,पृ०२६,मं०४१५।
त्यौहार दर्पणकम् - पं० मक्खन लाल शर्मा, पृ०४७-४८ ।

3. Following the Diwali comes what is known as the Gobardhan or Godhan, which is rural feast---This is also a cattle feast and cowherds come round half drunk and collects presents from their employers. Crooks-Inсroduction to Popular Religion and Folklore of Northern India p.373-374.

गा रहा है, कोई नाच रहा है सब लोग गोवर्धन पर्वत की पूजा करते हुए कह रहे है कि कृष्ण ने सात दिन तक बाएं हाथ पर गोवर्धन पर्वत को उठाकर इन्द्र को पराजित किया । इन्द्र क्या कर सकता है उसके पास तो केवल पानी ही पानी है । हमारे गोवर्धन देव की जय हो । इस प्रकार भारतेन्दु ने गोवर्धन उत्सव वर्णन में अहीरों में प्रचलित लोक विश्वास को तथा इस दिन के उनके आनंद को दिखाया है ।

गौण लोकोत्सव एवं पर्व:-

भारतेन्दु युगीन कवियों ने इन उपरोक्त प्रमुख लोकोत्सवों के अतिरिक्त अन्य गौण लोकोत्सवों एवं लोक पर्वों का उल्लेख तथा वर्णन किया है । यद्यपि आज यह उत्सव एवं पर्व उपरोक्त पर्वों की तरह विशाल स्तर पर नहीं मनाए जाते फिर भी लोक जीवन में इनका बहुत महत्व है और आज भी अशिक्षित तथा ग्रामीण वर्ग इन उत्सवों तथापर्वों को बड़ी श्रद्धा तथा महत्ता की दृष्टि से देखता है यह लोकोत्सव एवं लोक पर्व निम्नांकित हैं ।

गंगा सप्तमी :-

यह उत्सव वैशाख शुक्ल सप्तमी को मनाया जाता है । इस पर्व के मनाए जाने के कारण लोक वर्ग में दो विश्वास ~~के रूप में~~ प्रचलित है।

गंगा जी का जन्म, जो हस्तिनापुर के महाराजा शान्तनु की पत्नी तथा भीष्म की माता थी, इसीदिन हुआ था और गंगा जी के जन्म दिवस के रूप में ही यह उत्सव मनाया जाता ~~है~~ था । इस विश्वास के साथ साथ ही लोक में यह भी विश्वास इस उत्सव के सम्बन्ध में प्रचलित है कि इस दिन गंगा जी को राजा भागीरथ कैलाश से पृथ्वी पर लाए थे और इसी घटना के तथा भागीरथ के स्मरणार्थ ही उत्सव मनाया जाता है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस पर्व का उल्लेख किया है । भारतेन्दु

हरिश्चन्द्र ने इस उत्सव का कारण यह बताया है कि इस दिन बैशाख शुक्ल सप्तमी को क्रुद्ध होकर जहनु ने जलपान किया तथा दाहिने कान से निकाला और उसी दिन से यह पर्व मनाया जाने लगा और वही निकला हुआ जल जाह्नवी और वही बाद में गंगा कहलाया । इसलिए इस दिन गंगा जी का उत्सव करना चाहिए[1] । इस उत्सव के दिन गंगा स्नान से प्राप्त प्रचलित माहात्म्य को भी भारतेन्दु ने बताते हुए कहा है कि इस दिन गंगा स्नान कर सहस्र बार गंगा नाम जपने से पुण्य प्राप्ति होती है[2]।

मकर संक्रान्ति:-

सूर्य के मकर राशि में प्रवेश करने के दिन में मनाया जाने वाला यह प्रमुख लोकोत्सव है इसका भी भारतेन्दु युगीन कवियों ने विशेषकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने विस्तार से विवेचन किया है ।। असाधारण अशिक्षित वर्ग का यह आज भी प्रधान पर्व है और जनता उसदिन विशाल स्तर पर गंगा स्नान करती है । इस दिन गंगा नहाने और खिचड़ी दान का बहुत महत्व है । भारतेन्द हरिश्चन्द्र ने मकर संक्रान्ति पर्व की यह विशेषता लगभग सभी मकर संक्रान्ति वाले पदों में कही है[3] । साधारण

१- माधव सुदि सप्तमि कियो क्रुद्ध जन्हु जल पान
छोड़यो दक्षिण कर्ण तें तातें पर्व महान
ताही सो जान्हवि भई ता दिन सों श्री गंग
तिनको उत्सव कीजिए ता दिन धारि उमंग ।।
-भारतेन्दु ग्रंथावली-पृ० ९४ ।

२- तामे गंगा न्हाय कै पूजन कीजै चारु ।
गंगा नाम सहस्र जपि लीजै पुण्य अपार - भा०ग्रं०, पृ० ९४ ।

३- कहा परब कियो दियो दान रस तिल तन प्रगट लखाए ।
हरीचंद खिचरी से मिलि क्यौं कित तिरबेनी न्हाये ।।पृ०४४१।
ताती खिचरी सुखद श्रेमरोगी हम कहं सुख उप जावहु ।
बड़ो परब है आजु श्याम घन कहूं न कित चलावहु ।।पृ०४५८।।
भारतेन्दु ग्रंथावली ।

जन वर्ग में खिचड़ी दान की प्रधानता के कारण यह कभी कभी खिचड़ी पर्व के नाम से भी संबोधित किया जाता है । भारतेन्दु ने भी कुछ स्थानों पर मकर संक्रान्ति को खिचड़ी पर्व कहकर संबोधित किया है[1]। मकर संक्रांति पर्व पर खिचड़ी दान के साथ ही साथ तिल दान का भी विशेष महत्व है और जनता इस दिन जनता स्नान करके बहुत दान करती है[2]। इस प्रकार समग्र रूप में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने मकर संक्रान्ति पर्व पर लोक कृत्यों का वर्णन कर इसके लोक स्वरूप को प्रकट किया है ।

रास लीला:-

रास लीला हल्लीश, श्री गदित, काव्य, गोष्ठी, नाट्य रासक का ही लोकाश्रय द्वारा परिवर्तित नाट्य रूप है । यह लोक नाट्य का प्रमुख अंग है[3]। और साधारण तथा ग्रामीण जनता इससे विशेष मनोरंजन करती है और यह उत्सव के रूप में मनाया जाता है जिस प्रकार दशहरे के अवसर पर रामलीला का महत्व है जिसमें राम का जीवन चरित्र दिखाया जाता है और साधारण जनता उसे उत्सव रूप में ग्रहण करती है । उसी प्रकार जन्माष्टमी के समय रासलीला का विशेष महत्व है इसमें श्री कृष्ण की लीलाएं विशेष कर गोपियों के साथ की हुई शृंगार क्रीड़ाओं को दिखाया जाता है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने रासलीला उत्सव के सम्बन्ध में कई पद लिखे हैं जिनमें कृष्ण की जमुना तट पर शरद रात्रि में गोपियों के साथ की हुई कृष्ण की शृंगार लीला का वर्णन है[4] ग्वाल बालों के साथ कृष्ण के नाच आदि कर लीलायें करने का वर्णन है[5]। रासलीला लोकोत्सव के विषय में

१- सुखद अति खिचरी को त्यौहार- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ४७७ ।

२- करतदान तिल कं गौर स्याम कोउ हँसि हँसि पीतम प्यारी ।।
-भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ४७७ ।

३- हिन्दी साहित्य कोशः टिप्पणी रासलीला ।

४- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ४६४ ।

५- वही, पृ० ४७१ ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने विस्तार से ही न तो वर्णन किया है और न ही अन्य लोकोत्सवों के समान लगे हुए धार्मिक माहात्म्य का वर्णन रास-लीला के प्रसंग में किया है ।

बरसाइत:-

यह भी स्त्रियों का एक लोक पर्व है । यह जेठ मास में मनाया जाता है । यह सोहाग पर्व कहा जाता है । स्त्रियों का विश्वास है कि इस दिन सावित्री को सत्यवान की मृत्यु के बाद भी अपने पातिव्रत्य से यम से सत्यवान का जीवनदान मिला था और उसका सोहाग अविचल हुआ था । इस दिन स्त्रियां बरगद की पूजा करती है और उस पर कच्चे सूत की फेरी लगाती है और "धोबिन के सोहाग वाली" कथा कहती है। यह पूर्णतः एक लोक पर्व है और आदिम संस्कृति के वृक्ष पूजन सम्बन्धी अनुष्ठान आज भी इस पर्व में अवशेष हैं ।

भारतेन्दु युगीन कवियों में केवल प्रेमघन ने एक स्थल पर इसका उल्लेख मात्र कर दिया है[१]। कोई विशेषता नहीं बताई है । इस कारण प्रेमघन द्वारा उल्लिखित इस उत्सव के लोक परक रूप पर यत्किंचित भी विचार नहीं किया जा सकता । प्रेमघन कहते हैं कि गोपिका कहती है कि बर-साइत करने से ही मैं कृष्ण से मिलती हूँ । स्पष्ट है कि प्रेमघन ने लोक विश्वास स्पष्ट करना चाहा कि इस पर्व पर स्त्रियां इस इच्छा से पूजन करती हैं कि सोहाग मिले, स्त्रियों को सुन्दर वर मिले । इस प्रकार यह लोक पर्व ही है ।

त्रिकोन का मेला:-

प्रेमघन ने त्रिकोन के मेले का वर्णन भी किया है । यह पूर्ण

१- है बरसाइत की भली बरसाइत यह आज ।

बरसाइत करि प्रेमघन मिली सजनी ब्रजराज ।।

-प्रेमघन सर्वस्व: पृ० ३३० ।

लोकोत्सव है । यह मेला प्रेमघन के अनुसार सावन के प्रत्येक मंगल वार को यह पहाड़ी मेला होता है[1]।" यह मेला सावन में विंध्याचल के पहाड़ पर लगता है[2]। स्त्रियां और पुरुष सभी इस उत्सव में विशेष उत्साह के साथ भाग लेते हैं । प्रेमघन ने इस उत्सव में जाने के लिए स्त्रियों द्वारा किए गए ग्रामीण शृंगार का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है । इस उत्सव में प्रेमघन ने स्त्रियों द्वारा सावन के प्रसिद्ध कजरी और मलार आदि लोक गीत के गाए जाने का भी उल्लेख किया है । प्रेमघन के त्रिकोन के मेले के इस विवरण से ऐसा स्पष्ट ही है कि पूर्णतः यह लोकोत्सव ही है और इस मेले पर धर्म की अभी तक कोई छाप नहीं पड़ी है जिससे लोकोत्सव का यह अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

लोकाचार

जन्म, विवाह तथा मृत्यु तीनों ही प्रसंग मानव जीवन के महत्वपूर्ण प्रसंग रहे हैं, अतएव इन तीनों प्रसंगों को केन्द्र बनाकर मानव ने विविध प्रकार के लोकाचारों, अनुष्ठानों और प्रथाओं को जन्म दिया है, जिनका लोक सांस्कृतिक अनुशीलन तथा लोक मानस की सही प्रवृत्ति को जानने के लिए ज्ञान आवश्यक है । भारतेन्दु युगीन काव्य का लोक तत्व के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करते हुए उसमें उल्लिखित विविध लोकाचारों लोकानुष्ठानों तथा लोक प्रथाओं का विवेचन भी अनिवार्य है ।

जन्म और मृत्यु का सम्बन्ध आदिम मानव की आश्चर्य वृत्ति से था, तो दूसरी ओर विवाह का प्रसंग आवश्यकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण

१- प्रेमघन सर्वस्वः पृ० ५३१ फुट नोट ।

२- आई सावन की बहार, विंध्याचल के पहार
पर मेला मजेदार लगा, चलः चली यार - प्रेमघन सर्वस्वःपृ० ५३० ।

\- \- \-

मिरजापुरी धूमवै, सब मंगल के बार । - प्रेमघन सर्वस्व,पृ० ५३० ।

था । शिशु का जन्म आदिम मानव मानस के लिए प्रभावकारी, मर्मस्पर्शी तथा आश्चर्य मय दृश्य था । उसके लिए यह समझना कष्ट कर था कि नए जीव का आगमन कैसे हो गया । यह कहां से आ गया ? अतः आश्चर्य भाव से उसने इसका श्रेय किसी अमानवीय शक्ति को दिया होगा, जिसके कारण नए शिशु का आगमन हुआ और ऐसे आश्चर्य मय अवसर पर निर्बल तथा अनाथ शिशु की रक्षा के लिए तथा, ऐसे अवसर पर अपनी प्रियतमा को कष्टावस्था में देखकर उसे अमानवीय संकटों तथा विपदाओं का भय भी लगा होगा । अतः इस से निवृत्ति के लिए आदिम मानव मानस ने अति प्राचीन काल में ही विशेष प्रकार के कृत्यों तथा अनुष्ठानों को जन्म दिया होगा, जो अमानवीय संकटों से नवजात शिशु तथा उसकी जननी की रक्षा कर सकें और लाभकारी हो सकें । जन्म की ही भांति मृत्यु भी आदिम मानव मानस के लिए कष्ट कर तथा उससे भी कहीं अधिक रहस्यमय बात थी - कि जो व्यक्ति अभी कुछ क्षण पहले ही साधारण जीवों कीतरह व्यवहार करता था, वह सहसा कुछ क्षणों में ही बिलकुल बदल कैसे गया । उसका जीवतत्त्व कहां चला गया और उसमें विविध परिवर्तन कैसे हो गए जो साधारण मनुष्य में नहीं होते । उसने मृत्यु का कारण भी अमानवीय शक्ति को माना और लोक मानस ने कल्पना की कि जो व्यक्ति पहले नव-जात शिशु के रूप में अचानक सबको आश्चर्य चकित कर मानव लोक में आया था, वह व्यक्ति जहां से आया था, अपने उसी लोक को पुनः चला गया और इच्छा होने पर वह फिर कभी सबको आश्चर्यान्वित कर आ सकता है। यह कल्पना कर कि मृत व्यक्ति ~~क~~ दूसरे लोक में चला गया उसके घनिष्ठ मित्रों ने, संबंधियों एवं परिवार वालों ने इस ~~कल्पक~~ कामना से कि वह अपने लोक में सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करे, उसे शांति मिले, उसे किसी प्रकार की असुविधा न हो, इसके लिए आदिम मानव मानस ने विविध समाधान निकाले । वे ही मृत्यु से संबंधित लोकाचार है । उदाहरणार्थ आदिम मानव मानस ने सोचा होगा कि मृत व्यक्ति को जो वस्तुएं प्रिय थीं, जो उसके जीवन का आधार थीं, जो उसके मनोरंजन का कारण थी, जिसकी उसे कभी आवश्यकता पड़ सकती थी आदि वस्तुएं यदि मृत व्यक्ति के शव के साथ रख दी जाएंगी तो वह उसका उपयोग यथासमय निश्चित रूप से कर

कर सकेगा । मिस्र में शव के साथ विभिन्न खाद्य सामग्री, वेशभूषा, अस्त्र-शस्त्र तथा दैनिक जीवन के उपयोग की वस्तुओं का मिलना लोक मानस के उपर्युक्त विश्वास का ही पोषक है कि मृत व्यक्ति यथा समय आवश्यक वस्तुओं का उपयोग कर सकेगा । लोक मानस ने मृत व्यक्तियों के अर्थात् पितरों के लोक का भी स्थान लोक मानस के अनुसार ही ढूंढ निकाला है । आजभी किन्हीं किन्हीं आदिम जातियों में यह पूर्वजों का लोक सागर माना जाता है और इसी पूर्वजों के लोक सागर से सम्बन्धित होने के कारण नदियों का पूजन होता है[1]। गंगा में अस्थियों का प्रवाह इसी लोक विश्वास से किया जाता है कि वे मृतक पूर्वजों के निवास स्थान सागर तक इन नदियों के ही माध्यम से पहुंचती हैं । चांद[2] को भी लोक मानस ने पूर्वजों का लोक मान रक्खा है । इस प्रकार जन्म के बाद जब मानव इस लोक में आता है, तो लोक मानस उसके पृथ्वीलोक पर सुखपूर्वक रहने की कामना से विविध अनुष्ठान करता है । इसी प्रकार जब वह मृत्यु के बाद दूसरे लोक में चला जाता है तो स्नेह के कारण वह उसके दूसरे लोक के जीवन के लिए विविध प्रकार के अनुष्ठान करता है कि उसका जीवन सुख पूर्ण हो सके ।

जन्म और मृत्यु के अतिरिक्त लोक जीवन के लिए दूसरी सर्वाधिक महत्व पूर्ण घटना क विवाह की है । विवाह का मूलः संभवतः जैसा कि शास्त्रों ने कहा कि काम भावना को सीमित करने के लिए तथा व्यभिचार को नियंत्रित करने के लिए है, न होकर नवजात शिशु की असहाय पूर्ण अवस्था तथा विभिन्न अवधियों के लिए माता व नवजात शिशु की रक्षा ही रही होगी । प्रसवावस्था के कठिन समय में अपने शिशु तथा अपनी संरक्षा हेतु स्त्री को अपने जीवन के लिए स्थायी साथी चुनने के लिए उद्यत

---

1. Crooke, W: Introduction to Popular Religion and Folklore of Northern India. p.23.

2. "Much of this respect for the moon is due to the belief that it is regarded as the abode of the ptri or sainted dead, a theory which is the common property of many primitive races." p.9- Crooke. Introduction to popular religion and folklore of Northern India.

होना पड़ा होगा[1] और संभवतः यही कारण विवाह मूल में अति प्राचीन काल से हो रहे होंगे, जिसके कारण विवाह जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया । विवाह स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए महत्वपूर्ण था अतः ऐसे महत्व पूर्ण तथा शुभ अवसर पर लोक मानस को अनेक बुरे विचार वाले व्यक्तियों के दृष्टि दोष का भय तथा अमानवीय संकटों का भय रहा होगा, जो इसके विविध कृत्यों पर विघ्न उपस्थित कर सकें। अतः ऐसे कष्टों की निवृत्ति के लिए इसने विविध अनुष्ठानों को जन्म दिया । इन विवाह संबंधी लोकाचारों का भी लोक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में लोक जीवन में जन्म, विवाह तथा मृत्यु आदि तीनों ही महत्व पूर्ण अवसरों पर किए जाने वाले विविध लोक कृत्यों का उल्लेख हुआ है किन्तु इन प्रथक अवसरों पर किए जाने वाले विविध कृत्यों के विषय में कुछ कहने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि भारतेन्दु युगीन काव्य में विविध लोक कृत्यों का मानस या पद्मावत की भाँति क्रमिक तथा विशद वर्णन नहीं है । इनमें केवल विविध छंदों में उल्लेख मात्र मिलते हैं । अतः भारतेन्दु युगीन काव्य में संपूर्ण लोक कृत्यों के उल्लेख भी नहीं मिल पाते केवल महत्वपूर्ण लोक कृत्यों का ही उल्लेख हो सका। सर्वप्रथम भारतेन्दु युगीन काव्य में जो उल्लिखित जन्म सम्बन्धी लोक कृत्यों का उल्लेख प्रस्तुत है ।

जन्मः-

भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित जन्म सम्बन्धी लोक कृत्यों को दो वर्गों में सुविधात्मक दृष्टि से वर्गीकृत कर सकते हैं । पहले वर्ग में उन कृत्यों की गणना करेंगे जो केवल लोकमानस की आनन्द वृत्ति को प्रकट करते हैं जो केवल प्रसन्नता के सूचक हैं जिनके पीछे आनुष्ठानिक भावना नहीं है । दूसरे वर्ग में उन लोक कृत्यों की गणना होगी जिनकी आनुष्ठानिक भूमिका है और जो अनुष्ठान रूप में किए जाते हैं । प्रथम वर्ग से संबंधित

1- हिन्दू संस्कारः राजबली पांडेय ।

कृत्यों में स्त्रियों का जन्म सम्बन्धी बधाई[1], ढाढ़ी[2] आदि गीत गाना, सोना, वस्त्र, मणिगन हीरा आदि प्रसन्नहोकर लुटाने[3] का तथा तोरण पताका आदि के द्वार पर बंधे होने का उल्लेख है[4]।

इन उत्सव सम्बन्धी लोक कृत्यों के अतिरिक्त जन्म प्रसंग में सबसे अधिक उल्लेख कृष्ण तथा राधा के जन्म लेने पर टीका लाने का उल्लेख मिलता है[5]। टीका लाना जन्म के अवसर पर एक प्रमुख लोक कृत्य है । टीका एक थार में दूब दधि रोचन[6] तथा कुछ पैसा आदि रखकर लाया जाता है । विभिन्न लोगों द्वारा लाए गए टीके से नवजात शिशु को तिलक लगाया जाता है और यह कामना क जाती है कि नवजात शिशु लम्बी आयु प्राप्त करे और इसका जीवन कल्याण कर हो । प्रेमघन ने नन्द के घर में कृष्ण के जन्म पर गोपियों के बधाई रूप में दूब दधि रोचन से थार भर कर लाने का उल्लेख किया है[7]। यह दूब दधि रोचन युक्त थार ही लोक में टीका नाम से संबोधित किया जाता है । प्रेमघन ने दूब दधि रोचन का प्रयोग कर लोक में प्रचलित टीका लाने की प्रथा को प्रस्तुत किया है और लोक कृत्य की दृष्टि से इस कृत्य का विशेष महत्व है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कृष्ण तथा राधा के जन्म प्रसंगों में गोपियों के कंचन थार में चौमुखा दीप जलाकर आरती करने का उल्लेख किया है[8] । चौमुखे दिये से आरती करना एक लोक प्रथा है । इसके

१- भा०ग्रं० ४५७, ५१९, ५१८, प्रे०सर्व० ४३२, ५९१, ५९२, ५२३ ।

२- भा०ग्रं० ५२२ ।

३- वही, ५१८, ५१९, ५२४, ५३३, प्रे० ५९१ ।

४- वही, ५२२ ।

५- वही, ५१८, ५१९, ५२१, ५२९ ।

६- प्रे०सर्व० ५९१ ।

७- लोक वर्ग में रोचन बनाने की दो विधियां हैं एक तो हल्दी में नीबू घोटकर बनाया जाता है दूसरा हल्दी तथा चूना मिलाकर बनाया जाता है ।

८- भा०ग्रं० ५३०, ५३३, ४४६ ।

अतिरिक्त थापे दिए हुए कलश धरने का उल्लेख भारतेन्दु ने बरसाने में कीरति सुता के जन्म के अवसर पर किया है[1]। लोक वर्ग में जन्म के अवसर पर कलश धरने को लोक भाषा में चरुआ चढ़ाना कहा जाता है । चरुआ मिट्टी का घड़ा होता है जिसमें घरेलू औषधियों को डाला जाता है और उसमें पानी औटाकर जच्चा के लिए उसके कमरे में ही रक्खा जाता है । इस चरुए पर गोबर से स्वस्तिक, चक्र आदि बनाए जाते हैं तथा थापे (हथेली में ऐपन[2] लगाकर बना गया चिह्न)लगाए जाते हैं।तथा लोक गीतों में भी चरुआ चढ़ाने के प्रसंग मिलते हैं[3]।

विवाह:-

जन्म और विवाह जहां आदिम मानव के लिए आश्चर्यमय अवसर थे वहां विवाह उसके लिए महत्वपूर्ण तथा प्रसन्नता एवं उत्सव का अवसर था इसलिए विवाह का महत्व आदिम मानव के लिए जन्म तथा मृत्यु से भी अधिक महत्वपूर्ण अवसर था, इसलिए उसने इस महत्वपूर्ण अवसर पर ही सबसे अधिक लोकाचारों को जन्म दिया था। इसके भी दो कारण थे एक तो विवाह अवसर पर अपने आनंद की अभिव्यक्ति के लिए तथा दूसरे अपने इस शुभ मंगलमय अवसर पर अन्य अमानवीय शक्तियां या कुदृष्टियों के प्रकोप से बचने के लिए विशेष अनुष्ठानों तथा लोक कृत्यों को जन्म दिया और इस प्रकार जन्म तथा मृत्यु से भी अधिक लोकचार विवाह अवसर पर किए गए । सत्येन्द्र जी ने इसीलिए कहा है कि विवाह तथा जन्म पर किए जाने वाले संस्कारों में लौकिकांश ही अधिक रहता है और अधिकांश विवाह सम्बन्धी लोक कृत्यों में अनुष्ठान का रूप देखा जा सकता[4] । इस प्रकार विवाह के अवसर पर ही

१- भा०ग्रं० ५३३ ।

२- ऐपन: हल्दी तथा पिसे हुए चावल को मिलाकर बनाया जाने वाला, तथा शुभ कामों में प्रयुक्त होने वाला पदार्थ है ।

३- खड़ी बोली का लोक साहित्य (परिशिष्ट): सत्या गुप्ता पृ० ३(अमुद्रित)

४- ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन: डा० सत्येन्द्र पृ० २४१-२४२ ।

सर्वाधिक लोक मान्यताओं, लोक रूढ़ियों तथा लोक भावनाओं को उचित प्रश्रय मिल सकता है । एक लेखक ने तो विवाह में केवल पाणिग्रहण को जो निश्चित मुहुर्त में विद्वान पंडित द्वारा वैदिक मंत्रों द्वारा सम्पन्न किया जाता है, को ही शास्त्रीय संस्कार मानते हुए शेष विवाह अवसर पर किए जाने वाले कृत्यों को लौकिक कृत्य ही माना है और बताया है कि उनके पीछे कोई शास्त्रीय स्वरूप नहीं है[1]। पारस्कर गृह्यसूत्रकार भी ग्रामवचन तथा स्थानीय परंपराओं के पालन का ही आदेश देते हैं[2]। जिससे सिद्ध है कि अति प्राचीन काल से ही शास्त्रीय परम्पराओं के अतिरिक्त लोक कृत्यों का भी विशेष महत्व है तथा इन स्थानीय परम्पराओं का प्रचलन अति प्राचीन काल से परंपरित रूप में चला आ रहा है और उसका पालन करना चाहिए । उनका भी शास्त्रीय परंपराओं के समान ही महत्व है । गदाधर पारस्कर गृह्यसूत्र के ग्राम वचन तथा स्थानीय परंपराओं का उल्लेख करते हुए उसकी व्याख्या निम्नलिखित प्रकार से करते हैं - कि -"सूत्र में विहित न होने पर भी वधू और वर का मंगल सूत्र धारण, गले में माला पहनना, वर और वधू के वस्त्रों में ग्रंथि देना, वट वृक्ष का स्पर्श करना, वर के वक्षस्थल पर दही का लेप करना आदि, वर के पहुंचने पर नाक छूना आदि तथा अन्य क्रियाएं जिन्हें ग्राम की स्त्रियां, तथा वृद्ध कहें करना चाहिए[3]।" इसप्रकार लोक में विवाह के अवसर पर ही सर्वाधिक लोक कृत्य संपन्न होते हैं तथा इनका लोक सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्व भी है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में सर्वाधिक लोक कृत्यों का उल्लेख विवाह प्रसंग में ही हुआ है । भारतेन्दु युगीन काव्य में विवाह सम्बन्धी लोकाचारों का जन्म सम्बन्धी लोकाचारों की भांति ही क्रमिक तथा विशद वर्णन नहीं हुआ है, केवल फुटकर उल्लेख ही मिलते हैं, तो कहीं विवाह सम्बन्धी गीतों में

१- खड़ी बोली का लोक साहित्य: सत्या गुप्ता पृ० ५५ ।

२- पा० गृ० सू० १-८-१० ।

३- विवाह श्मशाने च वृद्धानां स्त्रीणां च वचनं कुर्युः । सूत्रे अनुपदिष्ट मपि वधूवरयोर्मंगल-सूत्रं गले माला धारणमपि - पा० गृ० सू० १-८-११ पर गदाधर ।

ही विविध लोक कृत्यों का उल्लेख हुआ है ।

विवेच्य कालीन साहित्य में उल्लिखित विवाह सम्बन्धी लोक कृत्यों का दो वर्गों में विभाजन कर अध्ययन किया जा सकता है - 1- वर पक्ष के यहाँ संपन्न होने वाले कृत्य - 2- वधू पक्ष के यहाँ संपन्न वाले लोक कृत्य ।

वर पक्ष से संबंधित लोक कृत्यों में सर्वप्रथम लोक कृत्य दहेज ही है । लोक में स्त्री पक्ष वाले वर को विवाह करने हेतु दहेज में रुपया गहना कपड़ा आदि देते हैं । लोक में दहेज लेने की प्रथा अति व्यापक है । यद्यपि आज दहेज लेने की प्रथा हीन भी समझी जाने लगी है । प्रेमघन ने दहेज में कपड़ा गहना आदि देने का उल्लेख किया है[1]। प्रताप नारायण मिश्र ने ककाराष्टक में दहेज का उल्लेख करते हुए कहा है कि आज के व्यक्ति उद्योग विमुख हो गए हैं । उन्हें उद्योग करना पसन्द नहीं है वे दहेज लेने में ही सुख मानते हैं[2]।"इतना दे करतार अधिक नहिं बोलना" में कनवजिया ब्राह्मणों के मध्य दहेज रूप में अधिक धन लेने के प्रति व्यंग्य भी प्रतापनारायण मिश्र ने किया है[3]। वर पक्ष से संबंधित दूसरा महत्वपूर्ण लोक कृत्य वर की साज सज्जा है । वर की साज सज्जा का भारतेन्दु युगीन काव्य में विस्तार से वर्णन किया गया है और बनरे का एक लोक दृष्ट रूप उपस्थित किया है। वर की साज सज्जा के प्रसंगमें वर के सिर पर लगे हुए मौर[4], बेले के[5] तथा मोती के सेहरे[5], केसरिया जामा[6], पाग[7], पटुका[8] का, विविध वर द्वारा पहने हुए आभूषणों[9] का तथा, मौर के ऊपर लगी हुई तुर्री[10] का ~~ह~~ तथा

1- प्रे०सर्व०पृ० ५३५ । 2- प्र०ल०पृ० ४४ ।

3- वही, पृ० १८८ । 4- भा०ग्रं०पृ०२१०,२११,६१८,७००,४७०, प्रे०स०४५६ ।

5- वही, पृ०२१०,४४०,४४४,४५३,४६१ - प्रे०स०३१५,४५६,४५७ ।

6- वही, पृ०२११-प्रे०सर्व०पृ०४५७ । 7- वही,पृ०११०,२११-प्रे०स०३११,४५७ ।

8- प्रे०स०४५७ ।

9- भा०ग्रं०पृ० २१० । 10- प्रे०स०४५७ ।

हाथ पैर में लगे हुए मेंहदी[1] तथा महावर[2] का उल्लेख हुआ है । विवाह के अवसर पर मौर, मौर के ऊपर लगी हुई तुर्री का, जामा, पाग, पटुका, सेहरा, मेंहदी, महावर आदि लगाना लोक में प्रायः वर के लिए आवश्यक समझा जाता है और इसके द्वारा ही वर का शृंगार किया जाता है । इस विविध साज सज्जा का क्या कारण है इसके पीछे लोकमानस की कौन सी भावना अन्तर्निहित है, इसका बाद में नृतत्वशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लोक कृत्यों का विवेचन करते समय उल्लेख किया गया है । वर की साज सज्जा के समान ही विवाह के अवसर पर वधू का भी विशेष प्रकार से शृंगार किया जाता है । वधू के विवाह के समय किए जाने वाले विविध शृंगार का भी भारतेन्दु युगीन कवियों ने उल्लेख किया है । वधू के शृंगार में मौरी, टिकुली, सेंदुर, चुनरी आदि का उल्लेख किया है । इसके अतिरिक्त साड़ी, काजल, तथा अन्य का भी उल्लेख हुआ है । विवाह के समय के शृंगार प्रसाधनों में वधू से संबंधित मुख्य मौरी, सेन्दुर, चुनरी तथा टिकुली आदि है ।

विवाह सम्बन्धी लोक कृत्यों में जिनका प्रमुख रूप से वर पक्ष का संबंध है में वर का घोड़ी पर चढ़कर जाने तथा सहबाले के साथ होने तथा बारात के वधू पक्ष के निवास स्थल पर बरात लगने का उल्लेख भारतेन्दु काव्य में उल्लेख हुआ है ।

वर के घोड़ी पर चढ़ने की प्रथा आज भी बहुत व्यापक है और यह लोकाचार रूप में ही सम्पादित होती है । घुड़चढ़ी के विषय पर लिखते हुए एक लेखक ने लोक जीवन में इसके प्रचलन पर लिखा है । ~~घुड़चढ़ी के विषय में लिखा है~~ - "विवाह के पहले दिन या उसी दिन घुड़चढ़ी होती है । घुड़चढ़ी के पश्चात वर अपने घर बिना वधू को साथ लिए नहीं आ सकता अतः किसी मित्र के घर या मंदिर में रात्रि में ठहर जाता है और वहीं से वर यात्रा में सम्मिलित होता है । घुड़चढ़ी के पश्चात लड़के के सभी सम्बन्धी

1- भा०ग्रं० २११, ७७७ ।

2- वही, २११, ७७७ ।

टीका करते हैं और गीत गाते हैं । यह घोड़ी अन्या सेहरा कहलाती है[1]।"
डा० सत्येन्द्र ने भी ब्रजलोक साहित्य का पर्यवेक्षण करते हुए वर के घोड़ी पर बैठने केक लोक कृत्य का उल्लेख किया है[2]। भारतेन्दु युगीन काव्य में घोड़ी पर चढ़कर विवाह के लिए आए हुए वर का उल्लेख हुआ है[3]। इसके अतिरिक्त बरात में सहबाले के साथ होने[4] तथा दरवाजे पर बारात के लगने[5] का उल्लेख हुआ है । इसके अतिरिक्त जनवासे का उल्लेख भी हुआ है[6] जिसकी गणना वर पक्ष से सम्बन्धित लोकाचारों के रूप में ही होनी चाहिए । क्योंकि जनवासा निश्चित करना भी एक आवश्यक लोक प्रथा ही है । जनवासा वह स्थान है जहां बरात ठहरती है । अवधेय है कि चाहे वधू का घर कितना ही निकट क्यों न हो किन्तु जनवासे का अलग होना लोक दृष्टि से आवश्यक ही है । जनवासे का विवाह सम्बन्धी प्रसंगों में महत्वपूर्ण स्थान है ।

इसके अतिरिक्त वधू पक्ष से संबंधित लोक कृत्यों में सबसे पहला उल्लेख वधू के घर के द्वार की शोभा का उल्लेख हुआ है । ~~जो~~ कलश पर जव रखकर, तोरण बंदन वार लगाकर तथा कदली खंभ आदि लगाकर जो शुभ सूचक है की जाती है[7]। इसके उपरान्त समस्त संबंधियों का विवाह उत्सव पर उपस्थित होने का उल्लेख है हुआ है[8]। इसके उपरान्त मंडप सजाने[9] का तथा वधू को मंडप में बिठाने[10] का उल्लेख हुआ है । इनके साथ ही पाणि-

---

१- खड़ी बोली का लोक साहित्यः सत्या गुप्ता पृ० ५८-५९ ।

२- ब्रजलोक साहित्य का अध्ययनः सत्येन्द्र पृ० १७५ ।

३- भा०ग्रं० २९१,४४४ ।   ४- प्रे०सर्व० ३४२ ।

५- वही, ३४२, ५३४ ।   ६- वही, पृ० ३४५ ।

७- वही, ३४२, भा०ग्रं० ६७५, ६९८ ।

८- वही, ५३५ ।   ९- भा०ग्रं०४७७, ७७७ ।

१०- प्रे०सर्व० ५३४ ।

ग्रहण जो विवाह का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कृत्य है का उल्लेख है[1]। विवाह संबंधी लोक कृत्यों में भांवर का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है तथा इसके बिना विवाह अपूर्ण माना जाता है । यद्यपि यह शास्त्रीय प्रथा भी है[2] कि सप्तपदी के बाद कन्या विवाहिता मान ली जाती है और सप्तपदी का रूप ही भांवर है किन्तु शास्त्रीय प्रथा होते हुए भी लोक जीवन में इसका भी बहुत महत्व है और लोक जीवन में भी इसके बिना विवाह अधूरा समझा जाता है जैसा कि लोक गीतों से स्पष्ट ही है । छः भांवर तक लड़के लड़की साथ साथ चलते हैं और तब तक वे कुंआरे माने जाते हैं, किन्तु सातवीं भांवर होते ही कन्या पराई मान ली जाती है तथा वह साथ घूमने वाला व्यक्ति उसका पति मान लिया जाता है । विवाह सम्बन्धी लोक कृत्यों में यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । अनेक भांवर सम्बन्धी लोक गीतों से भी यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि सातवीं भांवर के बाद ही कन्या वधू बन जाती है[3]। और इस प्रकार विवाह सम्बन्धी लोक कृत्यों में इसका स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है ।

<u>मृत्यु:-</u>

मृत्यु सम्बन्धी प्रसंगों का कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता । विवाह जन्म आदि के समान ही न मृत्यु सम्बन्धी शोक गीतों का प्रयोग ही

१- भा॰पु॰ ७७७ ।

२- पाणिग्राहणिका मंत्रा नियतं दारलक्षणम् ।
तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विवाहत्सप्तमेपदे ।। -मनुस्मृति ।।

३- मेरी पहिली भांवरि ऐ भइउ बेटी बाप की ।
- - - - - - - - - - - - - - - - -
मेरी सतई भामरि ऐ भई बेटी सुसर की ।।
-सत्येन्द्र - ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन- पृ॰ २१८, २१९ ।

+ + +

ऐवी पिछला केरा अभी तो बेटी बाप की ।
ऐवी दूसरी भांवर अभी तो बेटी बाबा की ।
ऐवी तीजी भांवर डल गई, बेटी अभी तो भैय्या की ।

मिलता है जिससे उनमें निहित मृत्यु सम्बन्धी अनुष्ठानों का अनुसंधान किया जा सके । केवल मृत्यु सम्बन्धी अनुष्ठानों में टिकटी बनाने का जिस पर शव को रख कर श्मशान ले जाया जाता है तथा चार व्यक्तियों द्वारा शव को उठाकर ले जाए जाने का वर्णन मिलता है[1]। इसप्रकार तर्पण[2] करने तथा पिण्ड दान[3] का उल्लेख भी भारतेन्दु युगीन काव्य में हुआ है ।

भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य में उल्लिखित लोकाचारों की लोक वार्ता शास्त्रीय व्याख्या:

जन्म सम्बन्धी लोकाचार:-

जन्म विवाह तथा मृत्यु सम्बन्धी प्रसंगों पर लोक वर्ग विशेष प्रकार के लोकाचार का पालन करता है जिनका लोक सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्व है । लोक वर्ग इन कृत्यों का परम्परा से पालन करता है और इन कृत्यों के विषय में कि ये कृत्य क्यों सम्पादित किए जाते हैं । इनका कोई महत्व है ? या नहीं, इन कृत्यों का पालन क्यों प्रारम्भ किया गया ? आदि प्रश्नों पर वह तनिक भी विचार न करके, इतना मात्र कहता है कि ये आचार विचार शकुन सम्बन्धी हैं और यदि इनका पालन नहीं किया जाएगा तो किसी प्रकार की आधिदैविक या अमानवीय कष्ट की संभावना है । लोक वर्ग इन कृत्यों को मूढ़ ग्राह भी नहीं मानता वरन् उसे वह विशेष महत्व का कृत्य मानता है । शास्त्र भी इस विषय में निश्चित संकेत नहीं

ऐजी चौथी भांवर पड़ रही, बेटी अभी तो ताउ की।

- |

ऐजी सातवीं भांवर अब बेटी हो गई साजन की ।।

-सत्यागुप्ता-खड़ी बोली का लोक साहित्य- पृ० ३६ ।

१- भा०ग्रं० पृ० ८५६ ।

२- प्रे०सर्व० पृ० १५४, १६२ ।

३- वही, पृ० १५३-१६२ ।

मानसिक प्रक्रिया काम करती है किन्तु वह भी इन्हें मूढ़ ग्राह नहीं मानता। वह भी इन्हें स्थानीय प्रथाएं कहकर, इनके शास्त्र सिद्ध न होने पर भी इनके पालन का आदेश मात्र देता है[1]। लोक वर्ग में भी अपने लोकाचारों की व्याख्या नहीं करता, वह केवल इतना ही कहता है कि हमारे पूर्वजों ने इन कृत्यों को किया था इसलिए हमें भी इन कृत्यों का पालन करना है और यदि वह इन कृत्यों को नहीं करेगा तो हानि की संभावना है ।

आधुनिक नृतत्व शास्त्री (Anthropologists) तथा लोक मनोविज्ञान (Folk Psyoholoeists) तथा लोक वार्ता शास्त्री (Folk Lorists) इस विषय पर अनुसंधान कर विश्व में समान प्रथाओं के मिलने पर लोक मानस की प्रवृत्ति के अध्ययन के आधार पर कुछ लोक कृत्यों की व्याख्याएं प्रस्तुत करते हैं और कहते हैं कि लोक जीवन में सम्पादित होने वाले विविध जन्म मृत्यु तथा विवाह आदि संस्कारों से सम्बन्धित लोकाचार, अधिकांशतः प्रतीक रूप में है तथा इनका अस्तित्व प्राचीन तथा लोक व्यापी है । अवश्य है कि लोक वार्ता शास्त्र, नृतत्व शास्त्र तथा लोक मनोविज्ञान भी समस्त लोक कृत्यों की यथोचित व्याख्याएं प्रस्तुत न कर केवल उनके मूल की ओर संकेत करते हुए संभावना ही प्रकट करता है कि विशेष लोक कृत्य का तात्पर्य विशेष लोक मानस की प्रवृत्ति से संबंधित है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में जैसा पहले कहा जा चुका है अनेक लोक कृत्यों का जिनका सम्बन्ध जन्म मृत्यु तथा विवाह से है उल्लेख किया है । उपरोक्त लोक कृत्यों में से अनेक लोक कृत्यों की व्याख्या लोक वार्ताशास्त्रियों तथा नृतत्वशास्त्रियों ने की है जिनका उल्लेख भारतेन्दु युगीन काव्य का लोक

१- ग्राम वचन तथा स्थानीय प्रथाओं की गदाधर व्याख्या करते हुए कहते हैं- विवाहे श्मशाने च वृद्धानां स्त्रीणां च वचनं कुर्युः । सूत्रे अनुपविद्धमपि वधूवरयोर्मंगल सूत्रं गले माला धारणमादि, पा॰गृ॰सू॰ १-८-११ पर गदाधर ।

तात्त्विक अनुशीलन करते हुए महत्वपूर्ण है। जन्म सम्बन्धी उल्लिखित लोकाचारों में निम्नलिखित प्रमुख लोकाचारों का उल्लेख हुआ है।

जन्म सम्बन्धी लोकाचारः-

जन्म सम्बन्धी लोकाचारों में टीका लाने का उल्लेख भारतेन्दु युगीन कवियों ने किया है तथा कहीं कहीं टीका के रूप में थार में दूब, दधि रोचन[1] भी लाने का उल्लेख किया है। सिद्ध है कि टीका में दूब दधि रोचन का ही सर्वाधिक महत्व है। जन्म के अवसर पर प्रायः स्त्रियां नवजात शिशु के लिए दूब दधि रोचन थार में रखकर लगती है और नवजात शिशु के टीका करती है। संपूर्ण टीके में प्रयुक्त होने वाली सामग्री को ही टीका कहते है। टीका संभवतः टोने का ही एक प्रकार है, जो लोक वर्ग में शिशु की आधि व्याधि तथा कुदृष्टि से बचने हेतु ही लगाया जाता है। टीका यद्यपि जन्म सम्बन्धी लोक कृत्य का एक प्रमुख अंग है किन्तु टीके का प्रयोग लोक वर्ग में विविध अवसरों पर होता है तथा कहीं बाहर जाते समय, पूजा करते समय, शुभ कार्य करते समय केवल नवजात शिशुओं के ही नहीं वरन् बालक युवा वृद्ध सभी के लगाया जाता है और टीका लगाने के बाद दई-देवताओं से प्रार्थना की जाती है कि टीका लगे हुए व्यक्ति को किसी प्रकार का कष्ट न हो। कहीं बाहर जाते समय टीका लगाने की तथा दई-देवताओं से संकटों से रक्षा करने की प्रार्थना करने की प्रथा अति लोक व्यापी है। इन प्रथाओं से भी सिद्ध होता है कि संभवतः टीका अनुष्ठान का ही एक रूप है और टीका का नवजात शिशु के लिए प्रयोग कुदृष्टि रखने वाले तथा ईर्ष्यालु व्यक्ति से रक्षा हेतु ही किया जाता है। टीका के समय दूब दधि रोचन का, जो हल्दी का बनता है, प्रयोग क्यों होता है? लोक मानस

1- रोचनः रोचन शब्द लोक में उस पदार्थ के लिए प्रचलित है जिससे टीका लगाया जाता है। रोचन को रोड़ी भी कहते हैं। यह दो प्रकार से बनाया जाता है। सर्वप्रथम पिसी हुई हल्दी में नींबू घोंटकर रोचन बनाया जाता है। दूसरी साधारण तथा सरल विधि हल्दी तथा बूरा मिलाकर भी रोचन बनाने की है। दूसरे प्रकार का रोचन उत्तम कोटि का नहीं माना जाता पर दूसरी विधि वाला रोचन सरल विधि के कारण प्रायः प्रयुक्त होता है।

दूब दधि रोचन का प्रयोग क्यों करता है? लोक वार्ता शास्त्रियों ने इस पर अध्ययन प्रस्तुत करते हुए महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। टीका की सामग्री में दूब का प्रयोग संभवतः अमरत्व के प्रतीक रूप में होता है दूब लोक में नित्यता तथा शाश्वतता गुण के लिए प्रसिद्ध है। दूब में अमरत्व का निवास माना जाता है क्योंकि दूब सूखकर भी अपने स्वाभाविक हरे रंग को नहीं छोड़ती और पानी पड़ने पर पुनः सजी हो उठती है। अतः दूब ऐसी साधारण वस्तु का अमरत्व के प्रतीक रूप में टीका में अनुष्ठान रूप में प्रयोग करना अति स्वाभाविक है। दधि संभवतः शुभ्रता का अतः व कीर्ति का प्रतीक है। दधि का प्रयोग लोक में संभवतः इसी विश्वास से किया जाता है कि टीका लगे हुए व्यक्ति को भी कीर्ति मिले। रोचन में हलदी का प्रयोग होता है अतः रोचन का सम्बन्ध हल्दी से है और हल्दी ही प्रतीक रूप में गृहीत है। हल्दी का प्रयोग प्रायः प्रत्येक शुभ समय में होता है। विवाह के समय भी दरवाजे पर हल्दी से निशान बनाए जाते हैं। हाउलेट[1] ने इस पर विचार किया है और बताया है कि हल्दी किस प्रतीक रूप में गृहीत है। हाउलेट का अनुमान है कि भारत में हरद का प्रयोग शुभ कार्यों में बहुत होता है और इसका कारण यही है कि हरद शब्द हर से बना है। और इसका रंग सूर्य के रंग के समान अर्थात् पीत वर्ण का है अतः लोक मानस ने हरद को तथा इस रंग के सभी द्रव्यों को सूर्य के प्रकाश का प्रतीक माना जैसा पुराने रोम में वधू वर के दरवाजों पर तेल जो हरद के ही रंग का होता है और वहां भी वह सम्पन्नता का प्रतीक ही माना जाता है। उसी प्रकार हरद भी सूर्य के प्रकाश के प्रतीक रूप में गृहीत हुआ तथा संपन्नता और पूर्णता का प्रतीक माना गया। सम्भवतः टीका में हल्दी का प्रयोग इसी रूप में किया जाता है कि वह संपन्नता तथा पूर्णता के प्रतीक रूप में है और इसीलिए महत्वपूर्ण है।

---

1. Marriage Customs- E.Howlett, Westminister Review of 1893, Vol.XXL p.613. (Quoted by Jameshed Ji Modi in Anthropological Papers, Vol.V, p.98.)

दूसरा जन्म के अवसर पर ~~भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित~~ लोक कृत्य चौमुखा दीप जलाना तथा आरती करने का उल्लेख भारतेन्दु युगीन काव्य में हुआ है । नवजात शिशु की चौमुखे दीप द्वारा आरती करना एक लोक प्रचलित कृत्य है । चौमुखा दीप द्वारा आरती करने का अर्थ क्या है ? इसका लोक वार्ता शास्त्रियों ने गम्भीरता से अध्ययन किया है । लोकवार्ता शास्त्रियों का कहना है कि जन्म के अवसर पर दीप जलाना केवल भारत में ही प्रचलित लोकाचार नहीं है, वरन् विश्व भर में जन्म के समय तथा उसके कुछ दिन बाद तक दीप जलाए रखने की प्रथा है । पहलवी और परशियन पुस्तकों में भी दीप जलाने की प्रथा का उल्लेख मिलता है । दीपक जलाने के कारणों का विवेचन करते हुए वहां बताया गया है, कि अग्नि जलाने से देवों का अर्थात् बुरे प्रभाव घर पर नहीं पड़ते । फारसी प्रथा है कि शिशु के जन्म पर दीपक जलाया जाता है और उसे तीन दिन तथा तीन रात तक बुझाया नहीं जाता, यह दीपक जहां जच्चा रहती है वहां जलाया जाता है । लोक विश्वास है कि जन्म के समय शिशु अति नाजुक अवस्था में रहता है और दीपक जलाने से बुरी आत्माएं तथा कुदृष्टियां उस पर कुप्रभाव नहीं डाल सकती क्योंकि प्रकाश से भूत प्रेतों का विरोध है, जहां प्रकाश होता है वहां बुरी आत्माएं प्रवेश नहीं कर पाती । एक नृतत्वशास्त्री[1] का मत है कि यद्यपि मूलतः दीपक का प्रयोग भूत-प्रेतों आदि से शिशु की रक्षा करना ही था, किन्तु अब दीपक सन्तति की चिरायु कामना के प्रतीक रूप में प्रयुक्त होने लगा है और संभवतः इसीलिए अब कहा जाता है कि "तुम्हारा चिराग रोशन रहे" अर्थात् तुम्हारी सन्तति फले फूले । चौमुखा दीप संभवतः चारों दिशाओं का भी प्रतीक है और इसका प्रतीकार्थ यह है, कि शिशु की कीर्ति चारों दिशाओं में फैले । आरती भी टोटके का एक रूप ही है और लोक मानस आरती कु-दृष्टि तथा कुप्रभाव से ही रक्षा हेतु किया जाता है, हिन्दुओं के मध्य यह विचार बहुत दृढ़ भी है कि कुदृष्टि रखने वाले व्यक्तियों का जो ईर्ष्या आदि रखते हैं किसी न किसी रूप में बुरा प्रभाव पड़ सकता है और उसका समाधान

---

1. J.J.Modi - Anthropological Papers Part II p.60

ह होना चाहिए । संभवतः इस समाधान के लिए लोक मानस ने आरती रूपी टोटके को जन्म दिया है जिससे वह कुदृष्टि के प्रभावों को दूरकरता है। कुदृष्टि सम्बन्धी कुप्रभाव का विश्वास केवल भारत में ही नहीं है उसका प्रचार विश्व भर में किसी न किसी रूप में मिलता है । एक विद्वान् का कहना है कि यूरोपियन देशों में इस प्रकार के विचार अति प्रचलित है और उसने अनेक ग्रामों में ऐसे दृष्टान्त देखे हैं जहां लोक वर्ग अपने बच्चों को किसी अजनबी या कुदृष्टि रखने वाले आदमी को देखकर फौरन हटा लेते हैं कि कहीं इस व्यक्ति की बुरी दृष्टि हानिकारक न बन जाए । हिन्दुओं ने इस कुदृष्टि प्रभाव को दूर करने के लिए आरती को जन्म दिया[1]। ग्रामों में इस प्रकार की प्रथा आज भी बहुत प्रचलित है । ग्रामों में खेतों में खेती के समय खेतों के मध्य एक खंभा गाड़ कर उस पर मिट्टी का बर्तन रख दिया जाता है तथा उसे चूने से रंग दिया जाता है । यह भी टोटका है । इसका कारण यही है कि यदि किसी कुदृष्टि का प्रभाव पड़ेगा तो वह पहले क इसी बर्तन पर पड़ेगा और इस प्रकार खेतों पर कोई नुकसान नहीं पहुंच सकेगा[2] इस प्रकार आरती का मूल भी सम्भवतः कुप्रभावों से रक्षा हेतु टोटका रूप में ही हुआ है ।

इसके अतिरिक्त थापे दिए, कलश धरने का भी उल्लेख किया गया है । जन्म के समय पर लोकाचार रूप में थापे दिए हुए कलश धरने का भी विशेष महत्व है । इस कलश में घरेलू औषधियाँ पड़ी होती है तथा गरम किया हुआ जल रक्खा जाता है, जिसे ही जच्चा को पिलाया जाता है । लोक भाषा में इस प्रकार के कलश को चरुआ कहा जाता है अवधेय है कि यह कलश स्थापन की प्रथा अनुष्ठानात्मक नहीं है वरन् कलश पर लगे हुए थापे मात्र का ही अनुष्ठानात्मक महत्व है और संभवतः थापे का

---

1. Dubois: Hindu Manners Customs and Ceremonies p.149.
2. ibid . p.150.

प्रयोग शुभ मात्र माना जाता है इसीलिए उसका प्रयोग होता है ।

जन्म सम्बन्धी लोक कृत्यों में बधाई बांटने की भी लोक प्रथा है। यों तो बधाई बांटना हर्ष का सूचक है, किन्तु ज्ञातव्य है कि बधाई बांटने के पीछे एक मात्र हर्ष और उल्लास की भावना ही निहित नहीं है वरन् लोकमानस की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है जिसके कारण जन्म के अवसर पर बधाई बांटने की प्रथा चल पड़ी । इस लोक मानस की प्रवृत्ति का बधाई के प्रसंग में ही भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लेख मिलता है[1] वह है बधाई देकर नवजात शिशु के लिए आशीष तथा शुभ कामना लेना । लोक मानस का विश्वास है कि जिस प्रकार कुदृष्टि का (Evil eye) का बुरा प्रभाव तत्काल पड़ता है उसी प्रकार हर्षित होकर आशीष देने का फल भी तत्काल होता है अतः बधाई के पीछे आशीष लेने की ही प्रवृत्ति है ।

जन्म के लोक कृत्यों में राई नोन उतारने तथा सोना मुहर आदि न्योछावर करने का उल्लेख हुआ है । यह दोनों ही कृत्य पूर्णतया लोकानुष्ठानात्मक है तथा इनके पीछे टोने टोटके की ही भावना निहित है । राई नोन उतारने का तथा न्योछावर दोनों का मूल टोटकों में ही है । इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि अधिकांश टोटकों में न्योछावर में की जाने वाली तथा राई नोन उतारने में की जाने वाली क्रियाएं अर्थात् विशेष वस्तु को हाथ में लेकर जिसका न्योछावर किया जाता है या जिसकी राई नोन उतारी जाती है उसके ऊपर सात बार या पांच बार विशिष्ट बातों का उच्चारण करते हुए घुमाकर दान कर दी जाती है । संभवतः इसका प्रयोग नवजात शिशु पर पड़े हुए या संभावित कुप्रभावों को न दूर करने हेतु ही किया जाता है । इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह भी है कि न्योछावर तथा राई नोन उतारने के बाद शिशु की चिरायु होने की कामना इष्ट देवता या कुलदेवता से

१- राव जू आज बधाई दीजै ।
तुम्हरे प्रकट भई श्री राधा कह्यो हमारो कीजै ।
गोपिन को मनि गन आभूषन दै दै आशिष लीजै ।
गुवालन पाग पिछोरी यातें सब दुख छीजै ।।

—भा० ग्रं० ५३३ ।

की जाती है । इस प्रकार सिद्ध है कि आरती के समान ही राइ नौन उतारना तथा न्योछावर का प्रयोग भी कुप्रभावों को दूर करने हेतु ही किया गया है ।

इसके अतिरिक्त जन्म सम्बन्धी लोक कृत्यों के प्रसंग में तोरण बांधने का उल्लेख किया गया है । यों तो तोरण बान्दि द्वार पर बांधना हर्ष का सूचक ही है पर प्रायः तोरणों में आज भी विशेषतः शुभ कृत्यों पर हरी पत्तियों का ही तोरण बनाने में प्रयोग होता है । तोरण के लिए पत्तियों का ही प्रयोग होता है ? ऐसा क्यों है? यह विचारणीय है । विश्व के अधिकांश लोक वर्ग में पत्तियों का प्रयोग शुभ माना जाता है । और इस सम्बन्ध में अनेक लोक विश्वास भी प्रचलित हैं । पतझड़ के मौसम में अनेक देशों में पेड़ों से गिरती हुई पत्तियों को रोकने की या पकड़ने की प्रथा प्रचलित है और लोक विश्वास है कि जितनी ही पत्तियां पकड़ी जाएगी उतना शुभ होगा[1]। कहीं तो इतना भी विश्वास है कि यदि कोई व्यक्ति एक भी पत्ती पेड़ से गिरती हुई पकड़ लेता है तो वह उस व्यक्ति की मौसम सम्बन्धी विपत्तियों से रक्षा करेगी । इस प्रकार पत्तियों का पकड़ना शुभ माना जाता है, इसलिए यदि लोक वर्ग ने पत्तियों की विशाल तोरण बनाकर इसी विश्वास से, कि जितनी पत्तियां होगी शुभ होगा, बनाया हो, और शुभ अवसर पर इसी कारण घर के द्वार पर लगाया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है । अवधेय है कि लोक वर्ग घनी से घनी पत्तियों की तोरण बनाना पसंद करता है और इसके संबंध में भी उपर्युक्त लोक विश्वास ही मूल में संभवतः है । तोरण के शुभ सूचक होने का उल्लेख भारतेन्दु युगीन काव्य में मिलता ही है[2]।

विवाह सम्बन्धी लोकाचार:-

विवाह मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण प्रसंग है और मानव

१- Encyclopaedia of superstitions p.216

२- प्रे० सर्व० पृ० १४२ ।

जीवन ने विवाह को ही मानव जीवन का सबसे बड़ा तथा महत्वपूर्ण प्रसंग माना है। कारण स्पष्ट है कि जहां जन्म तथा मृत्यु प्रसंग आदिम मानव की केवल आश्चर्यवृत्ति से संबंधित थे, जिनके विषय में उसे कुछ भी ज्ञान न था वरन् जिन्हें वह केवल दैवीय समझता था और नहीं जिनके विषय में उसकी कुछ शक्ति काम कर सकती थी, अतः ऐसी आश्चर्य मयी दैवी घटनाएं उसके लिए आश्चर्य कारक जरूर थीं, लेकिन अपना उसमें कोई अंश न समझकर ने उसके लिए महत्वपूर्ण विशेष नहीं थी। उपयोगिता की दृष्टि से -नव-जात शिशु की पूर्ण असहायावस्था तथा विभिन्न आपत्तियों के लिए उसकी रक्षा तथा उसके लिए भोजन की आवश्यकता, प्रसवावस्था के कठिन समय में शिशु तथा अपनी सुविधा तथा संरक्षणता, कृषि तथा पशुपालन के लिए तथा वंश की अक्षुण्णता सभी दृष्टियों से विवाह का अति प्राचीन काल से मानव जीवन में महत्वपूर्ण योग रहा है और ऐसे महत्वपूर्ण अवसर पर कुदृष्टियों से अपनी रक्षा हेतु तथा अवसर को अधिक सुखकारी बनाने हेतु लोक वर्ग ने लोकाचारों को जन्म दिया है, जो एक अनुष्ठान रूप में है। ऐसी प्रथाओं को स्थानीय प्रथाएं कहा गया है और इनका शास्त्रीय महत्व न होकर लौकिक महत्व ही अधिक है। इस प्रकार विवाह के पीछे ही सर्वाधिक लोकाचारों की स्थिति है जिनका मूल अनुष्ठानात्मक तथा टोना-टोटका परक है[1]।

इसके अतिरिक्त विवाह सम्बन्धी लोकाचार विवाह प्रथा के इतिहास के अवशिष्ट तत्व रूप में भी है। उदाहरणार्थ विवाह अनेक प्रकार के हैं राक्षस विवाह, पैशाच विवाह तथा धन द्वारा वधू को खरीद कर विवाह आदि करना। लोकवार्ताशास्त्रियों तथा नृतत्वशास्त्रियों का विश्वास है कि विवाह के अनेक लोक कृत्य विविध विवाह के प्रकारों के प्रतीत रूप में गृहीत अवशिष्ट तत्व है। नृतत्वशास्त्रियों ने हर विवाह के लोक कृत्यों का मूल आदिम जातियों की विवाह प्रथा में देखने का प्रयत्न किया है। पर यहीं

---

1. " This is a natural consequence of the fact that the large bulk of marriage rites have originated in magical ideas which have vanished along with the progress of intellectual culture."- "Short History of Marriage-Westermark p.228.

नृतत्वशास्त्रियों की विचार धारा पूर्णरूपेण ठीक नहीं उतरती और इसीलिए विशेष लोक कृत्यों की आदिम जातियों में स्थिति ढूंढने के लिए उन्हें खींचा-तानी करनी पड़ती है, जबकि किसी अन्य प्रकार से बिना खींचा तानी के उनकी व्याख्या सरलतया हो जाती है। लोक मनोविज्ञान शास्त्रियों ने भी अनेक लोक मानस के तत्व दिखाते हुए बहुतों को प्रतीक रूप में बताते हुए लोक मानस की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है और इस प्रकार विविध लोकाचारों की व्याख्या की है। अवधेय है कि यद्यपि तीनों ही वर्ग अतिवादी अवश्य है, पर तीनों में ही सत्यता का अंश पर्याप्त है। अनेक विवाह संबंधी कृत्य टोने टोटके के रूप है, अनेक लोक कृत्यों में विभिन्न विवाह के प्रकारों के अवशेष हैं और अनेक विवाह सम्बन्धी लोक कृत्य लोक मानस की प्रवृत्ति के ही प्रतीक रूप में मानकर स्पष्ट किए जा सकते हैं।

भारतेन्दु युगीन काव्य में विवाह सम्बन्धी अनेक लोक कृत्यों का उल्लेख हुआ है जिनको लोक तात्विकता पर विचार करना आवश्यक है।

विवाह सम्बन्धी लोक कृत्यों में जैसा पहले कहा जा चुका है आदिम विवाह के प्रकारों के अवशेष मिलते हैं। यह आदिम विवाह प्रथा मुख्य रूप से दो प्रकार की है (१) हरण विवाह (२) निश्चित धन राशि देकर वधू को खरीदना[१]। नृतत्वशास्त्रियों का एक वर्ग प्रत्येक विवाह के कृत्यों में हरण का मूलरूप देखता है किन्तु यथार्थतः यह ठीक नहीं है। यद्यपि अनेक विवाह सम्बन्धी लोक कृत्य हरण विवाह के ही अवशेष है किंतु अनेक विवाह कृत्य धन द्वारा वधू को खरीदने के अवशेष भी है[२]। यद्यपि इन दोनों विवाह के प्रकारों से ही समस्त वैवाहिक कृत्यों का मूल नहीं खोजा जा सकता।

---

१. Bride purchase is a custom which has been at some time or other practised almost all over the world, and where we do not find it still in all its ancient force, we frequently find the relics of it- Symbolism in Marriage Customs- J.J.Modi.

2. Lectures in Ethnography by Iyer,L.K.A. p.140.

भारतेन्दुयुगीन काव्य में विवाह सम्बन्धी लोक कृत्यों में दहेज़ का उल्लेख मिलता है । दहेज़ उन विशेष वस्तुओं को जो धन, वस्त्र तथा वस्तुओं के रूप में होता है, जो वर को वधू की ओर से विवाह करने के लिए दिया जाता है । दहेज़ देना और लेना दोनों ही लोकाचार है । दहेज लेने की प्रथा यद्यपि कम होती जा रही है किन्तु दहेज की प्रथा चाहे अति स्वल्प ही देना पड़े, प्रथा रूप में निभाई जाती ही है । इसलिए अधिक न देने वाले भी कुछ न कुछ प्रथा के रूप में दे देते हैं और यह लोक कृत्य बन गया है ।

मालाबार, कोचीन, तथा ट्रावनकोर आदि स्थानों में दहेज, स्त्री का पिता के यहाँ के धन का हिस्सा माना जाता है जिसे लड़की को विवाहित होने पर तथा पति के साथ पिता से विलग होकर जाने पर, मिलता है । इस प्रकार दहेज के रूप में दिया जाने वाला धन या वस्तुएं उसकी अपनी पिता की सम्पत्ति के अपने अधिकार के रूप में समझी जाती है[1]।

लोक वार्ताशास्त्रियों का अनुमान है कि आदिम जातियों तथा असंस्कृत जातियों में धन द्वारा वधू प्राप्त करने की प्रथा का दहेज प्रथा एक अवशिष्ट तत्व है । लेकिन यह प्रथा आज परिवर्तित रूप में हमारे समक्ष आती है । जहाँ पहले पति स्वयं धन देकर अपने लिए पत्नी खरीदता था वहाँ अब लड़की का पिता अपने लड़की के लिए धन देकर पति खरीदता है । सभ्यता के विकास क्रम के साथ यह परिवर्तन हुआ है । इसका प्रमाण यह भी है कि आज भी ग्रामीण तथा असभ्य जातियों में वरही लड़की के पिता को धन देकर विवाह करता है और पत्नी बनाता है जबकि शिक्षित वर्ग में लड़की वाला लड़के को धन देता है ।

---

1. Anthropology of the Syrian Christians of Malabar, Cochin and Travancore. Chap.VIII. p.119-124.

दहेज की प्रथा विवाह के पूर्व ही हो जाती है तथा विवाह निश्चित करना ही इसका मूल अभिप्राय है । इसके बाद विवाह सम्बन्धी लोक कृत्यों में वर पक्ष के यहां तथा वधू पक्ष के यहां वधू की साज सज्जा है । वर की साज सज्जा में मौर, जामा, पटुका, सेहरा आदि प्रमुख हैं तथा मुख्य रूप से वर की वेशभूषा के मुख्य चिह्न हैं । नृतत्व शास्त्रियों का यह कहना है कि वर की संपूर्ण सज्जा में उस विवाह की प्रथा के चिह्न विद्यमान हैं जब विवाह बल द्वारा पत्नी को वश में करके होता था और वर की संपूर्ण साज सज्जा युद्ध के लिए तत्पर प्रधान सेनानी की है और प्रधानता का तथा सेहरा कवच आदि के परिचायक हैं । वधू के संबंध में भी विविध विवाह के समय की लोक सज्जा का उल्लेख भारतेन्दु युगीन काव्य में हुआ है जिसमें मेंहदी महावर, सेंदुर आदि शृंगार प्रसाधनों का उल्लेख हुआ है जिनका आगे विशेष विवरण दिया गया है । नृतत्व शास्त्रियों ने सेन्दुर में भी हरण प्रथा का अवशेष माना है और सेंदुर का प्रतीक समझा है कि वर ने वधू का सिर फोड़कर उसे वश में कर लिया है और वह उसके अधीन हो गई है । सेन्दुर वर ही चढ़ाता है और सेंदुर लगाने के बाद लड़की विवाहिता मान ली जाती है इससे उपर्युक्त विचार धारा की और अधिक पुष्टि होती है । विद्वानों का मत है कि सेन्दुर इस प्रकार लड़की के पति के अधिकार में होने का सूचक है[1]।

इसके बाद बरात जाने का तथा साथ में सहबाले के होने का भी उल्लेख है । बारात में नृतत्वशास्त्रियों ने सेना के तथा सहबाले के वररूपी प्रधान सेनापति के साथ उसके उपसेना पति का रूप देखा है । अवधेय है कि बारात में वर के बाद सबसे अधिक महत्व सहबाले का भी होता है और सेना में भी सेनापति के बाद उपसेना पति का ही महत्व होता है ।

इसके अतिरिक्त बारात में वर के घोड़ी पर जाने का "घोड़ी" में उल्लेख मिलता है तथा अनेक प्रकार से सजी सजाई घोड़ी का उल्लेख हुआ है । "घोड़ी" पर वर का जाना केवल "घोड़ी" गीत में ही उल्लिखित नहीं है वरन्

---

1. Col.Dalton: Lescriptive Ethanologyof Bengal.

यह एक लोकाचार भी है कि वर को घोड़ी पर चढ़ना पड़ता है[1] तथा इस प्रथा को लोक घुड़चढ़ी कहता है[2]। मनोवैज्ञानिकों ने इसकी अन्य प्रकार से व्याख्या की है और संभवतः यही सत्य के अधिक निकट प्रतीत होती है। लोक मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि प्रतीक रूप में ग्रहण करने की प्रवृत्ति लोक की अति व्यापक है और संभवतः यही इसके मूल में है। घोड़ी पत्नी का प्रतीक है तथा घोड़े पर चढ़ा हुआ वर पत्नी पर अधिकार करने वाले के रूप में गृहीत है, अर्थात् जिस प्रकार घोड़ी वर के वश में है, उसी प्रकार पत्नी भी वर के वश में ही पूर्ण रूपेण है। नृतत्व शास्त्रियों ने भी घोड़ी को पत्नी तथा उसे पति के वश में होने को ही प्रतीक रूप में माना है तथा हरण विवाह का अवशेष माना है कि जिस प्रकार घोड़ी अपने सवार के पूर्ण रूप वश में है और सवार की अतिरिक्त इच्छा के कुछ नहीं कर सकती। उसी प्रकार पत्नी जो हरण की हुई है हरण कर्ता के पूर्ण रूपेण वश में है और उसकी इच्छा के विपरीत नहीं जा सकती है। इसके बाद मंडप सजाने तथा वर-वधू के उसमें बैठने का उल्लेख है। राक्षस विवाह से ही समस्त वैवाहिक लोक कृत्यों का मूल सिद्ध करने वाले कहते हैं कि मंडप भी युद्ध सम्बन्धी कृत्यों का अवशेष है और अपने कथन की पुष्टि के लिए गोंड़ों तथा बिरहोरों में प्रचलित विवाह की प्रथाओं की ओर संकेत भी करते हैं[3]। उनका कहना है कि गोंड़ों के मध्य वर विवाह मण्डप से भागने का अभिनय करती हुई वधू का पीछा करता है जो निश्चय ही लड़की के उस विवाह से असहमति तथा लड़के के बलात्कार या हरण का सूचक है। इसी प्रकार बिरहोरों में एक विवाह प्रथा है जिसमें वर भागती हुई कन्या को पकड़ता है। इस प्रकार इसके पीछे भी हरण का सिद्धान्त है। अवधेय है कि यद्यपि कुछ लोकाचारों में हरण विवाह के चिह्न मान भी लिए जाएं किन्तु मंडप का तात्पर्य क्या है निश्चित नहीं हो पाता है। भारतीय नृतत्व शास्त्री जीवन जी जमशेद जी मोदी भी विवाह

१- सत्येन्द्र : ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन।

२- सत्यागुप्ता: खड़ी बोली का लोक साहित्य।

३- हिन्दू संस्कार: पृ० २०५।

के कृत्यों के प्रतीक रूप में ही देखते हैं और मंडप के संबंध में भी वे यही कहते हैं कि मण्डप वैवाहिक युगम की उर्वरता तथा प्रजनन कामना का परिचायक है[1]। किन्तु मोदी जी ने यह निर्णय किस प्रकार मण्डप के संदर्भ में निकाल लिया यह न तो पूर्णतया स्पष्ट ही है नहीं निश्चित प्रमाणों पर आधारित होने के कारण ग्राह्य ही हो सकता है ।

मण्डप में ही वर तथा वधू के गांठ जोड़कर के लोकाचार का भारतेन्दु युगीन काव्य में अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है । अवधेय है कि यह प्रथा केवल भारत में ही नहीं प्रचलित है, वरन् विश्व भर में किसी न किसी रूप में प्रचलित है । कहीं वर तथा वधू के वस्त्रों में गांठ देते हैं तथा कहीं दोनों के हाथों को किसी घास से तो कहीं बैल के चमड़े से बांधते हैं । सभ्य समाज में वर के जामें तथा वधू की साड़ी में गांठ लगा दी जाती है । इस प्रकार विश्व के अधिकांश देशों में प्राप्त यह प्रथा लोकमानस की प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है और वह है दोनों को बांधकर दोनों की एकता की सूचना[2]। दोनों वर तथा वधू को एक सूत्र में बांध कर दोनों की एकता समझाना लोक मानस की एक व्यापक प्रवृत्ति है जो विश्वभर में किसी न किसी रूप में विवाह के अवसर पर की जाती है ।

भांवर की प्रथा भी भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित है । यों तो यह आज शास्त्रीय प्रथा रूप में गृहीत है । मनुस्मृति में इस का उल्लेख भी मिलता है सप्तपदी के नाम से[3]। किन्तु लोक में भी यह प्रथा विवाह सम्बन्धी कृत्यों में आवश्यक लोक कृत्य मानी जाती है । बिना भांवर पड़े कन्या अविवाहित ही मानी जाती है । इस प्रकार हो सकता है कि मूलतः यह शास्त्रीय प्रथा ही रही हो और बाद में इसका लोक में ग्रहण हुआ है किन्तु आज भी लोक प्रथा से अलग नहीं किया जा सकता । लोकगीतों में भांवर के अनेक उल्लेख मिलते हैं । भांवर का इतना व्यापक प्रचलन तो यही

---

1. Symbolism in Marriage Customs and Ceremonies p.
2. Ibid. p.111-113.
3- पाणिग्राहणिका मंत्रा नियतं दारलक्षणं ।
   तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विवाहत्सप्तमे पद ।।-मनु ।।

सिद्ध करता है कि संभवतः यह प्रारम्भ लोक कृत्य ही था जिसका शास्त्रीय-करण किया गया । भाँवर पड़ते समय वधू-वर के पीछे सात कदम चलती है। इसमें लोक मानस की यह प्रवृत्ति भी सूचित होती है कि यह इस बात का प्रतीक है कि वधू प्रत्येक कार्यों में वर का अनुकरण करेगी । पीछे पीछे चलने की क्रिया के ~~अनुरूप~~ अनुकरण के प्रतीक रूप में गृहीत कर लेना लोक मानस के लिए अति स्वाभाविक ही है ।

इन उपरोक्त कृत्यों के अतिरिक्त वधू पक्ष के यहां सम्पन्न होने वाले लोक कृत्यों में वधू के यहां सारे संबंधियों के उपस्थित होने का, कन्या दान का, ज्योनार तथा गाली गाने का भी विशेष महत्व है । यों तो विवाह के अवसर पर कुछ नृतत्वशास्त्रियों जिन्होंने हरण का अनैतिक देखा है दोनों में दोनों ओर की सेनाओं का प्रतीक माना है किन्तु संभवतः यह पूर्णतः उचित नहीं प्रतीत होता । विवाह के समय में सारे संबंधियों का उपस्थित होना शुभ कार्य में सबकी सहमति देने से ही शायद है । कन्यादान में पिता द्वारा कन्या के पैर पूजना संभवतः कन्या के प्रति सहानुभूति प्रकट करना तथा उसे धरोहर रूप में मानना प्रकट करता है ।

विवाह के अवसर पर ज्योनार आवश्यक समझा जाता था तथा इस अवसर पर वधू पक्ष के यहां की स्त्रियां गाली गाती है । ज्योनार तथा गाली गाने दोनों का विवाह के लोकाचारों के रूप में विशेष महत्व है। ज्योनार की प्रथा विवाह के अवसर पर केवल भारत में ही नहीं वरन् विश्व भर में तथा अति प्राचीन काल से मिलती रही है । प्राचीन काल में यूनान में भी यह प्रथा आदिम जातियों में भी मिलती है । निश्चित है कि यह व्यापक प्रथा है । ज्योनार पर वर के यहां के सभी निकट सम्बन्धी तथा मित्र आदि साथ बैठकर खाना कहते हैं । विद्वानों का विचार है कि ज्योनार मित्रों तथा परिवार वालों की वर तथा वधू के विवाह के सम्बन्ध में सहमति रूप में गृहीत है । ग्रीक में भी ज्योनार सहमति लेने के रूप में गृहीत थी । विवाह के अवसर पर ज्योनार द्वारा लोगों की गवाही तथा उनकी सहमति ली जाती थी । विवाह के समय होने वाला ज्योनार उस समय की प्रथा का

परिचायक है जबकि एक व्यक्ति एक विशेष वर्ग का समझा जाता था, उसकी एक विशेष जाति तथा धर्म होता था तथा विवाह के अवसर पर जब एक नई नवेली लड़की उस वर्ग में आने जा रही है तो ऐसे अवसर पर उस वर्ग के लोगों से सहमति लेना आवश्यक था और सहमति के रूप में ही ज्योनार किया जाता था ।

ज्योनार के समय गाली गाना वर पक्ष के लोगों को अश्लील तथा कुरुचिपूर्ण शब्द कहना प्रचलित है । ऐसा क्यों होता है? अवश्य है शुभ अवसर पर ऐसे अशुभ वाक्य क्यों कहे जाते हैं, इसका कारण क्या है । इस पर विवेचन करते हुए विद्वानों का कहना है कि विवाह ऐसे शुभ अवसर पर कुरुचि पूर्ण शब्द कहना लोक मानस की प्रवृत्ति की सूचना देता है । लोक मानस का विश्वास है कि शुभ अवसर पर अशुभ वाक्य कहना आवश्यक होता है, इससे विघ्न नहीं पड़ता और कार्य अच्छी तरह सम्पन्न होता है । तथा शुभ कार्यों पर बुरी दृष्टि का इस ढंग से प्रभाव नहीं पड़ता, इसीलिए यह प्रथा प्रचलित है । लोक में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनसे लोक मानस की इस प्रवृत्ति का परिचय मिलता है ।भैया दुइज पर कही जाने वाली एक कहानी ही ऐसी है जिसमें भाई के सबसे प्रिय व्यक्ति अर्थात् बहिन के कोसने से भाई की मृत्यु से रक्षा होती है और भाई की यम दूतों से रक्षा करने के लिए बहनि को यही मूल मंत्र बताया गया है । इसी प्रकार बौद्ध स्थापत्य में बाहर की मूर्तियां नग्न बनाने की प्रथा है, लोक विश्वास है इससे वज्र नहीं गिरता । इस प्रकार ज्योनार के समय गाली गाना भी इ टोटके का ही रूप है ।

सथिए बसन अर्थात् स्वस्तिका युक्त वसन् तथा तोरण बंदनवार तथा यव युक्त कलश की स्थापना का भी भारतेंदु युगीन काव्य में उल्लेख हुआ है । तोरण आदि का शुभ अवसरों पर प्रयोग क्यों होता है ? इस पर जन्म संबंधी लोक कृत्यों की लोक वार्ताशास्त्रीय व्याख्या करते हुए निर्देशन किया जा चुका है । सथिए बसन पर विचार करना शेष है । लोक जीवन में प्रत्येक शुभ कार्यों में वस्त्रों पर या अन्य वस्तुओं पर स्वस्तिका का बने

चिन्ह प्रायः बनाया जाता है ।

स्वस्तिक चिन्ह लोक व्यापी है और अनेक विश्व के देशों में यह प्रयुक्त होता है । स्वस्तिक चिन्ह का अर्थ क्या है ? इस पर विद्वानों ने विभिन्न निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए किसी ने इसे लिंग पूजन का प्रतीक, प्राचीन वाणिज्य चिन्ह, अग्नि, विद्युत, आभूषण, अस्त्र, ज्योतिषीय चिन्ह, भारत के चार वर्णों का, प्रतीक आदि माना है[1] । किन्तु इसका अर्थ क्या है इसको निश्चित रूप से न कहकर यह कहा ही जा सकता है कि आदिम मानस विभिन्न प्रकार के सज्जात्मक चिन्ह बनाया करता था, जिसका अभिप्राय, केवल सज्जातमक न होकर अनुष्ठनात्मक होता था । ऐसे चिन्हों में ही शायद स्वस्तिक चिन्ह रहा हो । यह स्वस्तिक चिन्ह अन्य चिन्हों की भांति ही " Luck Motifs " सौभाग्यात्मक अभिप्रायः का सूचन करता रहा होगा । नृतत्व शास्त्रियों ने इन चिन्हों पर विचार करते हुए कहा है कि आदिम मानव की अलंकरण प्रवृत्ति ने इन चिन्हों को जन्म दिया है और यह सारे चिन्ह कलात्मक अभिप्राय से ही निर्मित हैं । इनका कोई अर्थ नहीं है । नृतत्वशास्त्रीयों का दूसरा वर्ग कहता है कि लगभग सभी चिन्ह किसी न किसी रूप में या तो धर्म से संबंधित हैं या किसी विशेष अनुष्ठानात्मक अभिप्राय से, और इनके पीछे सौभाग्य परक अभिप्राय निहित है । मोदी जी का भी यही विचार है कि स्वस्तिक चिन्ह के पीछे भी यही सौभाग्यात्मक अभिप्राय है और इसी प्रकार स्वस्तिक चिन्ह का निर्माण हुआ है । लोक मानस का विचार है कि इस स्वस्तिक चिन्ह बनाने से शुभ होता है[2] । प्रत्येक शुभ स्थानों पर इसका प्रयोग भी यही सूचित करता है ।

---

1. Mackenzie- Migration of symbols and their relation to belief and customs p.2.

2. My view is that these symbols have in the end luck motif and a Swastika also has a luck motif'. It signified that it brings good luck, the places where it is exhibited and to those with whom it is associated. Anthropological Papers Part V p.75.

स्वस्तिक चिन्ह का मूल स्थान कहाँ है?" इसका जन्म कहाँ हुआ इसका निश्चित रूपेण उल्लेख नहीं किया जा सकता किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि यह जैसा कि मैकेन्जी ने कहा है आदिम जातियों का यह चिन्ह था और अन्य अनेक ईसा के पूर्व के प्रतीक चिन्हों की भांति ही यह प्राचीन ईसाइयों द्वारा भी अपना लिया गया और यह रोम में बड़े स्वतंत्रता पूर्वक प्रयुक्त होने लगा[1]।

इन उपरोक्त विवाह संबंधी लोकाचारों के अतिरिक्त कुछ अन्य विवाह संबंधी लोकाचारों का उल्लेख हुआ है जो वधू के वर के यहां आने पर संपादित होते हैं। ऐसे लोकाचारों में सर्वप्रथम उल्लेखनीय कृत्य परछन है।

परछन वधू के प्रथम बार ससुराल आने के अवसर पर होता है। परछन में सास वधू को लक्ष्मी मानकर उसके चरण स्पर्श करती है तथा मूसल लोढ़ा आदि उतारकर विविध प्रकार के अनुष्ठान करती है। और तब वधू घर में प्रवेश करती है। इसी प्रकार परछन की क्रिया केवल वधू के ससुराल में प्रवेश करने के समय ही नहीं होती है वरन् वर के भी ससुराल में प्रवेश करने के पहले परछन होता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के जिलों में वधू के प्रथम बार ससुराल आगमन पर तथा खड़ी बोली प्रदेश में इसके विपरीत अर्थात् वर के ससुराल प्रथम बार आगम के समय होता है[2]। परछन की क्रिया केवल भारत में ही नहीं विश्व के अनेक देशों में होती है। पारसियों के मध्य भी वर वधू को द्वार पर विभिन्न अनुष्ठानों द्वारा स्वागत करने की प्रथा है।

परछन के अतिरिक्त मुंह दिखलावनी की प्रथा का भी भारतेंदु युगीन कवियों ने उल्लेख किया है। इसमें वर पक्ष के लोग वधू का मुंह देखकर उसे उपहार आदि देते हैं। संभवतः इसका मूल केवल वर पक्ष के यहां के लोगों की सहमति तथा उत्सुकता में ही है कि बहू कैसी है।

---

1. The migration of symbols and their relations to belief and customs- Mackenzie.D.A. p.5.

२- सत्यागुप्त: खड़ी बोली का लोक साहित्य पृ० ५५।

गवना प्रथा का उल्लेख भी हुआ है । गवना उस कृत्य को कहते हैं जब वर यौवन प्राप्त कर अपनी वधू को अपने ससुराल से प्रथम अपने घर के लिए लेने जाता है ।

मृत्यु सम्बन्धी लोकाचार:-

मृत्यु सम्बन्धी लोकाचारों में तर्पण करने तथा पिण्ड दान देने का भारतेन्दु युगीन कवियों ने उल्लेख किया है । तर्पण तथा पिण्डदान के मूल में लोक मानस की इह लोक के ही समान परलोक की स्थिति में विश्वास करना है, जहां मर कर मृतक जाता है और इह लोक के ही समान आचरण और व्यवहार करना है । रिवर्स[1] आदि सभी विद्वानों का विचार है कि आदिम जातियों के मध्य यह विचार बहुत दृढ़ है कि जीव मर कर नष्ट नहीं होता वरन् वह दूसरे लोक को जाता है और वह लोक इसी संसार के समान है और मृतक को वहाँ भी उन्हीं वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, जिसकी इस लोक में आवश्यकता पड़ती है । तर्पण तथा पिण्डदान में जल देने के मूल में भी लोक मानस का यही विश्वास है कि इससे मृतक तृप्त होता है ।

लोक चेटक तथा लोकानुष्ठान

लोकानुष्ठानों से हमारा तात्पर्य उन अनुष्ठानों से है जिन्हें लोक वर्ग केवल परम्परागत रूप में, उपरिलिखित विविध लोकाचारों के समान आंख मूंदकर पालन नहीं करता, वरन् किसी विशेष प्रयोजन से किसी प्रकार की सिद्धि के लिए कुछ विशेष प्रकार के सामान्य अनुष्ठान करता है और जिनका उसकी दृष्टि में तत्काल प्रभाव पड़ता है । ऐसे लोकानुष्ठान लोक वर्ग में अनेक प्रचलित हैं और इन्हें जादू, टोना, टोटका, नजर लगना तथा मूठ चलाना आदि कहते हैं ।

---

1. Rivers, W.H.R.: Psychology & Ethnology p.43,46.

जादू की क्रियाएं शास्त्रीयता भी प्राप्त कर चुकी हैं पर टोने टोटके, नज़र लगाना तथा मूठ चलाना आदि क्रियाएं पूर्णतः लोकात्मक ही हैं । कारण स्पष्ट है कि जादू की क्रियाएं प्रमुख रूप से विशेष शब्दों की स्थिति तथा उनकी उच्चारण प्रकृति तथा शक्ति पर अवलम्बित है अतएव वे निश्चित तथा सर्वकाल साध्य हैं, जबकि टोने में ऐसी बात नहीं है, वे प्रायः अनुष्ठान परक ही हैं । इसीलिए जादू में निश्चितता अधिक है तथा टोने टोटके में संभावना अधिक है । लोक वर्ग में जादू की क्रियाओं को टोने टोटके में ही समाहित कर रक्खा है और वहां बहुत कुछ जादू शब्द का प्रयोग टोने टोटके आदि के रूप में ही होने लगा है ~~और~~ इस प्रकार टोना टोटका तथा जादू में थोड़ा भेद होते हुए भी दोनों एक दूसरे की सीमा को स्पर्श करते हुए एक से हो जाते हैं । इन विशेष अनुष्ठानों को टोना टोटका नाम क्यों दिया गया यह भी विचारणीय है और यह इस सम्बन्ध में लोक मानस की प्रवृत्ति को भी स्पष्ट करता है। लोक मानस का विश्वास है कि टोना टोटका विश्वासात्मक तथा अनुष्ठानात्मक है और विशिष्ट कार्य की सिद्धि में विशिष्ट अनुष्ठानों को सक्षम मानकर ही अनुष्ठान प्रारम्भ किया जाता है । अर्थात् अनुष्ठान सम्पादित करने से पूर्व ही विश्वास कर लिया जाता है कि इस प्रकार के अनुष्ठान से विशेष कार्य सिद्धि होगी । इस प्रकार विश्वास इनकी मूल भित्ति है । लोक मानस का विश्वास है कि यदि बिना विश्वास किए संदेह की स्थिति में होकर अनुष्ठान किया जाता है तो विधिवत् अनुष्ठान संपन्न होने पर भी कार्य सिद्धि नहीं होगी । बिना तथ्य के विश्वास करना आदिम मानस की ही प्रवृत्ति है और इसीलिए यह अनुष्ठान जितने रूपात्मक नहीं उतने विश्वासात्मक हैं । लोक मानस का विश्वास है कि यदि इस प्रकार के विशेष अनुष्ठानों को सम्पादित करते समय यदि बीच में किसी प्रकार की बाधा पड़ेगी और कोई बीच में टोकेगा तो निश्चित ही अनुष्ठान सफल नहीं होगा और कार्य सिद्धि नहीं होगी । इस प्रकार लोक विश्वास है कि टोटका करते समय टोकने से प्रभाव नष्ट हो जाता है। इसी लोक मानस प्रवृत्ति के आधार पर इसका नाम संभवतः टोटका पड़ा ।

लोकानुष्ठानों में जादू, टोना, टोटका, मूठ चलाना तथा नजर लगाना आदि अनेक नामों से भारतेन्दु युगीन कवियों ने उल्लेख किया है। जादू टोना टोटका के विषय में ऊपर उल्लेख कियाजा चुका है। मूठ चलाना भी टोटका आदि के लिए प्रयुक्त शब्द है। मूठ चल गई का अर्थ है टोटका हो गया। आदि। नज़र लगाना भी टोने का एक साधारण रूप है जिसमें कोई अनुष्ठानादि नहीं किया जाता वरन् कुभावना से किसी व्यक्ति को देखा जाता है और उस कुदृष्टि (Evil Eye) से ही व्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है। लोक में यह भी विश्वास है कि यह सबसे सामान्य प्रकार का टोना है, अतः इसका प्रभाव केवल छोटे बालकों पर ही पड़ सकता है। प्रबल मानसिक शक्ति या इच्छाशक्ति (String will Power) वाले व्यक्तियों पर इसका प्रभाव नहीं पड़ सकता यों तो जादू टोटके, टोने सभी शुभ तथा अशुभ फलदायक हो सकते हैं और इसीलिए फर्थ ने इन्हें संवर्धक, संरक्षक तथा विनाशक तीन भागों में विभाजित किया था पर सामान्यतः जादू टोने के विनाशक प्रवृत्ति वाले अर्थात् दूसरे व्यक्तियों को हानि पहुंचाने वाले ही अधिक होते हैं और संभवतः इन्हें इसीलिए सामाजिक मान्यता भी नहीं मिली। किन्तु फिर भी जिस प्रकार मारण मोहन स्तम्भन तथा उच्चाटन चार प्रकार के मंत्र होते हैं उसी प्रकार टोने टोटके भी चारों ही वर्ग के मिलते हैं। प्रसिद्ध विद्वान् फ्रेजर ने जादू या टोने टोटके के लोक मानस प्रवृत्ति के आधार पर दो प्रमुख भेद किए हैं:-

(क) <u>होमियो पैथिक मैजिकः</u> सदृश वस्तु सदृश को प्रभावित करती है। जैसे शत्रु का पुतला बनाकर उसे जलाना, मारना, नष्ट करना आदि से कल्पना की जाती है कि शत्रु का भी विनाश होगा।

(ख) <u>कान्टेजियस मैजिकः</u> संबद्धता के आधार पर होने वाला प्रभाव। जैसे किसी व्यक्ति के नख, वस्त्र, बाल आदि के द्वारा टोना किया जाता है और जिसकी वस्तु है उस पर प्रभाव पड़ेगा ऐसा विश्वास किया जाता है।

इसी प्रकार अच्छे कार्यों के लिए तथा बुरे दृष्टिकोण से भी टोने

किए जाते हैं और इस प्रकार अच्छे कार्यों से संबंधित टोने जिन्हें व्हाइट मैजिक तथा बुरे कार्यों से संबंधित टोने जिन्हें ब्लैक मैजिक कह सकते हैं, होते हैं ।

मूठ चलाना भी एक प्रकार का टोना है जो मुट्ठी में मंत्र भरकर मारा जाता है और जिस पर मारा जाता है उसको प्रभावित करता है । जादूगरों के मध्य मूठ मारना एक क्रीड़ा तथा योग्यता का परिचायक भी माना जाता है । एक जादूगर मूठ मारकर दूसरे को प्रभावित करना चाहता है तथा दूसरा व्यक्ति मूठ का प्रभाव रोक कर अपने मूठ से दूसरे को प्रभावित करना चाहता है । इस प्रकार टोना का एक रूप ही मूठ भी है ।

सामान्यतः रूप से जादू, टोना, टोटका, मूठ मारना तथा नज़र न लगाना आदि लोक चेटकों के विषय में निम्न बातें कही जासकती है- कि ये -

१- प्रत्यक्ष फलदायक हैं

२- वैयक्तिक तथा प्रायः गुप्त हैं ।

३- निश्चित उद्देश्य की ओर लक्षित हैं ।

४- बहुधा कुप्रभाव युक्त हैं ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में जादू, टोना, नज़र लगाना तथा मूठ चलाना सभी का उल्लेख मिलता है पर इनके विषय में विस्तार से इनके अनुष्ठान आदि का परिचय नहीं मिलता, यद्यपि इन उल्लेखों से इन लोक चेटकों के सम्बन्ध में प्रचलित अनेक लोकमान्यताओं का तथा लोक विश्वासों का ज्ञान हो जाता है ।

टोना करके ~~व्यक्ति~~ दूसरे व्यक्ति को वश में किया जा सकता है और उससे यादृच्छिक कार्य सम्पन्न कराया जा सकता है । टोना करके व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को कार्य करने के लिए बाध्य कर देता है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने टोने करने वाले के इसी गुण को लक्ष्य कर कहा है कि मानों श्रीकृष्ण टोना करना जानते हैं वह जो कार्य चाहते हैं व्यक्ति को वशीभूत कर करा लेते हैं ।

वह जैसा जिससे चाहते हैं उसे वैसा ही करना पड़ता है । इसीलिए तो गोपियों को पातिव्रत त्यागना पड़ा[1]। लोक विश्वास है कि जिस व्यक्ति पर टोना किया जाता है वह अपने आप को भूल जाता है । अपना आपा खो देता है, खाना पीना भूल जाता है, नींद गायब हो जाती है, रातदिन चैन नहीं पड़ती और वह बौरा सा जाता है और इस प्रकार टोने के कारण उसका जीवन कष्टमय बन जाता है । भारतेन्दु युगीन काव्य में कृष्ण का टोना करने वाले तथा गोपियों का टोना किए गए व्यक्तियों के रूप में अनेक बार उल्लेख है । कहीं कृष्ण के लिए कहा गया है कि वे ऐसे टोना जानते हैं इसीलिए सारा ब्रज उन पर मुग्ध है और सम्पूर्ण अपनत्व को भूल गया है और गोपियों पर उनके टोने का ऐसा प्रभाव है कि उनकी स्थिति थकी सी, थकी सी तथा घायल की सी हो गई है[2]। इसी प्रकार गोपियां अपने खाना पीना भूलने तथा रात दिन बिना कृष्ण के चैन न पड़ने तथा नींद न आने के विषय में भी यही अनुमान लगाती है कि कृष्ण ने हम सब पर टोना कर रखा है[3]। टोना करने से व्यक्ति पागल हो जाता है और उसे लोग बौराया हुआ कहते हैं । इसका भी प्रेमघन ने परोक्ष रूप में एक गीत में उल्लेख किया है[4]।

१-हरिचंद जासो जोड करैं, तौ न सोइ करै
  बरबस तजै सब पतिव्रत राह हैं
  या में न संदेह कछु सहजहि मोहै मन
  सांवरो सलोना जानै टोना लामलाह है - भा०ग्रं० १६४ ।

२- भा०ग्रं०पृ० १९० ।

३-कै गयो चितवतकछु टोना- लै गयो मन नंद ढोटौना
  बद्रीनाथ बिलोकत जामे भूलत खान पान अरु सोना।-प्रे०सर्व० ५८२ ।

  + + +

  छिन पल कल नहिं पड़त उन्हें बिन रह रह जिय घबरावै
  सूने भवन अकेली सेजिया सपनेहु नींद न आवै रे
  बद्रीनाथ डाल कछु टोनौ- अब नहिं सुरत दिखावै रे -प्रे०सर्व०५८२ ।

  + + +

  चितै जनु करि गयो टोना रे
  भूख प्यास छूटी तबही सों नैन रैन सोना रे ।
  बदरी नारायन दिलबर यार अब जोगिन होना रे - प्रे०सर्व०पृ०५८५ ।

लोक जीवन में टोने का प्रचलन अति व्यापक है तथा लोकमानस टोने पर अत्यधिक विश्वास करता है । एक अपढ़ ग्रामीण यदि उसका कोई कार्य सम्पन्न नहीं होता तो उसे फौरन यही शंका होती है कि किसी ने टोना कर दिया है जिसके कारण ही कार्य सम्पन्न नहीं हो रहा है । लोक मानस की इस सहज प्रवृत्ति का भी भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लेख हुआ है । एक ग्रामीण स्त्री अपनी सखी से कहती है कि न जाने किस कारण से प्रिय रुष्ट हो गए हैं । हे सखि तुम जाओ और उनको मनाकर लाओ । उनके बिना कुछ अच्छा नहीं लगता है । लगता है किसी ने उन पर टोना कर दिया है[1] ।" लोक का यह सहज धर्म और स्वभाव है जो सहसा किसी अनिष्ट की आशंका से तड़प उठता है और फौरन उसके मन में यही आता है कि किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने उसे परेशान करने के लिए टोना का आश्रय लिया है ।

टोने टोटके के रूप में जादू शब्द का भी अनेक स्थानों पर भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रयोग हुआ है । यद्यपि जादू तथा टोने टोटके में थोड़ा प्रकृतिगत भेद है किन्तु फिर भी जादू का लोक में टोने तथा टोटके रूप में ही प्रयोग होने लगा है । भारतेन्दु युगीन काव्य में जादू का अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है । उल्लेख्य है कि यद्यपि जादू का प्रयोग मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन चारों के लिए ही होता है पर भारतेन्दु युगीन काव्य में जादू का प्रयोग अधिकांशतः वशीकरण के ही संबंध में किया गया है[2] और अधिकांश स्थलों पर किसी सुंदरी युवती का अपने सौन्दर्य से किसी के वश करने के प्रसंग में है ।

टोने टोटके के समान "नजर लगाना" का भी उल्लेख विवेच्य साहित्य में हुआ है । टोने टोटके में जहां प्रायः प्रतिशोध की भावना रहती है वहां नज़र लगाने के पीछे ईर्ष्या की भावना होती है । लोक विश्वास है

१- प्रे०सर्व०पृ० ५६६ ।

२- वही, ६०२, ५६७, ५६३, ५८७, ५११, ५०२, ५८६, ५१२ ।

लोक-प्रथा

लोक प्रथाओं में सती तथा जौहर प्रथा[१] का भारतेन्दु युगीन काव्य में कई स्थानों पर उल्लेख हुआ है । कहीं भारतेन्दु युगीन कवियों ने पति के संग "भस्म" होने वाली करोड़ों भारतीय नारियों का, तो कहीं पति के रणस्थल में परलोक सिधारने पर चिता बनाकर जौहर करने वाली वीर व्रता भारतीय पत्नियों का स्त्रियों की कीर्ति में उल्लेख किया है[२]। तो दूसरी ओर "जनम सुफल तब होय" में एक बाल विधवा का, सती प्रथा के उन्मूलन में तत्पर सरकार से सती होने के लिए अनुमति चाहने का आग्रह है[३]।

१- प्रस्तुत प्रबन्ध में सती प्रथा तथा जौहर प्रथा का साथ ही साथ उल्लेख किया गया उसका कारण यही है कि दोनों का ही सम्बन्ध विधवा का अग्नि में जलकर प्राणत्याग करने से है । दोनों प्रथाओं के पीछे लोक मानस की एक ही प्रवृत्ति है और दोनों का ही सम्बन्ध लगभग एक ही प्रकार के कृत्यों से है। अन्तर केवल इतना ही है कि सती प्रथा में विधवा पति के शव के साथ चिता में जलकर प्राण त्याग करती है तथा जौहर प्रथा में पति की पगड़ी, जूते या अन्य किसी वस्तु को साथ लेकर चिता में कूद कर प्राणत्याग करती है । दोनों प्रथाओं की एक अभिप्रायात्मकता के कारण ही कहीं कहीं दोनों प्रथाओं को ही सती प्रथा कहकर, सती प्रथा के दो भेद - सहगमन या सहमरण (वर्तमान प्रसंग में उल्लिखित सती प्रथा) तथा अनुगमन या अनुमरण (वर्तमान प्रसंग में उल्लिखित जौहर प्रथा) किए हैं । सती प्रथा को सहगमन या सहमरण इसलिए कहा गया क्योंकि पत्नी पति के शव के साथ प्राणत्याग करती है और इस प्रकार उसके साथ ही जाती है और जौहर प्रथा में पति के मर जाने पर अकेलेही जलकर तथा प्राणत्याग कर अपने पति का अनुगमन करती है । इसप्रकार मूलतः अभिप्राय तथा लोक मानस की प्रवृत्ति की दृष्टि से दोनों में एकात्मकता होते हुए वैज्ञानिकता की दृष्टि से दोनों प्रथाओं का साथ ही उल्लेख किया गया है ।

२- प्रे॰सर्व॰ पृ॰ ६४७ ।　　　३- प्र॰ल॰ ४२ ।

संबंधी अनेक उल्लेख मिलते हैं ।

सती और जौहर प्रथाएं आज भी लोक वर्ग में विशेष महत्व रखती हैं तथा लोक वर्ग सती या जौहर हुई स्त्रियों को विशेष सम्मान की दृष्टि से देखता है । कहीं कहीं तो सती स्त्रियों की मूर्ति बनाकर लोक वर्ग उनका पूजन भी करता है और श्रद्धा के फूल चढ़ाता है । सती तथा जौहर प्रथाएं केवल भारत वर्ष में ही नहीं मिलतीं वरन् विश्व की अनेक आदिम तथा बर्बर जातियों में सती तथा जौहर प्रथा के चिह्न मिलते हैं, यद्यपि भारतवर्ष में इसका प्रचार सबसे अधिक व्यापक है । टेलर ने सती तथा जौहर की सामानान्तर विश्व की अनेक असभ्य तथा बर्बर जातियों में मिलने वाली प्रथाओं का उल्लेख किया है[1]। पैंजर का भी यही मत है कि किसी समय सती तथा जौहर प्रथा विश्वव्यापक थी तथा मूलतः यह इंडो जर्मनिक प्रथा थी[2]। थाम्पसन[3] का मत है कि सती तथा जौहर प्रथाएं भारत के बर्बर मूल निवासियों की जो मध्य भारत में रहते थे, की थीं । जब आर्यों ने भारत में प्रवेश किया था तो मानव बलि तथा अन्य बर्बरीय नृशंसताओं के समान भारत में उन्हें यह नृशंसात्मक प्रथा भी देखने को मिली जो मध्यभारत के मूल निवासियों के मध्य अति प्रचलित थी और जहां आर्यों ने आदिम जातियों के मध्य प्रचलित लोक विश्वास तथा काली आदि उनके लोक देवताओं को ग्रहण किया वहीं, ~~बल्कि~~ इस प्रथा को भी ग्रहण किया । इस प्रकार थाम्पसन सती प्रथा तथा जौहर प्रथाओं को अर्थात् जीवित विधवा दाह प्रथा को मूलतः भारतीय ही माना है । मूलतः यह प्रथा कहीं की भी रही हो, पर इतना निश्चित ही है कि यह प्रथा विश्व में एक समय फैली थी और अनेक आदिम जातियों में भारत के अतिरिक्त आज भी यह प्रथा विद्यमान है, - तथा इसका अस्तित्व अति प्राचीन है । नृतत्वशास्त्री मोदी[4] ने अनेक

---

1. Tyler: Primitive Cultures. Chapt IX
2. Penzer, N.M.: Suttee p.255.
3. Thompson, E.: Suttee p.23-24
4. Modi, J.J.: Anthropological Papers Part IV p.109-116.

लिखित प्रमाणों के आधार पर इसका प्रचलन सिकन्दर के समय (४थी श०ई० पू०) में भी भारत में दिखलाया है । सिद्ध है कि जब इसका प्रचलन ई० पू० चौथी शताब्दी में रहा होगा तो इसका प्रारम्भ तो अति प्राचीन काल में ही हुआ होगा । सती प्रथा इस प्रकार अत्यन्त प्राचीन विश्वव्यापक लोक प्रथा है तथा इसका मूल नृतत्वशास्त्रियों ने आदिम बर्बर जातियों की नृशंसताओं में देखा है ।

सती तथा जौहर प्रथाओं के पीछे लोक मानस की कौन सी प्रवृत्ति थी इसका भी पश्चिमी विद्वानों ने अनुसंधान करते हुए बताया है कि इसके पीछे मृत्यु के बाद मानव के दूसरे लोक में जाने का विश्वास निहित है । लोक मानस की धारणा है कि मृत्यु के बाद जीव-विनष्ट नहीं हो जाता, वरन् वह जन्म के समय जिस अज्ञात लोक से अचानक इस पृथ्वी ~~मर~~ लोक पर आ गया था, उसी प्रकार वह अचानक ही इस पृथ्वी लोक को छोड़कर अपने पूर्व अज्ञात लोक को चला गया और जिन वस्तुओं का वह इस दैनिक जीवन में उपयोग करता था, जिसकी उसे आवश्यकता पड़ती थी, उसकी आवश्यकता उसे दूसरे लोक में भी पड़ेगी, क्योंकि जिस प्रकार का यह पृथ्वी लोक है उसी के समान ही दूसरे लोक में मृत्यु के उपरान्त मानव जाता है । इस प्रकार जहां अन्य वस्तुओं की उस मृतक व्यक्ति को दूसरे लोक में जरूरत पड़ेगी, उसी प्रकार उसे अपनी पत्नी की भी आवश्यकता पड़ेगी । इसलिए अन्य वस्तुओं के साथ पत्नी को भी उसके साथ जाना चाहिए और पत्नी केवल जलकर तथा प्राणत्याग कर ही पति तक पहुंच सकती है । अतः पत्नी को पति का सहगमन या अनुगमन करने के लिए शव के साथ सहमरण या अनुमरण आवश्यक है । रिच्ची तथा एवन्स के उल्लेख से[1], जिसमें उसने उल्लेख किया है कि सन् १८१८ में जयपुर के महराज के साथ सती होने वाली १८ पत्नियों के साथ उनके १८ नौकर तथा महराज का नाई भी जल कर मरा था इस विश्वास से कि दूसरे लोक में जब स्वामी को ~~xxxxx~~ हजामत की आवश्यकता पड़ेगी तो वह हजामत बना सकेगा, उपरोक्त कथन की और भी

---

1. Ritchiek & Evans: Rulers of Indian Series 197.

पुष्टि होती है, कि सती के पीछे भी दूसरे लोक में आवश्यकता पूर्ति की ही भावना थी, अन्यथा नाई का मरण क्यों हुआ, उसने कैसे सोचा कि दूसरे लोक में वह मरकर महराज के शव के साथ जा सकता है ? विश्व के समस्त नृशास्त्री विद्वानों ने यह माना है कि आदिम जातियों में तथा लोक वर्ग में यह विश्वास बहुत अधिक प्रचलित है कि इस पृथ्वी लोक के समान ही मनुष्य मरकर दूसरे लोक को जाता है और वहां भी इस लोक के समान ही उसे आवश्यकता पड़ती है और यही भावना सती प्रथा के मूल में भी थी। किन्तु यही भावना मात्र ही सती प्रथा तथा जौहर प्रथा के मूल में है यह निश्चित रूपेण नहीं कहा जा सकता । वरन् सती तथा जौहर प्रथा के मूल में उपरोक्त प्रमुख मूल भावना के अतिरिक्त अन्य भावनाएं भी थीं और वह भावना थी स्नेह तथा प्रेम की जिसके कारण यह प्रथा जीवित रही थी । स्नेह भी इन दो प्रथाओं के मूल में था इसके प्रमाण में रोज द्वारा उल्लिखित भ विवरण भी प्रस्तुत किया जा सकता है । रोज[1] के विवरण में पंजाब तथा राजस्थान में मां का पुत्र के साथ मरण तथा बहन का भाई के शव के साथ मरण भी उल्लिखित है तथा मां के पुत्र के साथ मरण को मा सती नाम दिया गया है । यह विवरण यह सिद्ध करता है कि स्नेह भी एक प्रमुख प्रवृत्ति थी, जिसके कारण सती प्रथा को बल मिला । किन्तु अधिकांश सती के उदाहरण केवल स्त्रियों के संदर्भ में ही मिलते हैं मां - पुत्र के साथ सती होती है[2], बहन-भाई के साथ सती होती है, पत्नी पति के साथ सती होती है । किन्तु एक दो अपवादों को छोड़कर ऐसे उदाहरण प्रायः नहीं ही मिलते हैं जिसमें स्त्री के साथ पति, मा के साथ पुत्र या बहिन के साथ भाई सती हुआ हो । अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः सती के मूल में आश्रय की भावना भी रही होगी । पत्नी ने पति के अभाव में, बहिन ने भाई के अभाव में, तथा मां ने पुत्र के अभाव में अपने को निराश्रय समझा होगा तथा निराश्रित होकर जीवित रहने की अपेक्षा निर्बल जाति

---

1. H.A.Rose: Gloosary of the tribes and castes of the Punjab and North West Frontier Provinces p.201.

2. ibid.

(स्त्री जाति) ने अपने को अपने प्रिय के साथ जीवित ही मर जाने को अच्छा समझा ~~रहा~~ होगा । विश्व की समस्त जातियों में स्त्री निर्बल जाति (Weaker Sex) की समझी जाती है अतः स्त्रियों का ही सती होना निराश्रय भावना के कारण संभव हुआ प्रतीत होता है । इस प्रकार सती के मूल में दूसरे लोक की आवश्यकता, स्नेह भाव तथा निराश्रय की स्थिति तीनों ही प्रतीत होती हैं ।

इस प्रकार सिद्ध है कि सती तथा जौहर दोनों ही लोक प्रथाएं ही हैं और इन दोनों लोक प्रथाओं का भारतेन्दु युगीन कवियों ने उल्लेख कर भारतेन्दु युगीन कवियों ने लोक जीवन के महत्वपूर्ण अंश तथा महत्वपूर्ण प्रथा का उल्लेख किया है ।

लोक विश्वास

अर्थ:-

सामान्यतया लोक विश्वास का अर्थ होता है लोक द्वारा किया गया विश्वास, किन्तु आज लोक विश्वास का अर्थ हम मूढ़ ग्राह तथा अंधविश्वास से लेते हैं । अंध विश्वास तथा मूढ़ ग्राह में हम उन समस्त विश्वासों की गणना करते हैं जिनकी स्थिति सत्यता का हमें किंचित भी ज्ञान नहीं है और बिना उनकी स्थिति सत्यता पर विचार किए हुए हम परम्परागत रूप से उनपर विश्वास करते चले आ रहे हैं । अंग्रेजी में भी लोक विश्वास से उसी विश्वास का अर्थ लिया जाता है जो निश्चित तर्क या विचार पद्धति पर आश्रित नहीं है ।

सत्य-या असत्य:-

लोक विश्वास में कितना अंश सत्य का है कितना असत्य का, यह निश्चित रूपेण नहीं कहा जा सकता। लोक वर्ग इन लोक विश्वासों पर आंख मूंद कर विश्वास करता है, आस्था रखता है और परंपरागत रूप से उन्हें मानता चला आता है । उसने यह जानने की कभी चिन्ता ही नहीं कि कि

सत्य का अंश नहीं होता तो उसके पूर्वज इन लोक विश्वासों पर आस्था कैसे रख सकते थे । क्या उसके पूर्वज मूर्ख थे ? इस प्रकार पूर्वजों के ज्ञान की दुहाई देकर वह इन लोक विश्वासों को मूढ़ ग्राह न मानकर इन्हें सत्य मानता है और इन पर विश्वास करता है । मनोविज्ञान के आधार पर लोक विश्वासों में निहित सत्यासत्य के प्रश्न पर विचार किया जा सकता है । मनोविज्ञान के अनुसार मानव का यह स्वभाव है कि वह पूर्ण असत्य में कभी विश्वास ही नहीं करता, वह उसी में विश्वास करता है जो सत्य होता है या सत्य प्रतीत होता है । असत्य पर उसकी असत्यता का ज्ञान रहते हुए व्यक्ति विश्वास नहीं करता है । किन्तु एक व्यक्ति के पास जो ज्ञान है वह पूर्ण सत्य नहीं है, वह अपूर्ण ज्ञान है । इस अपूर्ण ज्ञान के कारण वह अनेक वस्तुओं में जो उसे उसकी ज्ञान अपूर्णता के कारण सत्य प्रतीत होती है, विश्वास कर लेता है और समय आने पर उसे उन वस्तुओं की असत्यता का ज्ञान होता है । अपूर्ण ज्ञान के कारण असत्य को सत्य समझ लेने की प्रवृत्ति लोक विश्वास को जन्म देती है, किन्तु चूंकि जैसा ऊपर कहा जा चुका है पूर्ण रूप से असम्भावित वस्तु पर व्यक्ति विश्वास ही नहीं कर सकता, अतः एक सूक्ष्म सत्य का आधार तो लोक विश्वास में होता ही है किन्तु उस सूक्ष्म सत्याधार पर निर्मित विशाल भवन असत्य का होता है, वह पूर्णतः काल्पनिक और इसीलिए मूढ़ ग्राह होता है ।

मानव प्रकृति से जिज्ञासु है । वह सत्य का अन्वेषण करना चाहता है, पर उसकी अपनी सीमाएं हैं, वह शीघ्र ही ऊब जाता है और उसकी सत्यान्वेषण की इच्छा शक्ति कुंद पड़ जाती है, यद्यपि वह संतुष्ट नहीं होती । अपनी सीमाओं में बद्ध मानव दूर तक सत्यान्वेषण के प्रयास न कर सकने के कारण अपने को सन्तुष्ट मानकर जिसका उसने सत्यान्वेषण नहीं किया उसको भी सत्य मान लेता है । यहीं असत्य को स्थान मिलता है और वह असत्य मानव मानस में स्थान पाकर अपनी स्थिति सुदृढ़ करता जाता है और बाद में मानव मस्तिष्क पर वह अपना अधिकार जमा लेता है । तब मानव उस पर विश्वास करने लगता है और उसके इस विश्वास को फिर

यहां भी मानव अपने सत्य प्रेम को छोड़ नहीं देता है क्योंकि सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति तो उसके रग रग में भरी हुई है, किन्तु इस स्थिति पर असत्य ही उसे सत्य प्रतीत होने लगता है । यहीं लोक विश्वास या मूढ़ ग्राह का जन्म होता है । इस प्रकार लोक विश्वास सत्य और असत्य दोनों का मिश्रण होता है जिसमें असत्य का अंश अधिक बलशाली होता है ।

लोक जीवन में लोक विश्वास का महत्व:-

लोक जीवन में लोक विश्वास का बहुत महत्व है । लोक मानस इन लोक विश्वासों का नीति वाक्यों के सदृश अनुसरण करता है और इनके विपरीत कुछ भी नहीं करता । एक साधारण ग्रामीण अपढ़ गंवार की तो बात ही क्या एक शिक्षित व्यक्ति भी लोक विश्वासों के प्रतिकूल काम करता हुआ भावी आशंकाओं से प्राय: सहम सा जाता है और वह किसी शुभ कार्य को जाते हुए दिशा शूल का ध्यान रखता है । यदि बिल्ली उसका जाते समय रास्ता काट दे तो उसे कार्य की सफलता में संदेह होना लगता है, इसी प्रकार ग्रामीण वर्ग में स्त्रियों की दाईं आंख का फड़कना अशुभ तथा बाईं आंख का फड़कना शुभ समझा जाता है । इसी प्रकार लोक में अनेक विश्वास प्रचलित है जो यद्यपि मूढ़ ग्राह कहे जाते हैं पर सामान्य जनवर्ग उनपर आस्था रखता है तथा तदनुसार आचरण करता है । लोक जीवन एक प्रकार से लोक विश्वासों पर ही आधारित है । लोक विश्वासों ने समाज की बहुत दृष्टियों से उन्नति भी की है किन्तु दूसरी ओर समाज को अवनति के मार्ग पर भी बहुत दौड़ाया है । लोक विश्वासों से जो संसार की हानि हुई वह किसी से छिपी नहीं है । लोक विश्वासों के कारण ही न जाने कितने व्यक्तियों ने प्राण त्याग किया, अमूल्य संपत्ति का विनाश हुआ, पति पत्नी का, मां बेटे का बिछोह हुआ और मित्र आपस में लड़ मरे। दूसरी ओर लोक विश्वासों ने समाज का भला भी बहुत सीमा तक किया । विभिन्न जातियों में सामाजिक, आर्थिक, नैतिक तथा धार्मिक उन्नति जो की, वह लोक विश्वासों के कारण ही संभव हो सकी । विद्वान् फ्रेजर ने लोक विश्वासों का महत्व बताते हुए लिखा है कि -"सर्व असत्य तथा मूढ़ ग्राह होते हुए भी लोक विश्वासों ने

समाज को सत्य तथा उन्नति का मार्ग दिखाया है और यह अधिक उत्तम है कि मूढ़ ग्राह सत्यमार्ग दिखाते हैं अपेक्षाकृत इसके कि एक सत्य स्थिति असत्य स्थिति की ओर ले जाए[1]। इस प्रकार लोक विश्वास में जहां हानि की है वहां उसका महत्व भी बहुत है ।

लोक वार्ता तथा नृतत्वशास्त्र की दृष्टि से महत्व:-

लोक विश्वासों का लोक वार्ता तथा नृतत्व शास्त्र की दृष्टि से भी अति महत्व है । लोक विश्वासों की जड़ें अति गहरी हैं इनके मूल में आदिम मानस तथा लोक मानस विद्यमान है । आदिम असभ्य समाज में भी अनेक लोक विश्वास मिलते हैं और वहीं से यह सभ्य समाज में आगए हैं । अनेक लोक विश्वास तथा मूढ़ ग्राह सामान्यतः प्रकृति रूप से एक हैं और वे भारत तक ही सीमित नहीं है, अपितु विश्व भर में मिलते हैं । सिद्ध है कि ऐसे विश्व में प्रचलित लोक विश्वासों के मूल में लोक मानस विद्यमान है, जिस कारण से वह देशकाल की सीमा से बद्ध नहीं है । वे मानव जाति आशा विश्वास भय आदि मूल प्रवृत्ति से संबंधित हैं । यही कारण है कि वे विश्व भर में समान रूप से मिलते हैं । लोक विश्वास मानव जाति के इतिहास के वर्णन हैं। और वे पूर्वजों की विचार धाराओं को समझने में सहायक होते हैं और उनसे इस प्रकार हम अपनी ही मूल स्थिति को समझ सकत सकते हैं । इन लोक विश्वासों की उत्पत्ति के कारणों तथा उनके विकास का अध्ययन और भी अधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यह लोक विश्वास केवल प्राचीन मानव जाति के भय और आशाओं को ही नहीं बताते वरन् वर्तमान विचारधाराओं

---

1. It has supplied multitudes with a motive, a wrong motive it is true for right action and surely it is better, better for the world that men should go right from wrong motive than that they should do wrong with the best motive: Psyche Task Frazer, p.154.

का मूल भी इन लोक विश्वासों में है[1]। फ्रेजर नामक विद्वान ने लोक विश्वासों के महत्व को बताते हुए आगे यह भी संकेत किया है कि जिन लोक विश्वासों से लोक वर्ग ने स्फूर्ति ग्रहण की और जिन्हें हम देखकर, उनके पालन करने तथा श्रद्धा रखने वालों की हंसी उड़ाते हैं, उन्हें मूढ़ तथा लोक विश्वासों को मूढ़ ग्राह कहते हैं वे ही लोक विश्वास आज सभ्य समाज में भी अवशेष के रूप में चले आए हैं[2] और इन्हीं लोक विश्वासों में हमें लोक मानस का स्वरूप दिखता है ।

पौराणिक विश्वास तथा लोक विश्वास:-

पौराणिक विश्वास और लोक विश्वास का अंतर बहुत सूक्ष्म है । अनेक लोक विश्वास कालान्तर में पौराणिक विश्वास कहे जाने लगे और अनेक पौराणिक विश्वास लोक विश्वास के रूप में प्रचलित हो गए और लोक विश्वास कहे जाने लगे । अतएव दोनों वर्गों में कुछ भ्रम की स्थिति हो गई किन्तु फिर भी सामान्य रूप से दोनों का अंतर समझा जा सकता है । पौराणिक विश्वास तथा लोक विश्वास का मूल भूत अंतर यही समझना चाहिए कि जहां पौराणिक विश्वास एक देश से ही संबंधित होंगे, वहां लोक विश्वास सार्वदेशिक होंगे । पौराणिक विश्वास एक विशेष देश या प्रान्त में ही प्रचलित होगा किन्तु लोक विश्वास प्राय: लोक मानस साम्य द्वारा ही एक देश में नहीं वरन् भिन्न देशों में मिलेगा । उसके मूल में एक ही लोक मानस प्रवृत्ति होगी और वह मूलत: एक होगा यद्यपि उसका स्वरूप भिन्न हो सकता है । कारण स्पष्ट है लोक विश्वास का लोक मानस से सम्बन्ध है और लोक मानस देश काल की सीमा से बद्ध नहीं है । वह मूलत:

---

1. Properly understood, they shed light on the history of our race, and help us to understand the thought processes of our remote ancestors, and our own deeply burried roots- The study of their origins and the later modifications is therefore richly rewarding because it reveals not only the fears and desires of the past, but also the hidden springs of many modern ideas and prejudices-Foreword, Encyclopaedia of Superstititions.

2. Psyche's Task-Frazer I.G.p.3-4

एक है । उपर्युक्त कथन की पुष्टि अनेक उदाहरणों से की जा सकती है । उदाहरण के लिए अंगों का फड़कना, अंगों में झुनझुनाहट (Tingling) या अंगों में खुजली (Itching) आदि से सम्बन्धित अनेक विश्वास हैं कि यह आगत शुभ अशुभ घटनाओं की सूचना देते हैं, विभिन्न देशों में मिलते हैं, यद्यपि उनके स्वरूप थोड़े भिन्न भी हो सकते हैं । इन शकुनों के संबंध में इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इनका मूल लोक मानस की उस उपचेतन प्रक्रिया में है जबकि वह शरीर में किसी आकस्मिक परिवर्तन के मूल में किसी न किसी कारण को देखता है और मानता है कि इसका उसके आगत भविष्य पर भी प्रभाव पड़ेगा । यही कारण है कि आँख, कान, गाल, हाथ, पैर, घुटने, नाक सभी प्रमुख शरीर के अंगों के संबंध में लोक विश्वास विश्व भर में प्रचलित हैं[1]। इसी प्रकार पशु पक्षियों द्वारा भी शुभाशुभ का विचार केवल भारत में ही नहीं मिलता वरन् विश्व भर में पशु-पक्षियों की ध्वनि गति से शुभा शुभ की कल्पना की जाती है । सिद्ध है कि इसके मूल में कोई ऐसी लोक मानस प्रवृत्ति से भी जिसके आधार पर विभिन्न देश के मनुष्य एक सा सोचते हैं । इस सामान्य लोक मानस प्रवृत्ति का विद्वानों ने अध्ययन भी किया और तत्संबंधी अपने महत्वपूर्ण निष्कर्ष भी दिए हैं[2]। पौराणिक विश्वासों में यह सर्वदेशीयता की प्रवृत्ति नहीं होती । वे एक विशेष देश या प्रान्त से ही संबंधित होते हैं और वहीं के लोग उन्हें समझते तथा उन पर आस्था रखते हैं । इन पौराणिक विश्वासों का लोक जीवन में बहुत प्रचलन भी नहीं होता । लोक विश्वासों तथा पौराणिक विश्वासों में दूसरा प्रमुख अंतर यह भी है कि लोक विश्वासों में तर्क की प्रवृत्ति ही नहीं रहती है उसमें आस्था की प्रवृत्ति रहती है जबकि पौराणिक विश्वास के अन्तर्गत प्रसंगोद्भव, तर्क और आस्था की सचेतन प्रक्रिया काम करती है । इस प्रकार पौराणिक विश्वास तथा लोक विश्वास में अंतर है, किन्तु अनेक लोक विश्वास ऐसे भी हैं जो ईश्वरीय विशेषताओं से संबंधित

---

1. Encyclopaedia of Superstitions. p.205-206.

2. Anthropological Paper Vol.IV.

हैं और ईश्वरीय शक्ति की अलौकिकता की व्यंजना कराने वाले हैं । इन अलौकिकताओं को जनमानस को जनमानस तक पहुंचाने के लिए यद्यपि कालान्तर में इनके पीछे कथाएं जोड़कर इनको धार्मिक या पौराणिक विश्वास का रूप देने का प्रयत्न किया गया है, फिर भी इनके मूल में लोक मानस जिसको आधार बनाकर इनको परिवर्तित रूप दिया गया था, विद्यमान है । अतएव ऐसे विश्वास भी पौराणिक विश्वास न कहे जाकर लोक विश्वास ही कहे जाएंगे क्योंकि इनके मूल में लोक मानस विद्यमान है । जिन विश्वासों के मूल में लोक मानस विद्यमान नहीं है वही लोक विश्वास की सीमा के परे रक्खे जा सकते हैं । डा॰ सत्येन्द्र[1] ने ऐसे अनेक लोक विश्वास खोज निकाले हैं जिनको लोग भूल से धार्मिक विश्वास या पौराणिक विश्वास मान लेते हैं । उदाहरणार्थ भगवान भक्त के वश में होते हैं, भगवान भक्त के साथ मानुषिक क्रियाएं करते हैं, आदि विश्वास जो हैं लोक मानस से युक्त विश्वास हैं । इसीलिए इनकी गणना लोक विश्वास के अन्तर्गत ही करना अधिक समीचीन है ।

कवि समय तथा लोक विश्वास:-

लोक विश्वास तथा कवि समय के मूल भूत अंतर न जानने के कारण कई स्थानों में भ्रम होता है, अतः प्रस्तुत प्रसंग में दोनों के मूल भूत अंतर को जान लेना भी आवश्यक है । दोनों में मुख्य अंतर यह है कि लोक विश्वास में सत्यांश की स्थिति होती है, इसके मूल में कोई न कोई घटना होती है जबकि कवि समय पूर्णतः काल्पनिक होता है । कवि समय में कवि की सचेतन प्रक्रिया (Conscious Mind) काम करती है जबकि लोक विश्वास के मूल में अर्ध चेतन (Sub- Conscious) या अचेतन प्रक्रिया काम करती है । इसीलिए कवि समय का प्रचलन पहले शिष्ट वर्ग में होता है और बाद में अति प्रचलन हो जाने के कारण लोक वर्ग उसे स्वीकार करता है जबकि लोक विश्वास का प्रारम्भ से लोक वर्ग में प्रचलन होता है । उदाहरणार्थ

१- डा॰ सत्येन्द्र: मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्त्विक अध्ययन: पृ॰ ५०२ ।

पारस के स्पर्श से लौह स्वर्ण हो जाता है यह एक कवि समय था । यह कवि समय पूर्णतः काल्पनिक था । इसके पीछे स्थिति सत्यता का प्रश्न ही नहीं था । किन्तु बाद में कवियों तथा लेखकों द्वारा प्रयुक्त होते होते यह इतना अधिक प्रचलित हो गया कि लोक वर्ग भी इस पर विश्वास करने लगा । इसी प्रकार हंस के नीर-क्षीर विवेक सम्बन्धी प्रसंग है, सर्प के मस्तक में मणि की स्थिति होना भी कवि समय है किन्तु इन उपर्युक्त दो उदाहरण हंस के नीर क्षीर विवेक तथा सर्प के मस्तक में मणि का होना भी अब धीरे धीरे जन-मानस के विश्वास का विषय बनता जा रहा है अतः अति प्रचलित हो जाने पर इन्हें भी लोक विश्वास कहा जाने लगा जाय, तो कोई आश्चर्य नहीं । लोक विश्वास शब्द का ही अर्थ होता जो विश्वास लोक जीवन में प्रचलित हो वह लोक विश्वास है । इस दृष्टि से ये कवि समय भी लोक विश्वास निश्चित कहे जाएंगे, किन्तु फिर भी यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मूलतः यह लोक विश्वास नहीं है और इनकी उत्पत्ति भी सीधे लोक मानस से नहीं हुई है । यह बाद में लोक विश्वास बन गए हैं ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्राप्त लोक विश्वासः-

लोक कथा और लोक गाथाओं में लोक विश्वास की जितनी संभावना और उनके प्रयोग का अवसर रहता है गीतों में नहीं होता । लोक कथा और लोक गाथा में तो लोक विश्वासों की संयोजना पग पग पर मिलती है, क्योंकि लोक गाथाओं का निर्माण ही प्रायः लोक विश्वास की भित्ति पर होता है, लोक गीतों में इस प्रकार के अवसर नहीं होते, इसीलिए उसमें लोक विश्वास बहुत कम मिलते हैं । भारतेन्दु युगीन काव्य में भी प्राप्त लोक विश्वासों की संख्या अधिक नहीं है, कहीं कहीं ही लोक विश्वासों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उल्लेख हुआ है जिनका ही विवेचन यहां किया जा सकता है ।

इन लोक विश्वासों को यथावत् वर्गीकृत भी नहीं किया जा सकता । एक लोक विश्वास की सीमा दूसरे लोक विश्वास की सीमा से बहुत घुली मिली हुई है, अतएव एक लोक विश्वास के लिए नहीं कहा जा सकता कि यह दूसरे वर्ग के अन्तर्गत नहीं आता । इन लोक विश्वासों को ऐतिहासिक

क्रम के अन्तर्गत भी नहीं रक्खा जा सकता क्योंकि जैसा कि डा० सत्येन्द्र ने कहा है "कि लोक विश्वासों को ऐतिहासिक क्रम में प्रस्तुत करने में कठिनाई है, ये विश्वास इतिहास के जिस युग में पहले पहल उदित हुए उस युग की सामग्री आज कहां है, जिन्हें भी हम लोक विश्वास कहते हैं, उनका आदिम मूल प्रागैतिहासिक है । फलतः सभी विश्वासों को ऐतिहासिक क्रम के विभाजित करके प्रस्तुत नहीं किया जा सकता[1]।" भारतेन्दु युगीन काव्य में प्राप्त लोक विश्वासों के वर्गीकरण के संबंध में भी यही कठिनाई है, किन्तु फिर भी सुविधा की दृष्टि से प्राप्त लोक विश्वासों का मोटे रूप से (१) सामाजिक लोक विश्वास तथा (२) धार्मिक लोक विश्वास के अन्तर्गत वर्गीकरण किया जा सकता है । धार्मिक लोक विश्वास के अन्तर्गत उन लोक विश्वासों की गणना की गई है जो ईश्वर के स्वरूप, उसके प्रभाव आदि से संबंधित है तथा सामाजिक विश्वासों के अन्तर्गत उन विश्वासों का विवेचन है जिनका संबंध समाज के विभिन्न पक्षों से है किन्तु उनके पीछे धार्मिक आस्था नहीं है । यहां यह कह देना भी आवश्यक है कि उपर्युक्त वर्गीकरण भी केवल सुविधात्मक दृष्टिगत ही है, वैज्ञानिक नहीं क्योंकि "प्रत्येक लोक विश्वास समाज की धार्मिक आस्था ही है, भले ही लोक वर्ग उसमें कर्म धर्म न समझता हो । इसी प्रकार प्रत्येक विश्वास का संबंध किसी न किसी प्रकार की अभिव्यक्ति से होगा ही और प्रत्येक अभिव्यक्ति का सम्बन्ध समाज व्यक्ति और उसकी परंपरा से भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों काल के लिए अभिप्रत रहता है[2]।"

सामाजिक विश्वासः-

ये लोक विश्वास अनेक प्रकार के हैं, कहीं यह मानवीय क्रियाओं से संबंधित है जैसे अंगों का फड़कना, छींक होना आदि से संबंधित विश्वास, कुछ पक्षी पशु की गति विधियों से संबंधित है, कुछ तिथि वार

१- सत्येन्द्रः मध्ययुगीन हिन्दी काव्य का लोक तात्विक अध्ययनः।

२- वही ।

तथा मास सम्बन्धी है तथा कुछ प्रकृति से संबंधित है । कुछ टोने टोटकों और नजर से संबंधित लोक विश्वासों का कवियों ने वर्णन किया है, तो कुछ लोक विश्वास भूतों, प्रेतों और उनके सामाजिक प्रभाव से संबंधित विश्वास है । इस प्रकार यद्यपि विविध प्रकार के सामाजिक लोक विश्वासों का भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लेख हुआ है । पर इन उल्लिखित लोक विश्वासों की संख्या अधिक नहीं है । भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोक विश्वास निम्नलिखित हैं -

<u>मनुष्य सम्बन्धी :</u>

चलते समय छींक होना अशुभ होता है -

कालिंदी नहान चली आजु बरै छींक होत कहीं का हवाल जौन भयो बड़
भोर है ।
कंचुकी औ चूनरी धरी जो हुती तीर चीर लै गयो अचानक ही बानर
कटोर है ।
सेवक बसन निज दीन्हों ब्रजराज आप ह्वै कर अधीन जब कीन्हीं मैं
निहोर है ।
पीत पट ओढ़े देखि मोहि पुर बीथिन मैं चुगुल चवाइन को फैलो वृथा
शोर है[1]।।

स्त्रियों की बांयी आंख फड़कना शुभ होता है-

आजु सखि होरी खेलन पीतम ऐहैं फरकत बायों नैन[2]।
उड़ उड़ जात काग ने कहीं उड़ाए बीर फरकत बाम आंख अति अधिकाई है[3]।
उड़ि उड़ि अंचल जोबन उमगत फरकत मोरी बाईं अँखियाँ[4]।

१- र०बा० भाग ३, क्या० ६ ।

२- भा०ग्रं०, पृ० ४०१ ।

३- र०बा० भाग ४, क्या० ८ ।

४- भा०ग्रं, पृ० १८९ ।

पुरुषों का दाहिना अंग फड़कना शुभ होता है -

सम्मत लै जब नारि की हरि पहुं चले सुदाम ।
फरके द्विज अंग दाहिने बाम अंगहू बाम[1] ।।

स्त्रियों के कुचों का फड़कना, आंगी का तरकना, कंचुकी का कस जाना, चूड़ी का करकना, अपने ही आप नीवी का ढीली पड़ जाना, जूड़े की गांठ का स्वयमेव खुल जाना भी शुभ सगुन माना गया है -

फरकन लगे कुच, तरकन लागी आंगी, करकन लागी चूरी फूली न समाई है[2] ।

+ -|- +

आप ही से आप नीवी ढीली सी परत जात
कंचुकी उरोजन पै गाढ़ी दरसाई है ।
उड़ उड़ जात काग ने कही उड़ाए वीर
फरकत बाम अंग अति ही अधिकाई है ।
करकी चुरी आज करकी अचानक ही
बार बार खुली गांठ जूरे की लखाई है ।
देवै शुभ सगुन समझि मोहिं ऐसी परै
प्राननाथ की जरूर ही अवाई है[3] ।।

+ + +

प्यारे सपने में प्यारी कहत सखी सौं
फूली ताहि समय बाई आंख फरकी फराक है ।
गुरुजन भीर में अधीर ह्वै सुनो संदेश
आवन पिया को सुनि सरकी सराक है ।

१- र०बा० भाग २, क्या० १ ।
२- र०बा० भाग ४, क्या०८, छं० ३ ।
३- वही, भाग ४, क्या० ८, छं० १७ ।

दयानिधि आगन में लखे प्रान प्यारे जबै

आनंद सो आंगी तनी तर की तराक दै ।

करकी मरोर वह छोर बांधतो ही जी की

करकी चुरियां सबै करकी कराक दै[1] ।।

उपर्युक्त छींक से संबंधित या अंगों के फड़कने आदि का क्यों शुभाशुभ रूप में विश्वास किया जाने लगा इसका अनुसंधान एक समस्या है और इस सम्बन्ध में सामग्री के अभाव में कुछ कह सकना निश्चित रूप से कठिन है । हां इस सम्बन्ध में लोक मानस के अध्ययन के आधार पर सम्भावना ही की जा सकती है कि शायद अमुक विश्वास का मूल अमुक है ।

किसी कार्य को आरम्भ करने से पहले छींक हो जाना भारत में ही नहीं विश्व के अनेक देशों में अशुभ माना जाता है और कहीं छींक होने पर व्यक्ति के लिए God bless you कहा जाता है तो कहीं कहा जाता है ईश्वर कल्याण करे । यह छींक कार्य करते समय क्यों अशुभ मानी जाती है इस पर विचार करते हुए प्रसिद्ध नृतत्व शास्त्री मोदी का विचार है-"कि प्राचीन समय में भी इन्फ्लुएंजा आदि संक्रामक रोग एक स्थान से दूसरे स्थान में फैलते थे और अनेकों मृत्यु इस रोग से होती थी । बार-बार छींक होना इस रोग के प्रारम्भ होने का प्रथम संकेत था । अतः जब भी कोई व्यक्ति छींकता था, तो परिजनों मित्रों को उसके स्वास्थ्य के विषय में चिंता होती थी और इसीलिए वे उसके लिए ईश्वर से प्रार्थना करते थे कि वह व्यक्ति को स्वास्थ्य प्रदान करे । यह प्रार्थना केवल उसके संभावित रोग के ही संबंध में नहीं होती थी वरन् इस का संबंध सब प्रकार के कार्यों में सफलता से भी था। घर से जाते समय छींक हो जाने से अमंगल की संभावना के मूल में भी उपर्युक्त कारण था[2]। कि व्यक्ति का रोग बाहर जाने से बढ़ सकता है और

१- भा०पु० १, अं० १, पृ० ८ ।

2. Anthropolo-ical Papers-Jivanji Jamshed Ji Modi

यदि संक्रामक है तो वह अन्य लोगों को भी हो सकता है । इसप्रकार उस व्यक्ति विशेष को रोकने के लिए शायद इस लोक विश्वास का जन्म हुआ होगा । होते ने छींक सम्बन्धी लोक विश्वास का मूल आदिम जातियों के एक विश्वास में देखा है[१]।

अवधेय है कि कुछ स्थानों में एक बार छींक होना अशुभ नहीं माना जाता वरन् लगातार दो या तीन बार छींक होना अपशकुन माना जाता है । इस प्रथा से मोदी के विचारों की और भी अधिक पुष्टि होती है कि एक बार छींक होना साधारण रूप से विशेष महत्व नहीं रखता किन्तु एक से अधिक बार छींक होना शायद किसी भावी रोग की संभावना प्रकट करता हो ।

इसी प्रकार अंगों का फड़कना, झुनझुनाना या अंगों में खुजली होने से संबंधित जो लोक विश्वास शुभ या अशुभ की सूचना देते हैं । उनके पीछे स्थित कारणों का भी विद्वानों ने अनुसंधान किया है । उदाहरणार्थ दाहिने अंग का फड़कना शुभ इसलिए माना है क्योंकि मानव के शरीर का दाहिना भाग अधिक उपयोगी होता है[२]। किन्तु उपर्युक्त निष्कर्ष संभावित हैं इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, केवल संभावना मात्र ही बताई जा सकती है ।

पशु पक्षियों से संबंधित लोक विश्वासः-

पशु पक्षियों के आधार पर शुभा शुभ निर्धारण की पद्धति विश्व व्यापक है शायद इसका कारण यही है कि सबसे पहले मानव जाति का संपर्क पशु-पक्षी जगत तथा प्रकृति जगत से हुआ । उसने इन्हीं पशु-पक्षी तथा प्रकृति जगत के मध्य सांस ली और इन्हीं के मध्य वह पनपा, उसकी संस्कृति का निर्माण हुआ और उसने विकास किया । इसीलिए लोक विश्वासों के लिए प्रचलित शब्द जो विभिन्न भाषाओं में पाए जाते हैं वे पक्षी

१- Encyclopaedia of Superstitions- p.314.

२- रामचरित मानस में लोकवार्ता: चन्द्रभान- पृ० १५४ ।

मूलक ही हैं । लोक विश्वास के लिए प्रयुक्त संस्कृत शकुन शब्द भी पक्षी वाची ही है । पक्षी संबंधित विश्वास विश्व के प्रत्येक देशों में प्राय: पाए जाते हैं । भारतेन्दु युगीन काव्य में भी पशु पक्षी सम्बन्धी कुछ लोक विश्वासों का उल्लेख किया है ।

पशु पक्षियों से संबंधित लोक विश्वास:-

यदि किसी का नाम लेकर काक को उड़ाया जाए और वह उड़ जाय तो इसका अर्थ होता है कि वह व्यक्ति आने वाला है -

उड़ उड़ जात काग ने कहीं उड़ाए वीर फरकत बाम अंग अति ही अधिकाई है[1]।

नजर और टोने टोटके से संबंधित लोक विश्वास:-

टोने टोटके और नजर लगने आदि से संबंधित लोक विश्वास केवल भारत में ही नहीं मिलते हैं वरन् विश्व भर में और आदिम असभ्य तथा अशिक्षित वर्ग में इन पर बहुत विश्वास किया जाता है । टोने और टोटके पर विस्तार से विवेचन लोक जीवन के अन्य सामाजिक पहलुओं पर विचार करते हुए विस्तार से किया गया है । टोना टोटका लोक विश्वास का एक प्रमुख अंग है । नज़र और टोना टोटका आनुष्ठानिक है, इसके पीछे आनुष्ठानिक कियाएं भी होती हैं । उद्देश्य प्राप्ति हेतु आनुष्ठानिक क्रियाएं करते समय इनकी विधि और निषेध पर विशेष ध्यान रक्खा जाता है और क्रियाएं करते समय टोक दिया जाए तो उनका प्रभाव नष्ट हो जाता है । इसीलिए इनका नाम संभवत: टोना टोटका पड़ा । "नज़र" नामकरण इसका इसलिए पड़ा कि इसमें दृष्टि प्रधान है और किसी व्यक्ति को कुदृष्टि से या बुरी भावनाओं से देखने से ही उस पर प्रभाव डाला जाता है, इसीलिए इसका नाम नज़र रक्खा गया है । चूंकि इसका आगे विस्तृत विवेचन यथास्थान किया गया है इसलिए यहां केवल नज़र तथा टोने टोटके सम्बन्धी प्रमुख बातों का जिनका उल्लेख भारतेन्दु युगीन काव्य में है, उल्लेख किया

१- र०बा०भा० ४, क्या०८, छं० १७ ।

जाएगा ।

बार बार आरसी या दर्पण देखने से नज़र लगने का भय रहता है -

बार बार पिय आरसी मत देखहु चित लाय ।
सुंदर कोमल रूप में दीठ न कहुं लग जाय[१]।।

गीली पगड़ी पहनने से भी नज़र लगने का भय रहता है -

सिर अदी पगरिया न देओ, नजरिया न लागै कहूं[२]।

केवल ईर्ष्या की दृष्टि तथा बुरी दृष्टि से देख लेने मात्र से नज़र लग जाती है -

मैं तो जात रही पिया की सेजिया(गुंया)मोहिं नजर लगा दीनो ।
कोउ सौतन आइके, औचक मोको देखि, बद्रीनाथ कहूं कहा मोहै दगा दीनो री[३]।

नज़र का प्रभाव तात्कालिक होता है -

मैं तो जात रही पिया की सेजिया(गुंया)मोहिं नजर लगा दीनोरी
कोउ सौतन आइके, औचक मोको देकि, बद्रीनाथ कहूं कहा मोहै दगा दीनो री[४]।

दिठौना लगाने से नजर का प्रभाव नहीं पड़ता है -
दई दिठौना खेलन पठवैं अनियारे दृग आंजि[५]।

नजर का प्रभाव भी बड़ा कष्ट कारक होता है और नज़र लगा व्यक्ति औषधि आदि से ठीक नहीं होता वरन् कोई नजर उतारने वाला

१- भा०ग्रं०पृ० १४५ ।

२- प्रे०सर्व०पृ० ५८२ ।

३- प्रे०सर्व०पृ० ५६६ ।

४- वही, पृ० ५६६ ।

व्यक्ति या जिसने नजर लगाई है वही नज़र उतार भी सकता है । इस विशेषता का भी उल्लेख मिलता है -

नजरहा छैला रे नजर लगाए चला जाय ।
नजर लगी बेहोस भई मैं जिया मोरा अकुलाय ।।
व्याकुल तड़पूं नजर न उतरै हाय न और उपाय ।
हरीचंद प्यारे को कोई लाओ जाय मनाय[१] ।।

नज़र के ही समान टोना तथा टोटका प्रभाव शाली मान गए हैं । लोक मानस इन पर अत्यधिक विश्वास रखता है और इनका उसके जीवन में बहुत महत्व है - नजर के ही समान भारतेन्दु युगीन काव्य में टोना टोटका सम्बन्धी भी अनेक प्रसंग है जिनका संक्षेप में विवेचन प्रस्तुत है -

टोना किये गये व्यक्ति की स्थिति विक्षिप्त मस्तिष्क वाले व्यक्ति की सी हो जाती है - बदरी नारायण जनु टोना डारि बौरी बनाई रे[२] और भूख प्यास नहीं लगती और आंखों में रात को नींद नहीं आती - चितै जनु करि गयो टोना रे
भूख प्यास छूटी तबहीं सौं, नैन रैन सोना रे
बदरी नारायण दिलवर यार अब जोगिन होना रे[३]।

+ + +

कै गयो चितवत कछु टोना - लै गयो मन नन्द ढोटौना ।
बद्रीनाथ विलोकत बांके - भूलत खान पान अरु सोना[४] ।।

इसी प्रकार टोना, टोटका, मूठ मारना, जादू करना आदि से संबंधित लोक विश्वासों का, जिनका जनजीवन में बहुत प्रचलन है भारतेन्दु युगीन काव्य में कई जगह उल्लेख हुआ । इन उल्लेख का लोक वेटक तथा लोकानुष्ठान में विचार किया जा चुका है अतः यहां उल्लेख करना पुनरुक्ति

१- भा० ग्रं० पृ० १८८ ।

२- प्रे० सर्व० पृ० ५८५ ।

३- वही, पृ० ५८५ ।

मात्र होगी ।

भूत तथा प्रेत से संबंधित लोक विश्वास:-

लोक मानस का विश्वास है कि अतृप्त आत्माएं भूत तथा प्रेत का रूप धारण कर सांसारिक जीवों को परेशान करती हैं । भूत, प्रेत सम्बन्धी कुछ लोक विश्वासों का भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लेख हुआ है -

लोक मानस का विश्वास है कि मरने पर जिन आत्माओं की तृप्ति नहीं होती, मकानों में वही प्रेत रूप में आकर निवास करते हैं -

मरिबै पै न मुक्ति बनै तिनकी बसै प्रेत ह्वै तेई मकानन मैं[1]।

लोक में जीवन में यह विश्वास प्रचलित है कि घोड़ों को भूतों के आवास स्थान का ज्ञान हो जाता है और इसीलिए भूतों की आवाज़ सुनकर वे बिगड़ जाते हैं । रसिक वाटिका के एक छंद में इसका उल्लेख भी है -

बिडर चलै हैं हयवृंद अगवानिन के भूतन की सुनिकै अवाज किलकारे की[2]।

विविध:-

उपर्युक्त वर्गों के अन्तर्गत परिगणित न होने वाले सामाजिक लोक विश्वासों को इस वर्ग के अन्तर्गत रक्खा गया । इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले अनेक विश्वासों का भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लेख मिलता है ।

लोक विश्वास है कि प्रातः काल मंगल होने से दिन अच्छा बीतता है किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है -

आजु महा मंगल भयो भोर
प्राननाथ भैंटे मारग में चितयो प्रेम-भरी दृग कोर ।
सिद्ध होयगो सिगरो कारज प्रातहिं मिलौ प्रान प्रिय मोर[3]।

१- र०वा०भाग३, क्या०१ ।

२- वही, पु०२, क्या० ३ ।

लोक मानस का जहां एक ओर विश्वास है कि प्रातःकाल शुभ घटना होने से पूरा दिन अच्छा बीतता है वहीं उसका यह भी विश्वास है कि यदि व्यापार में बोहनी के समय गड़बड़ हुआ तो दिन भर लाभ नहीं होता -

लाल यह बोहनिया की बेरा ।
हौं अबहीं गोरस लै निकसी बेचन काज सबेरा ।।
तुम तौ याही ताक रहत हौ करत फिरत मग फेरा ।
हरीचंद भगरौ मति ठानौ ह्वै है आजु निबेरा[1] ।।

इसी प्रकार यात्रा सम्बन्धी अनेक लोक विश्वास भी लोक जीवन मेंप्रचलित है जिस प्रकार लोक जीवन में दिशाशूल सम्बन्धी अनेक विश्वास है जिनका लोक वर्ग में पालन किया जाता है । भारतेन्दु युगीन काव्य में भी यात्रा के मंगल तथा अमंगल पर लोक विश्वासों के उल्लेख है -

रोकहिं जो तो अमंगल होय और प्रेम नसै जो कहैं पिय जाइए।
जौ कहैं जाहु न तौ प्रभुता जौ कछून कहै तो सनेह नसाइए।
जौ "हरिचंद" कहैं तुमरे बिन जीहैं न तौ यह क्या पति आइए।
तासों पयान समै तुमरे हम का कहैं आपै हमैं समझाइए[2] ।।

इसी प्रकार लोक में सर्प दंश के संबंध में भी अनेक लोक विश्वास प्रचलित हैं । सांप के संबंध में विश्वास है कि यदि सांप डस कर उलट जाए तो वह लाइलाज हो जाता है -

निसि कारी सांपिन भई डसत उलटि फिरि जात[3] ।

लोक जीवन में ग्रामीण नारियों का गंगा जमुना आदि नदियों की पिय मिलन हेतु मनौती मानना देखा जा सकता है । लोकमानस का विश्वास है कि गंगा जमुना आदि केवल प्राकृतिक शक्तियां मात्र नहीं है वरन्

१- भा०ग्रं०पृ० ५७ ।
२- वही, पृ० १५९ ।
३- वही, पृ० ६७० ।

इनमें मानव कामनाओं को पूर्ण करने की शक्ति भी है । ग्रामीण स्त्रियां इसी से इन देवियों से अपने अपने पति से मिलने के लिए इनकी प्रार्थना करती हैं और इनकी मनौतियां भी मानती हैं । भारतेन्दु युगीन काव्य में इसप्रकार के लोक विश्वासों के उल्लेख मिलते हैं -

करत मिलि दीपदान ब्रजबाला ।
जमुना सों करि जोरि मनावत मिलै पिया नंद लाला ।।
स्नान दान जप जोग ध्यान तप संजम नियम बिसाला।
इनके फल में "हरीचन्द" गल लगी कृष्ण गुनबाला[1] ।।

\+ + +

आयो परदेश ते तिया को पति भौन आज
मीत को वियोग जानि बढ़त कसाला है ।
यमुना सो मान राखो दीपक बढ़ावन को
रावरे के आवन को भाखत यो बाला है[2] ।।

धार्मिक लोक विश्वासः-

धार्मिक लोक विश्वासों से हमारा तात्पर्य उन लोक विश्वासों से है जिनकी गणना सामाजिक लोक विश्वासों के अन्तर्गत नहीं है और जिनके मूल में धार्मिक पृष्ठभूमि है । धार्मिक लोक विश्वासों के अन्तर्गत देवी देवताओं से संबंधित लोक विश्वास तथा पार लौकिक जीवन से संबंधित लोक विश्वास आते हैं । इस प्रकार इस वर्ग के विश्वासों का दो वर्गों में विभाजन कर अध्ययन किया जा सकता है ।

देवी देवताओं से सम्बन्धित विश्वासः-

देवी-देवताओं का, उनकी विशेषताओं का जिनका भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लेख हुआ है विस्तार से आगे अध्ययन किया गया है । अत यह प्रत्येक देवता से संबंधित उल्लिखित विश्वास का पुनः विवेचन पुनरुक्ति

१- भा०ग्रं० पृ० ८१ ।

२- र०वा० भाग १, क्या० १० ।

होगा । यहां इसलिए उन देवी देवताओं से संबंधित कुछ विशेष लोक विश्वासों का ही वर्णन होगा ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में एक जगह दिवाली के प्रसंग में लक्ष्मी से संबंधित एक अति प्रचलित लोक विश्वास का, कि यदि घर लिपवा पुतवा-कर सजाकर रक्खा जाएगा और दिवाली के दिन यदि रात को घर का दरवाजा खुला रक्खा जाएगा तो देवी का घर में आगमन होता है -

घर पुतवायो लिपवायो है दिवारी जानि
सेवक संवारी रंगवारी चित्र शाला है ।
ननद जिठानी सास गईं गिरिराज आज,
सूने भौन जागरन कठिन कराला है ।।
रखिहौं उघारे ही किवारे हौं संवारे लागे
बिना कंत प्यारे हिय बढ़त कसाला है ।
रमा भौन आवै कौन आवैरी रमन मेरे
लोकाचार हेतु दीपक की माला है[1] ।।

इसी प्रकार भारतेन्दु ने भी विभिन्न देवताओं के पूजन से संबंधित लोक विश्वासों का उल्लेख किया है -

पूजि के कालिहि सत्रु हतौ कोउ लक्ष्मी पूजि महा धन पाओ ।
सेइ सरस्वति पंडित होउ गनेसहि पूजिकै विघ्न नसाओ ।
त्यों "हरिचंद जू" ध्याई शिवै कोउ चार पदारथ हाथ ही लाओ ।
मेरे तो राधिका नायक ही गति लोक दोउ रहौ कै नसि जाओ[2] ।।

इसी प्रकार विभिन्न देवी देवताओं को पूज कर अभीष्ट लाभ प्राप्त करने से संबंधित विश्वासों का उल्लेख हुआ है । इन लोक विश्वास के मूल में लोक मानस विद्यमान है । देवी देवताओं पूजन से प्रसन्न होकर अभीष्ट फल देते हैं । इसका मूल आदिम टोने में है । टोना धर्म के भी मूल में है

१- र०बा० :भा० १, क्या० १ ।

२- भा०ग्रं०पृ० ७९ ।

और टोने का सिद्धांत ही विशेष अनुष्ठानों द्वारा शक्ति को वशीभूत कर अपनी इच्छा पूरी कराने में है। देवी देवताओं का लोक मानस या आदिम मानस से क्या संबंध है और इनके निर्माण के पीछे क्या लोक मानस की प्रवृत्ति है इसका अनुसंधान करते हुए डा० सत्येन्द्र ने लिखा है-

"देवी देवता के मूल बीज आदिम मानव की इस अनुभूति में थे जिसमें वह एक ऐसे अस्तित्व में आस्था रखने लगता है जो उसकी चाह की पूर्ति करता है। उसे ढंग से वह में किया जा सकता है। इसी अस्तित्व ने अनेक रूपों में देवी देवताओं को खड़ा किया। इस चक्र से दृष्टि से चाहे जिस व्यापार में देवी देवता के दर्शन किए जा सकते हैं।--- देवी देवताओं और मनुष्यों में आदिम मानस भेद नहीं मानता। उसे दोनों के व्यापार एक से विदित होते हैं। फिर भी वह देव को देव समझता है और मनुष्य को मनुष्य--- ये ठीक मानव की तरह जहां तहां विचरण करते और मानवों से बोलते चालते, उन्हें कष्टों से मुक्त करते प्रतीत होते हैं। ये मनुष्य के साथ युद्ध भूमि में भी उतर पड़ते हैं[१]"।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कृष्ण राम आदि की जो लीलाएं हैं[२] और काल का पूजा कर शत्रु पर विजय प्राप्त करना, लक्ष्मी से धन, सरस्वती से पांडित्य, गनेश से विघ्न विनाशन की शक्ति प्राप्त करना आदि जो विशेषताएं और उनके पूजन से अभीष्ट वस्तु प्राप्ति की बातें है इनके मूल में आदिम टोने का भाव है तथा इस प्रकार इन सबकी आधार शिला लोक मानस या आदिम मानस है। उपर्युक्त दृष्टि के आधार पर भगवान के विषय में "निज भक्तन के हतु सारथिपन हू कीन्ह" ,"वेणु सरिस हू पातकी शरण गए रखि लेत", "जे आवत याकी शरण निदर सबै तरि जात", "बालकपन खेलत ही में पाखान तरयौं" सबके मूल में लोक मानस तत्व निहित है इसलिए इनकी गणना लोक विश्वास के अंतर्गत ही की जाएगी।

१- सत्येन्द्र? मध्ययुगीन हिंदी काव्य का लोक तात्विक अध्ययन।

२- प्र० सा० पृ० १५।

वृक्ष पूजन और वृक्षों तथा वनस्पतियों को देवरूप देना भी लोक विश्वास की ही वस्तु है । वृक्ष तथा वनस्पति पूजा का मूल आदिम मानव की प्रकृति पूजा में है । भारतेंदु युगीन काव्य में भी अनेक वृक्षों तथा वनस्पतियों का देव रूप में प्रयोग होता है और उन्हें विभिन्न इच्छाओं की पूर्ति करने में सक्षम बतलाया गया है । इन सबका उल्लेख देवी देवताओं के प्रसंग में अलग से किया गया है । इसी प्रकार पशु पक्षी पूजन का संबंध भी टोटेमिज्म से है । गरुड आदि को विभिन्न कार्य में सहायता करने वाली भावना के संबंध में भी आदिम मानव मानस काम कर रहा है । इन देवताओं से संबंधित विश्वासों का आगे विवेचन किया गया है ।

पुनर्जन्म संबंधी विश्वास कि मृत्यु के बाद मुक्ति न होने पर व्यक्ति का पुनर्जन्म होता है और वह पुनः सांसारिक जीवन में आता है, का भी भारतेंदु युगीन कवियों ने उल्लेख किया है । आज पुनर्जन्म के साथ आत्मा परमात्मा जीव का संबंध बताया गया है और इसके पीछे दार्शनिक स्वरूप है किन्तु पुनर्जन्म के मूल में भी आदिम विश्वास के बीज हैं, जिनसे विकसित होकर पुनर्जन्म का सैद्धांतिक स्वरूप बन गया है । इस प्रकार लोकवार्ता विद डा० सत्येन्द्र ने पुनर्जन्म संबंधी विश्वास को लोक विश्वास के अन्तर्गत माना है[1] । भारतेंदु हरिश्चन्द्र आदि कवियों के काव्य में पुनर्जन्म संबंधी लोक विश्वास के उदाहरण भी मिलते हैं ।

> होके तुम्हारे कहां जांय अब इसी शर्म से मरते हैं ।
> अब तो योंही, जिन्दगी के बाकी दिन भरते हैं ।।
> मिलो न तुम या कत्ल करो मरने से हम नहीं डरते हैं ।
> मिलेंगे तुमको, बाद मरने के कौल यह करते हैं ।।
> हरीचंद दो दिन के लिए घबरा के न दिल को ढाहैंगे ।
> सहैंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निबाहैंगे[2] ।।

१- सत्येन्द्रः मध्ययुगीन हिंदी काव्य का लोक तात्त्विक अध्ययन ।

२- भारतेंदु ग्रंथावली पृ० २०१ ।

इसी प्रकार भाग्य संबंधी भी अनेक लोक विश्वासों का प्रयोग भारतेंदुयुगीन काव्य में हुआ है । कहीं भारतेंदु हरिश्चन्द्र लिखते है- "हरिचंद" न काहू को दोष कछू मिलि है सोइ भाग में जो उतर्यो"[१] इसी प्रकार कहीं कहते हैं जो होना होगा, जो भाग्य में पहले से लिखा होगा वही घटित होगा- "हरिचंद ऐसहि निबहैगी होनीहोय सो होय"[२]। प्रताप नारायण मिश्र भी कहते हैं कि ब्रह्मा ने जो भाग्य में लिख दिया वह सब सत्य है[३] और कहीं उनका विचार है कि भाग्य के ही अनुसार कुदिन और सुदिन आते हैं[४] ।

पाप और पुण्य की कल्पना तथा स्वर्ग और नर्क की कल्पना भी लोक विश्वास मूलक है और इनके मूल में लोक मानस की स्थिति है । यही कारण है कि जनवर्ग पाप और पुण्य तथा स्वर्ग और नर्क पर विश्वास करता है । भारतेंदु युगीन काव्य में इनसे भी संबंधित विश्वासों का उल्लेख हुआ है ।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त लोक विश्वास संबंधी विवेचन से स्पष्ट है कि -

(१) भारतेंदु युगीन काव्य में उल्लिखित लोक विश्वासों की संख्या बहुत अधिक नहीं है ।

(२) सामाजिक विश्वास तथा धार्मिक लोक विश्वास दोनों ही का प्रयोग भारतेंदु युगीन काव्य में मिलता है ।

(३) ऐसे धार्मिक लोक विश्वासों का जैसे-पाप-पुण्य,स्वर्ग, नर्क, पुनर्जन्म आदि का कवियों ने प्रयोग किया है जो यद्यपि लोक मानस के आधार पर बने हुए है और मूलतः लोक विश्वास ही हैं किंतु इनके पीछे पौराणिक तथा दार्शनिक आधार भी जोड़ दिया गया है ।

१- भा० ग्रं० पृ० १५९ । २- वही, पृ० ५८८

३- प्रता० ला० पृ० २५५ । ४- वही, पृ० २५५ ।

(४) जितने भी लोक विश्वासों का कवियों ने उल्लेख किया है वे वैसे ही तथावत् आज भी लोक जीवन प्रयुक्त होते हैं । इस प्रकार विवेच्य काल में प्रयुक्त लोक विश्वास लोक जीवन में प्रयुक्त लोक विश्वासों का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं ।

लोक देवता और लोक देवियां

लोक जीवन में देवी देवताओं का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है । इन्हीं देवी देवताओं की उपासना कर एक साधारण, अपढ़ तथा ग्रामीण व्यक्ति आज भी समझता है कि उसे कार्य में सिद्धि मिलेगी और उसकी मनोकामनाएं पूर्ण हो सकेंगी । इन देवताओं की उपासना के अनुष्ठान रूप में वह आज भी विशेष अवसरों पर एक पत्थर के ~~ट~~ टुकड़े पर जल पुष्प चढ़ाता तथा श्रद्धा और भक्ति से नतमस्तक हुआ देखा जा सकता है । अशिक्षित तथा असंस्कृत समुदाय में ही नहीं बड़े बड़े शिक्षित समुदाय वाले भी एक साधारण पत्थर के टुकड़े, तुलसी की पूजा तथा सूरज देवता को जल चढ़ाते हुए देखे जाते हैं । सिद्ध है कि यह देवोपासना की प्रवृत्ति एक विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित नहीं है । इसका क्षेत्र व्यापक है । क्षेत्र व्यापकता के साथ ही साथ पत्थर, पेड़, पौधे, नदियों की उपासना इन सबका मूल भी प्राचीन है और इनका संबंध आदिम मानव संस्कृति तक से है ।

अधिकांश लोक देवता तथा लोक देवियों की कल्पना आदिम मानव मस्तिष्क में दो कारणों से हुई प्रतीत होती है।प्रथम- आदिम मानव प्राकृतिक शक्ति का उपासक था । प्रत्येक प्राकृतिक वस्तुएं-चाहे वे वन हों, नदियां हो, पहाड़ हों, सूर्य चंद्र या अन्य नक्षत्रगण हों- उसे शक्ति रूप में ही दिखती थीं । इन प्राकृतिक शक्तियों जिनसे उसे या तो अपने जीवन की हानि का भय था, या अपने जीवन के एकमात्र आधार कृषि के नष्ट

होने का डर था उसकी उपासना उसने प्रारंभ कर दी थी । उदाहरणार्थ नदियों से आदिम मानव को बाढ़ का भय था जिससे कृषि नष्ट हो सकती थी, सूर्य अपनी उष्णता, चंद्र अपनी शीतलता तथा नक्षत्रगण उल्कापात से कृषि को जो जीवन का एक मात्र आधार थी नष्ट कर सकते थे । नाग आदि विषधर जानवर क्षणभर में मनुष्य को मृत्यु की शैय्या पर सुला सकते थे, अतः जीवन तथा जीवनाधार कृषि की रक्षा हेतु इन शक्तियों से आतंकित होकर मानव ने अति प्राचीन काल से इनकी उपासना तथा इन्हें प्रसन्न करने हेतु अनेकानेक अनुष्ठानादि प्रारंभ कर दिए थे और यही शक्ति उपासना का प्राचीन तत्व अवशिष्ट (survival) रूप में आज भी चला आ रहा है ।

आदिम मानव ने, हानि के अतिरिक्त जो वस्तुएं लाभ प्रद थीं, उन्हें भी कृतज्ञतावश तथा लाभान्वित होने की इच्छा से उनकी भी उपासना प्रारंभ कर दी रही होगी । उदाहरणार्थ गऊ तथा तुलसी आदि की उपासना । किंतु अवश्य है कि भयग्रस्त होकर उपासना करना जितना स्वाभाविक है उतना कृतज्ञतावश करना नहीं । यही कारण है अधिकांश शक्तियों की उपासनाभय प्रवृत्ति के कारण ही आरंभ हुई प्रतीत होती है ।

इसके अतिरिक्त "वीर पूजा"(Ancestor Worship and Hero Worship) के रूप में भी अनेक देवी देवताओं की उपासना प्रारंभ हुई थी[1]। कुछ विद्वानों का तो कहना है कि प्रत्येक देवी देवताओं का मूल वीर पूजा (Hero Worship) है[2] । इस धारणा के

१-"अस्तु सुरेंद्र शंकर और दुर्गा की पूजा हमारे यहां वीर पूजा ही थी । पीछे भैरव वीर भद्र और हनुमान की पूजा भी वीर पूजा ही थी और है । परंतु समय के फेर फार और प्रथा परिवर्तन से अब उसका रूप बदल गया"- प्र० सर्व भा० २, पृ० २२५ ।

2. Willdurant: Pleasures of Philosophy p.342-344.

अनुसार विशिष्ट व्यक्तियों का या तो अपने जीवन काल में विशेष आतंक तथा प्रभाव रहा होगा इसलिए लोगों ने उसके जीवन काल से ही उसे पूजना प्रारम्भ कर दिया, या कोई व्यक्ति विशेषदया, धर्म, शौर्य आदि के कारण विशेष जन प्रिय रहा होगा इसलिए लोगों ने उसकी मृत्यु के बाद या उसके जीवन काल में ही उसे विशेष महत्व दिया और स्मरण रूप में उसका पूजन प्रारम्भ कर दिया, और वह जन प्रिय व्यक्ति ही पूजित होते होते देवता बन गया। यह "वीर पूजा" वाली धारणा यद्यपि काफी दूर तक एक सत्य की तथा मानव प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है परसर्वांश में यह सिद्धान्त सत्य नहीं कि सभी देवताओं तथा देवियों का मूल वीर पूजा में है। अनेक देवी देवताओं का पुराण काल में ही अस्तित्व बना और तत्पश्चात् उनका लौकिकी-करण हुआ , उनका वीर पूजा से कोई भी संबंध नहीं। वे प्रायः प्रतीक रूप में गृहीत हुए हैं।

लोक देवताओं का पौराणिकीकरण तथा पौराणिक देवताओं का लौकिकीकरण भी बहुत हुआ है। अनेक लोक वर्ग अर्थात् अशिक्षित असभ्य ग्रामीण तथा असंस्कृत वर्ग के देवताओं को कालान्तर में पौराणिक स्वरूप दिया गया है, उनके विषय में विशेष अन्तर्कथाएं तथा धार्मिक पृष्ठ-भूमियां आदि जोड़ दी गई हैं। इसी प्रकार अनेक पौराणिक देवताओं को लोक वर्ग ने भी अपनाया है और उनमें धार्मिक तथा पौराणिक स्वरूप को अधिक प्रमुखता न देकर उसको एक लोक रूप भी दिया गया। इसके विपरीत जहां एक ओर अनेक लोक वर्ग के देवताओं को पौराणिक स्वरूप तथा पौराणिक देवताओं को लोक रूप दिया गया है वहीं दूसरी ओर लोक वर्ग के अनेक ऐसे देवता हैं जिन्हें पौराणिक या शास्त्रीय स्वरूप नहीं दिया गया है। वे केवल लोक वर्ग में ही प्रचलित है, पुराणादि में उनका उल्लेख तक भी नहीं मिलता। इसी प्रकार अनेक ऐसे पौराणिक देवता हैं जिनकी सूची केवल धर्मग्रंथों में ही मिलती है, लोक वर्ग में उनका यत्किंचित् भी प्रचलन नहीं है। इस प्रकार यहां लोक देवताओं तथा लोक देवियों से तात्पर्य केवल निम्नलिखित देवताओं तथा देवियों की कोटि से ही है -

जो देवता तथा देवियाँ केवल लोक वर्ग में ही प्रचलित है, जिनका कोई भी पौराणिक स्वरूप नहीं है ।

जो देवता तथा देवियां मूलतः लोक वर्ग के हैं, और जिनका आज भी लोक वर्ग में व्यापक प्रचार है, पर आज जिनकी पौराणिक स्थिति भी है ।

वे देवता तथा देवियां जिनका अस्तित्व पुराणकाल में बना था किन्तु वे कालांतर में लोक वर्ग द्वारा अपना लिए गए और उनके साथ लोक प्रवृत्ति के अनुरूप ही विभिन्न लोक विश्वास तथा लोक गाथाएं आदि जुड़ गई ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने तीनों कोटियों के देवताओं तथा देवियों पर प्रकाश डाला है जिससे उनके लोक प्रचलित स्वरूप तथा स्थिति पर प्रकाश पड़ता है । सर्व प्रथम निम्नलिखित परिच्छेदों में केवल उन्हीं लोक देवताओं तथा लोक देवियों पर प्रकाश डाला जाएगा जिनका प्रचलन केवल लोक तथा ग्रामीण वर्ग में ही है और जिन पर किसी प्रकार का शास्त्रीय या धार्मिक प्रभाव नहीं पड़ सका है । जो शत प्रतिशत लोक वर्ग के ही हैं । भारतेन्दु युगीन काव्य में इस प्रकार के उल्लिखित देवता तथा देवियां निम्नलिखित हैं ।

<u>बुचरा</u>:

प्रताप नारायण मिश्र ने इनका उल्लेख बुचरा तथा बुचरी पीर दोनों ही नामों से किया है[1]। लोक में यह हिजड़ों के देवता रूप में प्रसिद्ध हैं और यह बड़े शक्तिवान है । इनके उपासकों (हिजड़ों) का मत है कि पृथ्वी

१- घर के भीतर बड़े लड़ैया, बाहर बुचरा के अवतार - प्र०ल०पृ० २११ ।

+ + +

देवता हिजरन के कहवावैं बुचरी पीर बड़े सकत्यार - प्र०ल०पृ० २०७ ।

इन्हीं की उंगुली पर केन्द्रित है और चूंकि यह अंगुली को बराबर नचाया करते हैं इसलिए सदा वह चंचल रहा करती है[1]। इस उल्लेख के अतिरिक्त प्रतापनारायण मिश्र ने लोकोक्ति के रूप में -"घर के भीतर बड़े लड़ैया, बाहर बुचरा के अवतार[2]" उल्लेख किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि वह हिंजड़ों के मध्य तो शक्तिशाली देवता माने जाते हैं, पर लोक वर्ग में (हिंजड़ों के अतिरिक्त) इनकी शक्तिहीन देवता के रूप में ही स्वीकृति है ।

मूल रूप में संभवतः पीर से युक्त होकर सम्बोधित होने वाले[3] यह बुचरी पीर मुसलमानों के ही देवता रहे होंगे किन्तु आज लोक वर्ग में इनका अत्यधिक प्रचार है और गाज़ीपीर आदि की तरह ही मूलतः मुसलमानों से संबोधित होकर भी यह आज हिन्दुओं द्वारा भी पूजे जाते हैं और लोक वर्ग में इनकी विशिष्ट स्थिति बन गई है ।

नारसिंह बाबा:-

नारसिंह बाबा भी एक लोक देवता हैं और इनकी उपासना एक छोटे तथा सीमित वर्ग में ही होती है । प्रताप नारायण मिश्र ने कानपुर माहात्म्य (आल्हा) में नारसिंह बाबा को स्मरण कर सहायता की याचना की है कि वह जन्म भूमि का यश गाने जा रहे हैं किसी प्रकार की त्रुटि न हो[4]। कूक ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "इंट्रोडक्शन टु पापुलर रिलीजन एण्ड फोकलोर

१- देवता हिजरन के कहवावें बुचरी पीर बड़े सकत्यार ।
तिनकी अंगुरी पर कम्पू बसै जानै बिरले जाननहार ।
सदा नचावैं उई अंगुरी का ज्वानौं बुन्यिौ कान लगाय ।
तेहि ते चंचल यह पिरथी रहै, कौनौ बातन छोरी जाय-प्र०ल०पृ०२०७ ।
२- तिनके लरिका हम कलजुगहा कायर क्रूर कपूत गँवार ।
"घर के भीतर बड़े लड़ैया बुचरा के औतार"-प्र०ल०, पृ० २११ ।
३- देवता हिजरन के कहवावे बुचरी पीर बड़े सकत्यार - प्र०ल०पृ० २०७ ।
४- गाज़ी पीर नारसिंह बाबा देउता सब मिलि होउ सहाय।
जनम भूमि को जसु गावतु हौं भूलौ अच्छर देउ बताय ।।
प्र०ल०पृ० २०५ ।

आफ़ नदर्न इंडिया" में इनका उल्लेख किया है[१]। क्रुक का कहना है कि अनेक पीरों के कब्रिस्तानों पर प्रायः वार्षिक रूप में मुसलमान उत्सव के रूप में उर्स करते थे। यह उर्स प्रायः उन विशिष्ट मुसलमान व्यक्तियों की यादगार में मनाए जाते थे जो हिन्दुओं के कट्टर शत्रु थे तथा धर्म के लिए हिन्दुओं के साथ युद्ध करते थे, युद्ध में ही मारे गए थे। किन्तु कालान्तर में नीच वर्ण के हिन्दू भी उन्हीं पीरों की, जो उनके ही विरोधी थे के उर्स में सम्मिलित होने लगे और धीरे धीरे उनकी उपासना भी करने लगे। उर्स में सम्मिलित होकर उन हिन्दुओं ने कहना शुरू किया कि वे उस फ़कीर के जिसकी स्मृति में उर्स आदि मनाया जा रहा है के जीवनकाल में शिष्य थे तथा मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी हैं। नारसिंह बाबा भी एक ऐसे ही व्यक्ति हैं जो फ़कीर के चप्पल रक्खे हुए हैं तथा कहते हैं कि वे उस पीर के उसके जीवन काल में शिष्य थे और अब उत्तराधिकारी है। निश्चित है कि यह नारसिंह बाबा भी अपने जीवन काल में ही चप्पल पूजते पूजते लोक वर्ग द्वारा पुजने लगे होंगे और उनकी मृत्यु के बाद तो उनका लोक में और भी महत्व बढ़ गया होगा और वे देवता रूप में पुजने लगे होंगे। प्रतापनारायण मिश्र ने इसी लोक विश्वास से प्रेरित होकर नारसिंह बाबा की स्तुति की थी तथा उन्हें महत्व दिया था। नारसिंह बाबा एक लोक देवता है लोक वर्ग में यह अति श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं पर शिष्ट या शिक्षित वर्ग में इनका यत्किंचित् भी महत्व नहीं है, वरन् शिष्ट वर्ग अति घृणा की दृष्टि से देखता है। "दिनकर प्रकाश" के उद्धरण से नारसिंह बाबा की भारतेन्दु काल में स्थिति पर और भी स्पष्ट प्रकाश पड़ता है[२]।

१- Crooke.W: Introduction to popular religion and folklore of Northern India p.128.

२- अब जो दूसरी तरफ पंच जी फिरे तो वहां भी सैकड़ों डफाली मियां निशान गाड़े रवाना बजा रहे थे। नीच कौम के, आंखों के अंधे, हिन्दू हाथ जोड़े बैठे हैं। कहीं पर किसी औरत के शिर पर फातिमा बीबी खेल रही हैं, किसी पर नारसिंह बाबा चढ़े हैं किसी पर जाहर पीर मौजूद हैं किसी पर देवी भवानी अगुवा रही है। यह कैफियत लायक दीद होती है, क्योंकि जिन औरतों पर भूत चढ़ता है वह अक्सर कर

गाज़ीपीर:-

प्रताप नारायण मिश्र ने कानपुर माहात्म्य (आल्हा) में नारसिंह बाबा के साथ ही साथ गाज़ीपीर का भी स्मरण किया है । गाज़ीपीर भी आज निम्न वर्ग की हिन्दू जातियों - पासी, चमारों आदि में बड़ी श्रद्धा से पूजे जाते हैं । यह एक वीर देवता(Heroic Godling) है । मूलतः गाजीपीर मुसलमानों के देवता हैं, पंचपीरों में से इनका भी स्थान महत्वपूर्ण है । गाजीपीर की स्मृति में बहराइच तथा गोरखपुर और भदोही आदि स्थानों में वार्षिक समारोह होता है । इसमें मुसलमान तथा निम्नवर्ण के हिन्दू सभी सम्मिलित होते हैं । इस प्रकार मुसलमानों के साथ ही साथ हिन्दुओं के भी देवता बन गए हैं । लोक वर्ग में आज इनका पर्याप्त प्रचार है और आज यह लोक देवता रूप में ही स्मरण किए जाते हैं । प्रताप नारायण मिश्र ने इनका उल्लेख मात्र किया है इसलिए इनके लोक प्रचलित रूप पर मिश्र जी के काव्य से यत्किंचित् भी प्रकाश नहीं पड़ता ।

अली मुरतिजा:-

कानपुर माहात्म्य(आल्हा) दंगल खंड में प्रताप नारायण मिश्र ने बजरंग बली के साथ ही साथ अली मुरतिजा का भी उल्लेख किया है[1]।वीरत्व

जबान होती है । अगुवाने के समय ऐसी निर्लज्जता क से सिर हिलाती है कि तन की कुछ भी सुध नहीं रहती । पांच पांच छः छः मुसटंड डफाली मियां उसको पकड़ते हैं पर भला वह कब किसी के दाबे दबती है, उनके घर वाले नीच बुद्धि यह सब दुर्दशा देखा करते हैं, कोई पूछता है-मेरे लड़का नहीं होत वह कब होगा । तो वह कहती है हां होगा (गाजीमर्द की मानता मानो, सेर भर सत्तू, एक टका पैसा दो भेली गुड़ और मुर्गी का बच्चा चढ़ाओ आसेमेही बिटवा हुई । दूसरी पूछती है मोर मनसेधू मोर कहे मा नहीं रहत कोउनो जतन बतौतेउ तो तुहार हम नीके कै पुजाई करतेउ वह जवाब देती है अच्छा कुछ चिंता नहीं न ओपर टोना किहेसे तुहार गुलाम हुइजइहै -
-दिनकर प्रकाश-खण्ड १,संख्या ५, मई १८८४ ई०, पृ० ७-८ ।
१का जोड़ै छूटी रे ज्वानन की, ज्वानी सुनियो कान लगाय ।

के अधिष्ठाता बजरंगी तथा युद्ध प्रकरण में अली मुरतिजा का उल्लेख होने से यह सिद्ध ही है कि यह भी वीर देवता (Heroic Godling)हैं,जो मूलतः मुसलमानों से सम्बन्धित थे किन्तु अब समस्त लोक वर्ग से संबंधित हो गए हैं और आज लोक वर्ग में बजरंगी के समान ही युद्ध के समय तथा वीरता प्रदर्शन करने के पहले स्मरण किए जाते हैं । एक अन्य स्थल पर आल्हा, दंगल खण्ड में ही अली मुरतिजा के उल्लेख से पता चलता है कि संभवतः यह किसी युद्ध के बड़े सेनानी थे तथा उन्होंने खैरगढ़ को नष्ट किया था और विपक्षियों को विशाल संख्या में मारा था[१], जिसके कारण ही लोग इन्हें पूजने लगे और यह लोक वर्ग में वीर देवता बन गए ।

गऊमाता:-

गाय की उपयोगिता समझकर भारतवासियों ने अति प्राचीन काल से ही इसको देवता मानकर इनकी उपासना प्रारम्भ कर दी थी । पशु पूजा (Animal Worship) के विषय में अनेक उदाहरण प्राप्त हैं[२]। गाय चूंकि दूध, दही, घृत, मक्खन सभी दृष्टियों से लाभ प्रद थी इसलिए लोक वर्ग में इसकी उपासना स्वाभाविक ही है । दुग्ध पान जीवन दान का कारण माना गया है इसदृष्टि से गऊ तथा मां जो दुग्ध पान कराकर नव-जात शिशु को जीवन दान देती है समान हैं इसलिए गऊ को माता-गऊमाता

बांधि जांघिया उठ ठाढ़े भे छोटे हाथी के अनुहार ।
ताल ठोंकि के जांघ बजावैं माटी तन मां लेईं लगाय ।
अली मुरतिजा को सुमिरन कर लै बजरंगी को नांव ।
(हुन्कर)
बरन मनावैं उस्तादन के आपन बलैं दिखाय - प्र० ल० पृ० ३२६ ।

१- अली मुरतिजा को गैबत है, जो रन आयु इलाही क्यार ।
हंसि हंसि तोरी गढ़ खैबर को, औ बैरिन को डारो मार-प्र० ल० पृ० ३२१।

२- Crooke: Introduction to popular religion and Folklore of Northern India p.315-346.

कहकर भी संबोधित किया गया है । आज भी हिन्दुओं के मध्य लोक वर्ग में गऊ का बड़ा मान है और वह बड़े श्रद्धा की दृष्टि से देखी जाती है । गऊ के साथ आदर की दृष्टि से ही माता का संबंध जोड़ा गया है तथा इसे देवता का रूप भी दिया गया है[१]। भारतेन्दु युगीन कवियों ने विशेष-कर प्रताप नारायण मिश्र ने गऊ देवता की महत्ता सम्बन्धी अनेक छंद लिखे हैं । गऊमाता की महत्ता बताते हुए वे कहते हैं-"हे गऊ माता । तुम्हारा स्मरण करता हूं, सबसे बड़ी कीर्ति तुम्हारी ही है, तुम बच्चों का पालन पोषण करती हो, और वैतरणी (स्वर्ग मार्ग की एक लोक कल्पित नदी) पार कराती है। तुम्हारे दूध, दही तथा गोबर जिसके स्पर्श सेही व्यक्ति पवित्र हो जाता है की महिमा प्रसिद्ध ही है मां चारों युग में तुम्हारी पूजा हुई है । कृष्ण का गोपाल नाम तुम्हारे ही कारण प्रसिद्ध हुआ है । तुम्हारी महिमा अनंत है । तुम घास के बदले दूध देती हो, मृत्यु के बाद भी हड्डी और चमड़ा । तुम्हारा यह उपकार अतुलनीय है । इसी-लिए छोटे और बड़े सभी तुम्हें माता कहकर पुकारते हैं[२]।" इस प्रकार प्रताप नारायण मिश्र ने गाय के लोक प्रचलित रूप कि गाय देवता है, माता है, जीने और मरने में सब प्रकार सहायक है[३]। का वर्णन किया है । अवधेय है

१- सतयुग त्रेता और द्वापर लगि गाई देउता रही हमार-प्र० ल० पृ० २१० ।

२- गैया माता तुमका सुमिरौ कीरति सब ते बड़ी तुम्हारि ।
करौ पालना तुम लरिकन के पुरखिन बैतरनी देउ तारि ।
तुम्हरे दूध दही की महिमा जानै देव पितर सब कोय ।
को अस तुम बिन दूसर जेहिका गोबर लगे पवित्तर होय ।
चारिउ जुग में तेरि पूजाहै, साका गावैं बेद पुरान ।
तुम्हरे नाते कहवावत है श्री गोपाल कृष्ण भगवान ।
- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -
घास के बदले दूध पियावैं, मरिके देय हाड़ और चाम ।
पुनि यह तन मन धन जो पैसी जगदम्बा के काम ।
कहां लौ बरनौं मैं गइयन का जिनके कोटि कोटि उपकार ।
देवता मनई सब जानत है पूजन रहे बूढ़ औ बार ।।-प्र० ल० पृ० २११ ।

३- गैया देउता गैया माता गैया जिनको मरत सहाय- प्र० ल० पृ० २१५ ।

है कि भारतेन्दु युग में गऊ बध बहुत होता था, इसलिये उससे दुखी होकर तत्कालीन कवियों ने गऊ की महत्ता सम्बन्धी छंद अनेक लिखे हैं । इस बात को ही ध्यान में रखकर कहा है कि तुम्हारी दयनीय अवस्था तथा अपमान होते देखकर जो नहीं पसीजता वह हिन्दू नहीं है, वह राक्षस पापी और चंडाल है[1]।

पीपल देवता:-

वृक्ष पूजन लोक वर्ग की विशेषता है । भारत में ही नहीं विश्व भर में वृक्ष पूजन के दृष्टान्त मिलते हैं । भारत में वृक्षों का पूजन लोक वर्ग में बहुत प्रचलित है । पीपल,बरगद,नीम,साल आदि सभी वृक्षों की पूजा के उदाहरण मिल जाते हैं । वृक्षों में पीपल का पूजन सर्वाधिक प्रचलित है । यही कारण है कि पीपल का नाम ही पीपल देवता संबोधन के साथ ही लिया जाता है । पीपल को एक साधारण अपढ़ तथा ग्रामीण हिन्दू भी बड़े श्रद्धा की दृष्टि से देखता है, इसमें वह आत्माओं का, पितरों का तथा अद्भुत शक्तियों आदि का निवास मानता है । इसीलिए वह न इस वृक्ष को काटता है न इसके नीचे कभी झूठ आदि बोलता है । उसका विश्वास है कि यह सब कर्म(वृक्ष काटना, इसके नीचे झूठ बोलना आदि) करना पीपल देवता का अपमान करना है, जिसका फल कभी अच्छा नहीं होगा और बड़ी हानि का डर है । पीपल का पूजन भी भारत में विशिष्ट अवसरों पर होता है । कहीं कहीं तो लोग पीपल को भेंटते भी हैं[2]। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "वैशाख माहात्म्य" में पीपल वृक्ष माहात्म्य सम्बन्धी लोक विश्वास का वर्णन किया है । लोक प्रचलित पीपल माहात्म्य के विषय में भारतेन्दु लिखते हैं-"प्रातः काल जो पीपल को देव मानकर कई बार परिकम्मा करता है और जो पीपल के नीचे तर्पण करता है उसके पितर आदि सब तर जाते हैं, जो भक्ति पूर्वक पीपल को जल से सींचता है वह अपने सैकड़ों कुलों को तार देता है । जो मनुष्य गाय की पीठ सुहराकर नहाकर पीपल को जल देता है, कृष्ण

१- प्र०ल०, पृ० २११ ।

2. Pillai.G.Subramania: Tree Worship and Ophiolatary p. 19-20.

को पूजता है वह दुर्गति छोड़कर देवतों की गति प्राप्त कर लेता है[1]।" इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पीपल देवता से संबंधित लोक विश्वासों का तद्वत वर्णन कर पीपल देवता का एक लोक रूप पाठकों के सामने उपस्थित कर दिया है ।

तुलसी :

पीपल के अतिरिक्त वृक्षों तथा पौधों की पूजा में तुलसी की पूजा का प्रचलन भी लोक वर्ग में बहुत है । उत्तर भारत में इसका प्रचार लोक वर्ग में बहुत व्यापक है और यहीं से दक्षिण भारत में इसका प्रचार हुआ है । लोक वर्ग में तुलसी विष्णु की पत्नी समझी जाती है इसके संबंध में प्रचलित लोक गाथा भी है । लोक में तुलसी विवाह की प्रथा भी प्रचलित है । कार्तिक मास में तुलसी का विशेष पूजन होता है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "वैशाख माहात्म्य" में तुलसीदल के अर्पण का लोक प्रचलित महत्व बताते हुए लिखा है - वैशाख में तीनों काल में तुलसीदल अर्पण से कृष्ण मनुष्य को जन्म मरण से मुक्ति देते हैं[2]।

गोवर्धनः-

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि मानव आदिम अवस्था में

१- जो सींचत पीपल तरुन्हिं प्रात न्हाई हरि मानि ।

करत प्रदच्छिन भांति बहु सर्व देवमय जानि ।

तरपन करि सुर पित्र नर सचराचर तरु मूल ।

मेटै अपने पित्र की नरक कुंड की सूल ।

जो सींचहिं जल भक्ति सौं पीपर तरु जड़ मांहि ।

तिन तर्यो निज सुत कुल यामैं संसय नांहि ।

गऊ पीठ सुहराइ के न्हाई तरुन्हिं जल देइ ।

कृष्ण पूजि तजि दुर्गतहिं देवन की गति लेई-भा०ग्रं०वैशाख माहात्म्य,पृ०९०

२- तुलसीदल वैशाख में अर्पहिं तीनों काल ।

जनम मरन सौं मुक्त तेहि करत नंद के लाल ।भा०ग्रं०वैशाख माहात्म्य,पृ०९०

प्रकृति शक्ति का पुजारी था । इसी प्राकृतिक शक्ति के रूप में उसने विविध पर्वतों का भी पूजन प्रारम्भ कर दिया था । आदिम जातियों में यह पर्वत पूजा आज भी बहुत व्यापक रूप में प्रचलित है और वे विविध अनुष्ठानों द्वारा विधिवत पर्वतों का पूजन करते हैं । आदिम संस्कृति का यह अवशिष्ट तत्व आज भी लोक वर्ग में लोकतत्व के रूप में प्रतिष्ठित है कि आज भी मानव इतना विकसित होकर पर्वतों का पूजन श्रद्धावश करता ही जाता है और आज भी पहले की ही भांति लोक वर्ग, विविध पूजित पर्वतों के साथ जुड़ी हुयी विभिन्न लोक कथाओं तथा लोक विश्वासों पर तद्वत विश्वास करता चला आ रहा है । इन पर्वतों को ही कालान्तर में देवता रूप दे दिया गया और इनका मानवीय करण भी किया गया । गोवर्धन पूजा इसका एक अच्छा उदाहरण है । गोवर्धन मथुरा के निकट एक पर्वत है ।

भारतेन्दु युगीन कवियों में प्रमुख रूप से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने गोवर्धन पर्वत की पूजा के संबंध में वर्णन किया है । सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने "भक्त सर्वस्व" में भगवान के चरणों में बने हुए पर्वत के चिह्न की संभावना का कारण बताते हुए गोवर्धन पर्वत की पूजा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि -"सारा ब्रज गोवर्धन पर्वत की पूजा करता है और सारे ब्रज वासियों द्वारा पूजित होने वाला गोवर्धन पर्वत स्वयं भगवान के चरण की सेवा करता है इस-लिए भगवान ने अपने चरणों में पर्वत चिह्न को स्थान दिया है[1]। दीपावली पर गोवर्धन पर्वत पर हुई दीप शोभा का भी वर्णन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया है[2]। इसके अतिरिक्त गोवर्धन पर्वत के साथ जुड़े हुए लोक विश्वास का, कि कृष्ण ने इन्द्र की क्रुद्ध होकर की गई अतिवृष्टि से, ब्रज को गोवर्धन पर्वत को छोटी अंगुली पर उठाकर बचाया था, भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने वर्णन

१- सब ब्रज पूजत गिरिवरहिं सो सेवत है पाय ।
यह माहात्म्य प्रगटित करन गिरिवर चिह्न लखाय ।।
-भा०ग्रं०, पृ० ३० ।

२- भा०ग्रं०, पृ० ८२ ।

किया है[१]। यह लोक विश्वास अति प्राचीन काल से लोक वर्ग में प्रचलित मिलता है और आज भी गोवर्धन पर्वत की पूजा होते समय कृष्ण का वृतान्त स्मरण किया जाता है ।

शीतलामाता:-[२]

लोक वर्ग में अनेक देवी देवता रोग नियन्त्रक रूप में प्रसिद्ध है,जो रोगों के अधिष्ठाता हैं और जिनको प्रसन्न करने से तथा जिनकी उपासना करने से उनका प्रकोप नहीं होता । चेचक (Small Pox) की देवी शीतला माता मानी जाती है । चेचक होने को हमेशा लोक में शीतला का दरसना ही कहा जाएगा । शीतला देवी का लोक वर्ग में बहुत महत्व है और-किसी व्यक्ति के चेचक होने पर शीतला देवी के नाम से अनेक अनुष्ठानादि भी किए जाते हैं । आज शिक्षित वर्ग में किसी के चेचक होने पर वे अनुष्ठान नहीं किए जाते और नहीं शिक्षित वर्ग वाले कोई विशेष ध्यान रखते हैं वे औषधि आदि का प्रयोग करते हैं । राधाकृष्ण दास ने भी शीतला आदि

१- आजु बन उमगे फिरत अहीर ।
हेरी देन बदत नहि काहू देखियत जित तित भीर ।
इक गावत इक ताल बजावत एक बनावत चीर ।
इक नाचत इन गाइ खिलावत एक उड़ावत छीर ।
हमरो देव गोवर्धन पर्वत सुंदर स्याम शरीर ।
कहा करैगो इन्द्र बापुरो आ बस केवल नीर ।
सात दिवस गिरि कर धरि राख्यो बाम भुजा बलबीर ।
हरीचंद जीत्यो मेरे मोहन हार्यो इन्द्र अधीर।।भा०ग्रं०पृ० ४३६ ।

२- चेचक में अति उष्णता होते हुए भी इसका नाम शीतला क्यों पड़ा इस सम्बन्ध में डा० तारापुर वाला का मत है कि यह मानव प्रवृत्ति है कि वह नीच या भयंकर वस्तु को किसी उच्च तथा सुन्दर रूप में पुकारने का प्रयत्न करता है और संभवतः इस भयंकर रोग को जिसमें उष्णता तथा गरमी की चरम सीमा होती है को शीतला अर्थात् शीत वाली कह कर पुकारा हो तो कोई आश्चर्य नहीं ।

की उपासना को महत्व नहीं दिया किन्तु राधाकृष्णदास ने शीतला का उल्लेख किया ही है[1] और परोक्ष रूप से शीतला का लोक वर्ग में व्यापक महत्व भी सिद्ध होता है ।

धरतीमाता :-

धरती पूजा भी अति प्राचीन काल से विश्व में प्रकृति शक्ति रूप में होती आई है और आज भी असभ्य आदिम तथा ग्रामीण लोक वर्ग में तो होती ही है शिक्षित समुदाय में भी अवशिष्ट तत्व (survivals) के रूप में आज भी विद्यमान है । फ्रेज़र का कथन है कि धरती की उपासना कृषि माता (Corn Mother) के रूप में होती है । फ्रेज़र का विचार है कि कृषि रूप में धान्य देने के कारण अति प्राचीन काल में ही लोगों ने उसे माता का रूप दिया और तब से ही यह धरती माता रूप में पूजित होती है । भारतेन्दु काल में धरती माता की उपासना मैं काफ़ी प्रचलित थी और श्रद्धा की दृष्टि से धरती माता देखी जाती थी[2]।

१- भजि भूत प्रेतक सीतलै बैसाख नंदन हम भए । राधाकृष्ण ग्रंथावली-पृ० १६।

२- "हमारे पूर्वज मूर्ख न थे, जिन्होंने धरती को माता एवं शिव जी की आठ मूर्तियों में से एक मूर्ति कहा है तथा उसके पूजने की आज्ञा दी है । वे भली भांति जानते थे कि संसार में जितने पदार्थ है सबकी उत्पत्ति और लय इसी से होती है हम सारे धन धर्म इसी पर करते हैं । हमारे सुख भोग की सारी सामग्री इसी से प्राप्त होती है फिर इसके माता होने में क्या संदेह है । यदि इस माता के प्रसन्न रखने को उद्योग न करते रहेंगे तो हमारी क्या दशा होगी-----हमारे इस वाक्य पर विश्वास करो कि धरती है भगवती का रूप इसके प्रसन्न रखने में ही सबका निर्वाह है । " चिरगत बूढ़ों से सुनने में आया है कि अभी ४० ही ५० वर्ष हुए जिन खेतों में सौ सौ मन अन्न उपजता था उनमें अब ५०--६० मन मुश्किल से होता है । यह धरती माता की पूजा न होने का ही फल है यदि हम अब भी न चेते तो आगे और भी अनिष्ट की संभावना है ।

तथा इनका पूजन होता था । धरती के साथ माता विशेषण का संयोग कैसे हुआ उसका तात्पर्य क्या है इसकी व्याख्या जो ब्राह्मण में प्रकाशित है कि पीछे वही फ़ेजर वाली धारणा से साम्य है जिससे धरती के साथ जुड़े हुए माता विशेषण की लोक प्रवृत्ति के संबंध में परिचय मिलता है । राधा-कृष्णदास ने धरती माता का उल्लेख करते हुए कहा है[1] कि हम सब धरती मां के कपूत है जो बोझ से(पाप कर्म) से उसे दबाते (दलित) करते जाते है । ठाकुर जगमोहन सिंह ने भी धरती माता का धरा भवानी रूप में उल्लेख किया है[2]।

वृंदावन देवी :-

लोक देवताओं तथा देवियों में वन देवताओं तथा वनदेवियों की उपासना भी व्यापक है । लोक वर्ग ने वनों का देवता तथा देवी रूप में मानवीयकरण कर उनके पीछे विभिन्न प्रकार की मनोरंजन लोक कहानियां जोड़ रक्खी है । वनदेवी शब्द का उल्लेख भारतेन्दु युगीन कवियों ने भी यत्र तत्र किया है[3]। लोक में वृंदावन देवी की पूजा तथा महत्व प्रसिद्ध ही है ।

---

१ अतः अभी से धरती माता की पूजा का उद्योग कीजिए, दूसरों को उपदेश दीजिए । जी में विचारिए कि इनको प्रसन्न रखने को पूजा चाहिए ।"-ब्राह्मण, खण्ड ५, संख्या ९ ।

१- धरती माता को कपूत हम बोझ से सदा दबाते हैं-राधाकृष्ण ग्रं० पृ०२१

२- सिंह बाहु फिरि आठ वहां को लागत पानी ।
किरिया देहु अनेक भांति तुहि धरा भवानी ।।
-श्या०स०पृ० १४ ।

३- परवानो जारी कियो वनदेविन के नाम ।
अबहिं चकरि कै बिन सरवन हाजिर लाओ श्याम ।।
-भा०ग्रं०, पृ० ६६३ ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने वृंदावन देवी सम्बन्धी छंद लिखे हैं[1] तथा कृष्ण को भी वृंदावन देवी का पद सेवक बताया है[2]।

विन्ध्याचल देवी या कजरी देवी :

लोक देवियों में विंध्याचल देवी या कजली देवी का विशेष महत्व है । विंध्याचल देवी चूंकि कज्जल के समान काली हैं इसलिए इनका नाम विंध्याचल देवी के साथ साथ कजली देवी भी है[3]। भारतेन्दु युगीन कवियों में प्रेमघन ने विंध्याचल देवी पर दो छंद लिखे हैं तथा इनके विषय में प्रचलित लोक कथा- कि यह यशोदा पुत्री है तथा इन्होंने भादों बदी द्वितीया की रात्रि में गोकुल में नन्दभवन-के यहां जन्म लिया था, और इनको कारागार में पड़े हुए वसुदेव ईश्वर की प्रेरणा से यशोदा के यहां से सद्यः प्रसूता यशोदा की पुत्री को कृष्ण के स्थान पर बदल कर ले आए थे, देवकी के गोद में पहुंच कर जब इस यशोदा की पुत्री ने क्रंदन करना शुरू किया तो कंस इसे अपना विनाशक तथा देवकी का अष्टम पुत्र जानकर इसको मारने चला किन्तु जैसे ही कंस ने इसको पटकना चाहा वह छुट कर आकाश में चली गई और वहीं से उसने कंस के विनाश की सूचना दी और वही यशोदा पुत्री विंध्याचल पर्वत पर आकर बस गई तब से विंध्याचल देवी कहलाने लगीं । यशोदा की यह पुत्री विंध्याचल पर निवास करने वाली यह विंध्याचल देवी बन गई । यह भक्तों के भय को हरने वाली देवी है - का उल्लेख किया है[4]। इन्हें ही कजली देवी

1- भा०ग्रं०, पृ० ८०,५३७ ।

२- वही, पृ० ५३७ ।

3- प्रेमघन सर्वस्वः प, पृ० ३३२ ।

४- धनि विंध्याचल रानी रे सांवलिया ।।

जलधर नवल नील सोभा तन चित चातक ललचानी रे ।।

भांदव बदी दुतीया गोकुल नन्दभवन प्रगटानी रे सां० ।।

तू जग जननि जोगमाया, जसुदा दुहिता कहलानी रे सां० ।।

बदलि कृष्ण वसुदेव तोहि लै आए बृज रजधानी रे सां० ।।

कहा जाता है । प्रेमघन ने इनको कजरी रूप में कह कर भी छंद लिखा है[1] जिसमें उपरलिखित प्रचलित कथा के ही भाव दुहराए गए हैं ।

भूत-प्रेत :-

लोक वर्ग में भूत और प्रेत की उपासना भी देवताओं तथा देवियों के रूप में होती है और इस उपासना के अनुष्ठान रूप में लोक वर्ग किसी

कृष्ण अष्टमी की निसि गोकुल सों मथुरा मैं आनी रे सां० ।।
देव देवकी गोद बिराजत बिधरि २ बिल्लानी रे सां० ।।
रोदन गिरि जनु कंसहि टेरति देवकि बन्दि छुड़ानी रे ।।
सुनि सठ दौरि धाय तह पहुंच्यो उपजत हिय अभिमानी रे ।।
पटकन चह्यो उठाय तोहि धरि बल करि अतिसय तभी रे ।।
चमकि चली चपला सी छुटि तब तू मरोरि बलपानी रे ।।
पहुंचि गगन पर बिंहसत बोली कंस बिध्वंस बानी रे ।।
आय बसी विन्ध्याचल "देवी कान्ति" अमल छबि छानी रे ।।
कृष्ण बहिन कृष्णा, काली, स्यामा, सुख सम्पत्ति दानी रे ।।
विजया, जया, जयन्ती, दुर्गा, अष्टभुजा जगरानी रे ।।
आदि सक्ति अवतार नाम इन कहि पूज्यो तुहि ज्ञानी रे ।।
भक्तन के भय हरत देत फल चारौं सहज सयानी रे ।।
बरसउ कृपा प्रेमघन पै नित निज जन जानि भवानी रे ।।

-प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ५२६-५२७ ।

1- काजर सी कजरारी देवि कजरिया ।।
कारे भादव की निसि आई करि बृज लोग सुखारी देवि ।
कारे कान्हर की भगिनी तू जो सब जग हितकारी देवि ।
कंसनकारे कारे हिय मैं उपजावनि भय भारी देवि क०
कारे विंध्याचल की बासिनी दायिनि जन फल चारी देवि ।
काली ह्वै काले महिषासुर अधमहि सहज सहारी देवि कज० ।
वाहि प्रेमघन जानि भक्त निज अमलन वारी देवि ।।१०।।

-प्रेमघन सर्वस्वः पृ० ५२७ ।

विशिष्ट पेड़ की, जिसमें भूत या प्रेत का निवास आदि माना जाता है जैसे- नीम, पीपल, खिन्नी या किसी विशिष्ट स्थान पर कुछ रहस्यात्मक अनुष्ठान उस भूत या प्रेत की संतुष्टि हेतु करता है, जिससे उसे विश्वास होता है कि उसकी किसी प्रकार की हानि नहीं होगी और उसे विभिन्न कार्यों में सिद्धि मिलेगी । भूत प्रेतों की स्थिति के सम्बन्ध में लोक विश्वास है कि जो आत्माएं अपने जीवन काल में असंतुष्ट रहती हैं, किसी या किन्हीं विशेष कारणों से संतुष्ट नहीं हो पातीं, वे ही भूत प्रेत का रूप धारण करती हैं और इस रूप में अपने पूर्व जन्म की इच्छाओं की सन्तुष्टि का प्रयत्न करती हैं और इच्छाओं के संतुष्ट हो जाने पर वे मुक्ति पा जाती हैं और भूत-प्रेत का रूप छोड़ देती हैं, क्योंकि लोक विश्वास है कि इच्छाएं ही जन्म बंधन का कारण बनती हैं । लोक वर्ग इसी विश्वास के कारण-स्वरूप उन भूत प्रेत की संतुष्टि का प्रयत्न करता है, क्योंकि उसे विश्वास है कि यदि यह भूत-प्रेत संतुष्ट नहीं हुए तो उसके कार्य में समय समय पर विघ्न पड़ सकते हैं तथा उस पर भारी संकट आ सकता है । भूत प्रेत सम्बन्धी विश्वास लोक वर्ग में ही बहुत दृढ़ है शिक्षित वर्ग में इनकी स्थिति बहुत ही कम है । शिक्षित वर्ग में भूत प्रेत पूजन मूर्खता का विषय माना जाता है ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने भूत प्रेत उपासना का उल्लेख करते हुए उसकी निन्दा की है[1]। राधाकृष्णदास ने लिखा है कि "भूत प्रेत आदि की उपासना करके हम वैशाख नंदन हो गए हैं[2]।" प्रताप नारायण मिश्र के भूत प्रेत सम्बन्धी उल्लेखों से भी यही स्पष्ट होता है कि वे भूत प्रेत सम्बन्धी उपासना जो लोक वर्ग में अति व्यापक थी, को मूर्खता समझते थे । एक स्थान पर वे कहते हैं कि "विधर्मी लोगों ने भूत प्रेत का पूजन कर सब लोगों का ज्ञान नष्ट कर रक्खा है[3]।" दूसरे स्थान पर वे कहते हैं -"प्रभु को भजना छोड़कर

१- खुशामद दई देव बाने । खुशामद भूत प्रेत ठाने ।भा०

२- भजि भूत प्रेतक सीतले वैसाख नंदन हम भए ।।-भारत बारहमासा,राधाकृष्ण ग्रंथावली, पृ० १६ ।

३- ब्रहम ज्ञान त्रिभुवन ते बढ़कै जहं के रिषिन बतायो ।
तहां विधर्मी प्रेत पूजि. सब लोगन ज्ञान गंवायो ।।-प्र०ल०पृ० ११८ ।

भूत प्रेत का पूजन करना दही के धोखे में कपास खाने के समान है[1]।"

पितर देवता:-

अपने पूर्वजों को देवता का रूप मानकर पूजना भी लोक वर्ग की विशेषता है । इन पितरों के उपलक्ष्य में हिन्दू लोग वर्ष में एक बार पितरपक्ष नाम से पर्व भी मनाते हैं जिसमें लोक वर्ग अपने मृतक पूर्वजों के प्रति श्रद्धा निवेदन करता है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण उपाध्याय, प्रेमघन, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि अनेक कवियों ने पितरों का देवता रूप में अनेक बार उल्लेख किया है[2]। अवधेय है कि भारतेंदु युगीन हिन्दी कवियों ने भूत प्रेत पूजन की जो लोक वर्ग में प्रचलित है उसकी निन्दा की है पर पितर देवता की उपासना को बड़े श्रद्धा की दृष्टि से देखा है । पितर देवता की लोक में कुल देवता रूप में उपासना होती है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने पितर-देवता की उपासना को बहुत महत्व दिया है तथा पितर देवता की उपासना न करने वाले व्यक्तियों को संस्कारच्युत कहा है ।

भैरों:-

ग्राम देवताओं में प्रमुख देवता है । स्थान और जाति भेद से इनके विभिन्न नाम हैं । काल भैरों को अधिकतर भंगी लोग पूजते हैं । गौड़ का भैरव गौड़ों के पूज्यदेव है । दरजी भी इनकी उपासना करते हैं । लोक वर्ग की इन पर बड़ी श्रद्धा है । निश्चित तिथि पर इनकी पर्व रूप में पूजा भी होती है । बड़ी बड़ी रोटियां, नारियल, पशुबल आदि चढ़ाई जाती है। प्रताप नारायण मिश्र ने इनका कई स्थान पर उल्लेख किया है[3]। इनका मूल

१- प्रभु करुनाकर शांति निकेत, तिहि तजि पूजत भूत परेतें ।
कस सुख पावै असि मति जासु "दही के धोखे खाय कपासु ।।"प्र०ल०,पृ०६२ ।

२- प्र०ल०पृ०२८, ५५, ५९, ६०, १११, २०८,
प्रे०सर्व०पृ०९७, १५३-१६३ ।

३- ठेका देदेउ धरम नाम को औ कलियुग का देव भगाय ।
सुमिरन करिकै तपेश्वरी का औ भैरो का चरण मनाय ।।प्र०ल०पृ०२१५ ।

वीर पूजा में है । प्रेमघन ने इसका उल्लेख भी किया है[१] ।

तपेश्वरी-

प्रतापनारायण मिश्र ने तपेश्वरी देवी का उल्लेख भी किया है । इनका मूल स्रोत क्या है, अज्ञात है, किंतु सम्भवतः यह कोई विशेष तप करने वाली स्त्री रही होंगी जिससे इनका नाम तपेश्वरी पड़ गया । इस देवी का प्रचलन संभवतः बहुत सीमित लोक वर्ग में रहा होगा इसीलिए इनका विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता[२] ।

बेला-

बेला भी एक लोक प्रसिद्ध लोक देवी हैं जिनका प्रताप नारायण मिश्र ने कानपुर माहात्म्य (आल्हा) में उल्लेख किया है । आल्हा गायन में प्रायः बेला अवतार का प्रसंग आता है पर यहां आल्हा में उल्लिखित बेला से तात्पर्य नहीं है । यहां संभवतः यह कोई लोक देवी हैं । प्रताप नारायण मिश्र ने इनके लोक प्रचलित रूप की यह कलियुग की बहिन तथा बड़ी प्रभाव शाली हैं, का उल्लेख किया है और इस प्रकार बेला देवी के एक लोक प्रचलित रूप को सामने रक्खा है[३]।

नाग देवता-

नाग देवता की उपासना संभवतः आदिम मानव ने भय के कारण ही की होगी, कि प्रसन्न होकर नाग उनकी हानि आदि न कर सकें ।

१- "अस्तु सुरेन्द्र, शङ्कर और दुर्गा की पूजा हमारे यहां वीर पूजा ही थी । पीछे भैरव वीरभद्र और हनुमान की पूजा भी वीर पूजा ही थी और है । परंतु समय के फेर फार और प्रथा परिवर्तन से अब उसका रूप बदल गया है । प्रे० सर्व० भाग २, पृ० २२५ ।

२- डैका दैदैउ धरम नाम को औ कलियुग का देव भगाय ।
सुमिरन करिकै तपेश्वरी का औ भैरों का चरण मनाय ।
-प्रताप ल० पृ० २१५ ।

नागोपासना के उदाहरण इसीलिए केवल एक देश विशेष में ही नहीं वरन् विश्व की अनेक संस्कृतियों में मिलते हैं । नागपंचमी पर लोकवर्ग में नागदेवता का विशेष पूजन होता है । नाग पूजन प्रारंभ क्यों हुआ ? सर्प को देवता रूप में क्यों स्वीकृति हुई? इस पर मनोवैज्ञानिकों तथा नृतत्व शास्त्रियों ने विचार किया है । मनो वैज्ञानिकों का कथन है कि आदिम मानव में रति और भय की मूल प्रवृत्तियां हैं । और नाग पूजन का कारण मानव की यह भय मूलक प्रवृत्ति है । आदिम मानव में इसके दृष्टान्त स्पष्टतया देखे जा सकते हैं । आदिम मानव या जंगली असभ्य अशिक्षित गंवार व्यक्ति उन सभी वस्तुओं की अराधना करने लगता है जिनसे उसे किसी प्रकार की हानि की आशंका होती है चाहे वे शक्तियां जड़ हों या चेतन । यही कारण था कि आदिवासी लोग नदी, पहाड़, आकाश, चन्द्र, सूर्य, कीड़े मकोड़े सभी की पूजा करते हैं क्योंकि उन्हें डर है कि नदी क्रुद्ध होकर बाढ़ रूप में, चन्द्र अति शीतलता प्रदान कर, पाले के रूप में, सूर्य अति ऊष्णता से, बादल अति वर्षा से कृषि को नष्ट कर सकते हैं । जो उनके जीवन का एकमात्र आधार है । इसी प्रकार बिजली गरज कर तथा गिरकर, पशु तथा विविध कीड़े मकोड़े काटकर पल भर में ही किसी व्यक्ति को मृत्यु की शैय्या पर सुला सकते हैं । इसीलिए मनुष्य ने इन सभी जड़ वस्तुओं को भी भय के मारे पूजना शुरू कर दिया । इसी प्रकार आदिम मानव के भय के स्वरूप ही तो धर्म का उदय हुआ । मनोवैज्ञानिकों का मत है कि सर्प पूजन भी मानव की मूल प्रवृत्ति भय के कारण ही हुआ । सर्पदंश से प्रतिवर्ष अनेकों मृत्यु होती हैं, अतः इनका भय अत्यंत व्यापक था । आदि मानव ने जब देखा कि सर्प मानव जीवन हानि का भी कारण हो सकता है तो भय के मारे उसने उनकी अराधना प्रारंभ कर दी । सर्प पूजन की यही कहानी है । भारतेंदु युगीन काव्य में नागदेवता संबंधी तथा उनकी उपासना संबंधी अनेक प्रसंग मिलते हैं ।

क- तुम्हरी महिमा जग जानत है, अविकल देउतन के चकराय ।
बहिनी लागौ तुम कलियुग की सबके राखे चित हुलाय । ।
—प्र० ल० पृ० २०५ ।

शाहमदार-

शाहमदार का भी लोक जीवन में गाज़ीपीर, नारसिंह बाबा आदि के समान ही बहुत महत्व है । मुसलमानों के यह पीर है । इनका असली नाम मियां बदुद्दीन(?) है । इनका स्थान कानपुर के पास किसी गांव में माना जाता है जहां स्त्रियां संतान प्राप्ति हेतु मानता मानने जाती हैं । भारतेंदु युगीन काव्य में इनका उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है । एक स्थान पर शाह मदार की महत्ता द्वारका के समान ही तुलना कर बताई गई है[१]। ऐसा प्रतीत होता है कि शाह मदार संभवतः अपने समय का एक अति निर्दयी शासक रहा होगा, इसीलिए ~~क~~ उसके संबंध में एक लोकोक्ति ही प्रचलित हो गई है- मरे का मारै शाह मदार- कि यह शाह मदार मरे हुए व्यक्ति को भी मारता है । निर्दयता की यह चरम सीमा है । हिंदी प्रदीप में इस प्रकार का एक उदाहरण और मिलता है[२] । प्रतापनारायण मिश्र ने भी लोकोक्तिशतक में शाहमदार से संबंधित "गंगा मदार का कौन साथ" का उल्लेख किया है[३] । यहां भी मदार की पापी प्रवृत्ति की ही संभवतः व्यंजना है कि गंगा और शाह मदार का कैसे साथ हो सकता है, क्योंकि एक ओर जहां गंगा पापों का विध्वंस करने वाली है वहीं दूसरी ओर शाहमदार पापी है ।

ऊपर जिन देवताओं तथा देवियों का उल्लेख किया गया है, वे पूर्णतः लोक वर्ग के ही हैं। साधारण जनवर्ग में ही उनका प्रचलन है, और उनकी किसी प्रकार की शास्त्रीय या धार्मिक पृष्ठभूमि नहीं है, किन्तु इन लोक देवताओं के अतिरिक्त अनेक ऐसे भी देवता तथा देवियां हैं जिनका मूल यद्यपि वस्तुतः लोक ही है, लोक से ही ग्रहण कर उनका

१- एकै घर में दुई मता कलयुग के व्यवहार । खसम चले हैं द्वारका मेहरी शाहमदार- हिंदी प्रदीप ।
२- निमरै मारै शाहमदार - हिंदी प्रदीप
३- प्र० ल० पृ० ६५ ।

शास्त्रीयकरण किया गया है, उनकी धार्मिक पृष्ठभूमि दी गई है, किन्तु इस शास्त्रीय करण तथा धार्मिकीकरण होने के बाद भी लोक वर्ग में उनका महत्व किसी प्रकार कम नहीं है और लोक वर्ग में उसी श्रद्धा तथा आदर भाव से पूजे जाते हैं, जितना धार्मिकीकरण के पूर्व, तथा जिस श्रद्धा तथा भक्ति भाव से आज भी पूर्ण लोक देवता पूजे जाते हैं, उसी रूप में उनकी भी पूजा होती है। इस प्रकार के धार्मिक पृष्ठभूमि वाले लोक देवताओं तथा लोक देवियों का भी भारतेन्दु युगीन कवियों ने उल्लेख किया है, जिनका ही वर्णन हम नीचे करेंगे। भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित इसप्रकार के देवता निम्नलिखित हैं।

सूरज देवता:-

वेदों में सूरज देवता का स्थान विशिष्ट है और वे प्रजापति तक कहे गए हैं किन्तु मूलतः सूरज वैदिक देवता नहीं हैं, वे ग्राम देवता या लोक देवता ही हैं और यहीं से इनका धार्मिकीकरण हुआ है और लोक वर्ग के सूरज देवता के पीछे विभिन्न प्रकार की धार्मिक पृष्ठभूमियां आदि दी गई हैं। वेदों के समय में भी सूरज देवता की लोक वर्ग में पूजा होती थी और यह प्राकृतिक शक्ति देवता थे। वरदत्त ने भी सूर्य की पूजा के संबंध में किए जाने वाले विविध अनुष्ठानों का वर्णन किया है जिनकी वेद में स्वीकृति नहीं है जिससे यह स्पष्ट ही सिद्ध होता है कि वेद के पूर्व भी भारत में लोक वर्ग में सूरज की उपासना होती थी और लोक से ग्रहण कर ही सूरज देवता का धार्मिकीकरण हुआ है। क्रूक[1] का मत है कि सूर्य की पूजा का संबंध मूलतः अग्नि पूजन से था लेकिन यह भी संभव है कि एक भारतीय कृषक ने इसे जीवन और मृत्यु का स्वामी तथा समृद्धि और अकाल का स्वामी मानकर इसकी उपासना शुरू की हो क्योंकि एक कृषक के लिए उसका जीवन

---

1. His worship was perhaps originally connected with that of fire, but it is easy to understand how, under a tropical sky, the Indian peasant came to look on him as the lord of life and death; the bringer of plenty or of famine- Crooke.W: Introduction to Popular Religion and Folklore of Northern India p.2.

और उसकी समृद्धि कृषि की सफलता और विफलता पर ही अवलम्बित थी तथा इन दोनों का कारण सूर्य ही समझा था । इसलिए अति प्राचीन काल से ही सूरज की उपासना शुरू हो गई होगी । क्रूक ने स्पष्ट रूप से यह भी लिखा है कि वेदों के समय में भी सूर्य देवता की लोक वर्ग में उपासना होती थी और इसका संबंध आदिम लोक कर्मों से है ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने सूरज देवता का स्थान स्थान पर प्रयोग किया है[2] । बदरीनारायण उपाध्याय प्रेमघन ने तो सूर्यगीत और सूर्य पंचक आदि तक लिखे हैं । सूरज देवता की स्तुति रूप में ही भारतेन्दु युगीन कवियों के छंद मिलते हैं अतः इन छंदों में केवल सूरज की लोक प्रचलित महत्ता पर ही प्रकाश पड़ता है, सूर्य के प्रति स्त्रियों का जल चढ़ाना आदि विशेष लोकानुष्ठानों का वर्णन नहीं मिल पाता, कहीं सूर्य सम्बन्धी प्रचलित लोक विश्वास कि प्रतीची उसकी प्रियतमा है, वह उसके घरों जाता है आदि का उल्लेख अवश्य मिल जाता है । किन्तु अधिकांशतः सूर्य के लोक प्रचलित रूप या लोक प्रचलित स्तुति करने के ढंग का परिलक्षित भी उल्लेख नहीं है । किन्तु एक छंद से लोक स्तुति पर कुछ प्रकाश पड़ता है क्योंकि उसकी भाषा लोक भाषा तथा विषय और ढंग भी कुछ लोक का सा ही है[3]। उल्लेख्य है कि जहाँ भारतेन्दु

१- In fact even in Vedic times these seems to have been a local worship of Surye connected with some primitive folklore-Crooke.W. Introduction to Popular Religion and Folklore of Northern India p.4-5.

२- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० २११, २१९, ४२२, ५५९, ५६० ।

३- जय जय जय दिनकर तम हारी । जय जग मंगल कारी ॥
जय प्रतक्छ परमेस प्रभाकर । देव सहस कर धारी ॥
पालत प्रगट सौं रूप तुम प्रभु । विपुल सृष्टि यह सारी ॥
निज भक्तन पर द्रवत सहज तुम । देत अमल फल चारी ॥
विनवत पानि पसारि प्रेमघन । हरहु नाथ भय भारी ॥

-प्रे० सर्व० पृ० ५६० ।

युगीन कवियों ने अन्य लोक देवताओं का उल्लेख मात्र ही किया है वहां सूर्य स्तुति सम्बन्धी अनेक छंद हैं ।

चन्द्रदेवता:-

चन्द्रदेवता की उपासना भी लोक में सूरज देवता की ही भांति प्रकृति शक्ति रूप में पुजने के कारण अति प्राचीन काल से हुई थी । चन्द्र देवता की उपासना लोक वर्ग में इस लोक विश्वास के कारण भी होती है कि चन्द्र पितरों का या मृतक पूर्वजों का निवास स्थान है । यह लोक विश्वास आदिम जातियों में आज भी काफी प्रचलित है । लोक में चन्द्र देवता को "चंदामामा" कहकर पुकारने की प्रथा काफी मिलती है तथा लोक कहानियों के मूल अभिप्रायों में भी एक यह अभिप्राय मिलता है कि मरकर सभी व्यक्ति चंद लोक में जाते हैं । इसी प्रकार लोक में चन्द्र कालिमा के भी लोक प्रवृत्ति के ही अनुकूल अनेक समाधान दिए गए हैं ।

भारतेन्दु युगीन हिन्दी कवियों ने भी चन्द्र देवता का उल्लेख कई स्थानों पर किया है । बदरीनारायण उपाध्याय"प्रेमघन" ने तो "मयंक - महिमा" नाम से एक स्फुट काव्य ही रच डाला है जिसमें चन्द्र की कालिमा संबंधी अनेक लोक उपमान[1] तथा लोक विश्वास[2] प्रस्तुत किए हैं । किन्तु फिर भी "प्रेमघन" के इस "मयंक महिमा" में चंद्र सम्बन्धी उल्लेख से न तो चन्द्रदेवता के लोक माहात्म्य पर ही कोई प्रकाश पड़ता है न उनके लोक आनुष्ठानिक रूप पर ही ।

१- अथवा क्या आकाश माठ में, मथित हुआ उतराया है ।
मंजुल मक्खन पिण्ड स्वच्छ, सब के मन को ललचाया है -प्रे० सर्व० पृ० ३९१ ।

२- कोई कहता कुपित होकर, मुनि ने मारा मृग छाला ।
पड़ा चन्द्रमा वदन आज लौं, चिन्ह उसी का यह काला ।।
कोई कहता है मुनि पत्नी से, कलंक है उसे लगा ।
मान प्रिया संबंध वस्तु, यह हिम में उसको समझ ठगा ।।

-प्रे० सर्व० पृ० ४०० ।

<u>गंगा और जमुना:-</u>

गंगा और जमुना लोक देवियाँ भी ऐसी है जिनका पूजन भी लोक वर्ग में प्रकृति देवी रूप में हुआ था किन्तु बाद में इनको धार्मिक स्वरूप दिया गया और इन नदियों की उत्पत्ति तथा महत्व आदि की धार्मिक व्याख्या होने लगी । किन्तु गंगा जमुना आदि प्रकृति देवियों का इतना अधिक महत्व बढ़ जाने पर भी लोक वर्ग में इनका महत्व आज भी किसी प्रकार कम नहीं हुआ है । लोक वर्ग आज भी इन देवियों को उसी भांति पूजता है जिसप्रकार वह अपने लोक देवताओं को । नदियों की उपासना के दृष्टान्त अधिकांश विश्व की आदिम संस्कृतियों में मिलते हैं । क्रुक[१] ने इसका कारण बताते हुए लिखा है कि लोक वर्ग गंगा आदि नदियों को इसलिए इतना महत्व देता है क्योंकि इनका सम्बन्ध समुद्र से है और समुद्र मृतक पूर्वजों का निवास स्थान माना जाता है । गंगा जमुना आदि नदियों की उपासना का कारण कुछ भी हो किन्तु यह तो निश्चित ही है कि लोक वर्ग में आज भी इनके प्रति बहुत श्रद्धा है तथा इन नदियों की उपासना के अति प्राचीन काल से ही उदाहरण मिले है जो सिद्ध करते हैं इनका सम्बन्ध प्राचीन काल से ही लोक वर्ग से था ।

भारतेन्दु युगीन कवियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बदरी नारायण उपाध्याय प्रेमघन आदि सभी कवियों ने जमुना तथा गंगा आदि का प्रकृति देवियों में रूपों में उल्लेख किया है ।

गंगा नदी का उल्लेख देवी के रूप में भारतेन्दु युगीन कवियों ने कई स्थान पर किया है[२]। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने वैशाख माहात्म्य में गंगा सप्तमी के संबंध पर लिखते हुए गंगा की उत्पत्ति, गंगा सप्तमी उत्सव के कारण

१- Rivers, again, are revered from their connection with the great ocean, which is regarded by many races as the home of the sainted dead- Crooke.W.: Introduction to popular religion and Folklore of Northern India. p.23.

२- प्र०ल० पृ० ५९, प्रेम० सर्व० पृ० ४४३, भा० ग्रं० १४, ११, ४४१ ।

तथा गंगा स्नान के महत्व का उल्लेख किया है । इसके अतिरिक्त मकर संक्रांति पर भी गंगा स्नान के महत्व का उल्लेख, जो लोक प्रचलित तथा लोक विश्वासानुकूल है किया है । प्रेमघन ने गंगा की स्तुति करते हुए लोक वर्ग में गंगा पूजा तथा पूजा के रूप में चढ़ाए हुए फूलों से सुन्दर लगने वाली गंगा का वर्णन किया है और बताया है कि यह दोनों लोगों के शोकों को दूर करने वाली हैं । प्रताप नारायण मिश्र ने भी गंगा की पूजा होने का उल्लेख किया है ।

जमुना के ऊपर गंगा की अपेक्षा बहुत अधिक भारतेन्दु युगीन कवियों ने लिखा है । कारण स्पष्ट है जमुना का सम्बन्ध कृष्ण तथा गोपियों से भी है और कृष्ण तथा गोपियों से सम्बन्धित पद भारतेन्दु युगीन कवियों ने बहुत अधिक लिखे हैं[1]। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जमुना तट पर कृष्ण और राधा के प्रेम प्रसंग का तो उल्लेख किया ही है किन्तु इसके अतिरिक्त दीपावली के अवसर पर जमुना की शोभा का भी वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त प्रचलित लोक विश्वास की जमुना सूर्य की पुत्री है का भी उल्लेख किया है । प्रताप नारायण मिश्र ने भी जमुना दर्शन, स्नान से पापी मुक्त हो जाता है - प्रचलित लोकोक्तियों का वर्णन किया है ।

इस प्रकार भारतेन्दु युगीन कवियों ने गंगा जमुना के उल्लेख तथा उनसे संबंधित लोक विश्वास का कई स्थानों पर उल्लेख किया है ।

हनुमानः-

हनुमान भी एक ऐसे ही लोक देवता है जो मूलतः लोक वर्ग के थे और बाद में उनका धार्मिकीकरण हुआ । विद्वानों का मत है कि हनुमान मूलतः आर्य देवता नहीं थे इनका ग्रहणीकरण अनार्य तथा आदिम जातियों से हुआ है । यह भारत की किसी जंगली जाति के मुखिया थे और अपने शौर्य से इन्होंने अपनी जाति वालों की रक्षा की थी और वे वीर पूजा के

१- प्र०ल०पृ०३७, ५७, भा०ग्रं० ५८, ५९, ६२, ६३, ७१, ८३, ८४, १८५ ।

रूप में पूजित हुए । कालान्तर में आर्यों ने उनको धार्मिक पृष्ठभूमि दी। अवधेय है कि आर्यों के मध्य आज भी हनुमान का विशेष माननहीं है । इसलिए स्पष्ट ही है कि हनुमान का ग्रहणीकरण किसी अन्य स्रोत से हुआ है । लोक वर्ग में हनुमान का आज भी बहुत मान है और यह महाबीर तथा बजरंगी और हनुमान के आदि नामों से स्मरण किये जाते हैं ।

प्रताप नारायण मिश्र ने कानपुर माहात्म्य(आल्हा) में इनका कई बार उल्लेख किया है तथा इनके साथ जुड़े हुए लोक विश्वास का कि यह अंजनी के पुत्र हैं, सागर में कूदने वाले परमवीर हैं, लंका में घुसकर वहां के बड़े बड़े वीरों को मार कर इन्होंने रामचंद्र का कार्य किया था जिससे इनकी महिमा संपूर्ण संसार में फैल रही है[1]। हनुमान के पराक्रम से प्रभावित होकर लोग दंगल लड़ते समय बजरंग बली के नाम का किस प्रकार स्मरण करते हैं इसका भी उल्लेख किया है[2] तथा हनुमान का उपमान रूप में भी उल्लेख किया है । वीरता की तुलना में लोग हनुमान का उपमान रूप में प्रयोग करते हैं । भरत शत्रुघ्न और लक्ष्मण की तुलना प्रतापनारायण मिश्र ने हनुमान से देते हुए कहा है कि महाबीर ऐसे पराक्रमी योद्धा दो लड़कों से ही हार गए[3]। इसप्रकार

१- बीर सुमिरिये रे बजरंगी जाके पूत अंजनी क्वार ।
बली न ऐसी कौउ कहं उपजो सागर कूदि गये वहि पार ।
जिन्ह बोरि दई गढ़ लंका में मारे बड़े बड़े बरियार ।
कारज कीन्हें रामचन्द्र के महिमा फैलि रही संसार ।।-प्र० ल० पृ० २२१ ।

२- ताल ठोंकि कै जांघ बजावैं माटी तन मां लेई लगाय ।
अली मुर्तिजा को सुमिरन कर लै बजरंगी को नाव ।
चरन मनावैं उस्तादन के आपन हुन्नर चलैं दिखाई ।।प्र० ल० पृ० २२६ ।

३- भरत शत्रुघ्न और लछिमन ते अलकुश विषम करी तलवारि ।
महाबीर से बड़े बड़े जोधा गे सब दुइ लरिकन ते हारि ।।प्र० ल० पृ० २०७ ।

हनुमान के उल्लेख द्वारा प्रतापनारायण मिश्र ने हनुमान के लोक प्रसिद्ध रूप का उल्लेख किया है ।

नंदी :-

नंदी की आज शिव वाहन रूप में धार्मिक ग्रंथों में स्वीकृति है किन्तु आज लोक वर्ग में शिव के साथ नंदी की भी पूजा की जाती है । यद्यपि इसका बहुत प्राधान्य नहीं है । शिष्टवर्ग में तो नंदी की पूजा शिव के साथ भी बहुत कम होती है किन्तु लोक वर्ग में नंदी का बहुत महत्व है । वस्तुतः मूलतः नंदी की उपासना का धार्मिकीकरण लोक से ही हुआ है । लोक में पशु पूजा का महत्व बहुत है और इसके उदाहरण आदिम संस्कृतियों में आज भी देखे जा सकते हैं । इसी प्रकार संभवतः कृषि आदि कार्यों के लिए बैल को लाभप्रद समझकर इसको पूजना शुरू कर दिया होगा और बाद में इसका धार्मिकीकरण हुआ और इसको नंदी नाम दिया गया किन्तु लोक में इसका पूजन लुप्त नहीं हुआ और यह नंदी रूप में पूजा जाने लगा । बदरीनारायण उपाध्याय ने नंदी की स्तुति सम्बन्धी एक छंद लिखा है जिससे नंदी के लोक प्रचलित रूप पर प्रकाश पड़ता है[१]।

१- नंदी ! धनि तुम बरद अनन्दी ।।
कल कैलास सृंग पर बिहरत,
बिसद बरन बपु सुभ छबि छहरत,
जनु हिम शैल वत्स पयपीवत,
गंग तरंग सुछन्दी ।।
करत दिव्य औषधि तुम मुख सौं,
करत जुगाली फेनिल मुख सौं,
ज्यौं ससि स्रवत सुधा हर सिर,
तुम सुखमा करत दुचन्दी ।।

निदरि सिंह तुम ढकरत हौ जब,
डरपत भाजत मृगांक है तब,
गिरत गजानन बिहंसत गिरजा,
संग शिव आनंद कंदी ।।
सेवत रोज सरोज शम्भु पद,
गावत आपु बिरद सुभ सारद,
प्रेम सहित नित सेस प्रेमघन,
विधि, नारद बनि बन्दी ।।

—प्रे० सर्व० पृ० ४५० ।

अक्षयवट:-

अक्षयवट की उपासना भी मूलतः लोक से ही धर्म में पहुंची है और बाद में उसका धार्मिकीकरण हुआ और उसके साथ विभिन्न धर्मगाथाएं और पौराणिक विश्वास आदि जोड़ दिए गए । लोक वर्ग में वृक्षों की उपासना के बहुत दृष्टान्त मिलते हैं नीम, बरगद, पीपल, तुलसी आदि सभी पूजे जाते हैं । कुछ पेड़ों मे विभिन्न देवी देवताओं का निवास स्थान भी माना जाता है और कुछ स्वयं देवी रूप में पूजित होने लगे हैं और सब वृक्ष अपना विशेष विस्तार नहीं करते किन्तु बरगद अपनी जटाओं द्वारा बढ़कर पुनः वृक्ष का रूप धारण कर अपना विस्तार करता जाता है और इसप्रकार कभी नष्ट नहीं होता इसी भावना से प्रेरित होकर लोक वर्ग ने इसका नाम अक्षय, जो कभी नष्ट न होता हो किया होगा । इस प्रकार बरगद की उपासना अक्षय के रूप में भी मूलतः लोक वर्ग से ही आई प्रतीत होती है । प्रेमधन ने अक्षय बट जो लोक वर्ग में देवता के रूप में गृहीत है का उल्लेख करते हुए उसके सम्बन्ध में प्रचलित लोक विश्वास का वर्णन किया है कि "जो सब मनोरथों का देने वाला है । कल्प के अन्त में भी जो हरि तक को सहायक होता है[१]।"

काली :-

काली देवी का भी उल्लेख भारतेन्दु युगीन काव्य में हुआ है[१] है काली देवी का नामकरण उनके श्याम वर्ण को संकेतित करता है । काली की मूर्तियां सर्वत्र ही काली दिखती हैं । काली देवी का अस्तित्व अति प्राचीन है । थाम्पसन[२] ने भारतवर्ष की सती प्रथा का विवेचन करते हुए काली का भी वर्णन किया है और कहा है कि भारत में आर्यों के आगमन के पूर्व भी

१- राजत अक्षयबट जहं सकल मनोरथ दायक ।

कल्प अंत में जो हरिहु को होत सहायक ।।-प्रे० सर्व० पृ० ३५५ ।

१- प्र०स० पृ० १८१ ।

२- Thompson, E. - Suttee, p.23-24.

भारत की आदिम जातियों में काली का प्रचलन था और भारत की आदिम जातियों से ही इनको आर्यों ने ग्रहण कर धार्मिकी करण किया । गुस्टव अपर्ट ने भी ग्राम देवताओं का विवेचन करते हुए काली की लोक प्रचलित महत्ता का संकेत किया है जहां अन्य ग्राम देवताओं की शक्ति केवल उनके ग्राम विशेष तक ही सीमित मानी जाती है वहां काली की शक्ति ग्राम के साथ ही साथ पूरे देश में पर भी मानी जाती है[१] । लौकिकता इससे भी सिद्ध है कि काली दक्षिण भारत में बुरी आत्माओं से तथा जंगली जानवरों से रक्षा करने वाली भी मानी जाती हैं, किन्हीं किन्हीं गांवों में यह काजरा की भी देवी मानी जाती है[२]।

गणेश:-

गणेश मूलतः लोक देवता हैं । यह पौराणिक देवता नहीं है । तथा इनका पौराणिकीकरण बहुत बाद में हुआ है । किन्तु फिर भी आज यह लोक वर्ग में प्रतिष्ठित हैं और आज एक ग्रामीण अशिक्षित व्यक्ति भी कोई कार्य प्रारम्भ करते समय इनका ही स्मरण करता है[३] । उनकी आरती करता है[४]। इसी प्रकार गणेश की स्तुति सम्बन्धी लोक वर्ग में अनेक लोकगीत

१- Oppert, Gustav- Original Inhabitants of India.p.457.

२- Kali is often regarded as specially the protectress against evil spirits that haunt forests and disolate places and against wild beats. In some parts she is the special goddess of the bird catcher. But in some villages she is also the guardian against cholera- Village Gods of South India- White head p.33.

३- लोक वर्ग में शुभ कार्य प्रारम्भ करते समय गणेश सम्बन्धी निम्न स्तुति की जाती है जो लोकगीत रूप में है -
सिमरूं गौरी पुत्र गनेस, नाम लिए से संकट सब भागैं ।
सिमरत कटे हैं कलेस, माता तुम्हारी पारबती पिता तुम्हारे महेस ।
धूप दीन पकवान मिठाई भोग लगाऊं हमेस,सिमरूं गौरी पुत्र गनेस।।
-सत्यागुप्ता - खड़ी बोली का लोकसाहित्य,पृ० ७

४- गणेश की आरती के लिए निम्नलिखित लोक गीत बहुत प्रसिद्ध हैं -

लोक कहानियाँ आदि प्रसिद्ध हैं । गणेश का पूजन केवल भारत में ही नहीं वरन् नैपाल, चीन, तुर्किस्तान, तिब्बत, बर्मा, जावा, बाली, बोर्नियो जापान, सभी जगह होता है । लोकवार्ता शास्त्रियों का कहना है कि गणेश मूलतः पशु वर्ग के देवता हैं[१]। जिनकी आदिम निवासियों ने पूजा अन्य नाग मकर आदि के ही समान की होगी । गैटी[२] का विचार है कि यद्यपि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह आदिम जातियों के देवता हैं या नहीं पर इतना अवश्य प्रतीत होता है कि मुख्य रूप से गणेश द्रविड़ जाति के टोटेम हैं।आदिम जातियों के देवता प्रायः पशु वर्ग की मुखाकृति वाले हैं इस-लिए यह नितान्त संभावित है कि हाथी के विशाल आकार बल तथा भयंकरता (Shrewedst) को देखकर यह आदिम जातियों के मध्य एक रूप को प्राप्त कर पूजित होने लगे । वैदिक मंत्रों में भी गणेश का यद्यपि उल्लेख है किन्तु यह प्रधान देवता नहीं है । संभवतः वैदिककाल में यह ग्राम देवता ही र होंगे और उनका विशेष महत्व नहीं रहा होगा तथा इनका पूजन निम्न जाति के सीमित लोग ही करते रहे होंगे । एक लेखक ने गणेश को कृषि देवता भी माना है और इस सम्बन्ध में विभिन्न प्रमाण भी दिये हैं । इसप्रक गणेश एक लोक देवता ही ठहरते हैं । महाभारत तथा रामायण में गणेश का उल्लेख न होना भी उपर्युक्त कथन की ही सिद्ध करता है ।

माता जाकी पारबती पिता महादेवा ।
एक दंत दयावंत चार भुजा धारी । माथे पै सिंदूर सोहै मूसे की सवारी ।
लडुवन के भोग लगे संत करे सेवा । अंधन को नैन देत निर्धन को माया ।
सूरदास शरण आयो संभाल करो सेवा ।

-सत्यागुप्ता : खड़ी बोली का लोक साहित्य:पृ० ७६ ।

१- Crooke- Popular Religion and Folklore of Northern India p.287.

२- Getty-Ganesh. p.1.

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र[1] और प्रेमघन[2] गणेश का उल्लेख करते हुए इनके साथ जुड़े हुए लोक विश्वास का कि यह कष्ट नष्ट करने वाले देवता है, का भी उल्लेख किया है। भारतेन्दु युगीन काव्य में अन्य कई स्थानों पर भी इनका उल्लेख हुआ है[3]।

भारतेन्दु युगीन काव्य में ऐसे अनेक देवताओं का भी उल्लेख है जो मूलतः पौराणिक हैं, अर्थात् उनका मानव ने सहज रूप से प्रकृति को शक्ति रूप आदि देकर आदिम अवस्था में ही पूजन आरम्भ नहीं किया वरन् उनका बाद में लोक में प्रचलन हो गया, अर्थात् पौराणिक देवताओं का लौकिकीकरण हो गया। ऐसे देवताओं को तृतीय कोटि में रक्खा गया है। अवधेय है कि लोक जीवन में इन देवताओं का प्रचलन तो काफी हो गया है फिर भी लोक वर्ग जितना विश्वास उपरोक्त दो कोटियों के देवता पर करता है उतना इस कोटि के देवता के लिए नहीं। ग्रामीण जनता के हृदय में इसीलिए यद्यपि रामकृष्ण शंकर सरस्वती आदि के लिए भी श्रद्धा तथा भक्ति भाव है पर जितना अधिक स्थान ग्रामीण जनता का नारसिंह बाबा, गाजीपीर, पीपल, पितर आदि देवताओं के लिए है इस तृतीय कोटि के देवताओं के लिए नहीं। किन्तु चूंकि इन देवताओं का भी लोक वर्ग में काफी प्रचलन हो गया है। इन देवताओं के पीछे भी विभिन्न लोक प्रवृत्तियां आदि जुड़ गई है इसलिए इनका विवेचन भी आवश्यक है। भारतेन्दु युगीन काव्य में इस प्रकार के उल्लिखित देवता निम्नलिखित हैं।

१- सेइ सरस्वति पण्डित होउ गनेसहि पूजि के विघ्न नसाओ।

भा॰ग्रं॰पृ॰ ७९।

२- जय गणेश मंगल करन, हरन सकल दुख द्वंद।

सिद्धि ससिस नित प्रेमघन पर बरसहु आनंद।

मंगल मूरति गजानन गौरी लीने गोद।

शंकर संग राखै सदा सहचर बधू विनोद।। प्रे॰सर्व॰पृ॰ ३३२।

३- ए॰बां॰भा॰ ३, कया॰ ९, भा॰ ३, कया॰ १। सा॰स॰-खण्ड १, सं॰ १।

शिव:-

शिव का भी शंकर महेस आदि नामों से भारतेन्दु युगीन कवियों ने उल्लेख किया है । मूलतः यह पौराणिक ही देवता है किन्तु अब इनका लोक वर्ग में अति व्यापक प्रचार है इसलिए इन्हें इस उल्लिखित लोक देवताओं की तृतीय कोटि में रक्खा गया है । शिव के संबंध में प्रचलित लोक विश्वास की शिव ने ज़हर पिया था, भूत उनके सखा हैं, श्मशान निवास है, का वर्णन कर शिव का लोक प्रसिद्ध रूप सामने रक्खा है[1]। शिव बनारस में त्रिशूल पर बसते हैं इसलिए वहां प्रलय नहीं होती इसका भी वर्णन प्रताप नारायण मिश्र ने किया है[2]। इसके अतिरिक्त अनेक भारतेन्दु युगीन कवियों ने शिव का यत्र-तत्र उल्लेख किया है[3] । शिव को रुद्र नाम से भी भारतेन्दु युगीन कवियों ने स्मरण किया है ।

राम:-

राम का अस्तित्व अति पुरातन है । वेदों में भी राम के अस्तित्व मिलते हैं किन्तु फिर भी राम का लोक वर्ग में उतना महत्व नहीं है जितना लोक देवताओं का । सिद्ध है कि कालान्तर में ही इनका लौकिकीकरण हुआ । राम ऐतिहासिक व्यक्ति हैं संभवतः इनका अस्तित्व वीर पूजा के रूप में है और बाद में राम लोक वर्ग में गृहीत हुए हैं। मूलतः राम का अस्तित्व कुछ भी हो अब लोक वर्ग में राम का प्रचार बहुत अधिक है और वे लोक देवता ही बन गए हैं । आल्हा में भी राम का उल्लेख लोक देवता रूपमें ही हुआ है[4]। भारतेन्दु युगीन सभी कवियों ने राम का उल्लेख किया है ।

प्रताप नारायण मिश्र आदि भारतेन्दु युगीन कवियों ने राम के लोक रूप का उल्लेख किया है । लोक में राम का स्वरूप मर्यादापुरुषोत्तम

१- प्र० ल० पृ० १९८ ।

२- प्र० ल० पृ० २०७ ।

३- श्यामा० सरो० पृ० ५ ।

४- सुमिरन करके रामचंद्र को लै बजरंगी को नाम ।प्र० ल० पृ० ४५

भगवान राम का है और लोक विश्वास है कि ऐसे पवित्र पुण्यात्मा धर्म के अवतार राम का नाम लेने मात्र से ही साधारण मनुष्य के पाप कट जाते हैं। प्रतापनारायण मिश्र ने राम के सम्बन्ध में प्रचलित इस लोक विश्वास को लोक भाषा प्रस्तुत किया है[१]। इसके अतिरिक्त लोक में रामराज्य की कल्पना इतनी अधिक प्रचलित हो गई है कि वह अब उपमान रूप में भी प्रयुक्त होने लगी है[१]। इसका भी प्रयोग कानपुर माहात्म्य (आल्हा) में निम्नरूप में हुआ है - औरी बातन के सब सुख हैं मानो रामचंद्र के राज[२]। राम का प्रयोग बहुत साधारण हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति कहता सुना जाता है कि राम की कृपा से सब ठीक ही होगा। प्रताप नारायण मिश्र के तृप्यन्ताम् में राम का उल्लेख इस रूप में भी किया गया है[३]।

कृष्ण:-

कृष्ण की अब लोक वर्ग में देवता रूप में स्वीकृति हो गई है यद्यपि इनका प्रचार लोक वर्ग में राम के समान व्यापक नहीं है। लोक वर्ग

१- मर्यादा पुरुषोत्तम कहिए राजा राम धर्म अवतार।
जिनको नाम लेत मनई के सिगरे पाप होंय जरि छार।।प्र०ल०पृ०३०६।

२- नांव न लीजै धन दौलति को टिक्कस दीजै काटि कर्याज।
औरी बातन के सब सुख हैं मानो रामचन्द्र के राज।।प्र०ल०पृ०२१२।

+ राम राज सम राज तिहारो जिन कंह दीसत - प्र०सर्व०पृ० २८८।

राम राज सम कहँ तऊ अनुचित नहिं या महं - प्र०सर्व०पृ० २९७।

धर्म राज लघु राम प्रजा हिय में जिमि अंकित।
प्र०सर्व०पृ० ३५७।

३- तौ नित राम कृपा ते रहिहौं जाति बंधु गन तृप्यन्ताम्।।
प्र०ल०पृ० ६०।

में कृष्ण के राधा के होली सम्बन्धी तथा विविध लीला सम्बन्धी गीत गाए जाते हैं । भारतेन्दु युगीन कवियों ने कृष्ण लीला विशेष कर होली संबंधी अनेक लोक गीत लिखे हैं । इसके अतिरिक्त गोवर्धन पूजन पर इंद्र का गर्व खंडन करने वाले प्रतापी कृष्ण रूप में भी लोक वर्ग स्मरण करता है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कृष्ण के इस रूप का भी उल्लेख किया है[1]। इसके अतिरिक्त अनेक लोक गीतों में प्रेमघन आदि कवियों ने "जसुदा के लाल" आदि टेकें भी रक्खी है जिससे कृष्ण के लोक प्रचलित स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है[2]। कृष्ण के होली तथा अन्य लीला आदि सम्बन्धी गीतों से कृष्ण के लोक रूप पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता इसलिए उनका उल्लेख यहां नहीं किया जा रहा है ।

सरस्वती और लक्ष्मी :-

सरस्वती लोक वर्ग में विद्या की अधिष्ठात्री मानी जाती हैं । यह मूलतः पौराणिक देवी हैं, इनका लोक वर्ग में प्रचलन बहुत कम है यद्यपि पूर्णतः शून्य नहीं । सरस्वती के समान ही लक्ष्मी की भी स्थिति है । लक्ष्मी धन की देवी मानी जाती है किन्तु लोक वर्ग में लोक देवताओं और लोक देवियों के समान इनका बहुत अधिक प्रचलन नहीं है । फिर भी दिवाली के अवसर पर लक्ष्मी की पूजा होती है ।

लोक-सज्जा प्रसाधन

भारतेन्दु युगीन काव्य का लोक तात्विक अनुशीलन करते हुए भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोक-सज्जा प्रसाधन तथा तत्सम्बन्धित विवरणों पर भी विचार करना आवश्यक है । इसके अनेक कारण हैं । सर्वप्रथम इनसे लोक मानस की प्रवृत्ति का परिचय मिलता है । दूसरे इन विविध

१- भा०ग्रं०पृ० ४३६, प्रे०सर्व०, पृ० ५०६ ।

२- प्रेम०सर्व०, पृ० ५१५-५१८ ।

लोक सज्जा प्रसाधनों का विविध लोकानुष्ठानों, लोकानुरंजनों तथा लोकोत्सवों से भी घनिष्ठ संबंध है, इसलिए विविध लोकसज्जा प्रसाधन पर विचार किए हुए लोकानुष्ठानों तथा लोकोत्सवों पर विचार करना उनके साथ ही अंश पर विचार करना होगा। विभिन्न लोक विश्वासों के कारण ही इन प्रसाधनों का अवशेष लोक जीवन में आज भी मिलता है। उदाहरण के लिए गुदना गुदाना एक कलात्मक लोक ~~लज~~ सज्जा प्रसाधन है। इस गुदना गुदाने के साथ ही साथ अनेक लोक विश्वासों का संयोग है। लोक विश्वास है कि विवाह के बाद जिस स्त्री ने गुदना नहीं गुदाया उसे जेठ को थाली नहीं परसनी चाहिए। यदि वह परसती है तो उसे दोष होगा। विवाह के पश्चात गोदना न गुदवाने से स्त्री को मानव योनि के अतिरिक्त किसी अन्य योनि में जन्म लेना पड़ता है। इसी प्रकार गुदना के पीछे तथा अन्य लोक सज्जा प्रसाधनों के साथ अन्य अनेक लोक विश्वासों को जोड़ दिया गया है। जिसके कारण ही इन लोक सज्जा प्रसाधनों का आज भी ग्रामीण वर्ग या लोक वर्ग में विस्तार से अवशेष मिलता है अतः लोक विश्वास सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान के लिए लोक सज्जा प्रसाधनों का ज्ञान आवश्यक है। सम्प्रति लोक सज्जा लोक जीवन का एक प्रमुख अंग है और भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोक जीवन के विविध पक्षों पर विचार करते हुए लोक सज्जा प्रसाधनों की उपेक्षा नहीं की जा सकती और इन पर विचार करना आवश्यक है।

अलंकरणक प्रवृत्ति मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मानव अपने को अधिक सुंदर रूप में दूसरों के सम्मुख प्रस्तुत कर, अपने सौन्दर्य के द्वारा दूसरों को आकर्षित कर प्रभावित करना चाहता है। इसीलिए इस स्वाभाविक मानव की इच्छा पूर्ति के लिए अति प्राचीन काल से मानव ने विविध सज्जा प्रसाधनों की सृष्टि की है। सर्वप्रथम मानव ने अपने गुप्तांगों को ढंकने के लिए छाल पत्ते वस्त्र आदि की सृष्टि की थी, क्योंकि जैसा कि मनोवैज्ञानिकों का मत है नग्न सौन्दर्य आकर्षण की नहीं, विकर्षण की ही सृष्टि करता था, इसलिए सर्वप्रथम विविध साधनों से मानव ने अपने शरीर के गुप्तांगों को ढंकने का प्रयास किया और यह ही उसके लिए सज्जा प्रसाधन का मूल भी आकर्षण उत्पन्न करना था और अपने अंगों को ढंकना भी सौंदर्य

की दृष्टि से ही किया गया था[1]। वस्त्र धारण करने के बाद उसने अपने सौन्दर्य की वृद्धि के लिए विविध अलंकारों का प्रयोग किया[2]। यह अलंकार भी दो तरह के हैं - पहले तो वे अलंकार जो मुख, केश, गले, अंगुली आदि के हैं अर्थात् वे जो खुले अंगों पर पहने जाते हैं और जिन्हें दूसरा व्यक्ति देख सकता है । दूसरे प्रकार के अलंकार वे अलंकार हैं जो संचालन करने वाले अंगों पर पहने जाते हैं और चूंकि यह अलंकार उन अंगों पर पहने जाते हैं जो दृश्य नहीं होते अतः यह अलंकार ध्वनि प्रधान रक्खे गए और ध्वनि द्वारा दूसरों को प्रभावित तथा आकर्षित करना इनका प्रमुख गुण था। इन ध्वनि प्रधान आभूषणों में अवधेय है कि अलंकार शोभा की दृष्टि प्रधान नहीं है । इसका कारण यही है कि इन्हें कोई देख नहीं सकता और ध्वनि द्वारा आकर्षण ही इनका प्रमुख गुण है । मुख, केश, नाक, कान, अंगुली आदि अंगों में पहनने वाले आभूषणों में शोभात्मक दृष्टि ही अधिक प्रधान है, क्योंकि दृश्यता इनका प्रधान गुण है और पहनने वाले की शोभा इनकी शोभा से ही बढ़ती है । इन अलंकारात्मक प्रसाधनों के अतिरिक्त लोक वर्ग में सज्जा के अन्य प्रसाधनों का भी प्रचलन है जो कलात्मक लोक सज्जा प्रसाधन कहे जा सकते हैं । इस प्रकार के सज्जा प्रसाधनों में गुदना गुदाना, मेंहदी लगाना, महावर लगाना, सिन्दूर, मिस्सी आदि लगाना आते हैं । नृतत्वशास्त्रियों ने कुछ कलात्मक साधनों की नृतत्वशास्त्रीय व्याख्या करते हुए उनकी पर्याप्त प्राचीनता सिद्ध की है, आदिम जातियों में लोक व्यापी प्रचलन दिखाया और कहीं कहीं

---

1. There was a time when human habit of wearing clothing was unfailingly attributed to the promptings of comfort, modesty, the sex urge or love of decoration- An Introduction to cultural Anthropology- Mischa Titev. p.234.

   Hobel: Man in the Primitive World p.240.

   Iyer: Lecturers in Ethnography p.232.

2. Iyer- Lectures in Ethnography p.232.

उनमें प्रतीक की झलक देखते हुए उन्हें आदिम लोक मानस तक से संबंधित बताया है पर यद्यपि कुछ कलात्मक सज्जा प्रसाधनों की प्राचीनता तथा आदिम लोक मानस से उनका संघर्ष ठीक उतरता है पर सभी कलात्मक सज्जा प्रसाधनों के विषय में ऐसा निश्चित रूपेण नहीं माना जा सकता कि उनका संबंध आदिम लोक मानस से है - यद्यपि उनकी प्राचीनता तथा व्यापकता मानी जा सकती है पर उनकी प्राचीनता की सीमा ऐसा निश्चित रूपेण निर्धारित नहीं की जा सकती है क्योंकि नृतत्वशास्त्रियों के कई तर्क केवल अनुमानाधारित हैं और अधिक प्रमाणों के अभाव में उनकी स्थिति निश्चित नहीं है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोक सज्जा सम्बन्धी प्रसाधनों को मुख्य रूप से तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

(क) वस्त्रात्मक

(ख) आभूषणात्मक

(ग) कलात्मक

इन उपरोक्त वर्गों का भी पुरुष स्त्री भेद से, उत्सव या अवसर की दृष्टि से, उत्तरीय और अधोवस्त्रीय दृष्टि से तथा प्रकार की दृष्टि से भी भेद किया जा सकता है, पर सुविधात्मकता तथा वैज्ञानिकता की दृष्टि से यहां उपरोक्त तीन वर्गों के आधार पर ही विवेचन किया गया है।

वस्त्र-सम्बन्धी लोक सज्जा प्रसाधनः-

लोक जीवन में वस्त्र सम्बन्धी लोक सज्जा प्रसाधन का स्थान महत्वपूर्ण है । स्त्रियां विभिन्न पर्वों पर, विभिन्न लोक कृत्यों और लोकानुष्ठानों को सम्पादित करते समय विभिन्न प्रकार के आकर्षक वस्त्रों से अपना शृंगार करती हैं । पुरुष वर्ग भी विशिष्ट अवसरों पर तथा सामान्य जीवन में विभिन्न प्रकार के वस्त्र धारण करता है जिनका लोक मानस अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्व है । इन विभिन्न प्रकार की वेश-भूषा धारण करने के साथ अनेक प्रकार के लोक विश्वासों का योग भी है । उदा-

की वेशभूषा- जैसे वर के लिए जामा, पगड़ी, साफा का प्रयोग विहित है, उसी प्रकार वधू को लहंगा, दुपट्टा, अंगिया, ओढ़नी आदि पहनना पड़ता है । कजली, सांझी आदि विविध लोकानुरंजनों पर भी स्त्रियों की विशिष्ट वेश भूषा देखी जाती है । सम्प्रति लोक जीवन में वस्त्र सम्बन्धी प्रसाधनों का महत्वपूर्ण स्थान है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में वस्त्र सम्बन्धी शृंगार प्रसाधन के विविध उल्लेख मिलते हैं । यह उल्लेख पुरुष तथा स्त्री वर्ग दोनों से ही संबंधित हैं। स्त्रियों से संबंधित उल्लिखित वस्त्र सम्बन्धी शृंगार प्रसाधन निम्नलिखित है ।

(क) ओढ़नी[१] और दुपट्टा[२] या चुनरी[३]

(ख) चादर[४]

(ग) अंगिया[५] या चोली[६]

(घ) कुरती[७]

(छ) साड़ी[८]

(ज) लहंगा[९]

(झ) घंघरी[१०]

इन वस्त्रों के उल्लेख के साथ ही साथ इनके विविध प्रकारों का भी कवियों ने उल्लेख किया है । प्रधानता की दृष्टि से यहां प्रत्येक का

१- प्रे०सर्व० पृ० ४८४, ४८२, ५२७, ५३३, ५८०, ११४ ।

२- वही, पृ० ५०२ । भा०ग्रं० पृ० ८५८ ।

३- वही, पृ० ५२७ । भा०ग्रं० पृ० १२५ ।

४- वही, पृ० ४८२, ५१०, ५३० । भा०ग्रं० पृ० ५१७ ।

५- वही, पृ० ४८४, ४९१, ५२५ ।

६- .ही, पृ० ५१०, ५३० । भा०ग्रं० पृ० ७२ ।

७- प्रे०सर्व० पृ० ४९२ ।

८- वही, पृ० ४९१, ४९२, ५३०, ५२७, ६०४, ५३६, ५५९, १०१ । भा०ग्रं० पृ० ७२

९- वही, पृ० ५०२ ।

१०- वही, पृ० ५३३ । भा०ग्रं० पृ० ७२ ।

विवरण प्रस्तुत है । भारतेंदु युगीन कवियों ने जहां साड़ी का उल्लेख किया है वहां लोक प्रवृत्ति के अनुकूल लोक जीवन में प्रयुक्त होने वाली विविध रंग की तथा प्रकार की साड़ियों का वर्णन किया गया है । जैसे रंग की दृष्टि से सूही[१] (एक प्रकार का लाल रंग), धानी[२] (हल्का हरा रंग), अंगारी[३] (तूतिया का रंग), सौसनी[४] (सोसन के फूल के रंग का), करौंदिया[५] (करौंदे के रंग का), गुलनार[६] (अनार के फूल के रंग का) रंग की साड़ी का विभिन्न स्थानों पर उल्लेख किया है । इसी प्रकार रंगों के अतिरिक्त जरतारी[७], कामदार[८] तथा लैस लगी[९] हुई साड़ी का भी उल्लेख है ।

साड़ी की ही भांति लोक जीवन में विविध रंग की तथा विविध प्रकार की चोलियों तथा अंगियाओं का भी लोक शृंगार प्रसाधन की दृष्टि से स्थान महत्वपूर्ण है । नागरिक जीवन में शृंगार प्रसाधन की दृष्टि से चोली का स्थान नगण्य है किंतु लोक जीवन में अंगिया या चोली शृंगार का एक प्रमुख प्रसाधन है । लोक जीवन में ब्लाउज के स्थान पर प्रायः अंगिया या चोली मात्र का प्रयोग होता है, अतः अंगियां विविध रंगों की तथा विविध प्रकार की बनाई जाती हैं । भारतेंदु युगीन काव्य में विविध प्रकार की अंगियाओं के उल्लेख हैं । प्रेमघन ने सबुज रंग[१०], हरा रंग[११] तथा करौंदिया[१२] रंग की तथा रेशमी[१३], गोटेदार[१४] और जरतारी[१५] (सोने के तारों से बनी हुई चित्रकारी वाले वस्त्र) का उल्लेख किया है । इन विविध प्रकार की अंगियाओं के अतिरिक्त साधारण रूप से तथा उनकी शोभा के भी भारतेंदु युगीन काव्य में विविध उल्लेख हैं[१६] ।

१- प्रे० सर्व० पृ० ४९१,५४९,५३८ । २- वही, पृ० ४९२,६०४,५३० ।

३ वही, पृ० ६०४ । ४- वही, पृ० ५०० ।

५-वही, पृ० ५०१ । ६- वही, पृ० ६०४ ।

७-वही, पृ० ५३६ । ८- वही, पृ० ६०४ ।

९-वही, पृ० ५०१ । १०- वही, पृ० ५२५ ।

११-वही, पृ० ५०१ । १२- वही, पृ० ५३० ।

१३-वही, पृ० ५२५ । १४- वही, पृ० ४८४ ।

१५-वही, पृ० ५३० । १६- वही, पृ० ४९९,५१०.

स्त्रियों के वस्त्रात्मक प्रसाधनों में ओढ़नी, दुपट्टा और चुनरी का स्थान महत्वपूर्ण है । स्त्रियां और युवतियां प्रायः साधारण जीवन में तो ओढ़नी का प्रयोग करती ही हैं पर विविध लोक कृत्यों, लोकानुरंजनों तथा लोकानुष्ठानों में भी चुनरी या दुपट्टा का होना आवश्यक माना जाता है । यही कारण है कजली आदि स्त्रियों के लोकानुरंजनों में प्रायः ओढ़नी, चुनरी आदि का प्रयोग होता है । भारतेंदु युगीन कवियों ने अनेक लोक गीतों में इस वस्त्रात्मक प्रसाधन का उल्लेख किया है । उत्सवों में या अनुष्ठानों में प्रायः लाल और हरे रंग की चुनरी का प्रयोग होता है । यह दोनो रंग शुभ माने जाते हैं । हरा रंग संभवतः अति प्राचीन काल से ही आदिम मानव मानस के लिए समृद्धि का प्रतीक रहा होगा और इसका संबंध कृषि से रहा होगा । कृषि का रंग हरा देखकर हरे रंग में उसका प्रतीक मान लेना अति स्वाभाविक है । सफेद रंग की ओढ़नी का प्रयोग साधारण अवसरों पर होता है । भारतेंदु युगीन काव्य में धानी[१], सूही[२] और लाल[३] रंग की ओढ़नी चुनरी के उल्लेख हैं । सामान्य रूप से शृंगार प्रसाधन रूप में भी चुनरी का प्रयोग अनेक स्थानों पर है[४] ।

चुनरी, ओढ़नी और दुपट्टा का प्रयोग लोकवर्ग में प्रायः लड़कियाँ या नवविवाहित युवतियां करती हैं, प्रौढ़ स्त्रियां प्रायः चादर का प्रयोग करती हैं । अवधेय है कि ओढ़नी दुपट्टा, चुनरी आदि का प्रयोग लोक वर्ग में शृंगार मात्र के लिए होता है । अति महीन वस्त्र का बना होता है वहां चादर का प्रयोग प्रायः वर्तमान शाल रूप में होता है और उससे बदन ढंका जाता है और उसका प्रयोग मर्यादा के निमित्त

१- प्रे० सर्व० पृ० ४८४ ।

२- वही, पृ० ४८२, ५७२, ५८०, ३९४ ।

३- वही, पृ० ५०२, ५२७ ।

४- वही, पृ० ५१६, ६१५ । भा० ग्र० १२५ ।

होता है । भारतेंदु युगीन काव्य में चादरों के विभिन्न प्रकारों-गुलअब्बासी धारी,[1] गुलेनार[2] (अनार के फूल का रंग) तथा धानी[3] रंग की चादरों का तथा साधारण रूप में भी चादर का उल्लेख हुआ है[4] ।

लहँगे का भी लोक जीवन में सज्जात्मक तथा आनुष्ठानात्मक दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान है । लोक वर्ग में लहंगा, अँगिया और ओढ़नी या चादर मात्र ही शृंगारात्मक दृष्टि से पूर्ण समझे जाते हैं । लहंगा पहनने की प्रथा प्राचीन काल में संपूर्ण भारत में थी किंतु आज यह प्रथा धीरे धीरे उठती जा रही है यद्यपि आज भी नागरिक समाज की स्त्रियां तक प्रायः आनुष्ठानिक काम करते समय लहंगा पहने ही देखी जाती हैं । विवेच्य काव्य में अन्य वस्त्र संबंधी सज्जा प्रसाधनों के साथ साथ लहंगा का भी उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है । लहँगे के विषय में विशेष रूप से उसके प्रकार का उल्लेख न करके उसकी शोभा का तथा उसके लहराने गुण का उल्लेख किया है[5] ।

उपरोक्त स्त्रियों के प्रमुख लोक सज्जा प्रसाधनों के अतिरिक्त कवियों ने करौंदिया कुरती[6] तथा घंघरी[7] आदि का भी उल्लेख किया है ।

स्त्रियों के लोक सज्जा प्रसाधन के अतिरिक्त भारतेंदु युगीन कवियों ने पुरुष वर्ग के भी वस्त्र प्रसाधनों का उल्लेख किया है । विभिन्न अवसरों पर, विभिन्न लोककृत्यों पर पुरुष वर्ग भी विभिन्न प्रकार के वस्त्र धारण कर शृंगार करता है । लोक तत्व की दृष्टि से इस पुरुष वर्ग से संबंधित वस्त्रात्मक लोक सज्जा का भी महत्व है ।

पुरुष वर्ग से संबंधित उत्तरीय वस्त्रों में सर्वाधिक पगरी, पाग, पगरिया या साफा का भरातेंदु युगीन काव्य में उल्लेख मिलता है ।

१-प्रे० सर्व० पृ० ५३० ।　　२- प्रे० सर्व० पृ० ५२७ ।

३-वही, पृ० ५०१ ।　　४- वही, पृ० ४८८,५६० । भा० ग्रं० १८१ ।

५-प्रे० सर्व० पृ० ४९२ । भा० ग्रं० पृ० ४६२,४७७ ।

६- वही, पृ० ५३३ । भा० ग्रं० पृ० ७२ ।

~~७--वही, पृ०~~

पगड़ी एक ऐसा वस्त्रात्मक लोक सज्जा प्रसाधन है जो लोक में पुरुष वर्ग द्वारा सामान्य तथा विशेष दोनों ही अवसरों पर प्रयुक्त होता है। उत्सवों में भी इसका प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः लोक वर्ग में पगड़ी मर्यादा का सूचक समझा जाता है। भारतेंदु युगीन कवियों ने अनेक स्थलों पर पगड़ी का उल्लेख किया है। कहीं यह लोक कृत्य के प्रसंग में उल्लिखित है जैसे विवाह के समय लोकवर्ग में वर के लिए पगड़ी पहनना आवश्यक होता है। अतएव विवाह संबंधी लोक गीत में बनरा घराती शीर्षक के अन्तर्गत प्रेमघन ने बनरा का रूप वर्णन करते हुए जामा आदि के साथ पाग का भी उल्लेख किया है[1]। टेढ़ी पगड़ी बांधना लोक जीवन में शान तथा सौन्दर्य का प्रतीक समझा जाता है। अतः टेढ़ी पगड़ी बंधी होने का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है[2]। लोकानुष्ठान में प्रायः लाल पीले और हरे रंग का ही प्रयोग होता है और यह ही रंग शुभ माने जाते हैं। भारतेंदु युगीन काव्य में इसीलिए लाल[3], सूही[4] और धानी[5] रंग की ही पगड़ियों का उल्लेख मिलता है। लोक प्रसिद्धि है कि ढाके की पगड़ियां अच्छी होती है तथा जयपुर में सुन्दर रंगाई होती है। इस लोक प्रसिद्धि का भी प्रेमघन ने एक गीत में उल्लेख किया है जिसमें एक नायिका अपने पति से कहती है- "प्रिय मैं तुम्हारे लिए ढाके से पगड़ी मंगवाकर जयपुर में सूही रंग की रंगवाऊंगी और इस प्रकार सुंदर पगड़ी तुम्हें बांध कर छैला बनाऊंगी"[6]। इसके अतिरिक्त पगड़ी से संबंधित एक लोक विश्वास का भी उल्लेख मिलता है कि गीली पगड़ी बांधने से नज़र लग जाती है[7]। इसके अतिरिक्त सामान्य रूप से पगड़ी का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है[8]।

१- प्रे० सर्व० पृ० ४५७।
२- वही, पृ० ४८८, ५२९, ५८४।
३- वही, पृ० ६०६, ५२५।
४- वही, पृ० ५०५, ६१९, ४४२।
५- वही, पृ० ५८१।
६- वही, पृ० ५७२।
७- वही, पृ० ५८२।
८- वही, पृ० ५६३।

पुरुष वर्ग के वस्त्र संबंधी लोक सज्जा प्रसाधन में जामा का स्थान विशेष उल्लेखनीय है । जामा का प्रयोग विवाह संबंधी लोककृत्य के समय वर धारण करता है । यह एक विशेष प्रकार का वस्त्र होता है जिसका प्रयोग विवाह में विशेष महत्व का माना जाता है । नृतत्व शास्त्रियों[1] ने जामा वस्त्र पर विचार प्रगट करते हुए इसका महत्व तथा प्रतीकात्मकता बताई है । सभी प्रमुख भारतेंदु युगीन कवियों ने अनेक स्थानों पर जामा का उल्लेख किया है[2] ।

इसके अतिरिक्त भारतेंदु युगीन काव्य में झंगा[3] (झंगुलिया भी कहते है- छोटे बालकों के पहनने का कुरता), पटुका[4](२।। गज का दुपट्टा जैसा कपड़ा जो कमर में जामा के ऊपर बांधा जाता है, विवाह में आज भी जामा के ऊपर ही यह बांधा जाता है)दुपट्टा[5] (अंगवस्त्र के रूप में- यह कंधे पर डाला जाता है), चौकाला कुरता[6], आदि विविध पुरुषों के वस्त्र संबंधी सज्जा प्रसाधन का उल्लेख किया है ।

ऊपर भारतेंदु युगीन हिंदी काव्य में उल्लिखित वस्त्र संबंधी लोक सज्जा प्रसाधनों पर विचार किया गया है । इन वस्त्र संबंधी सज्जा प्रसाधनों के अतिरिक्त भारतेंदु युगीन कवियों ने अपने काव्य में लोक जीवन में प्रयुक्त होने वाले विविध आभूषणों का भी उल्लेख किया है जिनका विवेचन नीचे किया जाता है ।

---

1. Among all nations, the bridgegrooms put on, on marriage occasions, a dress of a type different from the ordinary dres. Among eastern nations, they put Hindus and Mohamadans bridegrooms put on, is a kind of a loose flowing dress. A loose flowing dress is, in all ages, considered to be necessary for solemn and state occasions. In courts, churches and Universities, the gowns and robes, which are similar flowing dresses, play an important part. The folds of such dresses carry the idea of a kind of mystry, modesty, respect and rank. Women also, therefore, generally put on such flowing dresses like the saress or gowns". Anthropological Papers, Part V-Jiwan Ji Jamshed Ji Modi. p.84.

२- प्रे० सर्व० पृ० ४५७ । भा० ग्र० २९०,२९१ । ३-प्रे० सर्व पृ० ४४७ । भा० ग्र० पृ० ४६२,४४३ । ४- प्रे० सर्व० पृ० ४४७ । भा० ग्र० २९१ । ५-प्रे० सर्व० पृ० ५२९ । ६- वही. पृ० ५२९ ।

आभूषण संबंधी लोक सज्जा प्रसाधन-

लोक जीवन में आभूषणों की संख्या अनन्त है । प्रत्येक अंग के लिए जितने सौन्दर्य का बोध हो सकता है, उनके लिए किसी न किसी प्रकार के अलंकार रक्खे गए हैं । अतएव प्रत्येक आभूषण पर अलग अलग विचार न कर अंग की दृष्टि से विभाजन और अध्ययन वैज्ञानिक है । भारतेंदु युगीन काव्य में निम्न लिखत आभूषण प्रयुक्त हैं ।

अंग	आभूषण
सिर	झूमर[१]
मुख	
१- मस्तक	बेंदी[२]
२-नाक	नथ[३], बुला[४]
३- कान	बाला[५], झुमका[६], कनफूल[७], बिजली[८], बेसर[९] ।
गला	मोती माल[१०], हार[११], चम्पाकली[१२], किंकिनी[१३], कठुला[१४] ।

१- प्रे० सर्व० पृ० ५३० । भा० ग्र० पृ० ११७,४६२,५३२ ।

२- प्रे० सर्व० पृ० ५३०,५३६ । भा० ग्र० पृ० ३९६,५३२ । र० वा० भा० ३, क्या० २ ।

३- प्रे० सर्व० पृ० ५००, ५३०,५५२,६२५ । भा० ग्र० पृ० ३८५,४४०,४१६, ३८६,४११,३८६ ।

४- प्रे० सर्व पृ० ५०४,५३५ ।

५- वही, पृ० ५३०,६२५,५३५,५२६ ।

६- वही, पृ० ५३०, ६२५,५५२।भा० ग्र० पृ० ४०७,४४० । र० वा० भा० ३, क्या० २ ।

७- भा० ग्र० पृ० ४४०,४६२,७२ ।

८- प्रे० सर्व० पृ० ५२६ ।

९- प्रे० सर्व० १०१ । र० वा० भा० ३, क्या० १ ।

१०-भा० ग्र० पृ० ५३ ।

११- ~~हरर~~भा० ग्र० पृ० ११६ । प्रे० सर्व० पृ० ५१०, १०१ ।

१२- प्रे० सर्व० पृ० ५३६,५२६,५८१ । भा० ग्र० पृ० ४४० ।

१३- प्रे० सर्व० पृ० १०१ ।

१४- र० वा० भा० ३, क्या० ३ ।

अंग	आभूषण
हाथ	
१- बाँह	बाजूबंद[1]
२-कलाई	चूड़िया[2], कंगन,[3] छंद[4], पहुंची[5] ।
३- हथेली	हथफूल[6] ।
४- अंगुली	अंगूठी[7], छल्ला[8] ।
५- अंगूठा	आरसी[9] ।
हृदय-	बघनखा[10], गण्डा[11], सेल्ही[12]
कटि-	करधनी[13], छुद्र घंटिका[14] ।
पैर-	
१- टखने के ऊपर तथा घुटने के नीचे	पैजनिया[15], पायल[16], झांझ[17], पायजेब[18] छड़ा[19], गूजरी[20], नूपुर[21] ।

१- भा० ग्र० पृ० ४४० ।र० वा० भा० ३ क्या० २ ।
२-प्रे० सर्व० पृ० ५१०, ५५७, ५८३, १५, भा० ग्र० पृ० ४८२, ४४० ।
३-वही, पृ० ५५७, ५६६, ६०४ । भा० ग्र० पृ० ४१६ ।
४-वही, पृ० ५२७ ।
५-भा० ग्र० पृ० ७२, ४१६, ४१३, ४४०, ८६२ । सा० स० सं० १ सं० ५ ।
६- भा० ग्र० पृ० ४१६ ।
७- प्रे० सर्व० पृ० ५८४ । भा० ग्र० पृ० ८४५, ७२, ४१३, ४१५, ४१६, ४४० ।
८- प्रे० सर्व० पृ० ५२६ । भा० ग्र० पृ० ४१६ ।
९- भा० ग्र० पृ० ४१६, ६६, १४५, ४६२ । र० वा० भा० ३, क्या० ४ ।
१०-भा० ग्र० पृ० ४४३ ।
११-प्रे० सर्व० पृ० ५२५ । है
१२- भा० ग्र० ।
१३- प्रे० सर्व० पृ० ५०० ।
१४- भा० ग्र० ४४३ ।
१५- प्रे० सर्व० पृ० ५००, र० वा० भा० ३, क्या० ३ ।
१६- प्रे० सर्व० पृ० ५०२ । भा० ग्र० पृ० ४६२ । र० वा० भा० ३ क्या० १ ।
१७- भा० ग्र० ४८२ । १८- भा० ग्र० ४१३, ४१५, ४३१ । प्रे० सर्व० ५१०, ५२७ ४४५ । र० वा० भा० ३ क्या० ६ ।
१९- भा० ग्र० पृ० ४१५, प्रे० सर्व० पृ० ५२७, ५२६ ।
२०- भा० ग्र० पृ० ४१५ ।

अंग	आभूषण
२- अंगुली	बिछिया[१]
३- अंगूठा	अनवट[२]

सिर के आभूषणों में भारतेंदु युगीन काव्य में झूमड़ का उल्लेख मिलता है । झूमड़ सिर के बाईं ओर पहना जाता है । यह प्रायः सोने और जड़ाऊ मोती आदि का होता है । आज कल इसका प्रचार बहुत कम रह गया है । उत्सवों आदि में यदा कदा स्त्रियाँ इसका व्यवहार करती हैं । प्रेमघन ने त्रिकोन के मेले में जो विन्ध्याचल पर मंगलवार को होता है, उसमें जाने के लिए स्त्रियों द्वारा किए गए शृंगार का वर्णन करते हुए झूमर का उल्लेख किया है[३] । ग्रामीण वर्ग में यह आभूषण आज भी प्रचलित है । भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने भी कई स्थानों पर झूमड़ का उल्लेख किया है , कहीं झूमड़ नाम से कहीं सीस फूल नाम से[४] । वृषभानु लली के जन्म अवसर पर ब्रजनारियों के शृंगार में झूमर का उल्लेख है[५] ।

मस्तक के आभूषणों में बेंदी का कहीं बेंदी नाम से कहीं टीका नाम से उल्लेख हुआ है । यह माँग के बीच से केश में फँसाकर लटका दी जाती है और माथे पर लटकती रहती है । यह सोने की तथा जड़ाऊ दोनों प्रकार की होती है । लोक वर्ग में बेंदी सोहाग का चिन्ह समझी जाती है और विवाह में के आभूषणों में बेंदी का होना आवश्यक भी समझा जाता है । प्रेमघन ने पंचम विभेद-झुनमुनिया में गाने की कजली के अन्तर्गत भाल की बेंदी सुधारने का उल्लेख किया है[६] । त्रिकोन के मेले में

१- भा० ग्रं० पृ० ७२ । १२५,४३९ । र० ना० भा० ४, स्था० ५, भा० पृ० १, अंक ४ ।

२- भा० ग्रं० पृ० ७२,४१५ । सा० स० अं० १,सं० ४ ।

३- ~~भा० ग्रं० ४६२~~ । प्रे० सर्व० पृ० ५३० ।

४- भा० ग्रं० पृ० ४६२ ।

५- भा० ग्रं० ५३२ ।

६- प्रे० सर्व० पृ० ५१६ ।

स्त्रियों के शृंगार के अन्तर्गत बेंदी का उल्लेख किया है[1] तथा तीसरी कुरीति बाला वृद्ध विवाह में बाला वृद्ध प्रति कथन में बाला कहती है-"कि मुझे लाल क्या दिखाते हो मैं चम्पाकली टीका वाला सुन्दा चम्पाकली कुछ नहीं चाहती[2]।" भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी वृषभानु लली के जन्म अवसर पर ब्रजनारियों के शृंगार के अन्तर्गत हीरे की बेंदी का उल्लेख किया है[3]।

नाक में पहने जाने वाले नथ(बेसर) तथा बुलाक दो आभूषणों के उल्लेख मिलते हैं । नथ नाक के एक ओर पहना जाता है तथा बुलाक नाक के बीच की हड्डी में । नथ के भी दो प्रकार होते हैं एक तो साधा-रण नथ दूसरी झुलनी वाली नथ अर्थात् वह नथ जिसमें मोती की झुलनी या मोती की लटकन लटकती रहती है । ऐसी नथ को जिसमें लटकन रहती है कभी कभी लोक वर्ग में झुलनी या लटकनिया मात्र से ही संबोधित कर दिया जाता है । नथुनी के लिए बेसर शब्द का भी प्रयोग होता है अतः कभी कभी बेसर का भी प्रयोग मिलता है । बुलाक नाक के बीच की हड्डी में पहना जाता है इसे बुला भी कहते हैं । बुला रूप में इसका उल्लेख भारतेन्दु युगीन काव्य में मिलता है[4]। बुला का तथा नथुनी का प्रयोग अति प्राचीन तथा अति प्रचलित है । आदिम जातियों तक में इनका प्रयोग मिलता है । ऐसा प्रतीत होता है कि इन आभूषणों की परम्परा अति प्राचीन है ।

कान के आभूषणों में बाला[5], झुमका[6], कनफूल[7], बिजली[8] आदि कई आभूषणों का उल्लेख भारतेन्दु युगीन काव्य में मिलता है ।

१- प्रे०सर्व० पृ० ५३० ।

२- वही, पृ० ५३६ ।

३- भा०ग्रं० ५३२ ।

४- प्रे०सर्व० पृ० ५०४,५३५ ।

५- वही, पृ० ५३०,६२५, ५३५, ५२६ ।

६- प्रे०सर्व० पृ० ५३०, ६२५, ५५२ । भा०ग्रं० ५०७,४५० ।

७- भा०ग्रं० पृ० ४५०, ४६२, ७२ ।

८- प्रे०सर्व० पृ० ५२६ ।

बाला का प्रचार तो अभी बहुत व्यापक है पर कनफूल, बिजली आदि का प्रयोग नागरिक वर्ग से अब उठता जा रहा है । बाला का दो रूपों में उल्लेख हुआ है एक सादा बाला[1] दूसरा झुमक वाला बाला[2]। बाली बाले का छोटा रूप है इसका भी उल्लेख भारतेन्दु युगीन काव्य में मिलता है[3]।

गले के आभूषणों में मोतीमाला[4], हार[5], चम्पाकली[6] का उल्लेख है ।

हाथ के अनेक आभूषणों का भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लेख है । हाथ के मुख्य रूप से पांच भाग हैं -(क) बांह, (ख) कलाई,(ग) हथेली, (घ) अंगुली, (ङ) अंगूठा । पांचों अंगों के लिए लोक वर्ग में विविध आभूषण हैं और भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य में पांचों अंगों के आभूषणों का उल्लेख मिलता है । बाह के लिए बाजूबन्द[7], कलाई के लिए चूड़िया, कंगन[8], छंद[9], पहुंची[10] का उल्लेख मिलता है । चूड़ियों में हरी हरी चूड़ियों का कजली खेलने वालियों की रुचि का चित्रण करते हुए उल्लेख किया गया है[11]। सिद्ध है कि कजली पर स्त्रियां हरी हरी चूड़ियांविशेष रूप से पहनती हैं । कंगन, चूड़ी, पहुंची आदि आभूषणों का प्रचलन आजभी नागरिक समाज में बहुत है पर छंद का प्रयोग अब नागरिक वर्ग से उठ गया है किन्तु ग्राम वर्ग में अभी भी यह प्रचलित है । छंद चूड़ियों के बीच पहना जाता

१- प्रे०सर्व०, पृ० ५३०, ६२५, ५३५ ।

२- वही, पृ० ५०२, ५६७ ।

३- वही, पृ० ५२६ ।

४- भा०ग्रं० ५१, ४४०, ४६२, ७२ ।

५- वही, ११६ ।

६- प्रे०सर्व० पृ० ५८१, ५३६, ५२६ ।

७- भा०ग्रं० ४४० ।

८- प्रे०सर्व० ५५७, ५६६, ६०४। भा०ग्रं० ४१६ ।

९- वही, पृ ५२७ ।

१०- भा०ग्रं० पृ० ७२, ४१६, ४१३, ४४०

११- प्रे०सर्व० पृ० ५१० ।

है । हथेली के आभूषणों में हथफूल[1] का अंगुली के लिए मुंदरी[2] तथा छल्ले का[3] उल्लेख हुआ है । छल्ला एक अति साधारण आभूषण है संभवतः मुंदरी का मूल रूप छल्ला ही है । अंगूठे के लिए आरसी का उल्लेख हुआ है[4]।

हृदय पर के दो आभूषणों का भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लेख हुआ है । पहला बघनखा दूसरा गण्डा । बघनाखा छोटे बच्चों को अप-देवताओं तथा नज़र आदि लगने से बचाने के लिए पहनाया जाता है और मूलतः इसका उद्देश्य आनुष्ठानिक ही था, सज्जात्मक नहीं, किन्तु चूंकि कृष्ण राम आदि देवताओं के लिए बाललीला में इसका प्रयोग हुआ इसलिए यह आनुष्ठानिक से सज्जात्मक प्रसाधन भी बन गया । दूसरे माताओं को अपने बच्चे की हर चीज़ सुन्दर ही लगती है अतः इसको भी सौन्दर्यात्मक दृष्टि से देखा गया और बाद में यह सौन्दर्य प्रसाधन रूप में भी गिना जाने लगा । यह कोई आभूषण नहीं है केवल एक डोरे में बांध कर नाखून बांध कर बच्चे के वक्ष पर लटका दिया जाता है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी कृष्ण की बाललीला सम्बन्धी एक पद में कृष्ण के साज शृंगार में तथा बघनखा पहनने से हुई उनकी शोभा का वर्णन किया है[5]। मिरजापुरी गुण्डों का यथार्थ चित्र खींचते हुए प्रेमघन ने गुण्डों के गले में पड़े हुए गण्डा आभूषण का उल्लेख किया है[6]। यह पूर्णतया लोक वर्ग का आभूषण है और पुरुष तथा स्त्री दोनों द्वारा ही पहना जाता है । इसको कंठी हंसली आदि भी कहते हैं । नागरिक वर्ग में इसका प्रचार अब नहीं है ग्राम वर्ग तक ही इसका प्रचार अब सीमित रह गया है ।

कटि के आभूषणों में करधनी और क्षुद्रघंटिका आभूषण का

१- भा०ग्रं०पृ०४१६ । २- प्रे०सर्व०पृ०५८४।भा०ग्रं०८४५,७२,४१३,४१५,४१६, ४४०।

३- वही, पृ०५२६ । भा०ग्रं०४१६ ।

४- भा०ग्रं०४१६, ६६, १४५, ४६२ ।

५-वही, पृ० ४४३ ।

६- प्रे०सर्व०पृ० ५२९ ।

उल्लेख हुआ है । यह सामान्यतः चांदी की होती है किन्तु कभी कभी सोने की भी बनायी जाती है । करधनी और क्षुद्रघण्टिका का लगभग एक ही है अंतर केवल इतना ही है कि करधनी सामान्यतः नवयुवतियों और प्रौढ़ स्त्रियों द्वारा पहनी जाती है जबकि क्षुद्रघंटिका का प्रयोग केवल छोटे छोटे बालक ही करते हैं । क्षुद्रघंटिका का रूप अति साधारण होता है । एक डोरे में छोटी छोटी घंटिकाएं बंधी रहती है और हिलने पर वे ही ध्वनि करती है । करधनी भारी होती है और पूर्णरूपेण या तो चांदी की बनी होती है या सोने की । ये दोनों ही लोक सज्जा के प्रसाधन है । श्रीकृष्ण की बाललीला का वर्णन करत हुए भारतेन्दु ने बालकृष्ण की कटि में सुशोभित क्षुद्रघंटिका तथा उसकी शोभा का वर्णन किया है[1]। करधनी का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है प्रेमघन ने भी एक ग्रामीण नारी केकमर मे पड़ी हुए करधनी की शोभा का वर्णन कजली में किया है[2]।

पैर के आभूषणों में लोक वर्ग में तीन प्रकार के आभूषण प्रचलित है प्रथम वे आभूषण जो टखने के ऊपर तथा घुटने के नीचे वाले भाग में पहने जाते हैं । दूसरे वे जो पैरों की अंगुलियों में तथा तीसरे अंगूठे में पहने जाने वाले आभूषण । इन तीनों प्रकार के आभूषणों का भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लेख हुआ है । पहले प्रकार के आभूषणों में पैजनिया, पायल, नूपुर, झांझ, पायजेब, छड़ा और गूजरी का उल्लेख मिलता है । पैजनिया और पायल में कोई विशेष अंतर नहीं है वैसे उनमें वही अंतर है जो करधनी तथा क्षुद्रघंटिका में अन्तर है । पैजनिया शिशु का आभूषण है और पायल नवयुवतियों तथा स्त्रियों का आभूषण अवधेय है कि यद्यपि पैजनिया मुख्यतः छोटे बालकों का ही आभूषण है पर प्रेमघन ने नवयुवतियों तथा स्त्रियों के सम्बन्ध में इसका प्रयोग किया है और इसका आशय पायल से है[3]। पायल का प्रयोग अनेक स्थानों पर

१- भा० ग्रं० पृ० ४४३ ।

२- प्रे० सर्व० पृ० ५०० ।

३- वही, पृ० ५०० ।

मिलता है[1]। यह एक अति प्रचलित आभूषण है । नूपुर पायजेब भी प्रचलित आभूषण है । झांझ स्त्रियों के पैरों में पहने जाने वाले नक्काशीदार पोले कड़े होते हैं जिनमें कंकड़ी डाली जाती है, जिससे चलते समय बजे । कंकड़ से निकलने वाली झां झां ध्वनि के कारण ही इसका नाम झांझ पड़ गया लगता है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सांझी के पद में पैर में पड़ी हुई झांझ की ध्वनि का उल्लेख किया है[+]। छड़ा भी लोक सज्जा का एक आभूषण है जो कि चूड़ी के आकार का होता है और चलने में ध्वनि करता है । प्रेमघन[2] तथा भारतेन्दु[3] आदि अनेक कवियों ने छड़ा का उल्लेख किया है । इसका प्रयोग ग्रामीण वर्ग में अभी प्रचलित है पर नागरिक वर्ग से इसका प्रयोग धीरे धीरे उठता जा रहा है । गूजरी का भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उल्लेख किया है[4] यह भी पैरों का एक लोक सज्जा प्रसाधन है । पैरों की अंगुली में पहने जाने वाले आभूषणों में भारतेन्दु युगीन काव्य में बिछिया का उल्लेख मिलता है । यह विवाहित स्त्रियों का आभूषण है तथा सोहाग का चिह्न लोक वर्ग में माना जाता है । अविवाहित स्त्रियाँ इसका प्रयोग नहीं करती हैं । विवाह के बाद ही इसको स्त्रियां प्रयोग में लाती है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक स्थान पर दुल्हन राधा की साज सज्जा का वर्णन करते हुए किया गया है[5]। इसके अतिरिक्त राधाकृष्ण के विहार में राधा के शृंगार में[6] दूसरे स्थान में भी राधा के ही प्रसंग में उल्लेख है[7]। पैर के अंगूठे के आभूषणों में अनवट का

१- भा०ग्रं-४८२ । + वही, पृ०४८२ ।

२- वही, ४१५ ।

३- प्रे०सर्व०पृ०५२७, ५२६ ।

४- भा०ग्रं०४१५ ।

५- वही, पृ० ७२ ।

६- वही, पृ० १२५ ।

७- वही, ४२९ ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने उल्लेख किया है । इसका भी प्रयोग अब केवल ग्राम वर्ग तक ही सीमित है नागरिक वर्ग में इसका प्रयोग उठ सा गया है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बिछिया के साथ इसका भी उल्लेख किया है[1]।

कला सम्बन्धी लोक सज्जा प्रसाधनः-

लोक सज्जा प्रसाधन के अन्तर्गत तीसरा महत्वपूर्ण वर्ग कला-सम्बन्धी लोक सज्जा प्रसाधनों का है । लोक जीवन में इनका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है तथा इनके साथ अनेक लोक विश्वासों का संयोग भी है । कलात्मक लोक सज्जा प्रसाधनों के मुख्य रूप से दो वर्ग किए जा सकते हैं।

(१) स्थायी कलात्मक लोक सज्जा प्रसाधन ।

(२) अस्थायी कलात्मक लोक सज्जा प्रसाधन ।

स्थायी कलात्मक लोक सज्जा प्रसाधनः-

इस वर्ग के अन्तर्गत उन कलात्मक सज्जा प्रसाधनों की स्थिति है जो स्थायी हैं । इस वर्ग के अन्तर्गत भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित गुदना कलात्मक लोक सज्जा प्रसाधन का उल्लेख किया जा सकता है ।

गुदनाः-

गुदना स्थायी कलात्मक लोक सज्जा प्रसाधन है । गुदना का तथा गुदना गुदे हुए अंगों की शोभा का वर्णन भारतेन्दु युगीन कवियों ने अनेक स्थानों पर किया है । प्रेमघन ने, एक सुन्दरी का जो जोगिन रूप में आई है, के गुदना गुदे हुए अंगों की शोभा का जो अपनी शोभा से कामदेव को लज्जित कर रही है, का वर्णन किया है[2]। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी "डफ की" "होली" में एक गोरी की रूप प्रशंसा करते हुए लिखा है -हे गोरी तेरे मुख पर गुदना अति शोभित होता है[3]। इसके अतिरिक्त एक

१- भा०ग्रं० ७२, ४१५ ।

२- प्रे०सर्व०पृ० ४४१ ।

३- भा०ग्रं०पृ० ३८६ ।

अन्य स्थान पर भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक गोरी की गुदना सज्जित शोभा का वर्णन किया है[1]।

गुदना एक अति प्राचीन तथा विश्वव्यापी लोक सज्जा प्रसाधनहै इसका प्रचार अब केवल ग्राम वर्ग में ही रह गया है । नागरिक संस्कृति से इसका प्रचार उठता जा रहा है । ग्राम वर्ग में गुदना के साथ अनेक लोक विश्वासों का योग आज तक और संभवतः लोक वर्ग में गुदना के सज्जात्मक रूप में अवशिष्ट रहने का सबसे बड़ा कारण भी यही है । भारत में गुदना का प्रचार अति व्यापक है श्रीकृष्ण देव उपाध्याय ने तो इसके विषय में बताते हुए यहां तक उल्लेख किया है कि उन्होंने प्रयाग के कुंभ मेले (सन् १९५४) में एक ऐसे सम्प्रदाय के व्यक्तियों को देखा है जिनके सम्पूर्ण अंगोंमें यहां तक कि सिर तक में राम राम गुदा हुआ है[3]

नृतत्वशास्त्रियों ने लोक कला के संबंध में विचार करते हुए गुदना पर व्यापक अनुसंधान किया है और बताया है कि गोदना का प्रचार केवल भारत तक ही नहीं वरन् पालीनेशिया, अरब तथा विश्व की अनेक असभ्य जातियों में गोदना का प्रचार है । मुसलमानों तथा ज्यूज़ में तो गोदना एक धार्मिक चिह्न समझा जाता रहा है और हवाई में तो वहां के लोग अलंकरण के रूप में जिह्वा तक पर गोदना गोदवाते हैं और गोदना की पीड़ा को वह अलंकरण के लिए बड़ी प्रसन्नता से सहन करते हैं[4]। नृतत्व-शास्त्रियों ने गोदना को केवल अलंकरण का प्रसाधन नहीं माना है वरन् उन्होंने गोदना के अनेकों कारणों की ओर संकेत किया है । प्रसिद्ध नृतत्वशास्त्री लुइ का कहना है कि आदिम जातियों में गोदना का प्रचार है और उनके मध्य गोदना जाति तथा सामाजिक स्तर का सूचक है । जो

१- भा०ग्रं ३८६ ।

२- गोदना: धतूरे के दूध में काजल मिलाकर रंग तैयार सुई चुभोकर किया जाता है ।

३- भोजपुरी और उसका साहित्य: कृष्णदेव उपाध्याय, पृ०१४३ ।

४- Races and cultures of India: Majumdar, D.N.p.69-70.

एक व्यक्ति को तरुणावस्था के सम्मान में प्रदान किया जाता है[1]। आदिवासियों तथा आदिम मानव जाति में तरुणावस्था का विशेष मान है और इस अवस्था पर पहुंचने पर विशेष प्रकार का सम्मान देना आदिम जातियों में एक प्रचलित प्रथा है[2]। स्मिथ का मत है कि मूलतः गोदना अलंकरण का कारण नहीं था वरन् यह असभ्य तथा बर्बर टोटेम वादी जाति के लोगों का जाति वाचक चिन्ह रहा होगा जो जानवरों पर भी खोदा जाता रहा होगा जिससे उनकी एक जाति वाचकता सिद्ध होती होगी और विभिन्न प्रकार की चित्रकारी के गोदने का होना यह और भी सिद्ध करता है कि इससे एक जाति के लोगों का दूसरी जाति के लोगों में अन्तर ज्ञात किया जाता रहा होगा। स्मिथ[3] ने अरब की जंगली जातियों का उदाहरण प्रस्तुत किया है और बताया है कि वहां की जातियों का एक जातिवाचक चिन्ह (Wasm) है जो उनके पशुओं आदि पर बनाया जाता है। स्मिथ का कहना है कि यह वाज़्म केवल ऊंटों पर ही नहीं बनाया जाता रहा होगा वरन् उस जाति के लोगों पर भी गुदना के रूप में बनाया जाता रहा होगा। स्मिथ ने भाषा वैज्ञानिक तथा नृतात्विक दोनों ही दृष्टियों से पर्याप्त प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि यह मूलतः किसी टोटेमवादी जाति का जातिचिह्न रहा होगा और इसी चिह्न के द्वारा एक जाति के लोग तथा दूसरी जाति के लोगों में वैभिन्य मालुम किया जाता रहा होगा और मूलतः यह अलंकरण साधन नहीं रहा होगा। यद्यपि आज यह अलंकरण साधन हो गया है। आज गोदना का प्रयोग धर्म के रूप में कम तथा अलंकरण के रूप में अधिक होता है और इसके साथ धर्म की भावना उतनी संयुक्त नहीं है जितनी लोक विश्वास की। लुई ने स्पष्ट ही कहा है कि कुछ आदिम जातियों में अलंकरण प्रवृत्ति के लिए ही लोग सारे शरीर तक में गुदना गुदवाते है और कहीं तो जिह्वा तक में गुदना गुदवाते हैं। सिद्ध है कि गोदना का प्रचार अति व्यापक तथा प्राचीन है और हो सकता है कि मूलतः

---

1. Cultural Anthropology: Lowie,R.H.p.81-82.

2. Kinship and Marriage: Smith,W.Robertson p.247-252.

इसके प्रयोग का कारण कुछ और हो पर आज इसका प्रयोग लोक सज्जा प्रसाधन के रूप में भी होता है[1]।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भक्त सर्वस्व में कृष्ण के चरण चिह्नों का वर्णन किया है । जिसमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, मछली आदि उल्लेखनीय हैं । अवधेय है कि कृष्ण के चरणों में बने हुए इन चिह्नों का तात्पर्य क्या है । ये चिह्न संभवतः गोदने के प्रकार हैं और शंख,चक्र,गदा,पद्म, मछली आदि टोटेम है जिन्हें अति प्राचीन काल से मानव अपने अंगों पर जातिवादी टोटेम के रूप में गुदवाता रहा है । विद्वानों का मत है कि कृष्ण के अंगों में चिन्हित यह चार लक्षण उनमें टोटेमवादी लक्षण ही हैं[2]। जिन्हें ये स्वयं गुदवाते थे तथा परिचितों के अंगों में इन चिह्नों को देखकर प्रसन्न होते थे । सूर्य, चंद्र, पेड़, पौधे आदि भी क इसी प्रकार के टोटेम हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा कृष्ण में स्थित इन चिह्नों का उल्लेख लोक वार्तातत्व की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है और यह चिन्ह उस समय की याद दिलाते हैं जबकि एक जाति के लोग अपने जाति के लोगों को दूसरी जाति के लोगों से पहचानने के लिए अपने टोटेम जातियों के चिह्नों को अंकित करते थे और यह एक प्रकार के गुदना ही थे ।

अस्थायी कलात्मक लोक सज्जा प्रसाधनः-

अस्थायी कलात्मक लोक सज्जा प्रसाधन वे हैं जो स्थायी नहीं होते इस वर्ग के प्रसाधनों में निम्नलिखित का भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लेख हुआ है ।

मेंहदी :-

मेंहदी की पत्ती को पीसकर हाथ तथा पैर पर विविध चित्रकारी के साथ लगाकर मेंहदी का रंग रचाना स्त्रियों का अति प्राचीनकाल से लोक

---

1. Cultural Anthropology: Louie, R.H.p.81-82.
2. Lectures in Ethnography: Iyer, p.226.

सज्जा का कलात्मक प्रसाधन रहा है । ग्राम वर्ग में इसका बहुत प्रचलन है । विशेष उत्सवों तथा लोक कृत्यों पर नागरिक वर्ग की स्त्रियां भी इसका प्रयोग सज्जा प्रसाधन रूप में करती है । विशेष अवसरों पर विवाह आदि के समय आनुष्ठानिक रूप में वर का शृंगार भी मेंहदी द्वारा किया जाता है । इस प्रकार मेंहदी का आनुष्ठानिक महत्व भी है । भारतेन्दु युगीन काव्य में मेंहदी का लोक सज्जा प्रसाधन में अनेक बार उल्लेख हुआ है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने घोड़ी (विवाह गीत) में वर के हाथों में लगी हुई मेंहदी की शोभा का वर्णन करते हुए उत्प्रेक्षा की है कि वर के हाथ में लगी हुई मेंहदी ऐसी प्रतीत हो रही है मानों वह हाथों ही हाथों से मन को चुरा रही है[१]। इसके अतिरिक्त बनरा (विवाह गीत) में भी वर के हाथों में लगी हुई सुर्ख़ मेंहदी की शोभा का उल्लेख भारतेन्दु ने किया है[२]। नृतत्वशास्त्रियों ने वर तथा वधू के हाथों में लगी हुई मेंहदी को केवल कलात्मक शृंगार का प्रसाधन ही न मानकर इसे आनुष्ठानिक भी माना है। उनका कहना है कि विवाह के अवसर पर मेंहदी लगाने की प्रथा केवल भारत में ही नहीं वरन् विश्व के अनेक देशों में प्रचलित है[३]। अतः यह सामान्य रूप से कलात्मक सज्जा प्रसाधन ही नहीं है, वरन् इसके पीछे लोक मानस की एक प्रवृत्ति है जिससे सिद्ध होता है कि यह कलात्मक सज्जा प्रसाधन के साथ ही साथ प्रतीक भी है । विवाह के अवसर पर मेंहदी वधू के घुटने के नीचे के पैर में, बांह में, चेहरे पर तथा बालों में तथा वर के कभी हथेली पर या दाहिने हाथ की छोटी अंगुली पर लगाई जाती है कभी कभी दोनों हाथों में तथा कभी कभी पैरों में भी । इसके कारण पर

१- भा०ग्रं० २९१ ।

२- भा०ग्रं० २९१ ।

3. Myrtle is usually regarded as a lucky plant in Britain. It is traditionally associated with love, marriage and fertility and was widely used in bridal wreaths- Encyclopaedia of Superstitions p.242.

विचार करते हुए नृतात्त्विकों[१] ने कहा है कि शुद्धि के रूप में प्रयुक्त होती है तथा विवाह के अवसर पर अति प्राकृतिक शक्तियों की कुदृष्टियों से बचने केहेतु । आदि मानव का विचार था कि विवाह एक ऐसा अवसर है जबकि अति प्राकृतिक शक्तियां वर तथा वधू को कष्ट पहुंचाने का प्रयत्न किया करती है तथा इन कुदृष्टियों से रक्षा के हेतु लोक मानस ने अनेक समाधान सोचे थे उनमें से यह भी एक था । आदि मानव का विश्वास था कि वर तथा वधू के हाथ में मेंहदी लगी रहने से किसी प्रकार के कुप्रभाव उन पर नहीं पड़ सकेंगे और विशेष बाधाओं से उनकी रक्षा होगी । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने विवाह के अवसर पर अन्यत्र भी वर तथा वधू के हाथ में लगी हुई मेंहदी का उल्लेख किया है[२]। मेंहदी का लोक सज्जा रूप में प्रेमघन ने कजली गीतों में अनेक बार उल्लेख किया है[३]। कजली खेलने वालों की रुचि का चित्र खींचते हुए भी हाथ पैर में मेंहदी रची होने का उल्लेख किया है[४]। जिससे सिद्ध होता है कि कजली लोकोत्सव में कजली लोकानुरंजन में तथा वर्षा ऋतु में मेंहदी का विशेष महत्त्व है और मेंहदी स्त्रियों

---

1. "The most important of all prophylactic or cathartic rites at Moorish weddings is the custom of painting the bride and bridegroom with henna, a colouring matter produced from the leaves of the lausonia intermis or Egyptian privet, which is considered to contain much baraka, or benigh virtue, and is therefore used as a means of purification or protection on occasions when people think they are exposed to supernatural dangers. The henna is applied to the brides hand and feet, and occasionally also to her legs below the knees, her arms, face and hair, while the bridegroom sometimes has it smeared onthe palm or fingers or little finger of his right hand, sometimes on both hands, and some times on his feet as well."- Westermarck, Edward- A short History of Marriage p.202.

२- भा०ग्रं० ७७७ ।

३- प्रे०सर्व०पृ० ४९१, ५१०, ५१५, ५२८ ।

४- वही, पृ० ५१० ।

के कलात्मक लोक सज्जा का प्रमुख प्रसाधन है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने विवाह प्रसंगों के अतिरिक्त भी मेंहदी का कलात्मक लोक सज्जा प्रसाधन रूप में उल्लेख किया है[1]।

महावर :-

अलक्तक को ही देशी भाषा में महावर कहा जाता है । यह भी स्त्रियों का सोहाग सम्बन्धी प्रमुख शृंगार प्रसाधन है । प्रायः सभी उत्सवों लोक कृत्यों और लोकानुष्ठानों पर इसका प्रयोग किया जाता है । विवाह के समय वर तथा वधू दोनों ही द्वारा इसका प्रयोग होता है । अवधेय है कि जहाँ मेहदी का प्रयोग हाथ के लिए मुख्य रूप से होता है वहाँ महावर का प्रयोग मुख्य रूप से पैर के लिए होता है । भारतेन्दु युगीन काव्य में लोक सज्जा प्रसाधन रूप में महावर का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है । विवाह प्रसंग में वर तथा वधू की सज्जा में महावर की शोभा का[2] तथा साधारण रूप में महावर की शोभा का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया गया है[3]।

मिस्सी :-

मिस्सी दांत की शोभा बढ़ाने वाला स्त्रियों का अति प्राचीन लोक सज्जा प्रसाधन है । अनेक लोक गीतों में मिस्सी का लोक सज्जा प्रसाधन रूप में उल्लेख हुआ है[4]। स्त्रियों के सोलहों शृंगार में मिस्सी का भी स्थान है । इसका प्रयोग आजकल बहुत ही कम होता है । यह मंजन की तरह होता है तथा इसको दांत में लगाने से यह दांतों के बीच की रेख में जम जाता है और चूंकि यह काला होता है और दांत का रंग श्वेत

१- भा०ग्रं० ४१५,४१६। भार० पु० १,अं० ७,पृ० १५८।र०वा०भा० १,क्या० १२ ।

२- वही, २९१, ७७७ ।

३- भा०ग्रं० ४१५, सा०स०खं० १,सं० ४,पृ० ३ । र०वा०भा० २,क्या० ७ ।

४- कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी ग्रामगीत, पृ० २५ ।

होता है इसलिए श्वेत विरोधी होने के कारण यह दांतों की शोभा को द्विगुणित करता है । मिस्सी के साथ पान भी खाया जाता है । यह पान दांतों की शोभा को बढ़ाता तथा मिस्सी को स्थायी रखता है । प्रेमघन ने मिस्सी पान की शोभा का उल्लेख किया है[1]। मिस्सी का लोक सज्जा प्रसाधन रूप में भारतेन्दु युगीन काव्य में बहुत बार उल्लेख हुआ है[2]।

सेंदुर :-

अधिकांश भारतेन्दु युगीन कवियों ने लोक सज्जा प्रसाधनों में सेंदुर का भी उल्लेख किया है । सेंदुर विवाहित स्त्रियों का शृंगार प्रसाधन तथा सोहाग का चिह्न है । विवाह के बाद ही सेंदुर स्त्रियां लगाना प्रारम्भ करती हैं, अविवाहित स्त्रियां इसका प्रयोग नहीं करतीं । अतः सेन्दुर शृंगार प्रसाधन के साथ ही साथ स्त्री के विवाहित होने का प्रमाण भी है । सेन्दुर मांग में लगाया जाता है । सेन्दुर सोहाग का चिह्न लोक जीवन में प्रसिद्ध है[3] इसका कई स्थानोंपर भारतेन्दु युगीन कवियों ने उल्लेख किया है । भारतेन्दु- हरिश्चन्द्र कृत प्रेमाश्रुवर्णण में एक पद में कृष्ण राधा से कहते हैं कि "जब से तूने सेन्दुर सिर पर रक्खा तब से तू मेरी सोहागिन अर्थात् विवाहिता हो गई[4]। इसी प्रकार अनेक स्थानों पर भी कहा गया है - कि हे सोहागिन तुझे ही यह सेंदुर का टीका सुन्दर लगता है[5]। सेन्दुर के बिना विवाहित स्त्रियों का शृंगार अधूरा समझा जाता है अतः महत्वपूर्ण शृंगार प्रसाधन होने के कारण सेन्दुर का उल्लेख अन्य लोक सज्जा प्रसाधनों के साथ अनेक बार ~~उल्लेख~~ हुआ है[6]।

१- प्रे० सर्व० पृ० ४३६ ।

२- र० बा० भा० ३, क्या० ५ । र० बा० भा० १, क्या० ४ । र० बा० भा० २, क्या० ४ ।

३- कृष्णदेव उपाध्याय: भोजपुरी ग्रामगीत, पृ० १३, ५, २७ ।

४- भा० ग्रं० ११५ ।

५- वही, ११५ ।

६- वही, २९२, १६२, ५२७, २९२, ६२५ । प्रे० सर्व० पृ० ५३३, १४, ४३, ५९८ ।

नृतत्वशास्त्रियों[1] ने मांग में सेन्दुर लगाने, विवाहित स्त्रियों के प्रमुख शृंगार प्रसाधन होने तथा विवाह के समय से ही सैंदुर लगाने तथा सिन्दुर के सोहाग के प्रतीक होने आदि अनेक बातों को लेकर सेन्दुर के लोक सज्जा प्रसाधन होने के कारण पर विस्तार से विचार किया है और विविध व्याख्याएं की हैं। सैंदुर लगाने की प्रथा बहुत व्यापक तथा बहुत प्राचीन है यह आदिम तथा असभ्य जातियों में जिन तक सभ्यता की किरणें नहीं पहुंची हैं पर विस्तार से विचार किया है। प्रसिद्ध नृतत्व-शास्त्री कर्नल डाल्टन का मत है कि सिंदूर रक्त का प्रतीक है और यह वर तथा वधू की एकता की ओर संकेत करता है। कथन की पुष्टि के लिए प्रमाण देते हुए उन्होंने कहा है कि बहुत सी आदिम जातियों में विवाह के अवसर पर वर तथा वधू दोनों के रक्त से टीका किया जाता है जो दोनों की अभिन्नता का सूचक है। बाद में सभ्यता के विकसित होने पर रक्त के स्थान पर रंग साम्य के कारण लोक मानस ने सेन्दुर को स्थान

---

1. According to Col Daltons Descriptive ethonology of Bengal a particular ceremony is known among the several aboroginal tribes of Bengal as Sindur Dan. Therein, the bridegroom marks his bride with red lead on her forehead (Descriptive Ethonology of Bengal-Et.Dalton- Account of Kharrias p.160). Among the tribes who practise this ceremony, it is the essential part of the marriage rite which renders the union of bride and bridegroom complete in the same way as putting on the ring in the marriage service of this country. In general bride alone is marked but among some tribes both are marked. In some tribes, the custom varies in this, that instead of red lead,"blood is drawn from little fingers of the bride and bridegroom," and with this they are marked. The red lead is a mere substitute of blood. Col.Dalton thinks that the custom symbolizes "the fact that bride and bridegroom have now become one flesh. The other view is that it is a relic of marriage by capture, in which the husband as a preliminary to connubial felicity has broken his wife head (Asiatic Quarterly Review of Jan.1893 p.163). Mr.Sidney Hartland describes several analogous customs and considers them to be the relics of ancient blood covenants observed on marriage. Col.DaltonIs interpretation of the custom of marking the bride with red lead and of it more archaic form of marking her with blood in this that it is correlative of the practice of marking

दिया और बाद में यही सेंदुर जो पहले विशिष्ट प्रथा का प्रतीक था बाद में शृंगार प्रसाधन बन गया । दूसरा वर्ग सेन्दुर की व्याख्या भिन्न प्रकार से करता है । इस वर्ग के नृतत्व शास्त्रियों का कहना है कि विवाहित स्त्रियों का प्रमुख तथा अनिवार्य शृंगार प्रसाधन व उस प्राचीन प्रथा की याद दिलाता है जब विवाह बलात्कार द्वारा किया जाता था और विवाह करने के लिए वर को वधू पक्ष के लोगों से युद्ध कर वधू का बलात्कार द्वारा ले जाना होता था । मांग में सेन्दुर लगाना इसी बात का प्रतीक है कि वर ने वधू पर प्रहार कर हरण करने के लिए उसका सिर तोड़ दिया है और उसे वश में कर लिया है । इस प्रकार नृतत्वशास्त्रियों ने सिद्ध किया है कि लोक सज्जा प्रसाधन सेन्दुर केवल शृंगार का प्रसाधन मात्र नहीं है वरन् इसके मूल में विशेष रहस्य छिपे हुए हैं । और यह मूलतः प्रतीक रूप में गृहीत है । सेंदुर की प्रथा अति प्राचीन, व्यापक तथा आदिम जातियों तक से संबंधित है । दिनकर ने सेन्दुर का मूल आग्नेय जाति का बताया है किन्तु दिनकर जी ने न तो कोई विशेष तर्क ही दिए हैं न प्रमाण ही इसलिए उनके मत की किसी प्रकार से पुष्टि नहीं होती है और न आग्नेय जाति ही का यह प्रभाव माना जा सकता है[१]।

काजलः-

भारतेन्दु युगीन काव्य में काजल का उल्लेख भी लोक सज्जा प्रसाधन रूप में अनेक बार हुआ है । प्रेमघन[२] तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र[३] आदि अनेक कवियों ने काजल लगे हुए नयनों की शोभा का उल्लेख किया है ।

टीकाः-

माथे पर टीका लगाकर स्त्रियों तथा पुरुषों का शृंगार प्रसा-

१- भारत की सांस्कृतिक कहानी: दिनकर, रामधारी सिंह, पृ० ८ ।

२- प्रे०सर्व०पृ० ६२५, ६०४, ५८०, ५३३, १४, ४२ ।

३- भा०ग्रं० १८२, ५३२, ५९० ।

धन अत्यन्त प्रचलित है । स्त्रियों में यह सामान्यतः तथा पुरुषों में विशेषतः प्रचलित है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने स्त्री तथा पुरुष दोनों ही के टीका द्वारा शृंगार प्रसाधन का उल्लेख किया है । प्रेमधन ने कहीं तो भाल पर बिन्दु लगाकर होली में किसी स्त्री का अपने पति को स्त्री रूप देना लिखा है[१]। कहीं अबीरी टीके का उल्लेख किया है[२]। तो कहीं माथे पर टिकुली लगाकर किसी स्त्री का अपने बालपति को नव बधू बनाने को लिखा है[३]। कहीं मुख पर कुंकुम लगाकर गोपियों के बधाई देने आने का उल्लेख है[४]। स्त्रियों के सेंदुर का टीका लगाने का भी कवियों ने उल्लेख किया है[५]। मिरजापुरी गुण्डों का यथार्थ चित्र खींचते हुए प्रेमधन ने मिरजापुरी गुण्डों के बेड़ा काजा टीका तथा ऊँचा महाबीरी (लाल) टीका द्वारा अपना शृंगार करने का उल्लेख किया है[६]।

पानः-

पान भी लोक शृंगार का एक प्रसाधन अति प्राचीन काल से माना गया है । "ताम्बूलं मुख शोभनं" कथन की पुष्टि भी करता है । मिस्सी जो स्त्रियों के शृंगार का प्रमुखप्रसाधन है उसके साथ पान का प्रायः व्यवहार होता है । संभवतः पान मुख की शोभा तो बढ़ाता ही है, मिस्सी को स्थायित्व भी देता है । भारतेन्दु युगीन काव्य में मिस्सी के साथ[७] तथा सामान्य रूप से भी पान का शृंगारात्मक प्रसाधन रूप में उल्लेख हुआ है[८]।

१- प्रेमधन सर्वस्वः पृ० ५ ६२५ ।

२- वही, पृ० ५५२ ।

३- वही, पृ० ५३३ ।

४- भा० ग्रं० ५२१ ।

५- वही, १६२ ।

६- प्रे० सर्व० पृ० ५२९ ।

७- वही, पृ० ४३६ ।

८- भा० ग्रं० २९२ ।

पुष्पः-

पुष्पों से शृंगार करना एक प्राचीनतम तथा व्यापक सज्जा प्रसाधन है । प्राकृतिक रुचि के कारण मनुष्य का ध्यान सर्वप्रथम प्रकृति प्रदत्त सुलभ साधनों पर ही गया था । पुष्पों से सज्जा भी अति प्राचीनकाल में मानव ने शुरु की होगी । भारतेन्दु युगीन कवियों ने भी कहीं बनमाला[1] का (जो बन के पुष्पों की माला है) तो कहीं फूलों के गजरे[2] का उल्लेख किया है । इसी प्रकार एक स्थान पर फूलों के गहने बना कर भी शृंगार करने का उल्लेख है[3]।

मोरपंखः-

मोर पंख द्वारा शृंगार करने का भी भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लेख मिलता है[4]। पंखों से, सींगों से शृंगार करने की प्रथा विश्वव्यापी है और आदिम जातियों में तो यह प्रथा और भी अधिक व्यापक रूप में मिलती है । आदिवासी विभिन्न विशेष अवसरों पर मोर पंखों तथा सींगों आदि से विविध प्रकार से शृंगार करते हैं । कृष्ण भी मोरपंख से शृंगार करते थे ऐसा प्रसिद्ध ही है । मोरपंख भी एक लोक सज्जा प्रसाधन है ।

विविधः-

उपर्युक्त प्रमुख लोक सज्जा प्रसाधनों के अतिरिक्त चंदन[5], कुंकुम[6], केसर[7], रोरी[8] आदि का भी भारतेन्दु युगीन काव्य में लोक सज्जा प्रसाधन रूप में अनेक बार उल्लेख हुआ है ।

१-र०बा०भा०३, क्या० ३ । र०बा०भा०४, क्या०२ ।
२- वही, भाग ३, क्या० ९ ।
३- वही, भाग २, क्या० ८ ।
४- र०बा०भा०२, क्या०७। भा०१,क्या०४ ।
५- र०बा०भा०३,क्या०९।सा०स०सं०१, सं०२,पृ० २ ।
६- र०बा०भा०३,क्या०१ ।
७- सा०स०सं०१,सं०५,पृ०३ ।सा०स०सं०१,सं०७, पृ० २ ।

लोकानुरंजन

जीवन की भौतिकता तथा नीरस बुद्धि व्यापारों से ऊब कर मानव मानस ने अति प्राचीन काल से ही मनोरंजन के अनेक तरीके निकाले थे बालक, पुरुष तथा स्त्रियों, सबकी शारीरिक तथा मानसिक योग्यता के अनुसार विभिन्न मनोरंजन के साधन थे । कुछ मनोरंजन केवल क्रीड़ा सम्बन्धी मात्र थे तथा कुछ के साथ थोड़ा बुद्धि व्यापार का भी योग था जिससे सामान्य स्तर पर मानव मानसिक संतुष्टि भी प्राप्त कर सके । ऐसे मानसिक संतुष्टि वाले लोकानुरंजनों के साथ थोड़ा वाणी विलास भी प्रायः रहता है लोक वार्ता की दृष्टि से ऐसे वाणी विलास संयुक्त लोकानुरंजनों का उदाहरणार्थ पहेलियों, चुटकुलो, मुकरियों का विशेष महत्व है क्योंकि इनसे लोकमानस तथा लोक प्रवृत्ति के विषय में ज्ञान होता है । इसी प्रकार लोकानुरंजनों में कुछ लोकानुरंजन के साधन व्यसन का रूप भी धारण कर चुके हैं । कुछ मनोरंजन के साधन न रहकर पेशे के साधन भी बन गए हैं । उदाहरण के लिए जुआ या चौपड़ आदि लोकानुरंजन के साधनों को लिया जा सकता है । जहाँ यह मनोरंजन के साधन मात्र ही पहले थे अब व्यापार का साधन भी बन गए हैं तथा इनकी मनोरंजन शक्ति समाप्त भी होती जा रही है । इस प्रकार के अनुरंजन को व्यसन की भी संज्ञा दी जा सकती है । भारतेन्दु युगीन हिन्दी कवियों ने अपने काव्य में अनेक लोकानुरंजनों का उल्लेख किया है, चूंकि लोकवार्ता में तथा लोक तत्व की दृष्टि से इन लोकानुरंजनों का विशेष महत्व है । अतः इन लोकानुरंजनों का वर्णन यहाँ अपेक्षित है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोकानुरंजनों का वर्गीकरण अनेक दृष्टियों से किया जा सकता है -

जाति के आधार पर:-

(क) बालक तथा बालिकाओं से संबंधित - सिल्ली घोड़ी अर्थात् बीर बहूटी पकड़ना, लेजिम-झनकारना, भौंरा, चकई, गुलेल चलाना आदि ।

(ख) पुरुष वर्ग से सम्बन्धितः चटकी, डांड, नाल उठाना, मुगदर चलाना निशानेबाजी, कुश्ती आदि ।

(ग) स्त्री वर्ग से संबंधितः कजली खेलना आदि ।

(घ) सामूहिक : जुआ, रामलीला, रासलीला, पहेलियां, चुटकुले, मुकरियां आदि ।

क्रीड़ा और वाणी विलासिता के आधार परः-

(क) क्रीड़ामात्र :

१- साधारण- लिल्ली घोड़ी पकड़ना ।

२- व्यायामिक- चटकी, डांड, बैठक, मुगदर चलाना, नाल उठाना ।

३- बौद्धिक या कलात्मक- निशानेबाजी, लेजिम, गुलेल चलाना, भौंरा, चकई, जुआ ।

(ख) क्रीड़ावाणी संयुक्त- गुल्ली डंडा ।

(ग) वाणी प्रधानः

१- अभिनय युक्त - राम लीला, रास लीला ।

२- संगीत - कजरी खेलना ।

३- विविध- पहेलिया, मुकरियां, चुटकुले, ककहरा(साहित्यिक)।

इसी प्रकार इन दो प्रमुख आधारों तथा वर्गीकरणों के अतिरिक्त साधारण तथा व्यसन रूप में भी लोकानुरंजनों का वर्गीकरण कर, जो लोकानुरंजन अब व्यसन का रूप धारण कर चुके हैं उन्हें व्यसन वर्ग में रखकर तथा शेष को साधारण वर्ग में भी रखकर किया जा सकता है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में निम्न लोकानुरंजनों का उल्लेख हुआ है। इन उल्लिखित लोकानुरंजनों का उपर्युक्त दोनों आधारों पर विवेचन किया जाएगा ।

बालक तथा बालिकाओं से संबंधित उल्लिखित लोकानुरंजन:-

बरसाती जीवों को पकड़ना:-

भारतेन्दु युगीन कवियों ने विशेष कर प्रेमघन ने बालक -बालिकाओं के विविध मनोरंजनों का उल्लेख किया है । बालकों को छोटे जीवों को जैसे बीर बहूटी, लिल्ली घोड़ी तथा रात में जुगनू आदि पकड़ने में बड़ा आनन्द आता है । बीर बहूटी के लिए लाल बिलौटी और लाल बहूटी दोनों ही शब्द लोक वर्ग में प्रचलित है । यह लाल या हल्के गुलाबी मखमल की तरह होती है । लिल्ली घोड़ी भूरे रंग की होती है तथा उस पर सफेद धारियां पाई जाती है । यह लगभग एक इंच लम्बी होती है तथा इसके कई पैर होते हैं ।प्रेमघन ने जीर्ण जनपद में बालकों के बरसाती जीवों को पकड़ने तथा उन्हें देखकर विस्मित होकर तथा आनन्द में अपने बड़ों के दिखाने का बड़ा स्वाभाविक रूप में उल्लेख किया है[1]। प्रेमघन कहते हैं कि बालकगण बीर बहूटी, लिल्ली घोड़ी, टिड्डी, तथा जुगनू आदि को पकड़कर किस प्रकार प्रसन्न होते हैं, अपना मन बहलाते हैं और किस प्रकार के विचित्र छोटे जीवों का संग्रह किया करते हैं[2]। प्रेमघन ने औरतों के शृंगार किए हुए रूप को अनेक बार बीर बहूटी का रूप बताया है[3]।

१- बहु विधि बरसाती जीवन कोउ पकरि लियावत ।
अतिहि विचित्र विलोकि चकित औरं नहिं दिखावत ।।

२- बीर बहूटी कोउ पकरत, कोउ लिल्ली घोड़ी ।
कोउ धन कुट्टी कोउ टीड़िन पाँखिन गहि छोड़ी ।
रजनि समय जुगनून पकरि अतिसय हरसावैं ।
आवरवाँ के बसन बान्हि फानूस बनावैं ।
ऐसहिं विविध बनस्पति के विचित्र संग्रहसन । ४२
बहु विधि खेल बनावैं स बजन बहलावैं मन ।।-प्रेम०सर्व० पृ० ४०० ।

३- बीर बहूटी सी बनि निकर ब, बनठन लालन यार मो बालम।प्रे०सर्व० पृ०५१
घूम रही हैं बीर बहूटी गोया बिखरे लाल इमन के - प्रे०सर्व० पृ०५१२ ।

भौंरा :-

भौंरा छोटे बालकों का एक लोकानुरंजन का साधन है । इसे कलात्मक क्रीडा के साधनों में रक्खा जा सकता है क्योंकि इसे खेलने के लिए एक विशेष कला की आवश्यकता होती है, जिसके बिना इससे नहीं खेला जा सकता है । वर्तमान शब्दावली में इसे लट्टू कहते हैं किन्तु लोक वर्ग में इसका नाम आज भी भौंरा ही प्रसिद्ध है । भौंरे में एक कौड़ी डोरी लगी रहती है जिसे खींचने से तथा फिर एकाएक छोड़ देने क से भौंरा नाचता रहता है और उसकी डोरी लपटती जाती है । चूंकि इसके नाचते समय भन्नामन की आवाज़ होती है अतः भंवरे की ध्वनि गुंजार के सादृश्य के कारण इसका नाम भौंरा रख दिया गया है । यह बालकों का विशेष मनोरंजन का साधन है । प्रेमघन ने बाल्य विवाह कुरीति के अन्तर्गत भौंरा चकई का उल्लेख किया है । नायिका अपनी बाल अवस्था वाले पति से, ज्यों भौंरा चकई गुल्ली डंडा आदि खेलता है, कहती है कि जरा इन खेलों को छोड़कर थोड़ा इतरा कर नाचो[1] । यहां क एक प्रकार से तत्कालीन लोक प्रचलित बाल विवाह प्रथा पर व्यंग किया गया है ।

चकई-

चकई भी बालकों का एक कलात्मक मनोरंजन का साधन है । चकई एक प्रकार की गोल लकड़ी की या लोहे या टीन की ढिबरी के समान वस्तु होती है जिसके बीचों बीच में डोरी बांधने का स्थान रहता है । डोरी का एक छोर चकई में बंधा रहता है और एक चकई नचाने वाले के हाथ में फंसा रहता है । चकई नचाने वाला व्यक्ति डोरी को पहले चकई में

१- भौंरा चकई बहाय, गुल्ली डंडा बिसराय
तनी नाच, इतराय, मोरे बारे बलमूं
करिहैयवा हिलाय, औ भंउहैं मटकाय
ताली दै कै चमकाय, मोरे बारे बलमूं- प्रे० सर्व० पृ० ५५५ ।

लपेटे रहता है फिर एक विशेष विधि से फेंकता है कि चकई में लपटा डोरा खुलकर फिर लपटता जाता है । अच्छा चकई नचाने वाला बच्चा कई बार चकई को नचाकर घुमाकर उसमें डोरी लपेट कर अपनी कला का प्रदर्शन करता है । बालकों के मध्य यह खेल आज भी लोक वर्ग में काफी प्रचलित है । चकई का मूल सुदर्शन चक्र की भावना में प्रतीत होता है । जिस प्रकार लोक विश्वास है कि कृष्ण का सुदर्शन चक्र वार कर पुनः वार करने वाले व्यक्ति के हाथ में लौट कर आ जाता था उसी प्रकार चकई भी हाथ से छोड़ कर पुनः घूम फिर कर खेलने वाले के हाथ में आजाती है । चकई खेलने वाला व्यक्ति हर प्रकार से चकई को नचाता है और घुमा फिराकर अपने हाथ में ले लेता है । चक्र ही इसका मूल प्रतीत होता है । प्रेमघन ने बाल्य विवाह कुरीति में भौंरे तथा गुल्ली डंडा आदि लोकानुरंजनों के साधन के साथ ही साथ इस लोकानुरंजन के साधन का उल्लेख किया है[1] ।

गुल्ली डंडा-

यह भी बालकों के मनोरंजन का साधन है । इसके साथ वाणी विलास भी संयुक्त है इसलिए इसको क्रीडा वाणी युक्त लोकानुरंजन कह सकते हैं । इस खेल में गुल्ली (एक लकड़ी का छोटा टुकड़ा जिसके दोनों कोनों पर नोक बनी रहती है) और डंडे की आवश्यकता पड़ती है । इस खेल से बालकों की गिनती गिनने तथा जोड़ घटाने का ज्ञान बढ़ता है । लोक वर्ग में यह खेल भी बहुत प्रचलित है । इसीलिए प्रेमघन ने भौंरा चकई आदि लोक प्रचलित लोकानुरंजनों के साथ इसका भी उल्लेख किया है ।

लेजिम-

लेजिम भी बालकों के मनोरंजन का कलात्मक साधन है । इसमें एक ओर एक डंडा लगा रहता है जिसमें मूठ बनी रहती है । दूसरी ओर एक तार लगा रहता है जिसके बीच में एक लकड़ी का मूठ जो पकड़ने के काम आता है

१- भौंरा चकई बहाय, गुल्ली डंडा बिसराय

तनी नाचः इतराय, मोरे बारे बलमूं- प्रे० सर्व० पृ० ५४५ ।

तथा मूठ के दोनों ओर लोहे की पत्तियां दो दो कर लगी रहती हैं । छोटे बच्चे एक हाथ से डण्डे की मूठ को पकड़ कर नचाते है जिससे लगी हुई पत्तियां हिलती हैं तथा उनसे विशेष प्रकार की ध्वनि निकलती है । आज भी म्यूनिसपल स्कूल में बालकों के यह मनोरंजन का विशेष साधन है । प्रेमघन ने लेजिम नामक मनोरंजन का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है । जीर्ण जनपद में सिपाहखाना शीर्षक के अन्तर्गत सिपाहियों की रहनि बताते हुए प्रेमघन ने लेजिम भनकारने का उल्लेख किया है[1]।

पुरुषवर्ग से संबंधित उल्लिखित लोकानुरंजन के साधनः-

व्यायामिकः-

भारतेन्दु युगीन हिन्दी कवियों ने अनेक व्यायामिक लोकानुरंजनों का भी यत्र तत्र उल्लेख किया है । पुरुष वर्ग के यों तो अधिकांश मनोरंजन के साधन ऐसे ही है जिनसे किसी न किसी रूप में शारीरिक बल प्राप्ति होती है और इस प्रकार पुरुष वर्ग के सभी लोकानुरंजन के साधन व्यायामिक वर्ग के अन्तर्गत रक्खे जा सकते हैं किन्तु फिर भी कुछ लोकानुरंजनके साधन ऐसे हैं जिनमें कलात्मक दृष्टि प्रधान हैं और बिना कला के जिनका खेल हो ही नहीं सकता जैसे डांड आदि खेल किन्तु कुछ ऐसे भी लोकानुरंजन के साधन हैं जो मनोरंजन तो करते हैं और मनोरंजन के साधन हैं किन्तु जिनके साथ व्यायामिक दृष्टि ही अधिक प्रमुख है जैसे -अखाड़ा लड़ना, मुगदर चलाना आदि । इसप्रकार प्रधानता की दृष्टि से ही इनके व्यायामिक और कलात्मक दो वर्ग बनाए गए है । इन वर्ग के अन्तर्गत आने वाले निम्नलिखित लोकानुरंजनों का भारतेन्दु युगीन कवियों ने उल्लेख किया है ।

नाल उठानाः-

आधुनिक वेट लिफ्टिंग का यह मूल रूप तथा लोक प्रचलित रूप है। यह पत्थर का गोल सा बना होता है तथा बीच में छेद कर पकड़ने का सा बना

1- करत डंड कोउ बैठक कोउ मुगदरनि हिलावत ।
लेजिम भनकारत कोउ भारी नाल उठावत - प्रे०सर्व० पृ० २३ ।

किया जाता है । इसे दोनों हाथ से पकड़ कर उठाया जाता है । प्रेमघन ने सिपाहखाना में सिपाहियों की रहनि में इसका उल्लेख किया है[१]।

मुगदर चलाना:-

मुगदर चलाना भी एक व्यायामिक लोकानुरंजन का साधन है । दो लकड़ी के एक भार के बने हुए लट्ठे को दोनों हाथों में पकड़कर विधि से चलाना मुगदर चलाना है । प्रेमघन ने इसका भी जीर्ण जनपद सिपाह खाने में उल्लेख किया है[२]।

डंड-बैठक:-

डंड बैठक भी जो एक व्यायाम का ढंग है लोक वर्ग में व्यायामिक मनोरंजन रूप में प्रचलित है । डंड बैठक का व्यापार प्रचार होने से विशेष विवरण अपेक्षित नहीं है । प्रेमघन ने वर्षा विन्दु में बनारसी लय के दूसरे भेद के अन्तर्गत डंड पेलने का उल्लेख किया है[३]। जिससे लोक के प्रचलित स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है ।

कुश्ती:-

कुश्ती या अखाड़ा लड़ना लोक वर्ग का सबसे अधिक व्यापक तथा प्रचलित मनोरंजन है । गांव में आज भी बड़े बड़े स्तर पर कुश्तियों के दंगल हुआ करते हैं जिसमें दूर दूर के पहलवानों को चुनौती दी जाती है और जिसे देखने दूर दूर के लोग आते हैं । कुश्ती के द्वारा लोक का मनोरंजन अति प्राचीन काल से होता आ रहा है । आदिम संस्कृतियों में भी सामान्य जनता का

१- करत डंड कोउ बैठक कोउ मुगदरनि हिलावत ।
लेजिम झनकारत कोउ भारी नाल उठावत ।।-प्रे०सर्व०पृ० २३ ।

२- वही । पृ० २३ ।

३- बहरी औबन जाय बूटी के रगड़ा रोज लगाइला ।
बूटी छान असनान ध्यान कै, पान चबाईला ।।
डण्ड पेल चेलन के कुस्ती खब लड़ाईला हो ।

कुश्ती देखकर मनोरंजन होता है । प्रेमघन ने डंड बैठक के साथ ही कुश्ती का भी उल्लेख किया है[1]। प्रेमघन ने जीर्ण जनपद में नाग पंचमी का वर्णन करते समय इस दिन के लिए दंगल जीतने के लिए भी लोगों की विविध तैयारियों का उल्लेख किया है[2]।

कलात्मक:-

यों तो सभी व्यायामिक मनोरंजन कलात्मक होते हैं और सभी में एक विशेष कला की आवश्यकता पड़ती है जैसे कुश्ती लड़ने के लिए, मुगदर चलाने के लिए एक विशेष कला की आवश्यकता होती है पर अवधेय है कि इन उपरोक्त व्यायामिक मनोरंजनों में कला की दृष्टि उतनी प्रधान नहीं है जितनी व्यायामिक दृष्टि किन्तु लोकानुरंजनों में अनेक ऐसे लोकानुरंजन के साधन हैं जो कलात्मक दृष्टि से अधिक है जिनमें व्यायामिक दृष्टि अधिक नह प्रधान नहीं । ऐसे कलात्मक लोकानुरंजन जिनका भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लेख हुआ है निम्नलिखित हैं ।

चटकी डंड:-

चटकी डंड भी लोक वर्ग में विशेषकर पुरुषों तथा कभी कभी स्त्रियों द्वारा भी दो छोटे छोटे डंडे को लड़ाकर खेला जाने वाला अति प्राचीन तथा प्रचलित लोकानुरंजन रहा है । भरत मुनि ने अपने नाट्य रासक में तीन रासकों का उल्लेख ~~किया~~ करते हुए दण्ड रासक का भी उल्लेख किया है[3]। जिनदत्त सूरि ने इसे लकुट रासक नाम कदाचित् इसीलिए दिया प्रतीत होता है कि लकुट का तात्पर्य लकड़ी या डंडे से है । सप्त क्षेत्र रास ग्रंथ में

१- दण्ड पेल खेलन के कुश्ती खूब लड़ावला हो - प्रे॰सर्व॰पृ॰५८९ ।

२- नागपंचमी निकट जानि बहु लोग अखारे ।
   लरत भिरत सीखत नव दांव पेंच प्रन धारे ।।प्रे॰सर्व॰पृ॰२८ ।

३- ताल रासक नाम स्यात् तत्त्रिधा रासके स्मृतम् ।
   दण्ड रासक मेकन्तु तथा मंडल रासकम् ।।

- भरत नाट्य

दण्ड रासक करने वाली जाति नर्तक बताई गई है । यह अवश्य ही इस नृत्य में विशेष निपुण रही होगी । संभवतः दण्ड रासक का भी मूल यही चटकी डंड खेल रहा है । लोक वर्ग में आज कल यह कहीं कहीं पर गतका खेलने नाम से भी प्रचलित है जिसमें दो व्यक्ति दो दो डंडे लिए हुए एक दूसरे पर वार करते हैं और दूसरा व्यक्ति दूसरे के वार को अपने दो डंडों से रोकता है । इस खेल को खेलने के लिए विशेष अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है । इसके खेलने के विविध पैतरे भी होते हैं । प्रेमघन ने इस अति प्रचलित लोकानुरंजन का भी कई स्थानों पर उल्लेख किया है । सर्वप्रथम प्रेमघन ने जीर्ण जनपद में योद्धा-गण के कहीं पैतरे भर कर चटकी डांड खेलने का उल्लेख किया है[1]। जीर्ण जन-पद में ही प्रेमघन ने नागपंचमी पर्व पर अन्य उत्साही गणों द्वारा चटकी डांड आदि विविध लकड़ी के दांव सीखने का उल्लेख किया है[2]। क्योंकि नागपंचमी के दिन इन कलाओं का निर्णय होता है और मान सम्मान विजयी को मिलता है[3]।

झावरि:-

प्रेमघन ने झावरि नामक लोकानुरंजन का तथा उसके खेलने की विधि और समय सभी का उल्लेख किया है । झावरि गांवों का अति प्रचलित लोकानुरंजन है । सर्वप्रथम जीर्ण जनपद में झावरि के संबंध में लिखते हुए प्रेमघन कहते हैं कि कातिक में जब खेत जुत जाते हैं उजियाली रात होती है और चांदनी हो जाती है उस समय खेतों में रात के समय उस समय खेलने वाले झा-वरि के लिए गोले बनाते हैं सौ सौ लोग शोर मचाते हुए बड़े आनंद से खेलते

१- जहं योद्धागन दिखरावत निज कृपा कुशलता ।
अस्त्र शस्त्र अरु शारीरिक बहु भांति प्रबलता ।
चटकट चटकी डांड कहूं कोउ भरत पैतरे ।
लरत लराई कोउ एक एकन एकन सौं अभिरे ।। प्रे० सर्व० पृ० ११ ।

२- सीखत चटकी डांड, विविध लकड़ी के दावन ।
बांधत छूरी किते लोग लागत हीं सावन ।। प्रे० सर्व० पृ० २८ ।

३- होत पंचमी के दिन निश्चय इन कललन कलान को ।
सम वयस्क सम कृता कुशल जस मध्य मान को ।। प्रे० सर्व० पृ० २८ ।

हैं और कोलाहल से ऐसा प्रतीत होता है मानों दो वर्गों में युद्ध हो रहा है[1]। झाबरि में एक गोला खींचा जाता है इस गोले के अंदर एक वर्ग के लोग तथा गोले के बाहर दूसरे वर्ग के लोग रहते हैं । गोले के अन्दर वाले व्यक्ति बाहर वाले व्यक्ति को छूने का प्रयत्न करते हैं तथा बाहर वाले उन्हें पकड़ने का । जीतने पर बाहर वाला वर्ग अन्दर आ जाता है और हारने पर अर्थात् गोले के बाहर वाले व्यक्तियों द्वारा पकड़ जाने पर अन्दर वाला वर्ग बाहर आ जाता है । इस प्रकार खेल चलता रहता है । इसके विषय में भी प्रेमधन वर्णन करते हुए लिखते हैं कि भीतर की रक्षा करते हुए बाहरी व्यक्तियों पर चढ़ाई की जाती है और इस प्रकार छू कर भागने तथा दूसरे वर्ग द्वारा पकड़ने में ही लड़ाई होती है । इस खेल में कोई घायल होता है किसी का हाथ पैर टूटता है तब भी अनेक लोग महीने भर तक खेलते रहते हैं और खेल नहीं छूटता[2] ग्रीण जनपद एक अन्य स्थान पर भी प्रेमधन ने अन्य खेलों के उल्लेख के साथ बाल विनोद में इसका भी उल्लेख किया है[3]।

तुतु तूम तूलः-

झाबरि, गेंद खेलना तथा कूरी कूदना आदि अनेक लोकानुरंजनों के साथ प्रेमधन ने तुतु तूम तूल का भी उल्लेख किया है[4]। वास्तव में यह कोई

१- आवत कातिक की जब रजनि उंज्यारी प्यारी।
जुते हिंगाये खेत बनत उज्जवल द्युति धारी ।
बड़े बड़े खेतन में रजनी समय प्रहर्षित ।
कढ़त गोल की गोल खेल खेलन झाबरि हित ।
सौ सौ जन संग सोर करत खेलत भरि हौंसन ।
अति कोलाहल मचत युद्ध सम दल दोउ बीचन ।।-प्रे० सर्व० पृ० २९ ।

२- भितरी रच्छत किते, बाहरी करत चढ़ाई ।
छ्वै भाजनि गहि पकरन ही में होत लराई ।।
घायल होत कोऊ कोऊ को कर पग टूटत ।
तऊ मची ही रहत महीनन खेल न छूटत ।।-प्रे० सर्व० पृ० २९ ।

३- मचत कबहुं झाबरि कबहुं तुतु तूम तूल भल ।
कबहुं गेंद खेलत कूरी कूदत कबहुं दल ।।-प्रे० सर्व० पृ० ३७ ।

४- मचत कबहुं झाबरि कबहुं तुतु तूम तूल भल ।
------------------।।प्रे० सर्व० पृ० ३७ ।

एक खेल नहीं है वरन् यह कबड्डी आदि के बोल है । तुमा ततकार आदि लोकानुरंजनों में ऐसे बोल बोले जाते हैं । जैसे किसी प्रदेश में कबड्डी में कोई काव्य पंक्ति जैसे- छल कबड्डी आला आदि को दोहराकर कहीं तू तू तू कहीं लू लू लू आदि कहा जाता है । वास्तव में यह एक ही सांस में होने का प्रमाण होता है । इस प्रकार कहीं तू तू कहीं लू लू आदि कहा जाता है । प्रेमघन ने इस प्रकार के बोल वाले खेलों के लिए तुत तूम लूल का उल्लेख किया है ।

कूरी कूदना:-

जीर्ण जनपद में नागपंचमी के विषय में लिखते हुए प्रेमघन ने कूरी कूदने का भी उल्लेख किया है । कूरी कूदना एक अति प्रचलित लोकानुरंजन है । गांवों में आज भी लोग कूरी अर्थात् मिट्टी की एक ऊंची सी दीवाल सी बनाते है और कूदते समय दूर से दौड़ कर आते हैं कूरी पर पैर रखते है और फिर कूदते हैं । इस प्रकार जो जितनी दूर तक कूद लेता है वही विजयी समझा जाता है । प्रेमघन लिखते हैं कि नागपंचमी के आने के पहले सावन लगते ही लोग कूरी बांधना प्रारम्भ कर देते हैं और संध्या के समय सैकड़ों लोग आ आ कर तथा बीस बीस हाथ कूदकर अपनी कुशलता दिखाते हैं[1]। नागपंचमी के दिन इन सब लोकानुरंजनों की प्रतियोगिता होती है और विजेताओं को मान मिलता है अतएव लोक मनागपंचमी विजयी होने के लिए इन खेलों का अभ्यास प्रारम्भ कर देते हैं[2]। एक अन्य स्थल पर भी कूरी कूदने का उल्लेख

१- सीखत बटकी दांव विविध लकड़ी के दावन ।
बांधत कूरी किते लोग लागत ही सावन ।।
संध्या समय आय सौ सौ जन कूदत कूरी ।
बीस हाथ लौं नांघि दिखावत बहु मगदूरी ।।
२- होत पंचमी के दिन निरनय इन कलान को ।-प्रे० सर्व० पृ० २४ ।
सम वयस्क सम कृपा कुशल जन मध्य मान को ।-प्रे० सर्व० पृ० २४ ०।

प्रेमघन ने किया है[1]।

निशानेबाजी :-

शिष्ट वर्ग में तो बंदूक पिस्तौल आदि के द्वारा निसानेबाजी तथा शिकार खेलना मनोरंजन का साधन है किन्तु लोक वर्ग में गुलेल, तुपक, गुलटा गुलटा आदि के द्वारा निशानेबाजी मनोरंजन का साधन है । प्रेमघन ने जीर्ण जनपद में इस लोकानुरंजन का उल्लेख किया है । लोक समाज में निसाने बाज एक थैली में अनेक छोटे छोटे पत्थर ईंट के टुकड़े आदि भर लेते हैं और गुलेल से इन ईंटों का निशाना बनाकर चलाते हैं । लोक वर्ग का यह अत्यन्त प्रचलित मनोरंजन है । प्रेमघन ने सिपाहियों की रहनि में इसका उल्लेख किया है[2]। तुपक और गुलेल द्वारा निशाने बाजी का अन्य स्थानों पर भी प्रेमघन ने उल्लेख किया है[3]।

स्त्री जाति से सम्बन्धित उल्लिखित लोकानुरंजनः-

गुड़िया:-

गुड़िया खेलना स्त्री वर्ग का अति प्राचीन तथा अति प्रचलित लोकानुरंजन है । प्रेमघन ने नागपंचमी के सम्बन्ध में लिखते हुए परोक्ष रूप से स्त्रियों के गुड़िया बनाने तथा उसे तालाब पर ले जाने तथा तालाब में सिराने का उल्लेख किया है यों तो प्रेमघन का यह वर्णन अनुष्ठान रूप में है किन्तु प्रेमघन का "कि लड़कियां अपनी सखियों से सुन्दर बनाने की प्रतियोगिता भावना से अपनी अपनी गुड़ियों को अधिक से अधिक सजाती हैं" लोकानुरंजन पक्ष

१- मचत कबहुँ भ्‌ापरि कबहुँ तुतु तूम तूल भल ।
कबहुँ गेंद खेलत कूरी कूदत कबहुँ दल।। प्रे० सर्व० पृ० १७ ।

२- कोउ लै गुलटा बहु भरि थैली मंह । -प्रे० सर्व० पृ० २२ ।

३- होत निसाने बाज़ी कहुं लै तुपक गुलेलन । -प्रे० सर्व० पृ० १० ।
किते निसाने बाजी करत गुलेलहिं धारत ।प्रे० सर्व० पृ० ४१ ।

से ही संबंधित है[१]। इस प्रकार परोक्ष रूप में प्रेमघन ने स्त्रियों के गुड़ियां बनाने तथा खेलने का जो एक मनोरंजन का साधन ही है उल्लेख किया है । गुड़ियां खेलने का भारतेन्दु युगीन काव्य में अन्य कई स्थानों में भी उल्लेख हुआ है[२]।

कजरी खेलना:-

प्रेमघन ने कई लोक गीतों में स्त्रियों के कजली खेलने का उल्लेख किया है[३]। किन्तु वस्तुतः कजली नाम का कोई अलग खेल नहीं है जिसके खेलने की विशिष्ट पद्धति हो, वरन् सावन में कजली गाते हुए स्त्रियां उमंग में भरकर झूला आदि जो झूलती हैं सभी कजली खेलने के अन्तर्गत आता है । कजरी स्त्रियां प्रायः झूले पर बैठ कर ही गाया करती है इसलिए कजली खेलने का जहां भी उल्लेख हुआ है सभी जगह झूले का वर्णन है । और इसप्रका सावन में झूला झूलतेहुए स्त्रियों का कजरी गाना ही कजली खेलना है । प्रेमघन ने लोक गीतों में कजली खेलने का तथा कजली में गाई जाने वाली लोक भावना का स्पष्ट अंकन किया है । कजली खेल में यत्र तत्र प्रेमघन ने दुनमुनियां खेल का भी उल्लेख किया है । यह पूर्णतः स्त्रियों का लोकानुरंजन है । दुनमुनियां कोई एक विशेष खेल नहीं है वरन् कजली खेलने का ही एक प्रकार है । कजली पर प्रेमघन ने लिखते हुए दुनमुनियां की भी व्याख्या की है। "अनेक स्त्रियां जब मिल जुल कमर झुका झुकाकर चुटकियां बजाती हुई गोला-

---

१- निज गुड़ियान सजाय बालिका बारी भोरी ।
राखत जीतन बाद सखिन सौ करि बरजोरी ।।
-प्रेम० सर्व० पृ० २४ ।

२- गुड़ियान को खेल अनैसो लगे मन लागत प्रेम बखानन में-र० वा० भा० ३, क्या० १
र० वा० भा० ३, क्या० ९।

३- कजली खेलत आली, झुलनी गिरी मजेदार-प्रे० सर्व० पृ० ४२४ ।
झेलुआ झूलब कजरी खेलब गाउब गजरी मलार मो बालम-प्रे० सर्व० पृ० ५१० ।
सिर पर सही रे ओढ़नियां ओढ़े खेलैं कजरी ।प्रे० सर्व० पृ० ४८९ ।

कार घूमती कजली गाती है तो उसके घुनमुनिया और दुरनाभी कहते हैं[1]।

सांझी :-[2]

सांझी स्त्रियों द्वारा, क्वार मास में ज़मीन पर विभिन्न प्रकार के आकृति मूलक चित्र बनाकर तथा तदनुरूप गीतगाकर जिन्हें सांझी के गीत कहा जाता है, खेले जाने वाला एक अति प्रचलित तथा लोक व्यापी खेल है। ब्रज में तथा खड़ी बोली प्रदेश में भी इसका प्रचार है। "महाराष्ट्र में गुलबाई, बुंदेलखण्ड के मामुलिया और कांगड़ा जिले में रली का त्यौहार इसके अनुरूप है"[3]

१- प्रेमघन सर्वस्व: पृ० ३५२ ।

२- सांझी कला प्रदर्शन अति प्राचीन है । सांझी शब्द संध्या या सांझ से बना है । " पौराणिक आख्यान के अनुसार श्री कृष्ण ने राधिका जी को प्रसन्न करने के लिए शरदकाल में सायंकाल के समय सांझी बनाई थी । सायंकाल को जब श्रीकृष्ण और राधिका तथा अन्य गोपिकाएँ उपवनों में विहार करने जाते थे वहां के विविध प्रकार के फूल चयन करते थे और यमुना कूल पर अथवा किसी उपवन या उद्यान में उन पुष्पों को भूमि पर कलात्मक रूप में प्रदर्शित करते थे । सांझी बनाने के अवसर पर वे अपना सुंदर कलात्मक शृंगार बनाकर जाते थे और पुष्पों की सुन्दर प्रदर्शिनी करते थे । इस प्रकार यह कला श्रीकृष्ण से तथा सांझ शब्द से सम्बन्ध रखती है । तभी से यह कला प्रदर्शन शरदकाल में पांच दिन का ब्रजवासियों का एक सांस्कृतिक किंवा कलानुरंजन पर्वकाल है । शनैःशनैः ब्रजवासी कलाकारों ने इस कला को उन्नत करते करते पूर्ण विकसित एवं सुसंस्कृत स्थिति में पहुंचा दिया ।" सांझी अनेक प्रकार से बनाई जाती है कभी फूलों की कभी सूखे रंग की कभी पानी पर रंग की । गांवों में ब्रज और राजस्थानादि में गोबर की सांझी बनाई जाती है । यह अति प्राचीन कला है ।

-पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ: पृ०८५३ ।

३- हि०सा०को०पृ० ८२९ ।

भारतेन्दु युगीन कवियों में प्रमुख रूप से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस खेल का उल्लेख किया है[1]। दो स्थानों पर भारतेन्दु ने इसका उल्लेख विरह वर्णन प्रसंग में किया है । नायिका कहती है कि हे सखि क्वार मास लग गया है सभी सांझी खेल रही हैं और चांदनी की पूर्ण रात्रि में अपने प्रियतमों के हाथ में हाथ डाले हैं । मुझे चांदनी रात धूप सदृश हो रही है, सारी रातें रोते रोते बीत गईं । कृष्ण के बिना सेज सूनी देखकर मैं अत्यन्त व्याकुल हो गई हूं[2]। दूसरा विरह प्रसंग में भी उल्लेख इसी प्रकार का है । नायिका कहती है कि क्वार मास में सभी सांझी खेल रही है किन्तु मैं बिना प्राण-प्रिय के व्याकुल हूं और मुंह से वाणी भी नहीं निकलती । यह उंजेरी रात मुझे बिल्कुल भी अच्छी नहीं लग रही । चांद उलटे शीतलता देने के स्थान पर अग्नि बरसा रहा है मुझे विरहिणी जानकर। किसी भी करवट मुझे चैन नहीं मिलती । बिना प्रियतम के रात नहीं कटे । मुझे रातभर नींद नहीं आती[3]। एक अन्य स्थान पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कृष्ण और राधा के साथ साथ सांझी खेलने का अर्थात् संयोगात्मक रूप में चित्रण किया है[4] ।अब-

---

१- भा॰ग्रं॰पृ॰ ५०८, ५२७, ४८२ ।

२- सखि क्वार मास लग्यो सुहावन सबै सांझी खेलहीं ।
निसि चन्द पूरन चांदनी में नाह गह भुज मेलहीं ।
मोहिं चादनी भई धूप रोअत रात बीति सबै गईं ।
बिनु श्याम सुंदर सेज सुनी देख के व्याकुल भई।+ - भा॰ग्रं॰पृ॰५०८ ।

३- क्वार मास सब सांझी खेलैं सरद बिमल पानी ।
मैं व्याकुल बिन प्रान प्रिया के कहत न मुख बानी ।।
उंजेरी रात न मन बानी ।
चन्दा उलटी अगिनि लगावे मोहिं बिरहिनी जानी ।
कोई करवट नहीं कल पाती।।भा॰ग्रं॰पृ॰४८२ ।

४- आजु दोउ खेलत सांझी सांझ ।
नंद किशोर राधा गोरी जोरी सखियन मांझ ।
कुसुम चुनन में रुनझुन बाजत कर चूरी पग झांझ ।
हरीचंद बिधि गरब गरूरी भई रूप लखि बांझ ।।-भा॰ग्रं॰पृ॰४८२ ।

धेय है कि सांझी का प्रचार लोक वर्ग में कुंआरी लड़कियों के ही मध्य है और कुंआरी लड़कियां सांझी के दिन व्रत भी रखती है किन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सांझी खेलने के वर्णन से लगता है कि यह विवाहितों का ही खेल है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सांझी खेल सम्बन्धी विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि यह कुंआरी लड़कियों का खेल ही नहीं है क्योंकि प्रत्येक पद में या तो पति पत्नी या प्रेमी प्रेमिका के खेल खेलने का उल्लेख है कि या पति की अनुपस्थिति में सांझी न खेलने का उल्लेख है । संभव है भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में सांझी का खेल विवाहित स्त्रियों के ही मध्य प्रचलित हो किन्तु आज यह कुंआरी लड़कियों के मध्य ही विशेष प्रचलित है[१]।

सामूहिक लोकानुरंजनः-

सामूहिक लोकानुरंजनों से तात्पर्य उन मनोरंजन के साधनों से है जिनका सम्बन्ध स्त्री पुरुष बालकों सभी से है और सभी इस प्रकार के लोकानुरंजनों में भाग लेते हैं । यह सामूहिक लोकानुरंजन वाणी प्रधान प्रायः होते हैं । इन सामूहिक लोकानुरंजनों को हम तीन भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं ।(१) साधारण (२) अभिनयात्मक (३) साहित्यिक । तीनों प्रकार के भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोकानुरंजन निम्नलिखित हैं -

साधारणः-

इस वर्ग में उन लोकानुरंजनों को रक्खा गया है जो न तो अभिनयात्मक है न साहित्यिक वरन् इन दोनों से भिन्न साधारण कोटि के मनोरंजन हैं । इस वर्ग के भारतेन्दु युगीन काव्य में निम्न लोकानुरंजन के साधन आते हैं ।

जुआः-

जुआ आज तो मनोरंजन से उठकर व्यापार का भी साधन बन गया किन्तु मूलतः जुआ का सम्बन्ध मनोरंजन से ही रहा है । लोग जुआ मान-

---

१- हिं०सा०को० पृ०८२९ ।
 सत्यागुप्ताः खड़ी बोली का लोक साहित्य पृ०७६ ।

सिक मनोरंजन के लिए खेलते थे । जुआ का मनोरंजन रूप में प्रचार अति प्राचीन काल से है और इसी रूप में दीवाली के साथ जुआ खेलने की प्रथा आज भी चली आ रही है । प्रेमघन ने दीपावली के प्रसंग में राधा और कृष्ण के जुआ खेलने का उल्लेख करते हुए पांसा, दांव, हार जीत, हानि लाभ सभी का उल्लेख किया है[१]। दीवाली पर अन्य लोक कृत्यों- खिलौना मोल लेना, जाचकों का त्यौहारी मोल लेने आना आदि के साथ साधारण जन को भी जुआ खेलने का भी प्रेमघन ने उल्लेख किया है[२]। इसके साथ ही प्रेमघन ने दोनों नेत्रों से भी जुआ खेलने का भी उल्लेख किया है[३]। प्रताप नारायण मिश्र ने लो में प्रचलित जुआ तथा उसके लोक ढंग का बड़ा सजीव रूप प्रस्तुत किया है[४]।

अभिनयात्मक :-

अभिनयात्मक लोकानुरंजनों में भारतेन्दु युगीन काव्य में सबसे विशद वर्णन रामलीला का ही है । रामलीला का लोक वर्ग में व्यापक प्रचार है और प्रेमघन ने जीर्ण जनपद में इसका बड़ा विस्तार से वर्णन किया है ।प्रेमघन ने रामलीला के लिए"गवई लीला" शब्द का भी प्रयोग किया है[५]। इसमें

१- देखे ए दोउ अजब जुआरी ।

पासा पास लिए सरकावत- चहत न फेंकन प्यारी

याही मिलि ललचावत चाखत रूप सुधा रस नारी

धरहु धरहु किन दाव और कटि बिहंसि रही सुकुमारी

खेलत खेल खेलावत मारत मानहुं मदन कटारी

मनहरि धन हारत पै नाही मानत हारि बिहारी ।

बढ़ि बढ़ि दांव धरत हरखत मदमात प्रेम मुरारी

हानि लाभ नहि हार जीति की जागत जानि पियारी ।

श्री बदरी नारायण श्री राधा माधव गिरिधारी- प्रेम० सर्व पृ० ४५४-४५५ ।

२- प्रे० सर्व० पृ० ४५५ ।

३- प्रे० सर्व पृ० ४५५ ।

४- गवई की लीला जो बहु नगरीन लजावति- प्रे० सर्व० पृ० ३०

स्पष्ट है कि रामलीला का ग्रामीण वर्ग में व्यापक प्रचार है । रामलीला का वर्णन करते हुए प्रेमघन ने लंका के सुनहरी वन में, दशमुख के दरबार लगने, अयोध्या जनकपुर बनने, फुलवारी लीला होने, रंगभूमि की शोभा, बानर और निशिचरों सभी के युद्धों का सजीव वर्णन किया है और इस प्रकार रामलीला के एक लोकानुरंजनात्मक रूप को प्रस्तुत किया है[1] ।

साहित्यिक लोकानुरंजन-

भारतेंदु युगीन कवियों ने अनेक साहित्यिक लोकानुरंजनों का वर्णन किया है तथा तत्संबंधी अनेक छंद भी लिखे हैं । लोकवार्ता की दृष्टि से इस प्रकार के लोकानुरंजनों का विशेष महत्व है । यह वाणी प्रधान है तथा यह शारीरिक संतुष्टि के अतिरिक्त लोक वर्ग की मानसिक संतुष्टि करने वाले मनोरंजन हैं । इस प्रकार के साहित्यिक लोकानुरंजनों को हम भागों में वर्गीकृत करके अध्ययन कर सकते हैं ।

पहेलियां या बुझउअल-

पहेली मानसिक लोकानुरंजन का एक साहित्यिक लोकानुरंजन है । पहेली में जिस वस्तु का वर्णन किया जाता है उसका उसके गुण स्वभाव कार्य या रूपादि के विषय में श्लेषात्मक संकेत रहता है । संकेत के आधार पर उत्तर की खोज करनी पड़ती है । पहेली मनोरंजन तथा समय काटने दोनों का ही साधन है । पहेलियों से मनोरंजन के साथ ही कल्पना और अनुमान भिड़ाने दोनों की ही शक्ति का विकास होता है । पहेलियों का प्रयोग कभी कभी बुद्धि परखने के हेतु भी किया जाता है । पहेलियों का अस्तित्व भी बहुत पुराना है । एक नृतात्त्विक का तो कथन है कि "जब से मानव में सोचने की शक्ति आई तभी से पहेलियों का जन्म हुआ" । पहेलियां दैनिक जीवन से संबंधित होती हैं । दैनिक जीवन की छोटी से छोटी बातों का उल्लेख इन पहेलियों में रहता है । लोक

१- प्रे० सर्व० पृ० ३०-३१ ।

जीवन में इनका विशेष महत्व है । श्याम परमार ने लिखा है कि मालव लोक वर्ग में प्रायः हर शुभ कार्य के साथ इनका योग रहता है । "मालव समाज में पहेलियों का प्रचलन प्रायः हर शुभ कार्य के साथ मनोरंजन के हेतु लगा ही रहता है । ससुराल में जमाई तथा समधी के जाने पर गालियां, पारसी या प्याली गाई जाती है । पारसी शब्द मालवी है । इसका ठीक पर्यायवाची शब्द प्याली है । दोनों ही शब्दों का मतलब पहेली से है । अधिकतर ब्याह के अवसर पर जब दुलहे की ओर से बराती दुल्हन को उन्हें पहेलियां बुझाना आवश्यक होता है । इससे व्यक्ति की बुद्धि का अंदाज सरलता से लगाया जाता है[1] ।"

भारतेन्दु युगीन हिन्दी कवियों में अनेक हिन्दी कवियों ने पहेलियां लिखी हैं किन्तु अवधेय है कि सभी पहेलियां लोकानुरंजनात्मक पहेलियां नहीं हैं । लोक वर्ग की पहेलियां सीधी सादी होती है उनमें बौद्धिक व्यायाम नहीं होता, उनमें बौद्धिक मनोरंजन होता है । लोक वर्ग की पहेलियों के विषय बहुत दुरूह न होकर सीधे सादे होते हैं, उनका सम्बन्ध दैनिक जीवन से होता है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित "मानलीला बुझउअल" का यद्यपि लोक शब्द बुझउअल यह संकेत करता है[2] कि यह लोक प्रचलित पहेलियों का रूप ही है किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है । भारतेन्दु के "मानलीला बुझउअल" का लोकानुरंजन का साधन पहेली से कोई संबंध नहीं है । प्रताप नारायण मिश्र द्वारा लिखी गई पहेलियां लोकानुरंजन के स्पष्ट रूप में है । प्रताप नारायण मिश्र ने पांच पहेलियां लिखी है जिनमें प्रश्न बिल्कुल सादे तथा लोक प्रवृत्ति के अनुरूप रक्खे गए हैं । पहेलियों में लोक प्रवृत्ति के अनुसार पहेली के अंत में यह हमेशा कहा जाता है कि उस वस्तु का नाम कहो, वह कौन सी वस्तु है, सोच कर बताओ कि वह कौन वस्तु है, चतुर नाम बताओ आदि । प्रतापनारायण मिश्र ने इस विशेषता को भी ध्यान में रखते हुए पहेलियां लिखी हैं । उदाहरण के लिए पहेली है - वृक्ष पर बसती है लेकि पक्षी नहीं

१- वीणा: जन० १९५१: श्याम परमार - पृ० १५८ ।

२- भा० ग्रं० पृ० ७८४ ।

है, जल उसमें है लेकिन बादल नहीं, तीन आंख है लेकिन शंकर नहीं है । सोच कर उत्तर दो[1]। इसका उत्तर नारियल है जिसका संकेत तीन कथनों से होता है पेड़ पर बसता है अर्थात् पेड़ पर फलता है, जल से भरा हुआ है और उसके तीन आंखे है । इस प्रकार प्रताप नारायण मिश्र ने पहेलियों को लिखकर लोकानुरंजनात्मक पहेलियों का उदाहरण उपस्थित किया है । अवधेय है कि प्रताप नारायण मिश्र के समान सुन्दर उदाहरण पहेलियों का भारतेन्दु युगीन काव्य में अन्यत्र नहीं मिलता ।

मुकरी :-

मुकरी शब्द मुकर (जाना) में ई प्रत्यय लगाकर बना हुआ शब्द है । मुकरी लोकानुरंजन के साधनों में एक प्रमुख साधन है तथा एक प्रकार से पहेलियों का ही रूप है । पहेलियों में प्रायः उत्तर संकेतित रहता है किन्तु मुकरी में उत्तर दिया जा कर उससे मुकर कर यह कह दिया जाता है यह उत्तर नहीं है । पहेलियों में बौद्धिक व्यायाम मुकरी की अपेक्षा अधिक होता है। पहेलियों का जहां प्रयोग बौद्धिक मनोरंजन के लिए होता है वहां मुकरी में अभिप्रायः प्रायहास्य से ही रहता है । मुकरी में प्रायः चार चरण होते हैं। हिन्दी शब्द सागर में मुकरी के विषय में निम्न परिचय मिलता है -"एक प्रकार की कविता जो प्रायः चरणों की होती है । इसके पहले तीन चरण ऐसे होते हैं जिनका आशय दो जगह घट सकता है । इनसे प्रत्यक्ष रूप से जिस पदार्थ का आशय निकलता है, चौथे चरण में किसी और पदार्थ का नाम लेकर उससे इंकार कर दिया जाता है । इस प्रकार मानों कही हुई बात से मुकरते हुए कुछ और ही अभिप्राय प्रगट किया कत जाता है[2]। "

१- बृछा बसत पर खग नहीं, जल जुत पै घन नांहिं ।
   नयनन पै शंकर नहिं, कहो वस्तु वह कौन ।।प्र०ल०पृ०२५८ ।

२- हिन्दी शब्द सागर-भाग४,संपादक-श्याम सुन्दरदास-काशी नागरी प्र० सभा, बनारस, सं०१९५५, पृ० २७६१ ।

हिन्दी साहित्य कोश में भी यही बात कुछ भिन्न ढंग से कही गई है और बताया गया है कि "यह लोक प्रचलित पहेलियों का ही एक रूप है, लक्ष्य मनोरंजन के साथ साथ बुद्धि चातुरी की परीक्षा लेना होता है। इस तरह बाते कही जाती हैं कि वे द्वयर्थक या श्लिष्ट होती हैं[१]।"

भारतेन्दु युगीन कवियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मुकरियां प्रसिद्ध हैं, जो नए जमाने की मुकरी नाम से लिखी गई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने १४ मुकरियां लिखी हैं[२] जिनके विषय अंगरेजी, ग्रेजुएट, विद्यासागर, रेल चुंगी, अमलो, पुलिस, अंगरेज, अखबार, छापाखाना, कानून, खिताब, जहाज, सराब आदि है। यह सभी मुकरियां लोकानुरंजन की मुकरियों के बिलकुल अनुरूप हैं। सबका उत्तर बनाकर नहीं द्वारा उस उत्तर का निषेध किया है। जो मुकरी की विशेषता है। इसे नए जमाने की मुकरी भारतेंदु ने इसलिए कहा है कि इनके विषय वे नए जमाने से सम्बन्धित है जबकि पुराने काल में मुकरियां केवल दैनिक जीवन से ही संबंधित होती थी। भारतेन्दु की मुकरियां एक प्रकार से व्यंग्यात्मक रूप में है। जबकि लोक प्रचलित मुकरियां व्यंग्य प्रधान कम तथा विषय प्रधान अधिक होती है। भारतेन्दु की मुकरियों के विषय भी नए हैं।

चुटकुले:-

व्यग्य की दृष्टि से चुटकुले और मुकरी में समानता है। दोनों ही में व्यग्य की प्रधानता है। अंतर यही है कि मुकरी में छंद विशेष रहता है। जबकि चुटकुले के लिए ऐसा कोई नियम आवश्यक नहीं। इसके अतिरिक्त मुकरी में पहेली बुझाते हुए उत्तर का निषेध रहता है जबकि चुटकुले में ऐसा कुछ नहीं होता। चुटकुला केवल हास्य की दृष्टि से सीधे सीधे अभिधा शक्ति में कहा जाता है। भारतेन्दु युगीन कवियों में जहां भारतेन्दु मुकरी लिखने

१- हिन्दी साहित्य कोश:संपादक:धीरेन्द्र वर्मा,प्रथम भाग-ज्ञान मंडल बनारस, पृ० ५९५।

२- भा०ग्रं०पृ० ८१०-८११।

में सिद्धहस्त है वहीं प्रताप नारायण मिश्र चुटकुले लिखने में । प्रताप नारायण मिश्र के "जन्म सुफल कब होय[1]" तथा "इतना दे करतार अधिक नहिं बोलना"[2] और इसी प्रकार के पद्यात्मक चुटकुले है । इनमें भी उवाच पद्धति के द्वारा मिश्र ने और भी अधिक व्यंग्य शक्ति भरी है । जिसके ऊपर भी व्यंग्य करना है उसी के साथ उवाच शब्द का प्रयोग किया है । उदाहरणार्थ - लार्ड रियन उवाच, गौरांगदेव उवाच, पादरी साहब उवाच, गोरन्द्र दास उवाच, सेठ उवाच, अमीर उवाच कहकर लार्ड रियन, सेठ, गरीब, अमीर आदि पर जन्म सुफल कब होय रूप में व्यंग्य किया गया है । इसी प्रकार इतना दे करतार अधिक नहिं बोलना में कनवजिया ब्राह्मण, खत्री, मुंशि, यवन आदि के विषय में बताते हुए उन पर व्यंग्य किया गया है । यह मिश्र जी द्वारा प्रयुक्त चुटकुले वाली शैली लोकानुरंजनात्मक चुटकुलों का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

ककहरा (कलियुग) :-

ककहरा छोटे बच्चों को वर्णयाद कराने की एक लोकानुरंजनात्मक शैली है । ककहरा के द्वारा बच्चों को वर्ण परिचय हो जाता है । और इस शैली से वह खेल ही खेल समझकर वर्णों को रट लेते हैं । प्रताप नारायण मिश्र ने भी कलियुग ककहरा के नाम से ककहरा लिखा है जिसमें वर्णों को रखने की लोक विधि जैसे क ख ग घ के लिए कक्का का, खख्खा खा, गग्गा गा, घघ्घा घा, को अपनाया है पर अवश्य है कि ककहरा का विषय लोक ककहरा से बहुत भिन्न है इसलिए यह उस ककहरे का रूप प्रस्तुत नहीं करता । इस ककहरा में यद्यपि वर्णों को रखने की विधि तथा शैली लोकात्मक ही है पर विषय भिन्न होने के कारण यह लोकानुरंजन का रूप नहीं माना जा सकता ।

कलात्मक :-

इस वर्ग में वे लोकानुरंजन के साधन आते हैं जिसमें विशेष कला की

१- प्र० ल० पृ० ४० -४२ ।

अपेक्षा होती है और जो सामूहिक है । प्रेमघन ने इस प्रकार के लोकानुरंजन - नट[१], पातुर[२](कठपुतली वाले) तथा बाजीगर[३] आदि के लोकानुरंजनों का उल्लेख किया है पर इनके विषय में विशेष विस्तार से नहीं लिखा और यह साधारण भी है । इसलिए इनका विवेचन अपेक्षित नहीं है । व्यंग्य रूप में भी नट के नाच का प्रेमघन ने उल्लेख किया है[४]।

लोक व्यसन

लोक जीवन से व्यसनों का महत्व पूर्ण सम्बन्ध है ।आज भी ऐसा प्रतीत होता है जैसे अनेक ग्रामीणों तथा अशिक्षित समाज वालों के साथ कुछ व्यसनों का अंगागी सम्बन्ध सा है । बिना इन व्यसनों के उसका साधारण से साधारण काम नहीं हो पाता, बिना इन व्यसनों के उसे दैनिक जीवन के कार्य कलापों में रुचि नहीं मिलती है और न ही इन व्यसनों के बिना मनोरंजन कार्यक्रम ही मनोरंजनात्मक रह पाता है । इसप्रकार लोक जीवन में भी व्यसनों का स्थान महत्वपूर्ण है ।

१- नट एक प्रसिद्ध जाति है जिसका प्रमुख कार्य ही जनवर्ग को अपने कलात्मक अनुष्ठानों द्वारा प्रभावित कर अपनी जीविका कमाना है । मानवशास्त्री मजूमदार का कहना है -

There main occupation is singing, and dancing, acrobatics, conjuring, manifacture of articles out of fibres and grass, straw and seeds, which they sell. They also dispense medicine for incurable diseases and lost vitality, their women are of easy virtue and a source of their income. The Nats keeps dogs and hunt and eat vermin and small animals. They are also expert rope dancers- Majumdar, D.N.Races and Cultures of India, P.87-88.

२- जित आवत नित नव कवि कोविद पंडित चातुर ।
ढाढ़ी कथक कलावंत नट नरतक अरु पातुर ।।प्रे॰सर्व॰पृ॰ ३२ ।

३- वही, पृ॰ ३२ ।

४- खोय धर्म धन किते बनैं नटुआ सम नाचत । प्रे॰सर्व॰पृ॰५७ ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने भी इन लोक व्यसनों का कहीं विविध मनोरंजनात्मक कार्यक्रम के साथ उल्लेख किया है कहीं छिटपुट प्रसंग में । अवधेय है कि कभी कभी ऐसा प्रतीत होता है कि यह व्यसन ही कहीं कहीं लोकानुरंजन बन गए हैं किन्तु वस्तुतः ऐसा है नहीं यह व्यसन सदैव ही पृष्ठ-भूमि रूप में होते हैं । यह स्वयं लोकानुरंजन नहीं है । भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य में निम्नलिखित व्यसनों का उल्लेख मिलता है ।

भंगः-

यह एक प्रकार का नशा लाने वाला अति प्रचलित तथा प्राचीन लोक व्यसन है । प्रेमघन ने जीर्ण जनपद में भांग को घोकर कूंड़ी तथा सोटा से रुट रगड़ने का उल्लेख किया है[१]। भांग घोटने का अन्य कई स्थान पर उल्लेख हुआ है[२]। होली पर तो भांग का प्रचार बहुत व्यापक है[३]। भंगपीकर व्यक्ति मतवाला हो जाता है और वह मतवाला कहा जाता है इसका भी उल्लेख हुआ है[४]।

अफीमः-

जीर्ण जनपद में सिपाहियों की रहनि में अफ़ीम की गोली के

१- घोई भंग कोउ कूंड़ी सोटा सों रगड़त ।प्रे० सर्व० पृ० २२ ।

२- घुटत भंग कहुं छनत रंग कहुं बनत कहूं पर -प्रे० सर्व० पृ० २९ ।

३- + + +

पी पी भंग उमंग सहित बहु स्वांग सजावत- प्रे० सर्व० पृ० ३१ ।

पी पी भंग रंग सों रंग तन - प्रे० सर्व० पृ० ६१७ ।

३- खात पियत पुनि भांग पियत-पृ० ३२ ।
छनत भंग कहुं रंग रंग के - पृ० ३५ ।
सांझ सकारे दुपहर घुटत भंग अधिकाधिक
सिल लोढ़न की मची खटाखट रहत चार दिस-प्रे० सर्व० पृ० ३६ ।

४- हूवै मतवारे ज्यों पिये भंग - पृ० ९० ।

पानी से निगलने का उल्लेख किया गया है[१]।

गांजा:-

गांजे का प्रयोग भी लोक वर्ग में बड़े व्यापक रूप में होता है और साधारण ग्रामीण तथा लोक वर्ग का व्यक्ति आज भी गांजा पीकर अपनी थकावट मिटाता तथा मस्ती में भरा हुआ दिखाई देता है । प्रेमघन ने भी गांजा भर करपीने का उल्लेख किया है[२]।

हुक्का:-

हुक्का पीने का भारतेन्दु युगीन कवियों ने व्यसन के रूप में कई स्थान पर प्रयोग किया है । जीर्ण जनपद में सिपाहियों की रहनि में हुक्का पीने का उल्लेख है[३]। तथा जीर्ण जनपद में ही विजयादशमी पर गांव के समारोहों में ग्रामीणों के बीच हुक्के का उल्लेख किया है[४]।

सुंघनी :-

सुंघनी सूंघ कर नशा करने वाली वस्तु है । यह भी लोक व्यसन है । प्रेमघन ने इसका भी उल्लेख किया है[५]। कोउ सुंघनी सूंघ कर छींकता है तथा कोउ सुंघनी सूंघ कर मन बहलाता है[६]।

सुरती :-

तम्बाकू को लोक भाषा में सुरती कहते हैं । तम्बाकू जो आज कल शहरों में प्रयुक्त होती है वह तो विशेष प्रकार ठीक करके सुगंधित बनाई जाती है किन्तु लोक वर्ग में लोग तम्बाकू की पत्ती ही हाथ से मलकर

१- कोउ अफीम की गोली ले पानी सौं निगलत ।-प्रे॰सर्व॰पृ॰ २२ ।
२- कोउ हुक्का अरु कोऊ भरि गांजा पीयत- वही, पृ॰ २२ ।
३- वही, पृ॰ २२ ।
४- कहुं बोलत हुक्का, कहुं सुरती मलत खात जन । -प्रे॰सर्व॰पृ॰२९ ।
५- कोउ सुरती खात बने कोउ सुंघनी सूंघत । -प्रे॰सर्व॰पृ॰ २२ ।
६- छींकत सुंघनी सूंघि कोउ बहलावत मन । प्रे॰सर्व॰पृ॰ २९ ।

खाते हैं। यह भी एक प्रकार का व्यसन है जिसका लोग वर्ग में बहुत प्रचार है। सुरती का सुरती मल कर खाने का भारतेन्दु युगीन कवियों ने व्यसन रूप में कई जगह उल्लेख किया है[१]।

निष्कर्ष:-

भारतेंदु युगीन काव्य में, जैसा कि उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध है, लोक जीवन के विविध पक्षों का वर्णन मिलता है, कहीं लोकोत्सव एवं लोक पर्व का कवियों ने वर्णन किया है तो कहीं लोक जीवन में प्रचलित विविध लोकाचारों, लोक चेटकों और लोक प्रथाओं का। इसी प्रकार लोक जीवन में प्रचलित विविध लोक विश्वासों, लोक देवी-देवताओं, लोक सज्जा प्रसाधनों, लोकानुरंजनों तथा लोक व्यसन आदि के भी भारतेंदु युगीन काव्य में उल्लेख मिलते हैं। लोक जीवन के विविध पक्षों के वर्णन तथा उल्लेखों की दृष्टि से भारतेंदु युगीन काव्य का मूल्यांकन करने पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं:-

१- भारतेंदु युगीन काव्य में नागपंचमी, पितरपक्ष, होली, दशहरा, दिवाली, बसंतपंचमी, अक्षय तृतीया, रथयात्रा महोत्सव, गोवर्धन महोत्सव आदि प्रमुख लोकोत्सवों एवं लोक पर्वों का तथा गंगा सप्तमी मकर संक्रांति, रास लीला, बरसाइत, त्रिकोन का मेला आदि गौण लोकोत्सवों एवं लोकपर्वों का वर्णन मिलता है। कवियों ने उत्सवों तथा पर्वों के आनुष्ठानिक एवं उत्सव पक्ष दोनों पर ही विस्तार से लिखा है। अवधेय है कि यद्यपि इन लोकोत्सवों एवं लोकपर्वों में से कुछ के पीछे धार्मिक पृष्ठभूमि भी जोड़ दी गई है, किंतु कवियों ने इन उत्सवों एवं पर्वों के साथ जुड़ी हुई धार्मिक पृष्ठभूमि का वर्णन न कर, उनके उसी रूप का वर्णन किया है जिसका व्यवहार लोक जीवन में आज भी देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त नाग पंचमी, बरसाइत, त्रिकोन का मेला आदि जिनका

१- कोउ सुरती खात बने कोउ सुंघनी सूंघत - प्रे० सर्व० पृ० ६२।
कहुं बोलत हुक्का कहुं सुरती मलत खात जन- प्रे० सर्व० पृ० २९।

कवियों ने उल्लेख किया है, तो ऐसे लोकोत्सव एवं लोकपर्व हैं जिनके पीछे किसी प्रकार की पौराणिक या धार्मिक पृष्ठभूमि है ही नहीं, वरन यह पूर्णतया, लोकोत्सव हैं ।

२- भारतेंदु युगीन काव्य में जन्म विवाह तथा मृत्यु तीनों से ही संबंधित लोकाचारों का उल्लेख है । जन्म संबंधी लोकाचारों में बधाई देना, ढाढ़ी, आदि गीत गाना, सोना, वस्त्र, मणिगन आभूषणआदि देना तथा तोरण पताका आदि बांधने का, विवाह संबंधी लोकाचारों में दहेज, बारात, सहबाला, मण्डप, मण्डप में वर तथा वधू का गांठ जोड़कर बैठना, भांवर, ज्योनार, गाली गायन, सथिए बसन, थापा, परछन, गवना आदि का तथा मृत्यु संबंधी लोकाचार में तर्पण तथा पिण्डदान आदि का वर्णन किया गया है । चूंकि भारतेंदु युगीन कवियों ने कोई महाकाव्य या खण्ड काव्य नहीं लिखा इसलिए इन लोकाचारों का क्रमिक तथा विस्तृत वर्णन तो नहीं मिलता किंतु गीतों में कवियों ने जो इन लोकाचारों के फुटकर उल्लेख किए हैं,उनसे,ही लोक जीवन में प्रचलित विविध लोकाचारों का एक सच्चा स्वरूप उपस्थित होता है । भारतेंदु युगीन कवियों ने उन्हीं लोकाचारों का वर्णन किया है जो शास्त्रीय नहीं है, वरन् स्थानीय प्रथाएं हैं जिन्हें पारस्कार गृह्य सूत्र में ग्राम वचन कहा गया है ।

३- लोक जीवन में लोक चेटक अर्थात् नज़र लगना, टोना, टोटका, मूठ चलाना आदि का बहुत प्रचलन है । भारतेंदु युगीन कवियों ने भी विविध प्रसंगों में इनका उल्लेख किया है । पर भारतेंदु युगीन काव्य के संबंध में लोक चेटकों के उल्लेख की दृष्टि से यह बात विशेष महत्व की है कि इनके उल्लेख नायक, नायिका संबंधित ही प्रायः हैं । कहीं नायक कहता है, कि प्रेमिका ने उस पर मानो मूठ चला दी है, तो कहीं नायिका राधा कहती है कि कृष्ण टोना जानते हैं, उन्होंने ब्रज पर टोना डाल रक्खा है, जिससे सब उनके ही वशीभूत हो गए हैं ।

४- लोकप्रथाओं में कवियों ने मुख्य रूप से सती तथा जौहर प्रथा का उल्लेख किया है ।

के भी उल्लेख हैं । यह लोक विश्वास सामाजिक, पशुपक्षियों से संबंधित, नज़र और टोने टोटके से संबंधित, भूत प्रेत से संबंधित तथा लोक देवी देवताओं से भी संबंधित हैं । इस प्रकार सामाजिक तथा धार्मिक दोनों ही कोटि के क लोक विश्वासों का कवियों ने उल्लेख किया है । जितने भी लोक विश्वासों का भारतेंदु युगीन काव्य में उल्लेख हैं वे उन पर लोक मानस आज भी पूर्णतया विश्वास करता है और अंध आस्था रखता है । भारतेंदु युगीन काव्य में उल्लिखित लोक जीवन में प्रयुक्त लोक विश्वासों का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं पर अवधेय है कि भारतेंदु युगीन काव्य में उल्लिखित लोक विश्वास संख्या में अधिक नहीं है ।

ह- भारतेंदु युगीन काव्य में अनेक लोक देवी तथा देवताओं का भी वर्णन है । इनमें नारसिंह बाबा, गाज़ीपीर, अली मुरतिज़ा, शाह मदार, बुदरा, शीतला आदि अनेक ऐसे भी देवताओं का उल्लेख है जिनका लोकवर्ग के मध्य ही प्रचलन है, शिष्ट समाज के लोग जिनसे परिचित तक नहीं हैं । इसके अतिरिक्त पीपल, तुलसी, गऊ, धरती माता, गोवर्धन, वृंदावन देवी, विंध्याचल देवी या कजरिया देवी, पितर देवता आदि का भी कवियों ने उल्लेख किया है जिन पर केवल लोक वर्ग श्रद्धा रखता है, जिनका लोक जीवन में बहुत अधिक प्रचलन है और शिष्ट समाज में जिनकी मान्यता यत्किंचित भी नहीं है । भारतेंदु युगीन काव्य में ऐसे भी देवी देवताओं का उल्लेख है जिनका आधार मूलतः लोक मानस ही था, किंतु उन्हें बाद में पौराणिक आधार भी दे दिया गया । इसी प्रकार ऐसे भी देवी देवताओं का कवियों ने उल्लेख किया है जिनका मूल पौराणिक है, किंतु बाद में जो लोक जीवन में प्रवेश पा गए हैं । इस कोटि के देवताओं के उल्लेख भारतेंदु युगीन काव्य में न्यूनतम हैं । प्रथम कोटि के लोक देवी देवताओं का संबंध लोक जीवन से घनिष्ठतम है और उनका उल्लेख भारतेंदु युगीन कवियों के लोक जीवन से निकटतम संपर्क तथा उनकी लोक दृष्टि का परिचय देता है ।

७- भारतेंदुयुगीन काव्य में विविध लोक सज्जा प्रसाधनों का भी उल्लेख हुआ है। यह लोक सज्जा प्रसाधन वस्त्रात्मक, आभूषणात्मक तथा कलात्मक तीनों ही हैं। अवधेय है कि कवियों ने वस्त्रात्मक आभूषणात्मक तथा कलात्मक सज्जा प्रसाधनों में उन्हीं का उल्लेख किया है जिनका लोक जीवन में व्यापक प्रचार है और गुदना, गण्डा आदि तो अनेक ऐसे भी सज्जा प्रसाधन उल्लिखित हैं जिनका प्रयोग केवल लोक वर्ग में ही होता है और जिनको शिष्टवर्ग की मान्यता नहीं मिली है।

८- भारतेंदु युगीन कवियों ने विविध लोकानुरंजनों का भी उल्लेख किया है। यह लोकानुरंजन छोटे बाल बालिकाओं से, प्रौढ़ पुरुषों से तथा स्त्रियों से भी संबंधित लोकानुरंजन है। अवधेय है कि पुरुषो से संबंधित नाल उठाना, मुगदर चलाना, कुश्ती आदि व्यायामिक तथा झावन्दि, तुतलूम लूल आदि कलात्मक तथा स्त्रियों से संबंधित सांझी, गुड़िया आदि कलात्मक लोकानुरंजनों का भी कवियों ने उल्लेख किया है। इसी प्रकार अभिनयात्मक तथा वाणी विलास युक्त सामूहिक लोका नुरंजनों का भी कवियों ने उल्लेख किया है। इस प्रकार भारतेंदु युगीन कवियों ने उन अनेकों लोकानुरंजनों का वर्णन किया है जिनका लोक वर्ग में व्यापक प्रचार है।

९- भारतेंदु युगीन काव्य में भंग, अफीम, गांजा, हुक्का, सुंघनी आदि विविध लोक व्यसनों का भी उल्लेख है।

१०- इस प्रकार लोक जीवन के विविध पक्षों का कवियों ने वर्णन कर लोक जीवन का एक सच्चा स्वरूप खड़ा करने का प्रयत्न किया है और वे इस प्रयत्न में पूर्णतः सफल भी है। भारतेंदु युगीन कवि "यद्यपि अमीर घराने में पैदा हुए थे परंतु बैलगाड़ी में बैठकर उन्होंने देश की वास्तविक दशा देखी थी। बाढ़ पीड़ितों के लिए उन्होंने हाथ में नारियल लेकर भीख मांगी थी"। इसीलिए वह लोक जीवन का गहराई से अनुशीलन कर सके।

उपसंहार

उपसंहार

लोक तात्त्विक दृष्टि से भारतेन्दु युगीन काव्य का मूल्यांकन करने से यह ज्ञात होता है कि भारतेन्दु युगीन काव्य अपने पूर्ववर्ती काव्य की तुलना में एक क्रान्तिकारी काव्य था। भाषा, भाव, शैली, विषय सभी दृष्टियों से कवियों ने नए प्रयोग किए । साहित्य को इस युग में नवीन धारा मिली और काव्य का जनवर्ग से सम्पर्क हुआ । हिन्दी के प्रमुख कवियों ने प्रथम बार लोक गीतों की शैली तथा लोक शैलियों में रचनाएं की, स्वदेश, स्वभाषा, और स्वसंस्कृति का महत्व समझा । इस युग के कवियों ने नारी को अभिसारिका मानकर उसके विलासिनी रूप का ही वर्णन नहीं किया । वरन् उन्होंने मानव की उन्मुक्त भावनाओं का दर्शन किया । इस युग के कवियों ने केवल राजवर्ग का वर्णन नहीं किया वरन् कवियों की दृष्टि सदियों बाद मानव जाति के दुख दारिद्रय प्रेम और सहानुभूति तक पहुंची । कवियों ने केवल उस नागरिक संस्कृति की ओर ही दृष्टिपात नहीं किया, जो एक कृत्रिमता के आवरण में जीती है वरन् उस ग्रामीण संस्कृति की ओर भी उनकी दृष्टि गई जो जीवन की स्वाभाविकता की पक्ष पाती है । यही कारण है कि कवियों ने ग्रामीण जीवन के लोकाचार, लोकानुष्ठान, लोक प्रथाओं, लोक विश्वासों का प्रयोग किया । इस प्रकार लोक तात्त्विक दृष्टि से अनुशीलन करने के बाद भारतेन्दु युगीन काव्य के संदर्भ में निम्नलिखित बातें निष्कर्षतः कही जा सकती हैं ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने कथात्मक काव्य की रचना नहीं की इसलिए इनमें लोक शैली की दृष्टि से न तो लोक कथानक रूढ़ियों का अनुसंधान किया जा सकता है, न कथानकों के लोक प्रियरूप की स्वीकृति आदि पर ही विचार किया जा सकता है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने या तो वर्णनात्मक काव्य की ही रचना की है या लोक गीतों की शैलियों में रचनाएं की है । अतः इनमें ही लोक शैली गत विशेषताओं का अनुसंधान संभव है ।

लोक शैलियों के प्रयोग की दृष्टि से भारतेन्दु युगीन काव्य में केवल कजली, होली, आल्हा, चैती, पूरबी, बारहमासा आदि चिरपरिचित,

प्रचलित लोक गीतों की शैलियों के साथ ही साथ उन अनेक नई लोक शैलियों में भी रचनाएं की जिनका अभी संग्रह कार्य ही नहीं हो सका है । फ़कीरों की शैली, पंडों की शैली, सरवनों की शैली, ककहरा तथा बारहखड़ी की शैली, कबड्डी के बोलों की शैली, व्यापारियों के लटके की शैली, पढ़ो परवती सीताराम की शैली आदि अनेक ऐसी नई लोक शैलियों मे भारतेन्दु युगीन कवियों ने रचनाएं की जिनका संग्रह कार्य अभी तक शेष है । इन नई लोक शैलियों का लोक तात्त्विक दृष्टि से विशेष महत्व है । इनमें लोक मानस की व्यंग्य प्रवृत्ति लक्षित है । इनसे तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक स्थिति का परिचय प्राप्त होता है । इन लोक शैलियों में स्वच्छंद अभिव्यक्ति, पुनरावृत्ति प्रवृत्ति, लयात्मक शब्दों का प्रयोग, संबोधनवाची शब्दों का प्रयोग, प्रश्नोत्तर प्रवृत्ति, अन्तहीन परिगणन प्रवृत्ति तथा चित्रांकन पद्धति सभी विद्यमान है । लोक गीतों से इतर शैली में लिखे गए भारतेंदु युगीन काव्य में भी वर्णनात्मक, परिगणन, तथा चित्रांकन पद्धति आदि प्रवृत्तियां मिलती हैं । लोक शैलियों तथा लोकप्रवृत्तियों की दृष्टि से भारतेन्दु युगीन काव्य लोक काव्य है, शास्त्रीय काव्य नहीं ।

भाषा की दृष्टि से भी भारतेन्दु युगीन काव्य लोकोन्मुख काव्य है । कवियों ने काव्य में उसी लोक भाषा के रूप का प्रयोग किया है जो बोलचाल का तथा जनसामान्य के मध्य व्यवहृत होने वाला रूप है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने मुख्य रूप से ब्रजभाषा को काव्य का माध्यम बनाया । भारतेन्दु युग से भी पूर्व ब्रजभाषा का प्रयोग काव्य के लिए सदियों से हो रहा था, किन्तु वह ब्रजभाषा लोक भाषा का प्रतिनिधित्व नहीं कर रही थी । उसमें बहुतेरी लोक में व्यवहृत न होने वाली शब्दावली का प्रयोग बाहुल्य था, भारतेन्दु युगीन कवियों ने पुनः काव्य की ब्रजभाषा को बोलचाल का रूप दिया । उस ब्रजभाषा का प्रयोग किया जो जन भाषा और लोक भाषा है। ब्रजभाषा के अतिरिक्त जनवर्ग में बोली जाने वाली खड़ी बोली का भी कवियों ने प्रयोग किया । इसके अतिरिक्त चूंकि लोकवर्ग में अनेक लोक भाषाओं के शब्द प्रयुक्त होते हैं, इसलिए लोक की भाषा का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत करने के लिए कवियों ने अवधी,

अवधेय है कि कवियों ने इन विविध भाषाओं में भी लोक गीतों की रचनाएं की, जैसे - पंजाबी में, पूरबी तथा होली, तथा बंगाली में पूरबी । इसी प्रकार गुजराती में कवियों ने गरबा लिखा । भारतेन्दु युगीन काव्य चाहे वह लोक गीतों की शैली में लिखा गया हो, या लोक गीतों से इतर शैली में, उनमें लोक शब्दावली का बहुलता से प्रयोग हुआ है । यह लोक शब्दावली नामवाची, ध्वन्यात्मक, मनोभावाभिव्यक्ति मूलक, अनुकरणात्मक और प्रतिध्वनि मूलक शब्दावली है । भारतेन्दु युगीन काव्य में ऐसी भी अनन्त शब्दावली का प्रयोग है जिनका व्यवहार केवल ग्रामीण समाज में ही होता है । यह शब्दावली लोक भाषा की ठेठ शब्दावली है और यह ग्राम के अनुष्ठान, लोकाचार, लोकानुरंजन आदि से ही संबंधित हैं । भारतेन्दु युगीन काव्य में उन संस्कृत, अरबी, फारसी, तथा अंग्रेजी से बने हुए तद्भव शब्दों का प्रयोग भी है जिनका लोक मानस की भाषागत प्रवृत्तियों से ही संबंध है । लोक भाषा मे लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग पग पग पर होता है । भारतेन्दु युगीन काव्य में भी लोकोक्ति तथा मुहावरों का प्रयोग बाहुल्य है ।

लोक छंदों के प्रयोग की दृष्टि से भी भारतेन्दु युगीन काव्य का मूल्यांकन करते हुए कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युगीन कवियों ने बरवै, रोला, सोरठा, दोहा, वीर, पद्धरि, उल्लाला, कुण्डलियां, छप्पय, सवैया, दुवई, अष्टपदी, आदि लोक छंदों का प्रयोग किया है । संस्कृत परंपरा के छंदों के प्रयोग अत्यल्प है । साथ ही जिन लोक छंदों का प्रयोग कवियों ने किया है, उनके प्रयोग लोक जीवन में आज भी देखे जा सकते हैं ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में प्राकृतिक जगत, पशु पक्षी जगत तथा मानव वर्ग और मानव जीवन में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं से उपमान ग्रहण किए गये हैं । यह भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त उपमान साहित्यिक उपमान नहीं है, और न ही यह कलात्मकता, सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति के परिचायक हैं और न ही इनका प्रयोग सौन्दर्य के लिए किया गया है । इन उपमानों का प्रयोग केवल भावों के स्पष्टतर बनाने के लिए हुआ है । शिष्ट साहित्य के कवि को यह उपमान काव्य के योग्य नहीं लगेंगे, इनमें उसे

अनौचित्य दोष दिखेगा । और न ही ये उपमान परिष्कृत रुचि वाले लगेंगे लेकिन लोक साहित्य और लोक भाषा के कवि को यही उपमान भावों की स्पष्टतर अभिव्यक्ति ह में समर्थ लगते हैं । भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा पशु जगत तथा मानव जगत से सम्बन्धित वस्तुओं के उपमान रूप में प्रयुक्त करने में लोक कवि की उपर्युक्त दृष्टि ही प्रधान है । भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा प्रयुक्त उपमान साधारण जीवन से गृहीत है । वे ऐसे उपमान है जिनसे साधारण से साधारण व्यक्ति परिचित है, ये लोक मानस की बुद्धि के अनुकूल हैं और लोक मानस प्रवृत्ति के कारण ही यह अशिष्ट तथा फूहड़ से भी कहीं कहीं हो गए हैं । और इनमें हास्य का पुट भी विद्यमान है । भारतेन्दु युगीन काव्य में यद्यपि नख शिख तथा अन्य प्रसंगों में रूढ़ उपमानों का प्रयोग हुआ है किन्तु फिर भी ऐसे रूढ़ उपमानों से उन उपमानों की संख्या कहीं अधिक है जो लोक उपमान हैं, लोक मानस की प्रवृत्ति के अनुरूप हैं, जिनको जनवर्ग बड़ी स्वाभाविकता से अपनी भाषा में भाव बोधन के लिए प्रयुक्त करता है ।

भारतेन्दु युगीन कवि जातीय तथा लोक संगीत में रचना करने के पक्षपाती थे, इसलिए उन्होंने जहां एक ओर लोक भाषा, लोक छंदों और लोक उपमानों का प्रयोग किया वहीं दूसरी ओर उन्होंने लोक संगीत के विविध तत्वों का भी अपने काव्य में समावेश किया । भारतेन्दु युगीन कवियों ने कजली, लावनी, होली, कबीर, चैती, पूर्बी, बारहमासा, नकटा, गाली, सेहरा, घोड़ी - आदि लोक गीतों की, जो आज भी लोक वर्ग में बहुत गाए जाते हैं, रचना के साथ उन अनेक लोक गीत शैलियों में भी रचनाएं की, जो पहले तो कभी अपने समय के शुद्ध लोक गीत ही थे किन्तु बाद में उनकी शैलियों से, उनकी गति तथा भाव भूमि से आकर्षित होकर संगीतज्ञों ने उन्हें अपना लिया और उनमें स्वर विस्तार कर नई नई रागों और नए नए तालों का प्रयोग कर उनकी माधुर्यता और बढ़ाई थी बाद में वे शास्त्रीय संगीत प्रकार माने जाने लगे और लोगों का ध्यान उनकी लौकिकता तथा उनके मूल उत्स से हट गया । भारतेन्दु युगीन कवियोंद्वारा प्रयुक्त ठुमरी

ध्रुपद, पद और भजन ऐसी ही लोक संगीत शैलियां हैं जो पहले शुद्ध लोक गीत थीं और वह लोक वर्ग में होली, कजली के ही समान गाई जाती थीं, किन्तु बाद में इन्हें शास्त्रीय संगीत प्रकार मान लिया गया और इनका संगीतज्ञ बहुत प्रयोग करने लगे ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पदों के शीर्षक रूप में रागों को रक्खा है और यह शीर्षक रूप में प्रयुक्त राग लोक राग हैं और लोक तद्भव राग के अन्तर्गत है । इनका प्रयोग किसी न किसी प्रदेश के लोक गीत में होता है और लोक गीतों से इनका ग्रहण कर संगीतज्ञों ने शास्त्रीयकरण किया है । इन रागों में संगीतज्ञों ने स्वर विस्तार कर इनका माधुर्य और बढ़ाया है । यह राग यद्यपि लोक वर्ग से शास्त्रीय संगीत में भी मान्यता प्राप्त कर चुकी हैं, किन्तु फिर भी इनका विभिन्न प्रदेश के लोक गीतों में प्रयोग आज भी देखा जा सकता है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने इन्हीं रागों का अधिक प्रयोग किया है जो संगीतशास्त्र ग्रंथों में शुद्ध प्रकृति की राग कही जाती हैं । अवधेय है कि शुद्ध प्रकृति के राग शास्त्रीय संगीत में उन्हें ही कहा जाता है जिनका उत्स लोक में है और जो मूलतः लोक राग हैं ।

रागों के ही समान भारतेन्दु युगीन कवियों द्वारा शीर्षक रूप में प्रयुक्त तालें भी लोक ताल हैं और इनका प्रयोग लोक गीतों में ही मुख्य रूप से होता है । जैसे अद्धा, खेमटा, चर्चरी, दादरा, रूपक आदि । कुछ ताल ऐसे भी हैं प्रयुक्त हैं जो लोक गीतों में प्रयुक्त होते हुए भी शास्त्रीय संगीत में स्थान पा गए हैं । जैसे धमार, त्रिताल, एकताल, झपताल आदि। भारतेन्दु युगीन काव्य में इन्हीं तालों का प्रयोग विशेष रूप से है जो लोक ताल हैं और जिनका प्रयोग लोक गायक गीत गायन में आज भी करता है । लोक गीतों में रागों और तालों से अधिक महत्व लय का होता है । यही कारण है कि भारतेन्दु युगीन कवियों ने कजली, होली आदि अनेक लोक गीतों के विभिन्न लयों में गाने का निर्देश भी किया है ।

लोक संगीत में लोक वाद्यों का महत्व विशेष है । लोक गीत गायन में प्रायः वाद्यों का प्रयोग स्वर आदि को ठीक करने के निमित्त किया

जाता है । भारतेन्दु युगीन कवियों ने लोक गीतों के साथ प्रयुक्त होने वाले प्राय: सभी वाद्यों का उल्लेख भी किया है ।

भारतेन्दु युगीन काव्य में लोक जीवन के विविध पक्षों का वर्णन भी मिलता है । कहीं कवियों ने लोकोत्सव, लोक पर्व, लोकाचार, लोक चेटक, लोक प्रथा का वर्णन किया है तो कहीं लोक जीवन में प्रचलित विविध लोक विश्वासों, लोक देवी देवताओं, लोक सज्जा प्रसाधनों, लोकानुरंजनों तथा लोक व्यसन आदि के उल्लेख किए हैं । भारतेन्दु युगीन कवियों ने प्रमुख तथा गौण दोनों ही लोकोत्सवों एवं ~~लोक~~ पर्वों के आनुष्ठानिक एवं उत्सव पक्ष पर विस्तार से लिखा है । अवधेय है कि यद्यपि कुछ लोकोत्सवों तथा लोक पर्वों के पीछे धार्मिक पृष्ठभूमि भी जोड़ दी गई है, किंतु कवियों ने उन उत्सवों तथा पर्वों के साथ जुड़ी हुई धार्मिक पृष्ठभूमि का वर्णन न कर उनके उसी रूप का वर्णन किया है जिसका व्यवहार लोक जीवन में आज भी देखा जा सकता है । लोकोत्सवों के अतिरिक्त भारतेन्दु युगीन काव्य में जन्म विवाह तथा मृत्यु तीनों ही से सम्बन्धित लोकाचारों का भी वर्णनहै । जन्म सम्बन्धी लोकाचारों में बधाई देना, ढाढ़ी आदि गीत गाना, सोना वस्त्र मणिगण आभूषणादि देना, तोरण पताका बांधना विवाह सम्बन्धी लोकाचारों में दहेज, बारात, सहबाला, मण्डप, वर वधू का गांठ जोड़ना, भांवर, ज्योनार, परछन, तथा मृत्यु सम्बन्धी लोकाचारों में पिण्डदान और तर्पण आदि का उल्लेख कवियों ने किया है । चूंकि भारतेन्दु युगीन कवियों ने कोईमहाकाव्य या खण्डकाव्य नहीं लिखा इसलिए इन लोकाचारों का क्रमिक तथा विस्तृत वर्णन तो प्राप्त नहीं होता है, किन्तु गीतों में कवियों ने जो फुटकर रूप से इनके उल्लेख किए हैं, उनसेलोक जीवन में प्रचलित विविध लोकाचारों का एक सच्चा स्वरूप दृष्टिगत होता है ।

लोक जीवन में नज़र लगाना, टोना, टोटका, मूठ चलाना, आदि विविध लोक चेटकों का बहुल प्रचलन है । भारतेन्दु युगीन काव्य में विविध प्रसंगों में इनके भी उल्लेख मिलते हैं । भारतेन्दु युगीन काव्य में लोक जीवन में प्रचलित विविध लोक विश्वासों के भी उल्लेख हैं । यह लोक

विश्वास सामाजिक, पशु पक्षियों से, नज़र और टोने टोटके से, भूत प्रेत से तथा लोक देवी देवताओं से भी संबंधित है । इस प्रकार सामाजिक तथा धार्मिक दोनों ही कोटि के लोक विश्वासों का कवियों ने उल्लेख किया है । भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लिखित लोक विश्वास लोक जीवन में प्रयुक्त लोक विश्वासों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि लोक मानस आज भी इन पर पूर्णतया विश्वास करता है और इन पर आस्था रखता है ।

इसी प्रकार भारतेन्दु युगीन कवियों ने लोक देवी देवताओं का भी उल्लेख किया है जिन पर लोक मानस श्रद्धा रखता है । नारसिंह बाबा, गाजीपीर, अली मुरतिजा, शाहमदार, बुवरा, शीतला आदि ऐसे ही लोक देवी तथा देवताओं का भारतेन्दु युगीन काव्य में उल्लेख है जिनसे शिष्ट वर्ग परिचित तक नहीं है किन्तु लोक वर्ग इन पर विशेष श्रद्धा रखता है और इनको प्रसन्न करने के लिए विविध अनुष्ठानादि करता है । इनकी मनौतियां मानता है ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने विविध वस्त्रात्मक, आभूषणात्मक एवं कलात्मक लोक सज्जा प्रसाधन जिनका लोक जीवन में प्रयोग होता है, जिनका लोक जीवन में विशेष महत्व है, (भी जो) व्यावहारिक तथा कलात्मक हैं, और जो छोटे बालक बालिकाओं पुरुषों तथा स्त्रियों से संबंधित हैं, का भी कवियों ने उल्लेख किया है । इसी प्रकार भंग, अफीम, गांजा, हुक्का, सुंघनी आदि विविध लोक व्यसनों का भी भारतेन्दु युगीन कवियों ने वर्णन कर लोक जीवन का एक सच्चा स्वरूप उपस्थित करने का प्रयत्न किया है और इसमें वे पूर्ण तया सफल भी हैं ।

इस प्रकार लोक शैली, लोक भाषा, लोक छंद, लोक उपमान लोकाचार, लोक बैठक, लोक विश्वास, लोक सज्जा प्रसाधन, लोकानुरंजन, लोक देवी-देवता, लोक व्यसन आदि सभी दृष्टियों से भारतेन्दु युगीन काव्य लोकोन्मुख काव्य है ।

अनुबंध

(१) संकेत - सूची

(२) प्रमुख सहायक ग्रंथ - सूची

संकेत - सूची

बघा०	-	बघारी
ख०	-	खण्ड
गोधर्म०	-	गोधर्म प्रकाश
पु०	-	पुस्तक
ब्रा०	-	ब्राह्मण
भा०	-	भाग
भार०	-	भारतेन्दु
पृ०	-	पृष्ठ
प्रेम० सर्व०) प्रे० सर्व०)	-	प्रेमघन सर्वस्व (प्रथम भाग) प्रथम और द्वितीय संस्करण
प्र० ल०	-	प्रताप लहरी
भा० ग्रं०	-	भारतेन्दु ग्रंथावली (द्वितीय खण्ड) प्रथम सं०
र० वा०	-	रसिक वाटिका
रा० कृ० ग्र०	-	राधाकृष्णदास ग्रंथावली
रा० च० मा०	-	रामचरित मानस
हि० प्र०	-	हिन्दी प्रदीप
हि० स० प०	-	हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिकपुस्तक मालिका
सा० स०	-	सारन सरोज
सं०	-	संस्करण
सम्पा०	-	सम्पादक

- - -

प्रमुख सहायक ग्रंथ सूची

संस्कृत:

१- अथर्ववेद

२- ऋग्वेद

३- गीता

४- बृहद्देशी

५- पारस्कर गृह्यसूत्र

६- त्योहार दर्पण

७- मनुस्मृति

८- संगीत रत्नाकर

९- संगीत दर्पण

हिन्दी:

१- आदि भारत (१९३३)	अर्जुन चौबे कश्यप
२- अभिधान अनुशीलन(प्रथम संस्क०)	विद्या भूषण विभु
३- उपन्यास में लोक तत्व(अप्रकाशित)	इन्द्रा जोशी
४- कनउजी लोक गीत(प्रथम संस्क०)	सन्तराम अनिल
५- कजली की उत्पत्ती	विंध्येश्वरी प्रसाद मालवीय
६- कश्मीर का लोक साहित्य	मोहन कृष्ण दर
७- खड़ी बोली का लोक साहित्य (अप्रकाशित)	सत्या गुप्ता
८- गद्यकार बाबूबाल मुकुन्दगुप्त	नत्थन सिंह
९- धीरे बहो गंगा (१९५८)	देवेन्द्र सत्यार्थी
१०- धूल धूसरित मणियां (१९५६)	सीता दमयन्ती और लीला
११- पद्मावत में लोक तत्व(१९६२)	रवीन्द्र भ्रमर
१२- पं०बालकृष्ण भट्ट(१९५८)	राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
१३- प्रेमघन सर्वस्व (प्रथम और द्वितीय संस्करण)	प्रभाकरेश्वर उपाध्याय

१४- प्राचीन भारत के प्रसाधन(१९५८) — अत्रिदेव विद्यालंकार

१५- प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास (१९५३) — रांगेय राघव

१६- प्राचीन लोकोत्सव(१९५३) — मन्मथराय

१७- प्रताप नारायण ग्रंथावली(२०१४) — विजय शंकर मल्ल

१८- प्रताप लहरी (१९४९) — सम्पा० नारायण प्रसाद अरोड़ा

१९- पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ

२०- बांसुरी बज रही(१९५७) — जगदीश त्रिगुणायत

२१- बेला फूले आधीरात(१९४८) — देवेन्द्र सत्यार्थी

२२- ब्रजभाषा व्याकरण(१९३७) — धीरेन्द्र वर्मा

२३- ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन (१९४९) — सत्येन्द्र

२४- भारत की सांस्कृतिक कहानी — रामधारी सिंह दिनकर

२५- भारतीय व्रतोत्सव — पुरुषोत्तम चतुर्वेदी

२६- भारतेन्दु ग्रंथावली (प्रथम संस्करण) — सम्पा० ब्रजरत्नदास

२७- भोजपुरी ग्रामगीत (प्रथम संस्करण) — कृष्णदेव उपाध्याय

२८- भारतीय संगीत का इतिहास(१९५७) — उमेश जोशी

२९- भारतीय लोक साहित्य(१९५४) — श्याम परमार

३०- भारतेन्दु और उनके परवर्ती तथा पूर्ववर्ती कवि (सं० २००९) — किशोरी लाल गुप्त

३१- भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि(१९५६) — किशोरीलाल गुप्त

३२- भारतेन्दु कालीन नाट्य साहित्य(१९५९) — गोपीनाथ तिवारी

३३- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र(१९४८) — सम्पा० ब्रजरत्नदास

३४- भारतेन्दु युग — रामविलास शर्मा

३५- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र(१९५१) — लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

३६- भारतेन्दु की विचारधारा(१९४८) — लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

३७- भोजपुरी लोकगाथा(१९५७) — सत्यव्रत सिन्हा

३८- भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन — कृष्णदेव उपाध्याय

३९- भोजपुरी और उसका साहित्य(१९५७) — कृष्णदेव उपाध्याय

४०- मगही संस्कार गीत(प्रथम संस्करण)	विश्वनाथ प्रसाद
४१- मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन (१९६०)	सत्येन्द्र
४२- मानव और संस्कृति (१९६०)	श्यामा चरण दुबे
४३- मात्रिक छंदों का विकास(१९६४)	शिवनंदन प्रसाद
४४- मुहावरा मीमांसा(१९६०)	ओम प्रकाश गुप्त
४५- मैथिली लोक गीतों का अध्ययन(१९६२)	तेज नारायण लाल
४६- राजस्थान का लोक संगीत(१९५७)	देवीलाल सामर
४७- राजस्थान की जातियां(१९५४)	बजरंग लाल लोहिया
४८- राजस्थानी कहावतें-एक अध्ययन(१९५८)	कन्हैया लाल सहल
४९- रामचरित मानस में लोकवार्ता(सं० २०१२)	चन्द्रभान
५०- रसीली कजरी(१८९५)	किशोरीलाल गोस्वामी
५१- रहिमन विलास	सम्पा० ब्रजरत्नदास
५२- राधाकृष्ण दास ग्रंथावली	सम्पा० ब्रजरत्नदास
५३- लोक कला निबन्धावली(भा० १-३)	सम्पा० वासुदेव शरण अग्रवाल
५४- लोक साहित्य विज्ञान(१९६२)	सत्येन्द्र
५५- लोकायन(१९६१)	चिन्तामणि उपाध्याय
५६- लोक रागिनी (सं० १९८६)	सत्यव्रत अवस्थी
५७- विचार और वितर्क (१९५४)	हजारी प्रसाद द्विवेदी
५८- विचार और निष्कर्ष(१९५६)	वासुदेव
५९- समीक्षात्मक निबन्ध(१९६२)	सत्येन्द्र
६०- सांस्कृतिक मानव शास्त्र(१९६०)	अनुग्रहराज गुप्त
६१- साहित्य की समस्याएं (१९५९)	शिवदान सिंह चौहान
६२- सुहाग गीत(१९५३)	विद्यावती कोकिल
६३- संगीत के जीवन पृष्ठ (१९५५)	सुरेश व्रत राय
६४- संत साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि (अप्रकाशित)	ओम प्रकाश शर्मा

६५- श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छंदतावादी काव्य(१८७५-१९२५ई०)	रामचन्द्र मिश्र
६६- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग १६(हिन्दी का लोक साहित्य)	कृष्णदेव उपाध्याय
६७- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (प्रथम संस्करण)	रामकुमार वर्मा
६८- हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता (१९३१)	डा० बेनी प्रसाद
६९- हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग १-६ तक(१९५४)	भातखण्डे
७०- हिन्दुओं के त्योहार	कुंवर कन्हैया जू
७१- हिमानी लोक साहित्य(१९६१)	नरेन्द्र धीर
७२- हिन्दू संस्कार(सं० २०१४)	राजबली पाण्डेय
७३- हमारे पर्व और त्योहार	श्रीकण्ठ शास्त्री
७४- होली महिमा (सं० १९८६)	प्रयाग नारायणाचार्य

अंग्रेजी :

1. Affairs of the Tribe	Majumdar, D.N.
2. Alphabetical List of the Feasts and holidays of the Hindus and Mohammadans (1914)	
3. American Folk Lore	Botkin, B.A.
4. Anthropological papers Parts I to V (1929)(1934)	Modi, J.J.
5. The customs and Religion of the Chaing (1958)	Grahm, D.C.
6. Descriptive Ethnology of Bengal	Delton

No.	Title	Author/Editor
7.	Dictionary of American Language, College Edition	
8.	Standard Dictionary of the English Language, Vol. II. 1913.	Chief Ed. Issac K. FUNK.
9.	Dictionary of Non-Classical mythology	Chief Ed. Egerton Sykes.
10.	Dictionary of Folklore Mythology & Legend. 1949	Editor, Maria, Leach
11.	Dictionary of Phrase and Fables	
12.	Dictionary of Psychology, 1961.	Drever, J.
13.	Eastern Proverbs and Emblems 1881	Long, Rev. J.
14.	Elements of Folk Psychology 1916	Wundt
15.	Elements of the Science of Language, 1962	Taraporewala.
16.	Encyclopaedia of Literature, Vol. I (1946)	Shipley, J. T.
17.	Encyclopaedia of Religion & Ethics, (1961)	Ed. James Hastings
18.	Encyclopaedia of the Social Sciences (1931)	Ed. Edwin R. N. Seligman.
19.	Encyclopaedia Britannica (1956)	Ed. Walter Yost
20.	English Ballad	Greves, R.
21.	Faith and its Psychology (1919)	Inge, W. R.
22.	Faith, Hope and Charity in Primitive Religion, 1932	Marett, R. R.
23.	The Fear of the dead in primitive Religion Vol. I, II, III, (1934)	Frazer, J. G.

No.	Title	Author
25.	Folklore in the Old Testament (Studies in Comparative Religion, legend & Law), (1923)	Frazer, J.G.
26.	Folk Religion in South West China (1961)	Grahm, D.C.
27.	Folk Elements in Hindu Culture (1917)	Sarkar, B.K.
28.	Folk Songs of Chattisgarh (1946)	Elwin, V.
29.	Freud- His dream and Sex Theories. (1947)	Jastrow, J.
30.	Ganesh (1936)	Getty, A.
31.	Glossory of the Tribes and castes of the Punjab and North West Frontiers	Rose, H.A.
32.	Golden Bough (A Study in Magic and Religion (1922)	Frazer, J.G.
33.	Heroes and Hero Worship	Wherry,
34.	Himalyan Folk Lore (1935)	Oakley E.S. & Taradutt Gairola
35.	Hinduism: Ancient and Modern (1905)	Lala Baij Nath
36.	Hindustani Music-An outline of its Physics & Aesthetics (1952)	Ranadey, G.H.
37.	History of Indian Dress, (1960)	Fabri, C.
38.	Introduction to Folklore in U.S.A.	Brunno Nett.
39.	Introduction to popular religion and Folklore of Northern India. (1894)	Crooke, W.
40.	Introduction to Cultural Anthropology, (1955)	Lowie, R.H.
41.	Introduction to Cultural Anthropology (1959)	Mischa Titev.
42.	Kinship and Marriage in Early Arabia (1907)	Smith, W.R.
43.	Knowledge and the psychic disturbances of the Indian	George, D.

44. Language — Jesperson.

45. Lectures in Ethnography (1925) — Iyer, L.K.A.

46. Man in the primitive world — Hoebel.

47. Migration of Symbols and their relations to beliefs and customs (1926) — Mackenzie, D.A.

48. Mythology of the Aryan Nations (1870) — Cox, G.W.

49. Marriage and the family (1953) — Baber, R.E.

50. Mythology of All Races (1916) — Alexander, H.B.

51. Negro Folk Music — Courlander, H.

52. Non-Rgvedic Mantras in the Marriage Ceremonies (1958) — Pillai, P.K.N.

53. Observations on Popular Antiquities (1877) — Brand, J.

54. Origin and pre-historic of Language — Reeves, G.

55. Origin of Civilization (1882) — Lubbock, S.J.

56. Origin of Language (1860) — Farrar, F.W.

57. Original inhabitants of Bharatvarsh, (1893) — Oppert, G.

58. Philosophy of Word and Meaning (1959) — Gaurinath Shastri

59. Pleasures of Philosophy — Willdurant

60. Psyche's Task (A discourse concerning the influence of superstitions on the growth of Institution, (1920) — Frazer, J.G.

61. Psychological Analysis of Fashion Motivation (1934) — Bar. Estelle De Young.

62. Psychological frontiers of the Society (1950)	Kardiner, A.
63. Psychology and Ethnology (1926)	Rivers, W.H.R.
64. Psychology and Folklore	Marrett, R.R.
65. Problem of belief	Schiller, F.C.S.
66. Races and Cultures of India (1944)	Majumdar, D.N.
67. Remarks on the similes in Sanskrit Literature, 1949	Gond, J.
68. Short History of Marriage (1926)	Westermarck, E.
69. Similes in Manusmriti (1960)	Paradkar, M.P.
70. Similes of Kalidas (1945)	Pillai, K.C.
71. Social & Religious life in the Grihya Sutra, (1944)	Apte, V.M.
72. Social and Religious life in Grihya Sutra (1954)	Apte, V.M.
73. Social Anthropology (1956)	Majumdar & Madan
74. Sources of Indian Tradition (1960)	Ed. Theodore.
75. Study of Society, Methods and Problems, (1956)	Barlett, F.
76. Story of Indian Music its growth and synthesis (1957)	Goswami, O.
78. Story of Myth (1926)	Kellet
79. Suttee (1928)	Thompson, E.
80. Suttee	Penzer, N.M.
81. Superistitions	Upadhaya, G.P.
82. Tree Worship and Ophiolatory (1948)	Pillai, S.
83. Village Gods of South India (1921)	Whitehead, H.